विशेषेद्वीपादिसमुद्रादिषु प्रदेशेषु यथेष्टं दीव्यन्ति क्रीडन्ति ते देवाः ॥ इहैकवचननिर्देशो युक्तः "देवश्चतुर्णिकाय" इति, जात्यभिधानाद्बहूनां प्रतिपादको भवति ॥ बहुत्वनिर्देशस्तदन्तर्गतभेदप्रतिपत्त्यर्थं । इन्द्रसामानिकादयो बहवो भेदा सन्ति स्थित्यादिकृताश्च तत्सूचनार्थं ॥ देवगतिनामकर्मोदयस्य स्वधर्म-

विशेष ;। द्वीपादि—समुद्रादिषु।। प्रदेशेषु,। यथा-इष्टम् दीव्यन्ति-क्रीडन्ति ते,। देवाः ;। इह-एक-वचन-निर्देशः;। युक्तः,। देवाः,। चतुर-निकायः,। इति जाति-अभिधानात,।।। बहूनां।।। प्रतिपादकः,। भवति।

=विशेषकरि द्वीपादिक समुद्रादिक स्थानो में (=प्रदेशेषु)
=इच्छानुसार खेलते हैं (=दीव्यन्ति) क्रीड़ा करते हैं वे देवता हैं
=(प्रश्न) यह (सूत्र) एक वचनमें निरूपण या कथन होना उचित (युक्त) था
=देवाः चतुर्णिकाया' इस प्रकार क्योंकि समान जाति के कहने से
=बहुतकी प्रतिपत्ति या ज्ञान होता है अर्थात इस सूत्र का प्रत्येक पद देवाः और चतुर्णिकाया' बहुवचन में हैं सो शिष्य प्रश्न करता है कि समान जाति के कथन करने में यदि ये पद "देवाः चतुर्णिकाय" " इस प्रकार एक वचन में होते तो भी बहुत के वाचक होते, तो ये दोनों पद बहुवचनान्त क्यों हैं। एक वचन में ही इन का निर्देश क्यों नहीं किया है।

बहुत्व-निर्देश ;। तद्
अन्तर्गत-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थं ;। इन्द्र-सामानिक-आदयः।। बहवः,। भेदाः,। स्थिति-आदि-कृताः,। च सन्ति— तद्-सूचन अर्थं,।

—(उत्तर) बहुतता अर्थात बहुवचन का कथन (=निर्देश) उन (चार प्रकारके देवों) के
—अन्तर्भेद जानने के लिये (=प्रतिपत्ति) है (जैसे) इन्द्र-सामानिक (सूत्र ४) आदिक बहुत भेद हैं और आयु आदिक
—तिन (इन्द्र सामानिक, आदि, तथा स्थिति, आदिक) के ज्ञापन या बतलाने के लिये (देवाः चतुर्णिकायाः दोनों वाक्य बहुवचन में इस सूत्र में लाये) हैं

देवगति-नामकर्म-उदयस्य;। स्वधर्म-

—देवगति नामा नामकर्म के उदय (और) अपने धर्म या स्वभाव (=स्वधर्म) की अर्थात देवगति में गमन करने वाले जीवों की।

विशेषापादितभेदस्य सामर्थ्यान्निचीयन्त इति निकायाः संघाता इत्यर्थः । चत्वारो निकाया येषां ते चतुर्णिकाया ॥ के पुनस्ते ? भवनवासिनो, व्यन्तरा, ज्योतिष्का, वैमानिकाश्चेति ॥ तेषां लेश्यावधारणार्थमुच्यते—

॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥

आदित इत्युच्यते अन्ते मध्ये वा ग्रहणं मा विज्ञायीति ।

विशेष–आपादित–भेदस्य ;। सामर्थ्यात् ।॥ निचीयन्ते T	=विशेष प्राप्त भेदकी सामर्थ्य वा शक्तिसे भेदरूप समूह है ।
इति॰ निकायाः ;। संघाताः ,। इति ॰ अर्थ ;।	=ऐसे निकाय हैं समुदाय अथवा समूह इस प्रकार अर्थ है ।
चत्वारः ;। निकायाः ,। येषां ;। ते ,। चतुर–निकायाः ;।	=चार समुदाय जिनके हैं । ये चतुर्णिकायाः हैं ॥
के ;। पुनः ॰ ते ;।, भवन–वासिनः '। व्यन्तराः ,।	=बहुरि वे (चतुर्णिकाय) कौन हैं । (उत्तर) भवनवासी व्यन्तर,
ज्योतिष्का । वैमानिकाः ;। च इति तेषां ;। लेश्या–	=ज्योतिष्क बहुरि (=च) वैमानिक ऐसे हैं । उन (चार समुदाय)की लेश्याके–
अवधारण- अर्थम् ।॥ उच्यते T	=नियम (=अवधारण) के लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहा जाय है कि

सूत्रम् आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्या. ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—आदितः ॰ त्रिषु ;।	=आरम्भसे (लेकर) तीन (समुदायके भवनवासी व्यन्तर,ज्योतिष्क देवों) में
पीत–अन्त–लेश्याः ;।	=पीत पर्यन्त (अर्थात् कृष्ण, नील, कापोत पीत, ये चार ही) लेश्या हैं ॥
पृच्छनुवाद—आदितः ॰ इति ॰ उच्यते T अन्ते ;।	=(इस सूत्रमें) आरम्भ से ऐसा वर्णित है । सो अन्त में
मध्ये ;। वा ॰ ग्रहणं ;।॥ मा ॰ विज्ञायि–इति ॰	=अथवा बीचमें ग्रहण मति (=मा) जानो अर्थात् आदिसे भवनवासी देवों के

(१) कहीं पर 'पीतान्त' पाठ है कहीं पर पीतांत है दोनों ठीक हैं (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४० ५४१)। श्वेताम्बर आम्नायके सम्मान्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र में "तृतीयः पीत लेश्या ॥ ॥—तीसरा (निकाय या समुदाय ज्योतिष्क देवों का) पीत लश्या वाला है ऐसा दूसरा सूत्र है। पीतान्त लेश्याः ॥ ७ ॥ इस सूत्र में भाष्यकार ने सभाष्य ० के छठवां सूत्र "पूर्वयोर्द्वीन्द्राः" से पूर्वयोः' शब्दकी अनुवृत्ति लेकर ऐसा अर्थ किया है (पूर्वयोर्निकाययोर्देवानां पीतान्तलेश्या भवन्ति) —पहिले दो (भवनवासी और व्यन्तर) देवों के समुदाय के (आरंभ से लेकर) पीत पर्यंत चार (कृष्णा-नीला-कापोता पीता) लेश्या होती है ॥ दिगम्बरों का दूसरा, श्वेताम्बरोंका दूसरा और सातवां सूत्रोंको पढ़नेसे यह भेद ऐसा हुआ कि दोनोंके अनुकूल भवनवासी और व्यंतरों में तक चार लेश्या होती है। ज्योतिष्कोंमें हमारे यहां चार लेश्या मानी है उनके यहां पीत मानी है ॥

आदौ आदितः ॥ द्वयोरेकस्य च निवृत्त्यर्थं त्रिग्रहणं क्रियते ॥ अथ चतुर्णां निवृत्त्यर्थं कस्मान्न भवति ? । आदित इति वचनात् ॥ षड्लेश्या उक्तास्तत्र चतसृणां लेश्यानां ग्रहणार्थं पीतान्तग्रहणं क्रियते ॥ पीत तेज इत्यर्थः । पीता अन्ते यासां ता पीतान्ताः लेश्या येषां ते पीतान्तलेश्याः ॥ एतदुक्तं भवति— आदितस्त्रिषु निकायेषु भवनवासिव्यन्तर—

समुदायसे पहिले तीन ग्रहण करना चाहिये न कि मध्यम व्यन्तर ज्योतिष्कके समुदायोंसे अथवा अन्तसे वैमानिक समुदायसे (ग्रहण करो)

आदौ ;। आदितः ॥ द्वयोः ;। एकस्य ;। च ॥ =जो आदि विषें हो वा आदि पर हो सो आरम्भसे है (=आदित) दोयके और (=च) एकके

निवृत्ति— अर्थ ;॥ त्रि- ग्रहणं ;॥ क्रियते । =निषेधके लिये (इस सूत्रमें) तीन (शब्द)का ग्रहण किया गया है ॥

अथ ॥ चतुर्णां ;। निवृत्ति—अर्थं ;॥ कस्मात् ;। =(प्रश्न)आगे(=अथ)चारके निराकरणका अभिप्राय अथवा प्रयोजन किसी(शब्द)से

न ॥ भवति । आदितः ॥ इति ॥ वचनात् ;॥ =(सूत्रमें)नहीं होता है (उत्तर) "आदितः" ऐसे वाक्यसे (देवोंके चौथे समुदायके ग्रहण का निषेध) होता है (क्योंकि "आदित त्रिषु" अर्थात् आरम्भ से लेकर तीन भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके समूह तो इससे ग्रहण होते हैं और चौथा वैमानिकोंका निकायका प्रतिषेध वा निषेध हो जाता है ॥

षड् ;। लेश्या ,॥ उक्ताः ;॥ तत्र ॥ चतसृणां ;॥ लेश्यानां ;। =छह लेश्यायें वर्णित हैं वहां चार लेश्याओं के

ग्रहण-अर्थं ;। पीत अन्त-ग्रहणं ;॥ क्रियते । =उपलब्धि वा ग्रहणके लिये(सूत्रमें)पीत तक(ऐसा वचन)ग्रहण किया गया है

पीतं ,॥ तेजः ;॥ इति अर्थः ;। पीता ,॥ अन्ते ;। यासां ;॥ =पीत है सो ही तेज है ऐसा अर्थ है। पीत (लेश्या) है अन्तमें जिन(लेश्याओं के

ताः ;। पीत-अन्त-लेश्याः ,। =वे पीत पर्यन्त, लेश्या हैं

(पीतान्तलेश्याः ,॥) येषां ;। ते ,। पीतान्तलेश्याः ;। =(पीतान्त लेश्या है) जिन्होंके वे पीतान्तलेश्या वाले देव हैं

एतद् ;॥ (वा एतत् ;॥) उक्तं ;॥ भवति— । =(तब इस समस्त सूत्रका)यह(=एतद्)कथन अर्थात् अर्थ होता है कि

आदितः ॥ त्रिषु ;। निकायेषु ;। भवनवासिन्—व्यन्तर— =आरम्भसे तीन समुदाय भवनवासी—व्यन्तर—

ज्योतिष्कनामसु देवाना कृष्णा नीला कापोता पीतेति चतस्रो लेश्या भवन्ति ॥ तेषा निकायानामन्तर्विकल्प - प्रतिपादनार्थमाह—

॥ दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

ज्योतिष्क—नामसु ॥ देवानां ॥ कृष्णा ॥ नीला ॥ =ज्योतिष्क नामवालेदेवताओं के कृष्ण नील
कापोता ॥ पीता ॥ इति ॥ चतस्रः ॥ लेश्याः ॥ भवन्ति ॥ =कापोत पीत ऐसे चार लेश्यायें होती हैं।
तेषां ॥ निकायानां ॥ अन्तर्विकल्प— प्रतिपादन— अर्थम् ॥ आह =तिन समुदायोंके अन्तर्भेद कहनेके लिये वा ज्ञान कराने के लिये =कहते हैं कि

सूत्रम्— दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पा कल्पोपपन्नपर्यन्ता ॥३॥

=(देवाश्चतुर्णिकाया) दशाष्टपञ्चद्वादश विकल्पा कल्पोपपन्नपर्यन्ता ॥३॥

सूत्रार्थ—देवा ॥ चतुः-निकायाः ॥ दश अष्ट-पञ्च =चार समुदाय वाले देव (यथासंख्य) दश, आठ, पांच,
द्वादश-विकल्पा ॥ कल्प- उपपन्न- पर्यन्ताः ॥ =और बारह भेदों के धारक स्वर्ग में उत्पन्न होने वालों तक अर्थात् स्वर्ग-वासी देवों पर्यन्त (=कल्पोपपन्न पर्यन्त) हैं। भावार्थ यह है कि दशप्रकार के भवन वासी देव हैं, आठ भेद व्यन्तर देवोंके हैं, पांच विकल्प ज्योतिषी देवोंके हैं। और बारह प्रकार के सोलह स्वर्ग पर्यन्त कल्पवासी देव हैं।

( ) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है। (२) ऊर्ध्व लोक के दो भेद हैं कल्प और कल्पातीत। और जिन में वैमानिक देव निवास करते हैं वे भी स्थान भेद से दो प्रकार हैं। एक कल्पोपपन्न अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग तक उत्पन्न हो कर उन स्वर्गों में निवास करने वाले। इन देवों के ही बारह भेद इस सूत्र में कहे हैं। दूसरे कल्पातीतोपपन्न अर्थात् सोलहवां स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पंचानुत्तर इन तेईस स्थानों में उपजकर सोलहवां स्वर्ग से ऊपर बसते हैं। यह इन बारह भेदों में अन्तर्गत नहीं हैं।

आदौ आदित ॥ द्वयोरेकस्य च निवृत्यर्थं त्रिग्रहणं क्रियते ॥ अथ चतुर्णां निवृत्यर्थं कस्मान्न भवति ? । आदित इति वचनात् ॥ षड्लेश्या उक्तास्तत्र चतसृणां लेश्यानां ग्रहणार्थं पीतान्तग्रहणं क्रियते ॥ पीत तेज इत्यर्थः । पीता अन्ते यासां ता पीतान्ताः लेश्या येषां ते पीतान्तलेश्याः ॥ एतदुक्तं भवति— आदितस्त्रिषु निकायेषु भवनवासिव्यन्तर—

समुदायसे पहिले तीन ग्रहण करना चाहिये न कि मध्यम व्यन्तर ज्योतिष्कके समुदायोंसे अथवा अन्तसे वैमानिक समुदायसे (ग्रहण करो)

आदौ ;, आदितः * द्वयोः ;, एकस्य ;, च * =जो आदि विषें हो वा आदि पर हो सो आरम्भसे है (=आदित) दोयके और (=च)एकके

निवृत्ति— अर्थ ;॥ त्रि- ग्रहणं ;॥ क्रियते T =निषेधके लिये (इस सूत्रमें) तीन (शब्द)का ग्रहण किया गया है ॥

अथ * चतुर्णां ;, निवृत्ति—अर्थ ;॥ कस्मात् ;, =(प्रश्न)आगे(=अथ)चारके निराकरणका अभिप्राय अथवा प्रयोजन किसी(कारण)से

न * भवति T आदित * इति * वचनात् ;॥ =(उत्तरमें)नहीं होता है (उत्तर) "आदितः" ऐसा वाक्यसे (देवोंके चौथे समुदायके ग्रहण का निषेध) होता है (क्योंकि आदितः त्रिषु" अर्थात् आरम्भ से लेकर तीन भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके समूह तो इससे ग्रहण होते हैं और चौथा वैमानिकोंका निकायका प्रतिषेध वा निषेध हो जाता है ॥

षट् ;, लेश्या ,॥ उक्ताः ;॥ तत्र* चतसृणां ;॥ लेश्यानां ;, =छह लेश्यायें वर्णित हैं वहां चार लेश्याओं के

ग्रहण-अर्थं ;, पीत अन्त-ग्रहणं ;॥ क्रियते T =उपलब्धि वा ग्रहणके लिये(सूत्रमें)पीत तक(ऐसा वचन)ग्रहण किया गया है

पीतं ,॥ तेजः ;॥ इति अर्थः ;, पीता ,॥ अन्ते ;, यासां ;॥ =पीत है सो ही तेज है ऐसा अर्थ है। पीत (लेश्या) है अन्तमें जिन(लेश्याओं) के

ताः ;, पीत-अन्त-लेश्याः ,, =वे पीत पर्यन्त, लेश्या हैं

(पीतान्तलेश्याः ,॥) येषां ;, ते ;, पीतान्तलेश्याः ;, =(पीतान्त लेश्या है) जिन्होंकि वे पीतान्तलेश्या वाले देव हैं

एतत् ,॥ (वा एतत् ;॥) उक्तं ;॥ भवति— T =(तब इस समस्त सूत्रका)यह(=एतत्)कथन अर्थात् अर्थ होता है कि

आदितः * त्रिषु ;, निकायेषु ;, भवनवासिन्—व्यन्तर— =आरम्भसे तीन समुदाय भवनवासी—व्यन्तर—

ज्योतिष्कनामसु देवाना कृष्णा नीला कापोता पीतेति चतस्रो लेश्या भवन्ति ॥ तेषां निकायानामन्तर्विकल्प-प्रतिपादनार्थमाह—

॥ दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

ज्योतिष्क—नामसु ॥ देवानां ॥ कृष्णा ॥ नीला ॥ =ज्योतिष्क नामवालेदेवताओं के कृष्ण नील
कापोता ॥ पीता ॥ इति * चतस्रः ॥ लेश्या ॥ भवन्ति =कापोत पीत ऐसे चार लेश्यायें होती हैं।
तेषां ॥ निकायानां ॥ अन्तर्विकल्प—प्रतिपादन—अर्थम् ॥, आह =जिन समुदायोंके अन्तर्भेद कहनेके लिये या ज्ञान कराने के लिये कहते हैं कि

सूत्रम्— दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पा कल्पोपपन्नपर्यन्ता ॥३॥

=(देवाश्चतुर्णिकाया) दशाष्टपञ्चद्वादश विकल्पा कल्पोपपन्नपर्यन्ता ॥३॥

सूत्रार्थः—देवा ॥ चतुः-निकायाः ॥ दश-अष्ट-पञ्च =चार समुदाय वाले देव (यथासंख्य) दश, आठ, पांच,
द्वादश-विकल्पा ॥ कल्प- उपपन्न- पर्यन्ताः ॥ =और बारह भेदों के धारक स्वर्ग में उत्पन्न होने वालों तक अर्थात् स्वर्गवासी देवों पर्यन्त (=कल्पोपपन्न पर्यंत) हैं। भावार्थ यह है कि दशप्रकार के भवन वासी देव हैं, आठ भेद व्यन्तर देवोंके हैं, पांच विकल्प ज्योतिषी देवोंके हैं। और बारह प्रकार के सोलह स्वर्ग पर्यन्त कल्पवासी देव हैं।

( ) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है। (२) ऊर्ध्व लोक के दो भेद हैं कल्प और कल्पातीत। और जिन में वैमानिक देव निवास करते हैं वे भी स्थान भेद से दो प्रकार हैं। एक कल्पोपपन्न अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग तक उत्पन्न हो कर उन स्वर्गों में निवास करने वाले। इन देवों के ही बारह भेद इस सूत्र में कहे हैं। दूसरे कल्पातीतोपपन्न अर्थात् सोलहवां स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पंचानुत्तर इन तेईस स्थानों में उपजकर सोलहवां स्वर्ग से ऊपर बसते हैं। यह इन बारह भेदों में अन्तर्गत नहीं है।

आदौ आदित ॥ द्वयोरेकस्य च निवृत्त्यर्थं त्रिग्रहणं क्रियते ॥ अथ चतुर्णां निवृत्त्यर्थं कस्मान्न भवति ? । आदित इति वचनात् ॥ षड्लेश्या उक्तास्तत्र चतसृणा लेश्यानां ग्रहणार्थं पीतान्तग्रहणं क्रियते ॥ पीत तेज इत्यर्थः । पीता अन्ते यासा ता पीतान्ताः लेश्या येषा ते पीतान्तलेश्या ॥ एतदुक्तं भवति– आदितस्त्रिषु निकायेषु भवनवासिव्यन्तर–

समुदायसे पहिले तीन ग्रहण करना चाहिये न कि मध्यम व्यन्तर ज्योतिष्कके समुदायोंसे अथवा अन्तसे वैमानिक समुदायसे (ग्रहण करो)

आदौ ;। आदितः * द्वयोः ;। एकस्य ;। च * =जो आदि विषै हो वा आदि पर हो सो आरम्भसे है (=आदित) दोयके और (=च)एकके

निवृत्ति– अथ ;॥ त्रि- ग्रहणं ;॥। क्रियते । =निषेधके लिये (इस सूत्रमें) तीन (शब्द)का ग्रहण किया गया है ॥

अथ * चतुर्णा ;। निवृत्ति–अर्थं ;॥। कस्मात् ;। =(प्रश्न)आगे(=अथ)चारके निराकरणका अभिप्राय अथवा प्रयोजन किसी(शब्द)से

न * भवति । आदित * इति * वचनात् ;॥। =(सूत्रमें)नहीं होता है (उत्तर) "आदितः" ऐसे वाक्यसे (देवोंके चौथे समुदायके ग्रहण का निषेध) होता है (क्योंकि आदित त्रिषु" अर्थात् आरम्भ से लेकर तीन भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके समूह तो इससे ग्रहण होते हैं और चौथा वैमानिकोंका निकायका प्रतिषेध वा निषेध हो जाता है ॥

षट् ;॥ लेश्या ,॥ उक्ताः ;॥ तत्र* चतसृणा ;॥ लेश्यानां ;। =छह लेश्यायें वर्णित हैं वहां चार लेश्याओं के

ग्रहण-अर्थं ;॥ पीत अन्त-ग्रहणं ;॥। क्रियते । =उपलब्धि वा ग्रहणके लिये(सूत्रमें)पीत तक(ऐसा वचन)ग्रहण किया गया है

पीतं ,॥। तेजः ;॥। इति अर्थो ;। पीता ;॥ अन्ते ;। यासां ;॥ =पीत है सो ही तेज है ऐसा अर्थ है। पीत (लेश्या) है अन्तमें जिन(लेश्याओं)के

ताः ,॥ पीत-अन्त-लेश्याः ,॥ =वे पीत पर्यन्त, लेश्या हैं

(पीतान्तलेश्या' ,॥) येषां ;। ते ,। पीतान्तलेश्याः ;। =(पीतान्त लेश्या है) जिन्होंके वे पीतान्तलेश्या वाले देव हैं

एतत् ;॥। (वा एतद ;॥।) उक्तं ;॥। भवति– । =(तब इस समस्त सूत्रका)यह(=एतत्)कथन अर्थात् अर्थ होता है कि

आदितः * त्रिषु ;। निकायेषु ;। भवनवासिन्–व्यन्तर– =आरम्भसे तीन समुदाय भवनवासी–व्यन्तर–

ज्योतिष्कनामसु दवानां कृष्णा नीला कापोता पीतेति चतस्रो लेश्या भवन्ति ॥ तेषां निकायानामन्तर्विकल्प-प्रतिपादनार्थमाह—

॥ दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

ज्योतिष्क—नामसु ॥ देवानां ॥ कृष्णा ॥ नीला ॥ =ज्योतिष्क नामवालेदेवताओं के कृष्ण नील

कापोता ॥ पीता ॥ इति ॥ चतस्रः ॥ लेश्याः ॥ भवन्ति ॥ =कापोत पीत ऐसे चार लेश्यायें होती हैं।

तेषां ॥ निकायानां ॥ अन्तर्विकल्प– प्रतिपादन– अर्थम् ॥, आह =तिन समुदायोंके अन्तर्भेद कहनेके लिये वा ज्ञान कराने के लिये =कहते हैं कि

सूत्रम्— दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पा कल्पोपपन्नपर्यन्ता ॥३॥

=(देवाश्चतुर्णिकाया) दशाष्टपञ्चद्वादश विकल्पा कल्पोपपन्नपर्यन्ता ॥३॥

सूत्रार्थ—देवा ,। चतुः-निकाया ,। दश-अष्ट-पञ्च =चार समुदाय वाले देव (यथासंख्य) दश, आठ, पांच,

द्वादश-विकल्पा ,। कल्प- उपपन्न- पर्यन्ताः ॥ =और बारह भेदों के धारक स्वर्ग में उत्पन्न होने वालों तक अर्थात् स्वर्ग-वासी देवों पर्यन्त (=कल्पोपपन्न पर्यन्त) हैं। भावार्थ यह है कि दशप्रकार के भवन वासी देव हैं, आठ भेद व्यन्तर देवोंके हैं, पांच विकल्प ज्योतिषी देवोंके हैं। और बारह प्रकार के सोलह स्वर्ग पर्यन्त कल्पवासी देव हैं।

( ) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है। (२) ऊर्ध्व लोक के दो भेद हैं कल्प और कल्पातीत। और जिन में वैमानिक देव निवास करते हैं वे भी स्थान भेद से दो प्रकार हैं। एक कल्पोपपन्न अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग तक उत्पन्न हो कर उन स्वर्गों में निवास करने वाले। इन देवों के ही बारह भेद इस सूत्र में कहे हैं। दूसरे कल्पातीतोपपन्न अर्थात् सोलहवां स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पंचानुत्तर इन तेईस स्थानों में उपजकर सोलहवां स्वर्ग से ऊपर बसते हैं। यह इन बारह भेदों में अन्तर्गत नहीं हैं।

चतुर्णां देवनिकायानां दशादिभिः संख्याशब्दैर्यथासंख्यमभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ दशविकल्पा भवनवासिनः । अष्टविकल्पा व्यन्तराः । पञ्चविकल्पा ज्योतिष्काः । द्वादशविकल्पा वैमानिका इति ॥ सर्ववैमानिकानां द्वादशविकल्पान्तः पातित्वे प्रसक्ते ग्रैवेयकादिनिवृत्त्यर्थं विशेषणमुपादीयते कल्पोपपन्नपर्यन्ता इति ॥ अथ कथं कल्पसंज्ञा? इन्द्रादयः प्रकारा दश एतेषु कल्प्यन्त इति कल्पाः ॥ भवनवासिषु तत्कल्पना

चतुर्णाम् ॥ देव-निकायानाम् ॥	=चार (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक) देवोंके समूह का समुदायोंका
दश- आदिभिः ॥ संख्या-शब्दैः ॥ यथासंख्यम् *	=दश, आठ, पांच और बारह गणना शब्दों से संख्या के क्रम से
अभिसम्बन्धः ॥ वेदितव्यः ॥	=सम्बन्ध जानना चाहिये (इस प्रकार यथासंख्य सम्बन्ध करने से)
दश-विकल्पाः ॥ भवनवासिनः ॥ अष्ट-विकल्पाः ॥	=दश भेदरूप भवनवासी (देव) हैं। आठ भेदों के धारक
व्यन्तराः ॥ पञ्च-विकल्पाः ॥ ज्योतिष्काः ॥ द्वादशविकल्पाः ॥	=व्यन्तर हैं। पांच भेद वाले ज्योतिषी देव हैं। बारह भेदरूप
वैमानिकाः ॥ इति *	=वैमानिक हैं अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग पर्यंत उत्पन्न होने वाले देव हैं
सर्व-वैमानिकानाम् ॥ द्वादश-विकल्प-अन्तः	=सब वैमानिक देवों का बारह भेदों के भीतर (=अन्त)
पातित्वे * ॥ प्रसक्ते ॥ ग्रैवेयक-आदि-निवृत्ति-अर्थम् ॥	=आजाने के (=पातित्वे) प्रसंग होने पर ग्रैवेयक आदि के निषेध के लिये
कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः ॥ इति * विशेषणम् ॥	=कल्पोपपन्न पर्यन्ता ऐसा (इस सूत्र में) विशेषण
उपादीयते ॥ अथ * कथं * कल्प-संज्ञा ॥	=लाया गया है (=उपादीयते) प्रश्न (अथ) (इन वैमानिक देवों की) कल्पसंज्ञा कैसे है
इन्द्रादयः ॥ प्रकाराः ॥ दश ॥ एतेषु ॥	=(उत्तर) इन्द्रादिक (देखिये सूत्र चौथा) दश भेद इन (वैमानिक देवों) में
कल्प्यन्ते ॥ इति कल्पाः ॥	=कल्पना किये हैं या माने गये हैं इस प्रकार कल्पा है। अर्थात् कल्पसंज्ञा इन देवों की इस हेतु से है कि इन के दश भेदों की कल्पना की गई है।
भवनवासिषु ॥ तत्कल्पना	=(प्रश्न) भवनवासि देवों में वही कल्पना है (उत्तर) (वैसी कल्पना)

सम्भवेऽपि रूढिवशाद्वैमानिकेष्वेव वर्तते कल्पशब्द॰ ॥ कल्पषूपपन्ना कल्पोपपन्ना॰ । कल्पोपपन्ना पर्यंन्ता येषा ते कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥ पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥

सम्भवे;। अपि॰ रूढि-वशात्। वैमानिकेषु;। एव॰ —सम्भव होने पर भी प्रसिद्धता के वशसे वैमानिक देवों में ही
वर्तते कल्प-शब्दः;। कल्पेषु;। उपपन्नाः,। —कल्पशब्द प्रवर्तता है। कल्पों अथवा स्वर्गों में उत्पन्न होने वाले हैं[1]
कल्प उपपन्नाः, ; कल्प-उपपन्नाः,। —वे कल्पोपपन्न हैं अर्थात् स्वर्गवासी देव है। कल्पोंमें उत्पन्न होनेवाले
पर्यन्ता॰;। येषाम्;। ते;। कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः;। —तक जिनके (बारह भेद) हैं वे कल्पोपपन्न पर्यन्त हैं।
पुनः-अपि॰ तद् विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्;।।। आह। —फिर भी उन (देवों) का विशेष जाननेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहतेहैं कि

सूत्रम्— इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्य किल्विषिकाश्चैकश. ॥४॥

पदच्छेद— इन्द्र सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक आभियोग्य-किल्विषिका ;। च॰ एकश॰ (देवनिकायेषु देवा॰ दशविधाभवन्ति)

(१) इस सूत्र का पाठ हमारे यहां एक सा है किसी २ प्रति में 'किल्विषिका' है किसी २ में 'किल्विषिका' है कोषों में 'किल्विष' शब्द पाप और अपराध के अर्थ में मिलता है॥ श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में 'पारिषद्' शब्दके स्थान में 'पारिषद्य' है शेष पाठ दोनों आम्नायों में एक सा है अर्थ भी एक है। भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका (श्री सिद्धसेन सूरि रचित) में 'किल्विषिका' पाठ है। शेष पाठ उनके यहां भी एक है॥

(२) त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस, त्रयस्त्रिंशा या त्रयस्त्रिंशत्तम (=त्रयस्त्रिंशत्तम) =तेतीसवां, त्रायस्त्रिंशकाः या त्रायस्त्रिंशाः=एक प्रकार के नियमित तेतीस देवों का समूह अर्थात् इन्द्रके मंत्री, पुरोहित के समान या उनके स्थापन हैं वे त्रायस्त्रिंश हैं और इस जातिके ये तेतीस ही देव होते हैं॥ त्रायस्त्रिंश=दस(१०) देवों में से एक। उक्त छहों शब्द ठीक हैं परन्तु हमको चौथे और पांचवें सूत्र के पाठ में 'त्रायस्त्रिंशत्' शब्द पांच स्थानों में

चतुर्णां देवनिकायानां दशादिभिः संख्याशब्दैर्यथासंख्यमभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ दशविकल्पा भवनवासिनः । अष्टविकल्पा व्यन्तराः । पञ्चविकल्पा ज्योतिष्काः । द्वादशविकल्पा वैमानिका इति ॥ सर्ववैमानिकानां द्वादशविकल्पान्तःपातित्वे प्रसक्ते ग्रैवेयकादिनिवृत्त्यर्थं विशेषणमुपादीयते कल्पोपपन्नपर्यन्ता इति ॥ अथ कथं कल्पसञ्ज्ञा ? इन्द्रादयः प्रकाराः दश एतेषु कल्प्यन्त इति कल्पाः ॥ भवनवासिषु तत्कल्पना

अनुवाद—चतुर्णाम् ॥ देव-निकायानाम् ॥	=चार (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक) देवोंके समूह या समुदायोंका
दश- आदिभिः ॥ संख्या-शब्दैः ॥ यथासंख्यम् *	=दश, आठ, पांच और बारह गणना शब्दों से संख्या के क्रम से
अभिसम्बन्धः ॥ वेदितव्यः ॥	=सम्बन्ध जानना चाहिये (इस प्रकार यथासंख्य सम्बन्ध करने से)
दश विकल्पाः ॥ भवनवासिनः ॥ अष्ट-विकल्पाः ॥	=दश भेदरूप भवनवासी (देव) हैं। आठ भेदों के धारक
व्यन्तराः ॥ पञ्च-विकल्पाः ॥ ज्योतिष्काः ॥ द्वादशविकल्पाः ॥	=व्यन्तर हैं। पांच भेद वाले ज्योतिषी देव हैं। बारह भेदरूप
वैमानिकाः ॥ इति *	=वैमानिक हैं अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग पर्यंत उत्पन्न होने वाले देव हैं
सर्व-वैमानिकानाम् ॥ द्वादश-विकल्प-अन्तः	=सब वैमानिक देवों का बारह भेदों के भीतर (=अन्तः)
पातित्वे ॥ प्रसक्ते ॥ ग्रैवेयक-आदि-निवृत्ति-अर्थम् ॥	=आजाने के (=पातित्वे) प्रसंग होने पर ग्रैवेयक आदि के निषेध के लिये
कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः ॥ इति * विशेषणम् ॥	=कल्पोपपन्न पर्यन्ता ऐसा (इस सूत्र में) विशेषण
उपादीयते ॥ अथ * कथम् * कल्प-संज्ञा ॥	=लाया गया है (=उपादीयते) (प्रश्न (अथ) (इन वैमानिक देवों की) कल्पसंज्ञा कैसे है
इन्द्रादयः ॥ प्रकाराः ॥ दश ॥ एतेषु ॥	=(उत्तर) इन्द्रादिक (देखिये सूत्र चौथा) दश भेद इन (वैमानिक देवों)में
कल्प्यन्ते ॥ इति कल्पाः ॥	=कल्पना किये हैं वा माने गये हैं इस प्रकार कल्पा है। अर्थात् कल्पसंज्ञा इन देवों की इस हेतु से है कि इन के दश भेदों की कल्पना की गई है।
भवनवासिषु ॥ तत्कल्पना	=(प्रश्न) भवनवासि देवों में वही कल्पना है (उत्तर) (ऐसी कल्पना)

सम्भवेऽपि रूढिवशाद्वैमानिकेष्वेव वर्तते कल्पशब्दः ॥ कल्पषूपपन्ना कल्पोपपन्ना । कल्पोपपन्ना पर्यन्ता येषा ते कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥ पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥

सम्भवे; अपि॰ रूढि-वशात्। वैमानिकेषु; एव॰ वर्तते॰ कल्प-शब्दः।। कल्पेषु; उपपन्नाः;। कल्प उपपन्नाः, ; कल्प-उपपन्ना ;। पर्यन्ताः;। येषाम्;। ते;। कल्पोपपन्न-पर्यन्ता ;। पुनः अपि॰ तद् विशेष प्रतिपत्ति-अर्थम्।।। आह।

—सम्भव होने पर भी प्रसिद्धता के वशसे वैमानिक देवों में ही
—कल्पशब्द प्रवर्तता है। कल्पों अथवा स्वर्गों में उत्पन्न होने वाले हैं
—वे कल्पोपपन्न हैं अर्थात् स्वर्गवासी देव है। कल्पोंमें उत्पन्न होनेवाले
—तक जिनके (बारह भेद) हैं वे कल्पोपपन्न पर्यन्त हैं।
—फिर भी उन (देवों) का विशेष जाननेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्य किल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥

पदच्छेद— इन्द्र सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक प्रकीर्णक आभियोग्य-किल्विषिकाः ;। च॰ एकशः॰ (देवनिकायेषु देवाः दशविधाभवन्ति)

(१) इस सूत्र का पाठ हमारे यहां एक सा है किसी २ प्रति में 'किल्विषिका' है किसी २ में 'किल्विषिका' है कोषों में 'किल्विष' शब्द पाप और अपराध के अर्थ में मिलता है॥ श्वेताम्बर आम्नाय के तत्त्वार्थाधिगमसूत्र में 'पारिषद' शब्दके स्थान में 'पारिषद्य' है शेष पाठ दोनों आम्नायों में एक सा है अर्थ भी एक है। भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका (श्री सिद्धसेन सूरि रचित) में किल्विषिका' पाठ है। शेष पाठ उनके यहां भी एक है॥

(२) त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस, त्रयस्त्रिंश या त्रयस्त्रिंशत्तम (=त्रयस्त्रिंशत्तम) =तेतीसवां, त्रायस्त्रिंशाः या त्रायस्त्रिंशाः—एक प्रकार के नियमित तेतीस देवों का समूह अर्थात् इन्द्रके मंत्री, पुरोहित के समान या उनके स्थापन्य है वे त्रायस्त्रिंश हैं और इस जाति के ये तेतीस ही देव होते हैं॥ त्रायस्त्रिंश—उन(१०) देवों में से एक। उक्त छहों शब्द ठीक हैं परन्तु इसको चौथे और पांचवें सूत्र के पाठ में 'त्रायस्त्रिंशत्' शब्द पांच स्थानों में

चतुर्णां देवनिकायानां दशादिभिः सङ्ख्याशब्दैर्यथासङ्ख्यमभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ दशविकल्पा भवनवासिनः । अष्टविकल्पा व्यन्तराः । पञ्चविकल्पा ज्योतिष्काः । द्वादशविकल्पा वैमानिका इति ॥ सर्ववैमानिकानां द्वादशविकल्पान्तःपातित्वे प्रसक्ते ग्रैवेयकादिनिवृत्त्यर्थं विशेषणमुपादीयते कल्पोपपन्नपर्यन्ता इति ॥ अथ कथं कल्पसञ्ज्ञा ? इन्द्रादयः प्रकारा दश एतेषु कल्प्यन्त इति कल्पाः ॥ भवनवासिषु तत्कल्पना

चतुर्णाम् ॥ देव-निकायानाम् ॥	=चार (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक) देवोंके समूह वा समुदायोंका
दश- आदिभिः ॥ सङ्ख्या-शब्दैः ॥ यथासङ्ख्यम् *	=दश, आठ, पांच और बारह गणना शब्दों से संख्या के क्रम से
अभिसम्बन्धः ॥ वेदितव्यः ॥	=सम्बन्ध जानना चाहिये (इस प्रकार यथासंख्य सम्बन्ध करने से)
दश विकल्पाः ॥ भवनवासिनः ॥ अष्ट-विकल्पाः ॥	=दश भेदरूप भवनवासी (देव) हैं। आठ भेदों के धारक
व्यन्तराः ॥ पञ्च-विकल्पाः ॥ ज्योतिष्काः ॥ द्वादशविकल्पाः ॥	=व्यन्तर हैं। पांच भेद वाले ज्योतिषी देव हैं। बारह भेदरूप
वैमानिकाः ॥ इति *	=वैमानिक हैं अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग पर्यंत उत्पन्न होने वाले देव हैं
सर्व-वैमानिकानाम् ॥ द्वादश-विकल्प-अन्तः	=सब वैमानिक देवों का बारह भेदों के भीतर (=अन्तः)
पातित्वे ॥ प्रसक्ते ॥ ग्रैवेयक-आदि-निवृत्ति-अर्थम् ॥	=आजाने के (=पातित्वे) प्रसंग होने पर ग्रैवेयक आदि के निषेध के लिये
कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः ॥ इति * विशेषणम् ॥	=कल्पोपपन्न पर्यन्ता ऐसा (इस सूत्र में) विशेषण
उपादीयते ॥ अथ * कथं * कल्प-संज्ञा ॥	=लाया गया है (=उपादीयते)। प्रश्न (अथ) (इन वैमानिक देवों की) कल्पसंज्ञा कैसे है
इन्द्रादयः ॥ प्रकाराः ॥ दश ॥ एतेषु ॥	=(उत्तर) इन्द्रादिक (देखिये सूत्र चौथा) दश भेद इन (वैमानिक देवों) में
कल्प्यन्ते ॥ इति कल्पाः ॥	=कल्पना किये हैं या माने गये हैं इस प्रकार कल्पा है। अर्थात् कल्पसंज्ञा इन देवों की इस हेतु से है कि इन के दश भेदों की कल्पना की गई है।
भवनवासिषु ॥ तत्कल्पना	=(प्रश्न) भवनवासि देवों में यही कल्पना है (उत्तर) (ऐसी कल्पना)

यह शब्द ऐसे बना है कि

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४७२, हस्तलिखित पृष्ठ ४९६, वाक्योंसे प्रथम ह। (जो) तत्त्व हों (वे) आयशिषा (वेष) ॥ ॥

(क) 'त्रयस्त्रिंशति सागरा त्रयस्त्रिंशा' त्रयस्त्रिंशति ॥ सागराः ॥ आयस्त्रिंशाः ॥ जैतोसमें (जो) तत्त्व हों (वे) ... श्रीमान् विद्वद्रूप स्वर्गीय पं० पन्नालाल जी न्यायदिवाकर

त्रयस्त्रिंशत्‌ कहिये तेतीस संख्याके आधारस्य जे होंय ते त्रायस्त्रिंशाः तेतीस देव हैं" आधाररूप-आधेयरूप अधिकरणरूप ॥

अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थराजवार्तिकालंकारके हस्तलिखित पृष्ठ ९०८ से उद्धृत ॥ दोनों व्याकरणोंमें ... एक पाठ है ॥

तत्र भवाः। अष्टाध्यायी अध्याय चौथा पाद तीन सूत्र पचपनवाँ और जैनेन्द्र व्याकरण ३-३-१ समर्थानांप्रथमाद्वा की अनुवृत्ति इसी अध्यायके पाद प्रथम सूत्र ८२ वाँ (समर्थानांप्रथमाद्वा)

अथवा "प्राग्दीव्यतोऽण्" ॥ (समर्थात् ॥ अण्-प्रत्यय ॥ प्र-आद्य ॥ प्रत्ययाः ॥) समर्थात् की अनुवृत्ति इसी अध्यायके पाद प्रथम सूत्र ८३ वाँ (पाद दो सूत्र १९ वाँ इत्यादि) (क्रमसे प्राग्दीव्यतोऽण्,

से होता है। 'अण्-आदय' और 'प्र-आदय' की अनुवृत्ति इसी अध्यायके पाद प्रथम ... की गई हैं ॥ प्रत्यया की अनुवृत्ति अष्टाध्यायी, अध्याय तीसरा पाद प्रथम

महेन्द्राद् घाणौ च इत्यादि) से अवसर आवश्यकता, और अर्थके अनुकूल की गई हैं ॥ और जो तात्पर्य या अर्थमें वाक्यके अवशेष शब्द या

सूत्र पहले से ली गई है। तत्र- यहाँपर, वहाँपर अर्थात् एक शब्द जो सप्तमी विभक्तिमें हो, और जो तात्पर्य या अर्थमें वाक्यके अवशेष शब्द या

पदोंसे सम्बन्ध रखता हो। ... वाक्यके अन्य पदों के साथ मिलकर तात्पर्य या अर्थ से सम्बन्ध रखता हो'

'समर्थ' का यहाँ पर यह आशय है कि वाक्यमें वह शब्द या पद जो वाक्यके अन्य पदों के साथ मिलकर तात्पर्य या अर्थ से सम्बन्ध रखता हो'

अर्थात् वाक्यके विग्रह करने पर उस (वाक्य) के तात्पर्य को प्रगट कर सके ॥ ... प्रत्ययाः स्युः" भावार्थ ऐसा है कि

इस लिये "तत्र भवाः" सूत्रका संस्कृत अर्थ ऐसा हुआ कि "... इत्येतेऽर्थयो ... प्रत्ययाः स्युः"

तत्र भव ॥ इति अर्थ । सप्तमी (विभक्ति अन्त) ॥ जहाँ उत्पन्न हुआ ऐसे अर्थमें सप्तमी है विभक्ति अन्त में (जिसके ऐसे)

समर्थात् ॥ (वाक्यमें अन्य पद या पदोंके साथ मिलकर तात्पर्य प्रकाशक शब्द या पद) से अर्थात् ऐसे समर्थ पदके पश्चात

अण्-आदय ॥ प्र-प्रत्ययाः ॥ (... सूत्र) अण् आदिक और प्र आदिक प्रत्यय हों (अन्य प्रत्ययों को छोड़ कर केवल

अण् को लेते हैं। अण् प्रत्यय ... है इस लिये ... 'त्रयस्त्रिंशाति' में अण् जोड़ने से त्रयस्त्रिंशाति+अ ऐसा रूप बना

त्रयस्त्रिंशति ॥ अतः त्रयस्त्रिंशत्+अ

अष्टाध्यायी ७-२-११७ (तद्धितेष्वचामादेः ... सूत्र ११५ से और 'वृद्धि' सूत्र ११४ से अनुवर्तता है)

... अच् शब्द के स्वरोंमें से प्रथम स्वरको वृद्धि हो)

इसलिये 'त्रयस्त्रिंशत्+अ' त्रायस्त्रिंशत्+अ ... सूत्र सातवाँ पाद सातके नीचे यह वार्तिक है

एटानिवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विमक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका सप्रश्नः हिंदी अनुवाद अध्याय ४ सूत्र ४

अथ प्रकाशितमें और पांच स्थानों में पं० मक्खनलालजी कृत लघुटीकाम, पांचवें सूत्रमें सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियामें और निर्णयसागर मुद्रणयंत्र के सोलह पाठ के गुटका में भी एक स्थान में और चौथा पांचवां सूत्र हस्त लिखित बहुत सी प्रतियोंमें देखे गये उनमें भी किसी २ स्थान में त्रायस्त्रिंशत् लिखा है। साधारण पाठक प्रायः भ्रम में पड़ जाते हैं कि यह क्या बात है इससे हम इस लिखने को बाध्य हुये कि व्याकरण के अनुसार 'त्रायस्त्रिंशत् चौथे सूत्र में तथा 'त्रायस्त्रिंशलोक' पांचवां सूत्र में सर्वथा अशुद्ध हैं।

पं० मक्खनलाल जी की वचनिका मुद्रित में, तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित में तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक मुद्रित में सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र मुद्रितमें, पं० ठाकुरप्रसाद जी शास्त्री मुद्रित में जैसा जी कृत भाषा में अनुवादित तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में चौथे सूत्र' तथा 'त्रायस्त्रिंशलोकपाल' पांचवां सूत्र में त्रायस्त्रिंश शुद्ध हैं बहुत से अन्य भाष्य और भाषा की टीकायें देखी गई उनमें किसी किसी में शुद्ध पाठ है अधिकतर में अशुद्ध पाठ हैं परन्तु श्वेताम्बर आम्नाय की भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्री सिद्धसेन सूरिरचित) हस्त लिखितमें उक्त पाठ दोनों सूत्रों का पृष्ठ ३१८ और ३१९ पर शुद्ध पाया गया है यह प्रति हस्तलिखित बहुत प्राचीन है। और इसमें बाईस सहस्रश्लोक से अधिक हैं॥ परंतु स्मरण रहे कि त्रायस्त्रिंशल्लोक-पालवर्ज्याः' (=त्रायस्त्रिंशान् लोकपालान् च) यह पाठ ठीक है क्योंकि 'त्रायस्त्रिंश' शब्द की द्वितीया विभक्ति बहुवचन पुल्लिङ्गरूप 'रामान्' शब्द के सदृश बनता है। उक्त दोनों शब्द 'त्रायस्त्रिंशत्', 'त्रायस्त्रिंश' त्रायस्त्रिंशत्' त्रायस्त्रिंशाः, 'त्रायस्त्रिंशाः' 'त्रायस्त्रिंश' क्यों शुद्ध और ठीक है तथा 'त्रायस्त्रिंशत' क्यों अशुद्ध है इन सबों के लिये निम्न लिखित हेतु क्रम से देते हैं। विंशति, त्रिंशत्, बीस तीस हैं इनको प्रायः सबही जानते हैं। विंशति और त्रिंशत् शब्दों के पहले एक-द्वि-त्रि-चतुर्-पञ्चन्-षष्-सप्तन्-अष्टन्-नवन् जोड़कर इक्कीस और उनतालीस तकको संख्यायें बना देते हैं परन्तु इनके बनाने में न् गिर जाता है द्वि का द्वा, त्रि का त्रयः और अष्टन् का अष्टा हो जाता है हम केवल इक्कीस से उनतालीस तक की संख्या देते हैं एकविंशति=इक्कीस, द्वाविंशति=बाईस, त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस, चतुस्त्रिंशत्=चौतीस, पञ्चत्रिंशत्=पैंतीस, षट्त्रिंशत्=छत्तीस सप्तत्रिंशत्=सैंतीस, अष्टात्रिंशत्=अड़तीस, नवत्रिंशत्=उनतालीस, (=एकोन चत्वारिंशत्)॥ त्रि+त्रिंशत्=त्रयः+त्रिंशत्=त्रयस्त्रिंशत् (सकारके हेतु से विसर्गका परिवर्तन स् में हो गया) इसलिये तीन+तीस=तेतीस त्रयस्त्रिंशत् शब्द बन गया ( ) विंशति और त्रिंशत् इत्यादि संख्याओं से क्रमिक संख्या के बनाने में विंशति का ति और एकत्रिंशत्, द्वात्रिंशत्, त्रयस्त्रिंशत् आदिका व्यंजन गिरा देनेसे बन जाती है जैसे विंशति=बीस से विंश (=बीसवां) और त्रिंशत् (=तीस) से त्रिंश (=तीसवां) बन गया इस प्रकार एकत्रिंश=इकतीसवां द्वात्रिंश=बत्तीसवां त्रयस्त्रिंश=तेतीसवां इत्यादि॥ ( ) क्रमिक संख्याके बनानेका दूसरा नियम यह है कि संख्याके अन्तमें 'तम' प्रत्यय लगादेते हैं जैसे विंशति=बीस विंशतितम=बीसवां एक विंशति=इक्कीस, एकविंशतितम=इक्कीसवां इत्यादि। त्रिंशत्=तीस त्रिंशत्तम: (=त्रिंशत्तमः) तीसवां॥ एकत्रिंशत्=इकतीस, एकत्रिंशत्तमः (=एकत्रिंशत्तमः)=इकतीसवां; द्वात्रिंशत्=बत्तीस, द्वात्रिंशत्तम(=द्वात्रिंशत्तमः)=बत्तीसवां॥ त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस त्रयस्त्रिंशत्तमः (=त्रयस्त्रिंशत्तमः) तेतीसवां॥ ( ) 'त्रायस्त्रिंशाः' यह नाम इन देवों का सार्थक है क्योंकि ये तेतीसही होते हैं जैसा कि 'त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशाः' (=तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं—सर्वार्थसिद्धि इति पृष्ठ ११२ प्रथम संस्करण, और 'त्रयस्त्रिंशत् देवाः' ये एव त्रायस्त्रिंशाः (=तेतीस देव हैं वे ही त्रायस्त्रिंश हैं—

ब्रह्मनिवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और निमकार्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका सम्यक् हिंदी अनुवाद अध्याय ४ सूत्र ४

एतावनिरासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और निमकार्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्द (या तद्धित) इस बहुवचनांत शब्द का जो उल्लेख किया गया है उसकी सामर्थ्य से स्वार्थ में भी अण् आदि शब्द का ही प्रयोग उचित था फिर इस (या तद्धित) इस बहुवचनांत शब्द का जो उल्लेख किया गया है और अन्य व्याकरणों में 'स्वार्थेऽण्' ऐसा वाक्य प्रसिद्ध है प्रत्ययों का विधान माना गया है। हमारे यहाँ के व्याकरणों में स्वार्थक 'अण्' वचन प्रसिद्ध है और अन्य व्याकरणों में एक देवता ऐसा अर्थ है। और यह देवता त्रायस्त्रिंश तेतीस देवता (जो देव शब्द के बिना अर्थ के परिवर्तनके निकला है इसीलिए है) जोमें से एक देवता ऐसा अर्थ है। और यह देवता नन्द प्रवादि गण का है इसीलिए यहाँ पर 'प्रज्ञादिभ्योऽण्' = प्रज्ञादिक उन्नीस शब्दों के पश्चात् अपने अर्थ में अण् प्रत्यय हो। शाकटायन व्याकरण समास ३।४।१११ सूत्र माना है अथवा प्रज्ञादिभ्य (जैनेन्द्र व्याकरण ४-२-५२ सूत्र)=प्रज्ञादिभ्यः (अण्) इस अण् की अनुवृत्ति पचासवाँ सूत्र 'कर्मणो अण्' से आती है। तत्वार्थ स्वार्थे = स्वार्थ में इन प्रज्ञादि शब्दों से परे विकल्पकरि अण् प्रत्यय हो। अथवा 'प्रज्ञादिभ्यश्च' (प्रज्ञ एवेव प्राज्ञः प्रज्ञादिभ्यश्च स्वार्थ प्रत्ययमवनि =यह स्वार्थिक मावित्वकों से परेस्वार्थ में अण् प्रत्यय हो। अष्टाध्यायी ५।४।३८ सूत्र लगता है। प्रज्ञ-आदिभ्यः च (अण्) इस सूत्रमें "अण् की अनुवृत्ति तद्युक्तात्कर्मणोऽण्" छत्तीसवाँ सूत्र से आती है। स्वार्थ की अनुवृत्ति चौंसठ सूत्र "अनुकम्पायाम्" प्रकार वचनेभ्य" से प्रापककाम निकलती है। यह अण् किसी दूसरे प्रत्यय से बाधित नहीं हुआ है। क्योंकि इस छत्तीसवें सूत्र के "अण्" की अनुवृत्ति सैंतीसवाँ और अड़तीसवाँ दोनों सूत्रों में है इसलिए यह अण् विकल्पकरि 'स्वित्व' हमारी समझ में है और स्वित्व होने में पूर्वोक्त कालानुसार त्रायस्त्रिंश और त्रायस्त्रिंशत दो रूप बनेंगे और त्रायस्त्रिंशत् अर्थात् हलन्त कारक वाला शब्द कदापि नहीं बनेगा। यह अनुरूप सर्वप्रकार न है। इसका विग्रह तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ १५१ और सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ १४२ (द्वितीय संस्करण पृष्ठ १३६) में जहाँ स्वार्थमें 'अण्' प्रत्यय किया है यथा है त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशा = त्रयस्त्रिंशत् एव त्रायस्त्रिंशाः =तेतीस ही त्रायस्त्रिंश है अर्थात् "त्रयस्त्रिंशत् एव अर्थात् तेतीस ही त्रायस्त्रिंश है। पं०पन्नालाल न्यायदिवाकर और श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३७२ में इसका विग्रह ऐसा है कि "त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंश" 'स्वार्थिकोऽस्मिन्' इति बहुत्व निर्देशात् त्रयस्त्रिंशत् देवा एव कहिए तेतीस देव ही त्रायस्त्रिंश है। ऐसे इस बहुवचनांत निर्देश या तदन्ताम स्वार्थ में भी (अण् तद्धित प्रत्यय आता) है इस समस्त उपर्युक्त व्याख्या का सारांश यह निकला कि त्रयस्त्रिंशत् (=तेतीस) (२) त्रयस्त्रिंश =तेतीसवाँ (३) त्रयस्त्रिंशत्तम =तेतीसवाँ (४) त्रायस्त्रिंशः तेतीस नियत देवों में से एक (५) त्रायस्त्रिंशा तेतीस नियमित देव (६) त्रायस्त्रिंशता तेतीस नियत देवों में से एक (७) त्रायस्त्रिंशता तेतीस नियमित देव ये सातों शब्द ठीक और शुद्ध हैं परन्तु त्रायस्त्रिंशत् शब्द सर्वथा अशुद्ध है।

(१) त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशः (=त्रयस्त्रिंशत् एव त्रायस्त्रिंशाः)॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १५१ में इस वाक्य के संबंध में ऐसा उल्लेख है कि स्वार्थ के अण्, त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशा इति इत इति बहुत्व निर्देशात्स्वार्थिक" अपने अर्थ का द्योतक करते हुये (शब्दमें) अण् (=अ) प्रत्यय आया है और तेतीस ही त्रायस्त्रिंश है ऐसा बना अर्थात् त्रयस्त्रिंशत् शब्द में अपने अर्थ में अण् लगाने से 'त्रायस्त्रिंश' बना॥ (शंका) त्रयस्त्रिंशत्+अण् =त्रायस्त्रिंशत बनना चाहिए क्योंकि अण् जित् पद हुआ नहीं फिर 'अत्' का लोप न हुआ॥ अत् का 'टि' कहते हैं (६-४-१४३, १-१ ६४) (देखो उपरोक्त टिप्पणी पृष्ठ ८-११ तक)

कि 'जाते वार्धेर्थोऽण्यन बाधित' पुनरण् विधीयते स वा विद्वद्भवतीति वक्तव्यम्'

च जाते अर्थे या अण् अन्यत्र बाधित' पुन विधीयते =और(च) जात अर्थमें जो अण् प्रत्यय (सूत्र से बाधित होकर फिर विहित हो वा -लाया जावे

सः डित्वत् वा =वह अण्) डित्वत् (ट् हो इत् संज्ञक जिसका ऐसे प्रत्ययके सदृश) विकल्पसे

भवति इति वक्तव्यम् =हो ये(अर्थात् जी चाहे अण्का डित्वत् मानो या न मानो यह कहना चाहिये

भावार्थ चौथे अध्यायके प्रथम पादके तिरासीवां सूत्रके वससे "अण्" प्रत्ययका अधिकार या प्रकरण 'तेन दीव्यति' इस (चौथे पाद के) सूत्रके पहिले पहिले है परन्तु 'अण्' इसी अध्यायके तीसरे पादके ग्यारहवां सूत्रसे बाधित हुआ है पश्चात् इसी पादके सातवां सूत्रसे विहित हुआ है या फिर लगाया गया है फिर लागू किया गया है इस लिये इस अण् को डित्वत् विकल्पसे मान सकते हैं।

अब प्रश्न यह है कि 'डित्वत् विकल्पसे मानने में क्या काम है (उत्तर) अष्टाध्यायीके छठे अध्यायके चौथे पादके एकसौ तेतालीसवां सूत्र (टे' डिति भाग') से यदि किसी शब्द के पश्चात् डित् प्रत्यय आवे तो उस शब्द के टि (भाग) का अर्थात् उस शब्द के अंत के स्वरका मय उसके पश्चात् के व्यञ्जन का (यदि कोई हो तो) लोप हो जाता है। जैनेन्द्र व्याकरणकी शब्दार्णव चन्द्रिका नामक लघुवृत्तिके चौथे अध्यायके चौथे पादके १४०वां सूत्र डिति टे'(डे डिति स)=(डि स्वस्यान्त्य (=लोप)भवति॥ इस भांति अन्त्य का डित् परे लोप हो जाता है जैसे शतभिषक्(यहां सैकड़ों तारा चौथों के समान है अश्विनी से चौबीसवां नक्षत्र जिसके सौ तारे हैं और त्र्यस्त्रिंशत् -तेतीस इन दोनों शब्दों के उपर्युक्त नियम से दो दो रूप जात अर्थ में इस प्रकार बन जाते हैं कि शतभिषजि जातः (जो यहां शतभिषज में उत्पन्न हो) सो शतभिषज्+अण् =शातभिषज (यदि अण् को डित्वत् न मानें तो रूप होगा) और (यदि अण् को डित्वत् माने तो अण् का लोप हो कर शातभिष जिसके प्रथमाविभक्ति एक वचन पुल्लिंग रूप शातभिषः और शातभिषः होंगे (देखो सिद्धान्त कौमुदीपर तत्त्वबोधिनी व्याख्या के तद्धित के शैषिक प्रकरणका अर्थ शातभिष और शातभिषज दोनों शब्द सिद्ध किये हैं त्र्यस्त्रिंशति जातः =जो तेतीस में उत्पन्न हो सो त्र्यस्त्रिंशत्+अण् =त्रायस्त्रिंशत (यदि अण् को डित्वत् न मानें तो) और त्रायस्त्रिंश (यदि अण् का डित्वत् माने तो अत् का लोप होने पर) रूप होंगे जिनके प्रथमाविभक्ति एक वचन और प्रथमाविभक्ति बहुवचन क्रम से त्रायस्त्रिंशतः त्रायस्त्रिंशाः 'त्रायस्त्रिंशा' होंगे इस लिये त्रायस्त्रिंशत' और त्रायस्त्रिंश' रूप हुये हैं। और त्र्यस्त्रिंशत् सर्वथा अशुद्ध है। ५० पन्नालाल जी न्यायदिवाकार अनुवादित भट्टाकलंक आचार्य राजवार्तिक लिखित पृष्ठ ९०८ में 'त्रायस्त्रिंशत शब्द तेतीसों स्वर्गों में इन्द्रके मंत्री और पुरोहित के स्थानीय त्रायस्त्रिंशत्' कहिये तेतीस देव होते हैं। इस वाक्य में आया है।

इस ३।१।८२ यहां पर 'इत्' ऐसा एक पञ्चम्यन्त शब्द का ही उल्लेखरूपयुक्त या अथवा तद्धिताः अष्टाध्यायी अध्याय चार पादएक सूत्र ७६ के तद्धित

शब्द का ही प्रयोग उचित था फिर इस (या तद्धित) इस बहुवचनांत शब्द का जो उल्लेख किया गया है उसकी सामर्थ्य से स्वार्थ में भी अण् आदि प्रत्ययोंका विधान माना गया है। हमारे यहां के व्याकरणों में स्वार्थक ऽण् वचन प्रसिद्ध है और अन्य व्याकरणों में 'स्वार्थेऽण्' ऐसा वाक्य प्रसिद्ध है त्रायस्त्रिंश तेतीस देवता (जो देव शब्द के बिना अर्थ के परिवर्तनके निकला है स्त्रीलिंग है) ओंमें से एक देवता ऐसा अर्थ है। और यह देवता शब्द प्रज्ञादि गण का है इसीलिये यहां पर 'प्रज्ञादिभ्योऽण्' = प्रज्ञादिक छत्तीस शब्दों के पश्चात् अपने अर्थ में अण् प्रत्यय हो। शाकटायन शब्दानु शासन ३।४।१६१ सूत्र लगा है अथवा प्रज्ञादिभ्य (जैनेन्द्र व्याकरण ४-२-५२ सूत्र)=प्रज्ञादिभ्यः (अण्) इस अण् की अनुवृत्ति पचासवीं सूत्र 'कर्मणो अण्" से आती है। प्रज्ञादिभ्योऽण् स्वार्थे =स्वार्थ में इन प्रज्ञादि शब्दों से परे विकल्पकरि अण् प्रत्यय हो। अथवा "प्रज्ञादिभ्यश्च" (प्रज्ञ इत्येव मादिभ्य प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति =प्रज्ञ इत्यादिक प्रातिपदकों से परस्वार्थ में अण् प्रत्यय हो। अष्टाध्यायी ५।४।३८ सूत्र लगता है। प्रज्ञ-आदिभ्यः च (अण्),इस सूत्रमें "अण् की अनुवृत्ति तद्युक्तात्कर्मणोऽण्" छत्तीसवां सूत्र से आती है। स्वार्थे की अनुवृत्ति तीसरे सूत्र "स्थूलादिभ्य प्रकार वचनेकन्" से व्यापकरूपसे मिलती है। यह अण् किसी दूसरे प्रत्यय से बाधित नहीं हुआ है। क्योंकि इस छत्तीवें सूत्र के "अण्" की अनुवृत्ति सैंतीसवीं और अड़तीसवीं दोनों सूत्रों में है इसलिये यह अण् विकल्पकरि नित्यम्' हमारी समझ में है और नित्यवत् होने में पूर्वोक्त कल्पनानुसार 'त्रायस्त्रिंशा' और त्रायस्त्रिंशाः' दो रूप बनेंगे और त्रायस्त्रिंशत् अर्थात् हलन्त तकारान्त वाला शब्द कदापि नहीं बनेगा। यह मजबूत सर्वप्रकार से है। इसका विग्रह तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ १५१ और सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ १४२ (द्वितीय संस्करण पृष्ठ १३६) में जहां स्वार्थमें "अण् प्रत्यय किया है ऐसा है त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशाः = त्रयस्त्रिंशत् एव त्रायस्त्रिंशाः =तेतीस ही त्रायस्त्रिंश है अर्थात् "त्रयस्त्रिंशत् एव कहिये तेतीसही त्रायस्त्रिंश हैं पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर और श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४३२ में इसका विग्रह ऐसा है कि "त्रयस्त्रिंशद्देवा एव त्रायस्त्रिंशा" 'स्वार्थिकोऽणिदत्' इति बहुत्व निर्देशात् त्रयस्त्रिंशत् देवा एव कहिये तेतीस देव ही त्रायस्त्रिंश है। ऐसे इस बहुवचनांत निर्देश या उपदेशसे स्वार्थ में भी (अण् तद्धित प्रत्यय आता) है इस समस्त उपर्युक्त व्याख्या का सारांश यह निकला कि त्रयस्त्रिंशत् (-तेतीस) (२) त्रयस्त्रिंश =तेतीसवां (३) त्रयस्त्रिंशत्तम =तेतीसवां (४) त्रायस्त्रिंशः तेतीस नियत देवों में से एक (५) त्रायस्त्रिंशा तेतीस नियमित देव (६) त्रायस्त्रिंशाः तेतीस नियत देवों में से एक (७) त्रायस्त्रिंशाः तेतीस नियमित देव ये सातों शब्द ठीक और शुद्ध हैं परन्तु त्रायस्त्रिंशत् शब्द सर्वथा अशुद्ध है।

(१) त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशा' (=त्रयस्त्रिंशत् एव त्रायस्त्रिंशाः)॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १५१ में इस वाक्य के संबंध में ऐसा उल्लेख है कि "स्वार्थ के ऽण्, त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशा इति इस इति बहुत्व निर्देशात्तस्मादिणत्" अपने अर्थ को द्योतक करते हुये (शब्दमें) अण् (=अ) प्रत्यय आता है और तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं ऐसा बना अर्थात् त्रयस्त्रिंशत् शब्द में अपने अर्थ में अण् लगाने से 'त्रायस्त्रिंश' बना॥ (शंका) त्रयस्त्रिंशत्+अण्=त्रायस्त्रिंशत् बनना चाहिये क्योंकि अण् टित् यत् हुआ नहीं फिर 'अत्' का लोप न हुआ॥ अत् को 'टि' कहते हैं (१-४-१४३, १-१-३४) (देखो उपर्युक्त टिप्पणी पृष्ठ ८-११ तक)

अन्यदेवासाधारणाणिमादिगुणयोगादिन्दन्तीति १ इन्द्रा ॥ आज्ञैश्वर्यवर्जितं यत्समानायुर्वीर्यपरिवार-भोगोपभोग तत्समानं, तस्मिन्समाने भवाः २ सामानिका । महत्तराः पितृगुरूपाध्यायतुल्या ॥ मन्त्रिपुरोहित-स्थानीया ३ त्रायस्त्रिंशाः त्रयस्त्रिंशदेवत्रायस्त्रिंशा

सूत्रार्थ—इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद् =इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद,
आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य =आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग
किल्विषिका॥ च॰ एकशः॰ देवनिकायेषु॥ =और किल्विषिक एक एक देवों के समूह में
(देवाःदशविधाः॰ भवन्ति॥) =दश दश प्रकार के देव होते हैं अर्थात् (१) देवों का राजा (२) आज्ञा और ऐश्वर्य रहित अन्य बातों में इन्द्र के समान हों (३) मन्त्री और पिरोहित के समान तेतीस देव (४) सभासद (५) शरीर रक्षक (६) कोटपाल या गढ़पाल (७) पियादे आदिक सात प्रकार की सैना (८) प्रजाके सदृश देव (९) सेवकों के स्थानापन्न या ठौर (१०) नीच अधम चांडालों के सदृश देव ये एक एक देवों के समूह में दश दश प्रकार के देव होते हैं।

पदच्छेदः—अन्य-देव असाधारण-अणिमादि-गुण- =अन्य देवों से असमान्य या विशेष अणिमादिक ऋद्धिरूप गुणों के
योगात्॥ इन्दन्ति॥ =संयोग से जो ऐश्वर्य करिसते हैं तथा ऐश्वर्य को प्राप्त हुये हैं
इति(१) इन्द्राः॥ आज्ञा-ऐश्वर्य-वर्जितं॥॥ यत्॥॥ समान =ऐसे (१) इन्द्र हैं ॥ आज्ञा और ऐश्वर्य रहित जो तुल्य या बराबर
आयुर्-वीर्य- परिवार-भोग-उपभोगादि =जीवनकाल, बल, परिवारभोग और उपभोगादिक हैं।
तत्॥॥ समानं॥॥ तस्मिन्॥॥ =वह समान है, तिस (आयु, बल, परिवार, भोग, उपभोगादिक) में
समाने,॥॥ भवाः (२) सामानिकाः॥ महत्तराः॥ =समान (इन्द्रके) हैं (२) ये सामानिक हैं(ये सामानिक) बड़े या महत्त्वमहिमावाले हैं
पितृ गुरु-उपाध्याय-तुल्याः॥ ॥ मन्त्रि-पुरोहित- =(और इन्द्र के) पिता, गुरु, उपाध्याय के सदृश हैं॥ (इन्द्रके) मन्त्री पुरोहित के
स्थानीयाः॥ (३)त्रायस्त्रिंशाः॥ त्रयस्त्रिंशत्॥ एव त्रायस्त्रिंशाः =स्थानापन्न हैं। ये त्रायस्त्रिंश हैं, तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं ॥

वयस्यपीठमर्दसदृशा परिषदि भवा ४ पारिषदाः ॥ ५ आत्मरक्षाः शिरोरक्षोपमानी ॥ अर्थचरा रक्षकसमाना ६ लोकपाला । लोकं पालयन्तीति लोकपाला ॥ पदात्यादीनि सप्त ७ अनीकानि दण्डस्थानी यानि ॥ ८ प्रकीर्णका पौरजानपदकल्पा ॥

वयस्य-पीठमर्द	=मित्र (=वयस्य) और संधानकारी अथवा पिछाड़ी साथ बैठने वालोंके
सदृशा', परिषदि, भवा', (४) पारिषदा', ॥	=सरीसे सभा में हों (४) वे पारिषद हैं ॥
(५) शिरस्-रक्षा-उपमाना', आत्मरक्षाः, ॥	=शिरकी रक्षा करने वालों के समान वा सदृश (५) आत्मरक्षक हैं। अर्थात् इन्द्र के शुभ प्रधान धारी अंग की रक्षा करने वालों के सदृश हैं ॥
अर्थ-चर-	=(किसी) वस्तु-बात-विषय अथवा प्रयोजनके जाननेवाली, खोजिया या खोजी (=चर)
आ-रक्षक-समाना', (६) लोकपालाः,	=और सर्वत' रक्षा करने वालों के (आ-रक्षक) सदृश (६) लोकपाल हैं
लोकं, पालयन्ति इति लोकपालाः, ॥ पदाति	=लोक को पालते हैं अथवा रक्षा करते हैं ऐसे लोकपाल हैं ॥ पियादे (=पदाति)
आदीनि, सप्त, दण्ड-स्थानीयानि, ॥ ७ अनीकानि,	=आदिक सात (प्रकार की) सेना (=दण्ड) के स्थानापन्न (७) अनीक हैं। अर्थात् पियादे, अश्व, वृषभ, रथ, हस्ती, गंधर्व और नर्तकी इन सात प्रकार की सेनाओं के रूप धारण करने वाले देव हैं वे अनीक या सेना के और हैं ॥
(८) प्रकीर्णका, पौर-जानपद	=(८) प्रकीर्णक नगरवासी (=पौर) तथा देश से आये हुओं के (=जानपद)
कल्पाः, ॥	=समान हैं अर्थात् प्रकीर्णक देव, इन्द्रके पुरवासी तथा राज्यकी प्रजाके सदृश हैं ॥

(१) परिषद् स्त्रीलिंग है अर्थ सभा या धर्म सभा है परन्तु पारिषद् और परिषद् और परिषद्य का अर्थ सभासद् क है।

(२) आत्म-रक्षा-उपमाना, । — शरीर की रक्षा करने वालों के समान हैं। यद्यपि देवोंमें घातादिक नहीं है तथापि ऋद्धि विभवकी महिमा के लिये इस प्रकार के भेद हैं ॥

अर्थ उत्पादक और पक्ष-सदृशा, । — प्रयोजन के निकालने वाले और पक्ष की रक्षा करनेवालोंके समान है

समानार्थ अर्थ में यहां "कल्पप्" प्रत्यय है जैसे "पितृ कल्प" पिता के समान "गुरु कल्प" गुरु के समान इसी प्रकार "पौर जानपदकल्पाः" नगरवासी और देशसे आये हुओं के समान ॥ कल्प" शब्द के अर्थ नीचे लिखते हैं ॥

(१) संवर्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि अमर कोश काल वर्ग श्लोक २२ संवर्त, प्रलय, कल्प, क्षय कल्पांत, ये पांच (पु०) नाम प्रलयके हैं ॥

(२) कल्पे विधि क्रमौ" कल्प, विधि क्रम ये तीन (पु०)नाम नियोग शास्त्र के हैं अमरकाण्डवर्ग १९८ श्लोक का अंत भाग ॥

(३) न्यायेर न्याय कल्पास्तु देशरूप समञ्जसम्" अभ्रेष (पु०) न्याय (पु०) कल्प (पु०) देशरूप (न०) समंजस (न०) ये नाम नीतिके हैं क्षत्रिय वर्ग २४ ॥

अन्यदेवासाधारणाणिमादिगुणयोगादिन्दन्तीति १ इन्द्राः ॥ आज्ञाश्चैर्यवर्जितं यत्समानायुर्वीर्यपरिवार-भोगोपभोग तत्समानं, तस्मिन्समाने भवाः २ सामानिका । महत्तरा. पितृगुरूपाध्यायतुल्या ॥ मन्त्रिपुरोहित-स्थानीया ३ त्रायस्त्रिंशा त्रयस्त्रिंशदेवत्रायस्त्रिंशा

सूत्रार्थ—इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद	=इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद,
आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य	=आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग
किल्विषिका:, च* एकश:* देवनिकायेषु,	=और किल्विषिक एक एक देवों के समूह में
(देवाःदशविधाः* भवन्ति।)	=दश दश प्रकार के देव होते हैं अर्थात् (१) देवों का राजा (२) आज्ञा और

ऐश्वर्य रहित अन्य बातों में इन्द्र के समान हों (३) मन्त्री और पुरोहित के समान तेतीस देव (४) सभासद (५) शरीर रक्षक (६) कोटपाल वा गढ़पाल (७) पियादे आदिक सात प्रकार की सैना (८) प्रजाके सदृश देव (९) सेवकों के स्थानापन्न वा ठौर (१०) नीच अधम चांडालों के सदृश देव ये एक एक देवों के समूह में दश दश प्रकार के देव होते हैं।

शब्दानुवादः—अन्य-देव-असाधारण-अणिमादि-गुण-	=अन्य देवों से असमान्य वा विशेष अणिमादिक ऋद्धिरूप गुणों के
योगात्, इन्दन्ति।	=संयोग से जो ऐश्वर्य करिवर्ते हैं तथा ऐश्वर्य को प्राप्त हुये हैं
इति(१) इन्द्राः, आज्ञा-ऐश्वर्य-वर्जितं, यत्, समान	=ऐसे (१) इन्द्र हैं ॥ आज्ञा और ऐश्वर्य रहित जो तुल्य वा बराबर
आयुर्-वीर्य परिवार-भोग-उपभोगादि	=जीवनकाल, बल, परिवारभोग और उपभोगादिक हैं।
तत्, समानं, तस्मिन्,	=वह समान है, तिस (आयु, बल, परिवार, भोग, उपभोगादिक) में
समाने, भवाः (२) सामानिकाः, महत्तराः,	=समान (इन्द्रके) हैं (२) वे सामानिक हैं(वे सामानिक) बड़े वा महत्वमहिमावाले हैं
पितृ गुरु-उपाध्याय-तुल्याः, ॥ मन्त्रि-पुरोहित	=(और इन्द्र के) पिता, गुरु, उपाध्याय के सदृश हैं॥ (इन्द्रके) मन्त्री पुरोहित के
स्थानीयाः, (३)त्रायस्त्रिंशाः, त्रयस्त्रिंशत्, एव त्रायस्त्रिंशाः	=स्थानापन्न हैं। वे त्रायस्त्रिंश हैं, तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं॥

एटानिवासी नगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विमलस्पर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका सम्पूर्ण हिंदी अनुवाद अध्याय ४ सूत्र ५,६

व्यन्तरेषु ज्योतिष्केषु च त्रायस्त्रिंशलोकपालाश्च वर्जयित्वा इतरेऽष्टौ विकल्पा द्रष्टव्याः ॥ अथ तेषु निकायेषु किमेकैक इन्द्र उतान्य प्रतिनियमः कश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।६।

शब्दानुवाद— व्यन्तरेषु ।। ज्योतिष्केषु ।। च = व्यन्तरों और (=च) ज्योतिष्कों में त्रायस्त्रिंशान् ।। लोकपालान् ।। च वर्जयित्वा इतरे ।। = त्रायस्त्रिंशों को और लोकपालों को छोड़कर अन्य अष्टौ ।। = आठ (इन्द्र-सामानिक-पारिषद, आत्मरक्ष-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य, किल्विषिक) विकल्पाः ।। द्रष्टव्याः ।। अथ तेषु ।। निकायेषु ।। किम् = भेद जानना चाहिये। आगे (=अथ) तिन समूहों में क्या एक-एकः ।। इन्द्रः ।। उत अन्य ।। एक एक इन्द्र है। अथवा (=उत) दूसरा प्रतिनियमः ।। कश्चित् अस्ति इति अतः आह =कोई नियम है इसलिये (आचार्य अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥ पूर्वयोर्निकाययोर्द्वीन्द्राः ॥६॥

सूत्रार्थ— पूर्वयोः ।। निकाययोः ।। द्वीन्द्राः ।। =पहिले दो समुदाय (भवनवासी और व्यन्तरों) में प्रत्येक भेद के दो दो इन्द्र हैं अर्थात् पूर्वोक्त देवों के चार समुदायों में से पहिले दो भवनवासी देवों के प्रत्येक भेद में (देखो सूत्र १०) दो २ इन्द्र हैं और व्यन्तर देवों के प्रत्येक भेद में

(२) जब तवर्ग से ल पश्चात् आवे तो तवर्ग को ल् ही हो जैसे तत्+लय = तल्+लय = तल्लय परन्तु नकार को अनुनासिक ही लकार हो जैसे त्रायस्त्रिंशान्+लोकपालान्=त्रायस्त्रिंशाँल्लोकपालान्। (३) जब अन्तिम न् के परतर में च् छ् ट् ठ् त् थ् । और इन में से कोई आवे तो वह न अनुस्वार और विसर्ग में पलट जाता है। जैसे लोकपालान् च = लोकपालांः च यदि विसर्ग के पश्चात् च् अथवा छ् आवे तो वह विसर्ग श् में पलट जाता है इस कारण लोकपालान् = लोकपालांश्च हुआ जैसे कि वृत्ति में है।

(३) श्वेताम्बर आम्नाय के तत्त्वार्थाधिगमसूत्र का तथा श्री सिद्धसेन रचित भाष्यानुसारितत्त्वार्थटीका का और अधिकतम हमारे यहाँ की पुस्तकों का पाठ इस सूत्र का यह है अथ सवत्र यह है। रायचन्द्र जी मुद्रित तत्त्वार्थ सूत्र में "पूर्वयोर्द्वीन्द्राः" ऐसा पाठ है यह भी पाठ "भवोरहात्याम् देवा" सूत्र से ठीक है। (४) पूर्वयोः निकाययोः प्रत्येक शब्द षष्ठी द्विवचन में भी हो सकता है उस समय अर्थ ऐसा होगा कि पहिले दो समुदाय (भवनवासी और व्यन्तरों) के इत्यादि। (५) द्वीन्द्राः = प्रत्येक भेद के दो दो इन्द्र हैं (यह अर्थ कैसे हुआ देखो वृत्ति में यह वाक्य अन्तर्नीत वीप्सा है)।

६ आभियोग्या दाससमाना वाहनादिकर्माणि प्रवृत्ता अन्तेवासिस्थानीयाः ॥ किल्विषं पापं येषामस्ति ते १० किल्विषिका ॥ एकैकस्य निकायस्य एकश एते इन्द्रादयो दश विकल्पाश्चतुर्षु निकायेषूत्सर्गेण प्रसक्तास्ततो ऽपवादार्थमाह–

॥ त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥

(९) आभियोग्या ॥ दाससमाना ॥	=(९) आभियोग्य (वे देव हैं जो) सेवकों और किंकरों के तुल्य
वाहन-आदि कर्माणि ॥ प्रवृत्ता ॥ अन्ते-	=(हस्ति घोड़े इत्यादि) वाहनादिक कार्य में प्रवर्तनेवाले हैं। (नगरके) अन्तमें
वासि-स्थानीयाः ॥ किल्विष ॥ पापं ॥	=रहनेवालों को स्थानापन्न (और) अपराध (=किल्विष) पातक (=पापं)
येषाम ॥ अस्ति ते ॥ १० किल्विषिका ॥	=जिनके (उदय) है वे १० किल्विष हैं अर्थात् पापकर्म के उदय सहित नीच जाति के देव चंडालों के समान नगर से बाहर रहने वाले और दूर ही खड़े होने वाले ऐसे किल्विषक देव हैं ॥ और जिनकी गणना क्रममें दसवीं है
एक-एकस्य ॥ निकायस्य ॥ एकशः ●	=एक एक समुदाय के क्रम से (=एकशः)
एते ॥ इन्द्रादयः ॥ दश ॥ विकल्पा ॥ चतुर्षु ॥	= ये इन्द्रादिक दश भेद चारों
निकायेषु ॥ उत्सर्गेण ॥ प्रसक्ता ॥	=समूहों में सामान्यपने से (इस क्षेत्र के अनुसार) प्राप्त हैं (प्रसक्ता)
ततः ● अपवाद अर्थ ॥ आह	=इस कारण (=ततस्)अपवाद के लिये (आचार्य अगला सूत्रमें)कहते हैं कि

(१) सूत्रम्– त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्का ॥५॥

=त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्का (इतरे अष्टौ विकल्पा भवन्ति) ॥८॥

सूत्रार्थ –त्रायस्त्रिंश-लोकपाल-वर्ज्या ॥ व्यन्तर	=त्रायस्त्रिंशनामक तेतीस देव और लोकपाल को छोड़ कर व्यन्तर देवों के
ज्योतिष्काः ॥ इतरे ॥ अष्टौ ॥ विकल्पा ॥ भवन्ति	=तथा ज्योतिष्क देवों के अन्य आठ भेद होते हैं अर्थात् चार निकायोंमेंसे व्यन्तर तथा ज्योतिष्क इन दो निकायों में इंद्र, सामानिक पारिषद, आत्मरक्ष, अनीक प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक ये आठ ही भेद होते हैं।

(१) इस सूत्र का दवेताम्बर आम्नाय के समाप्य में तथा मध्यगुसारिसिद्धसेनीयटीका (सिद्धसेन सूरि रचित) में और हमारे यहाँ पाठ सर्व एक है।

वैरोचनश्च । नागकुमाराणां धरणो भूतानन्दश्च । विद्युत्कुमाराणां हरिसिंहो हरिकान्तश्च । सुपर्णकुमाराणां वेणुदेवो वेणुधारी च । अग्निकुमाराणां अग्निशिखोऽग्निमाणवश्च । वातकुमाराणां वेलम्ब प्रभञ्जनश्च । स्तनितकुमाराणां सुघोषो महाघोषश्च । उदधिकुमाराणां जलकान्तो जलप्रभश्च । द्वीपकुमाराणां पूर्णो विशिष्टश्च । दिक्कुमाराणां अमितगतिरमितवाहनश्चेति ॥ व्यन्तरेष्वपि किन्नराणां द्वाविन्द्रौ किन्नर किम्पुरुषश्च । किम्पुरुषाणां सत्पुरुषो महापुरुषश्चेति । महोरगाणां अतिकायो महाकायश्च ।

वैरोचनः १। च * । नागकुमाराणां ६। धरणः ।	=और (च) वैरोचन हैं नागकुमारोंके धरण
भूतानन्दः १। च * । विद्युत्कुमाराणां ६। हरिसिंहः १।	=और भूतानन्द (दो इन्द्र) हैं । विद्युतकुमारोंके हरिसिंह
हरिकान्त १। च * । सुपर्णकुमाराणां ६। वेणुदेवः १।	=और हरिकान्त (दो इन्द्र) हैं । सुपर्णकुमारोंके वेणुदेव
वेणुधारी १। च * । अग्निकुमाराणां ६। अग्निशिखः १।	=और वेणुधारी (दो इन्द्र) हैं । अग्निकुमारोंके अग्निशिख
अग्निमाणवः १। च * । वातकुमाराणां ६। वैलम्बः १।	=और (=च) अग्निमाण (ये दो इन्द्र) हैं । वातकुमारोंके वैलम्ब
प्रभञ्जनः १। च * । स्तनित-कुमाराणां ६। सुघोषः १।	=और (=च) प्रभञ्जन (ये दो इन्द्र) हैं । स्तनित कुमारोंके सुघोष
महाघोषः १। च * । उदधिकुमाराणां ६। जलकान्तः १।	=और (=च) महाघोष (ये दो इन्द्र) हैं । उदधि कुमारोंके जलकान्त
जलप्रभ १। च * । द्वीपकुमाराणां ६। पूर्णः १।	=और (=च) जलप्रभः (ये दो इन्द्र) हैं । द्वीपकुमारोंके पूर्ण
वशिष्ठः १। च * । दिक्कुमाराणां ६। अमितगतिः १।	=और (=च) वशिष्ठ (ये दो इन्द्र) हैं । दिक्कुमारोंके अमितगति
अमितवाहनः १। च * इति * । व्यन्तरेषु ७। अपि *	=और (=च) अमितवाहन (ये दो इन्द्र) हैं । व्यन्तरोंमें भी
किन्नराणां ६। द्वौ १। इन्द्रौ १। किन्नरः १। किम्पुरुषः १। च * ।	=किन्नरोंके दो इन्द्र किन्नर और (=च) किम्पुरुष हैं ॥
किम्पुरुषाणां ६। सत्पुरुषः १। महापुरुषः १। च * इति * ।	=किम्पुरुषों के सत्पुरुष और महापुरुष (ये दो इन्द्र) हैं ।
महोरगाणां ६। अतिकायः १। महाकायः १। च * ।	=महोरगों के अतिकाय और (=च) महाकाय (ये दो इन्द्र) हैं ।

पूर्वयोर्निकाययोर्भवनवासिव्यन्तरनिकाययो ॥ कथं द्वितीयस्य पूर्वत्वम् ? सामीप्यात्पूर्वत्वमुपचर्योक्तम् ॥ द्वीन्द्रा इति अन्तर्नीतवीप्सार्थः । द्वौ द्वौ इन्द्रौ येषां ते द्वीन्द्रा इति । यथा सप्तपर्णोऽष्टापद इति ॥ तद्यथा- भवनवासिषु तावदसुरकुमाराणां द्वाविन्द्रौ चमरो

(देखो सूत्र ११) दो दो इन्द्र हैं इस प्रकार भवनवासी देवोंमें बीस इन्द्र हैं और व्यन्तर देवोंके आठ भेदोंमें सोलह इन्द्र हैं सर्व छत्तीस इन्द्र हैं ॥

अन्वयार्थ— पूर्वयो ॰, निकाययो ३, भवनवासि- —पहिले दो निकायोंमें भवनवासी
व्यन्तर-निकाययोः ७, —और व्यन्तरोंके निकायों विर्षे (प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र) हैं
कथं ॰ द्वितीयस्य ६, पूर्वत्वम् १॥ —(प्रश्न) दूसर (व्यन्तरनिकाय) के कैसे प्रथमपना अथवा पूर्वपना है ॥
सामीप्यात् ५॥ पूर्वत्वम् १॥ उपचर्य-उक्तम् १॥ =निकटता (के कारण)से पूर्वपना उपचारकरि अथवा कल्पनाकरि कहा गया है ॥
द्वि-इन्द्रा १, इति ॰ अन्तर्नीत-वीप्सा- =' द्वि-इन्द्रा'' ऐसा(वाक्य)अन्तप्राप्त या अन्तरगर्भित क्रमसे प्रत्येक(=वीप्सा) भेदके
अर्थः १। —लिय(=अर्थ)है अर्थात् दश भेद(देखो सूत्र १०)भवनवासी निकायके हैं सो क्रमसे प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र हैं और व्यन्तरनिकायके आठ भेद (देखो सूत्र ११) हैं सो प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र हैं इस प्रकार अभ्यन्तरगत वीप्सा के अर्थ सहमें ' द्वि-इन्द्रा'' लाये हैं ॥
द्वौ १। द्वौ १। इन्द्रौ १। येषां ६। ते १। द्वि-इन्द्रा १। इति ॰—दो दो इन्द्र जिन (असुरों) के हैं वे ' द्वि इन्द्रा'' हैं
यथा सप्तपर्ण' १। —जैसे सतोनेका वृक्ष अर्थात् जिस (वृक्ष) के प्रति पत्ते के साथ सात सात पत्ते हों।
अष्टापदः १॥ इति ॰ तद्यथा-भवनवासिषु ७। —और अष्टापद अर्थात् अनेक के आठ आठ पद हों हैं ॥ जैसे भवनवासियों में
तावत् ॰ असुरकुमाराणां ६। द्वौ १। इन्द्रौ १। चमरः १। —तो (=तावत्) असुर कुमारों के दो इन्द्र चमर

१—वीप्सा शब्द व्योहित है अमरकोश का संक्षेप गोके महाराज ने तयार कर किया है जो अमरसार के नाम से प्रसिद्ध है जिसकी आवृत्ति १८८८ क पृष्ठ २०१ में वाक्यानुक्रमसे प्रत्येक ऐसा अर्थ किया है ॥ वीप्सानुसार बार उसी अर्थ में शब्दोंका दुहरपना ॥ देखो वैद्य कोश पृष्ठ १८५ ॥

प्रविचारो मैथुनोपसेवनम्। कायेन प्रविचारो येषां ते कायप्रविचाराः ॥ आङ् अभिविध्यर्थः। असंहितया निर्देशः असंदेहार्थः ॥ एते भवनवास्यादय ऐशानान्ताः संक्लिष्टकर्मत्वान्मनुष्यवत्स्त्रीविषयसुखमनुभवन्तीत्यर्थः ॥ अवधिग्रहणादितरेषां सुखविभागेऽनिर्ज्ञाते तत्प्रतिपादनार्थमाह—

शब्दानुवाद—प्रविचार ॥ मैथुन-उपसेवनम् ॥	=प्रविचार है सो कामसेवन अथवा मैथुन विषयका उपभोग है।
कायेन ॥ प्रविचाराः ॥ येषां ॥ ते ॥ कायप्रविचाराः ॥	=शरीरसे कामसेवन जिनके हैं वे काय प्रविचारा हैं।
आङ् ॥ अभिविधिः ॥ अर्थः ॥	=(सूत्रमें) आङ् उपसर्ग सीमाके लिये अर्थात् सूत्रमें आ शब्द तक, या पर्यन्त अर्थमें है जो सीमा बतलाता है
असंहितया ॥ निर्देशः ॥	=(उस आ का) संधिसे रहित या बिनासंधि उच्चारण या कहना (निर्देश)
असन्देह अर्थः ॥	=सन्देहके निवारणके लिये है अर्थात् 'आऐशानात्' ऐसा सूत्रमें वाक्य है

इस आ तथा ऐशानात् की संधि करदेवें मिलादेवें तो व्याकरण की रीतिसे ऐशानात् होजावेगा फिर स्पष्ट रीतिसे यह न जान पड़ेगा कि ऐशानात् में आ उपसर्ग मिलाहुआ है अथवा नहीं इस सन्देह के दूर करने के लिये संधि न करके उमास्वामी ने आ ऐशानात् ऐसा उच्चारण किया है।

एते ॥ भवन-वासी-आदयः ॥ ऐशान-अन्ताः ॥	=ये सब भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषी सौधर्म (आदय) ऐशान तक
संक्लिष्ट-कर्मत्वात् ॥ मनुष्यवत् ॥ स्त्री-विषय-सुखम् ॥	=संक्लिष्ट कर्मके (उदय) होनेसे मनुष्यके समान स्त्रीके विषय सुखको
अनु-भवन्ति ॥ इति ॥ अर्थः ॥	=अनुभवन करते हैं अथवा भोगते हैं ऐसा अभिप्राय है।
अवधि-ग्रहणात् ॥ इतरेषां ॥ सुख-विभागे ॥	=(इस सूत्रमें) मर्यादा ग्रहण करनेसे अन्य (देवों) के सुखका विभाग
अनिर्ज्ञाते ॥ तत्-प्रतिपादन-अर्थम् ॥ आह ॥	=न जानने पर उस (विभाग) के ज्ञानके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) यदि अ अथवा आ से परे ए ऐ ओ औ इन स्वरोंमेंसे कोई स्वर आवे तो (अ+ए) (अ+ऐ) (आ+ए) (आ+ऐ) मिलकर ऐ होजायगा और (अ+ओ) (अ+औ) (आ+ओ) (आ+औ) मिलकर औ हो जावेगा इस कारण ऊपर के वाक्य में काय प्रविचारा आ ऐशानात् में आ+ऐशानात् मिलकर 'ऐशानात्' होजायगा और फिर समस्त सूत्र 'कायप्रविचारा ऐशानात्' ही होजायगा। अब 'ऐशानात्' वाक्य से यह संदेह हो सकता है कि "ऐशानात्" बिना आ के मिलायेहुये आचार्य ने उच्चारण किया है अथवा आ को मिलाकर "ऐशानात्" किया है। इस सन्देह के निराकरण करनेके लिये स्पष्टतया "कायप्रविचारा आ ऐशानात्" ऐसा सूत्र कथित है।

पञ्चनिरासी भगहाप्प्रदाय सहित कर पदच्छेद और विमक्ष्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका अन्वयार्थ हिंदी अनुवाद अध्याय ४ सूत्र ६ और ७

गन्धर्वाणां गीतरतिर्गीतयशाश्च। यक्षाणां पूर्णभद्रो माणिभद्रश्च। राक्षसानां भीमो महाभीमश्च। भूतानां प्रतिरूपोऽप्रतिरूपश्च पिशाचानां कालो महाकालश्च ॥ अथैषां देवानां सुखं कीदृशमित्युक्ते सुखावबोधनार्थमाह—

॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥

गन्धर्वाणां॥ गीतरतिः॥ गीतयशाः॥ च॥ । =गन्धर्वोंके गीतरति और गीतयशाः (ये दो इन्द्र) हैं।

यक्षाणां॥ पूर्णभद्रः॥ माणिभद्रः॥ च॥ । राक्षसानां॥ =यक्षोंके पूर्णभद्र और माणिभद्र (ये दो इन्द्र) हैं राक्षसोंके

भीमः॥ महाभीमः॥ च॥ । भूतानां॥ प्रतिरूपः॥ =भीम और महाभीम (ये दो इन्द्र) हैं। भूतोंके प्रतिरूप

अप्रतिरूपः॥ च॥ । पिशाचानां॥ कालः॥ महाकालः॥ च॥ =और(=च) अप्रतिरूप (ये दो इन्द्र) हैं। पिशाचोंके काल और महाकाल (दो इन्द्र) हैं।

अथ॥ एषां॥ =आगे (=अथ) इन (भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषी तथा स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाले)

देवानां॥ सुखं॥ कीदृशम्॥ इति॥ उक्ते॥ सुख- =देवोंके सुख किसप्रकार है, ऐसे पूछने पर सुखके

अवबोधन-अर्थम्॥ आह॥ =जाननेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— कायप्रविचारा आ ऐशानात् ॥७॥ = भवनवास्यादयो देवा आ ऐशानात् कायप्रवीचारा भवन्ति

काय-प्रवीचाराः॥ =शरीरसे मैथुन विषयका उपसेवनवाले या कामसेवनवाले (भवनवासी देवोंसे)

आ ऐशानात्॥ =ऐशान (दूसरे) स्वर्ग पर्यन्त (=आ) हैं अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म (पहिलास्वर्ग) तथा ऐशान (दूसरे) स्वर्ग तकके देव, मनुष्यों के समान अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ कामसेवन करते हैं ॥

(१) गीत यशस् शब्द के रूप विश्वपाके (=सूर्य-चन्द्र अग्नि-विश्वकर्मा) जो पुल्लिंग है सदृश है जैसे विश्वपा का पुल्लिंग एक वचन प्रथमा विभक्ति विश्वपाः है। ऐसे ही गीतयशाः है कई महाशयोंने हिन्दीमें इस "गीतयशाः" शब्दका अनुवाद 'गीतयश' ऐसा किया है चूंकि 'गीतयशा' एक इन्द्रका नाम है वह निश्चय से एक वचन में है। इसका एक हस्त लिखित संस्कृत सर्वार्थसिद्धि में "गन्धर्वाणां गीतरतिः। गीतयशाश्च॥ ऐसा पाठ पृष्ठ ५५ पर प्राप्त हुआ है और पं० पन्नालाल जी सूनी ने "अर गंधर्वनि के विषै गीतरति अर गीतयश नामा दोय इन्द्र है" ऐसा अनुवाद किया है॥ हमने भी क्योंकि एक इन्द्र का नाम है बिना परिवर्तन किये हुए गीतयशा अनुवाद किया है॥

(२) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायों में इस प्रकार पाठ और ... [illegible]

पटानिवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद अध्याय ४ सूत्र ८

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टा ? कल्पवासिन ॥ स्पर्शश्च रूपं च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषां ते स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥

=(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नान्देवा) स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ५। ऊर्ध्वम् ० शेषाः १। कल्पोपपन्नाः १। देवा १। =ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष या बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)

स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्— =स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें

प्रविचाराः १। यथासंख्यम् १॥ भवन्ति T =काम सेवनवाले अनुक्रमसे हैं ॥

पूज्यपाद—उक्त—अवशिष्ट— =(तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के

ग्रहण—अर्थ १॥ शेष—ग्रहणम् १॥ पुनर्—उक्त— =आदानके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[प्रश्न]बहुरि कथित (देवों) मेंसे

अवशिष्टा १। के १। कल्प—वासिन १। =शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥

स्पर्शः १। च ० रूपं १॥ च शब्दः १। च मनः १॥ =और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]

स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि १॥ तेषु ७॥ =स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं । तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषैं

प्रविचार १। येषां ६। ते १। स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-प्रविचाराः १। =काम सेवन है जिनके ते स्पर्श-रूप-शब्द-मनः प्रविचारा हैं

इस सबके मिलाने से दोनों सम्प्रदायों के मत मेंसे सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प, प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में ' द्वयोर्द्वयोः " वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका, कापिष्टकल्पका सो दोनों आचार्यों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्टकल्पको नहीं माना है । इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्र कल्प, शतारकल्प सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शकरि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सर्वार्थ

२०

सूत्रम्- शेषा स्पर्शरूपशब्दमन प्रविचाराः ॥८॥

—(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

सिद्धि

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें' हमारे यहांके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहांके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "ऐशानादूर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासंख्यम्"—ऐशानात् ऊर्ध्व शेषाः कल्पोपपन्ना देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप-शब्द मनः-प्रवीचाराः भवन्ति यथासंख्यम्—"ऊपर कहे हुये ईशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपपन्न देव हैं। वे दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श, रूप शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयो"—द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमें। दोनों आम्नायके इन सूत्रोंके अपभेद समझनेमें स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में बारह कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९२ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमें से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। कल्पाः मनुष्याय सन्निवेशो विमानप्रस्तारपृथिवीप्रस्तारनिमित्तभेदा द्वादशधा" "सूत्र २० सौधर्मादि" पृष्ठ २४५। "आरणाच्युतावित्येव द्वादश कल्पाः तद् उपरिग्रैवेयकानि अनुत्तरोपपुपरितः पञ्च महा विमानानि इति" पृ०४।१२६ ॥ इस भाष्य में बाईस सहस्र श्लोक से अधिक हैं श्वेताम्बरों में सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के लेखमें समझकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं॥ बाँयें ओर दिगम्बर आम्नाय का लेख है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्रकल्प	यहां स्पर्शन द्वारा काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहां स्पर्शन द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मकल्प	ब्रह्मोत्तरकल्प	यहां रूपदर्शनद्वारा कामसेवन है—एक ही इन्द्र है	ब्रह्मलोक कल्प		यहां रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लांतवकल्प	कापिष्ठकल्प	—एक ही इन्द्र है	लान्तक कल्प		
शुक्रकल्प	महाशुक्र कल्प	शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है—एक ही इन्द्र है		महाशुक्र कल्प	यहां शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
सतारकल्प	सहस्रार कल्प	—एक ही इन्द्र है		सहस्रार कल्प	
आनतकल्प	प्राणत कल्प	मनोविकल्प से काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	आनतकल्प	प्राणत कल्प	यहां मनो विकल्प से काम सेवन है
आरणकल्प	अच्युत कल्प	—एक एक इन्द्र है	आरणकल्प	अच्युत कल्प	

२०

एटानिवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विसकस्पर्श सहित सर्वार्थसिद्धिका अन्वय हिंदी अनुवाद अध्याय ४ सूत्र ८

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टा ? कल्पवासिन ॥ स्पर्शश्च रूप च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषा ते स्पर्शरूपशब्दमन'प्रवीचारा: ॥

= (ऐशानादूर्ध्वं) शेषा (कल्पोपपन्नान्देवा.) स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ।। ऊर्ध्वम् ॥ शेषा ।। कल्पोपपन्ना: ।। देवा ।।	= ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष या बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)
स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्—	= स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें
प्रविचारा: ।। यथासंख्यम् ।।। भवन्ति ।।	= काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥
पूर्वसूत्र—उक्त—अवशिष्ट—	= (तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के
ग्रहण—अर्थ ।।। शेष—ग्रहणम् ।।। पुनर्—उक्त—	= आख्यानके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है [पुन] बहुरि कथित (देवों) मेंसे
अवशिष्टा ।। के ।। कल्प—वासिन ।।	= शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥
स्पर्श: ।। च ॥ रूपं ।।। च शब्द: ।। च मन: ।।।	= और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]
स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि ।।। तेषु ।।।	= स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं । तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषैं
प्रविचारा: ।। येषां ।। ते ।। स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-प्रविचारा: ।।	= काम सेवन है जिनके ते स्पर्श-रूप-शब्द-मन: प्रविचारा हैं

इस सबके मिलाने से दोनों सम्प्रदायों के अर्थ भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्श द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प, प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में ' द्वयोर्द्वयो: " वाक्य लागू नहीं होता है ॥ यहां ब्रह्मकल्पका ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका, कापिष्टकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्टकल्पको नहीं माना है । इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्र कल्प, शतारकल्प सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शादि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्- शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रविचाराः ॥८॥

=(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें' हमारे यहांके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहांके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "ऐशानादूर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासंख्यम्"=ऐशानात् परत शेषाः कल्पोपपन्नाः देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप शब्द मनः-प्रवीचाराः भवन्ति यथासंख्यम्="ऊपर कहे हुये ऐशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपपन्न देव हैं। वे दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श, रूप शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयो "=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमें। दोनों आम्नायके इन सूत्रोंके अर्थभेद समझनेमें स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में बारह कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९१ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमें से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। "कल्पाः सानुमान सन्निवेशा विमानमात्रपृथिवीप्रस्तारसमितिकृतभेदा द्वादशधा" "सूत्र २० 'सौधर्मादि' पृष्ठ ३४५।" आरणाच्युताविमेव द्वादश कल्पाः तदु उपरितनैवकानितयोपयुपरि पंच महा विमानानि इति" पृ.३११९ ॥ इस भाष्य में बाईस सहस्र श्लोक से अधिक हैं श्वेताम्बरों में सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के लेखमें मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं॥ बाँयें ओर दिगम्बर आम्नाय का लेख है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

सौधर्म कल्प	ऐशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	सौधर्म कल्प	ऐशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्रकल्प	यहां स्पर्शन द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहां स्पर्शन द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मकल्प	ब्रह्मोत्तरकल्प	यहां रूपदर्शनद्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है	ब्रह्मलोक कल्प		यहां रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लांतवकल्प	कापिष्ठकल्प		—एक ही इन्द्र है	लान्तक कल्प		
शुक्रकल्प	महाशुक्र कल्प	" शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है		महाशुक्र कल्प	यहां शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
शतारकल्प	सहस्रार कल्प		—एक ही इन्द्र है		सहस्रार कल्प	
आनतकल्प	प्राणत कल्प	" मनोविकल्प से काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	आनतकल्प	प्राणत कल्प	यहां मनो विकल्प से काम सेवन है
आरणकल्प	अच्युत कल्प		—एक एक इन्द्र है	आरणकल्प	अच्युत कल्प	

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टाः ? कल्पवासिन ॥ स्पर्शश्च रूप च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषा ते स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचारा ॥

२१ =(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नान्देवा.) स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात १। ऊर्ध्वम् * शेषा ,। कल्पोपपन्नाः १। देवा १। =ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)

स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्— =स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें

प्रविचाराः १। यथासंख्यम् १॥ भवन्ति T =काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥

उक्तमुक्त—उक्त—अवशिष्ट— =(तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के

ग्रहण—अर्थ १॥ शेष—ग्रहणम् १॥ पुनर्—उक्त— =आदानके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[प्रश्न] बहुरि कथित (देवों) मेंसे

अवशिष्टाः ,। के ,। कल्प—वासिन' १। =शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥

स्पर्शः १। च * रूपं ,॥ च शब्दः ,। च मनः १॥ =और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]

स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि १॥ तेषु १॥ =स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं। तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषें

प्रविचारः १। येषां १। ते १। स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-प्रविचाराः,। =काम सेवन हैं जिनके वे स्पर्श-रूप-शब्द-मन प्रविचारा हैं

इस सबके मिलाने से दोनों सम्प्रदायों के अर्थ भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प, प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में ' द्वयोर्द्वयोः वाक्य लागू नहीं होता है ॥ तथा ब्रह्मकल्पका ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका कापिष्टकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप वर्णन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्टकल्पको नहीं माना है। इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्र कल्प, शतारकल्प सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और शतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शकरि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्–

शेषा स्पर्शरूपशब्दमन प्रविचारा ॥८॥

–(ऐशानादूर्ध्वं) शेषा॰ (कल्पोपपन्ना॰ देवा॰) स्पर्शरूपशब्दमन॰ प्रवीचारा (यथासख्यम् भवन्ति)

२०

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य॰ में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें' हमारे यहांके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहांके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य॰ में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "ऐशानादूर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासंख्यम्"—ऐशानात् ऊर्ध्व शेषाः कल्पोपपन्ना॰ देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप शब्द मनःप्रवीचाराः भवन्ति यथासंख्यम्—"ऊपर कहे हुये ऐशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपपन्न देव हैं। व दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयो"=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमें। दोनों आम्नायके इन सूत्रोंके अर्थभेद समझनेमें स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य॰ में दश कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९२ के शेष आठ कल्पोंके देवोंमें से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। "कल्पः समुदाय सन्निवेशा विमानप्रस्तारपृथिवीप्रस्तारसन्निमित्तमेवा द्वादशधा" "सूत्र २० 'सौधर्मादि' पृष्ठ ३३५।" आरणाच्युतावित्येव द्वादश कल्पाः तद् उपरिग्रैवेयकानिनवोपयुपरित्व एव महा विमानानि इति" पृष्ठ३३९॥ इस भाष्य में बाईस सहस्र श्लोक से अधिक हैं श्वेताम्बरों में सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के क्षेत्रमें मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं॥ बांयें ओर दिगम्बर आम्नाय का क्षेत्र है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

सौधर्म कल्प	ऐशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्रकल्प	यहां स्पर्शन द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है
ब्रह्मकल्प	ब्रह्मोत्तरकल्प	यहां रूपदर्शनद्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है
लांतवकल्प	कापिष्ठकल्प		—एक ही इन्द्र है
शुक्रकल्प	महाशुक्र कल्प	"शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है
सतारकल्प	सहस्रार कल्प		—एक ही इन्द्र है
आनतकल्प	प्राणत कल्प	"मनोविकल्प से काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है
आरणकल्प	अच्युत कल्प		—एक एक इन्द्र है

सौधर्म कल्प	ऐशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहां स्पर्शन द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मलोक कल्प		यहां रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लान्तक कल्प		
महाशुक्र कल्प		यहां शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
सहस्रार कल्प		
आनतकल्प	प्राणत कल्प	यहां मनो विकल्प से काम सेवन है
आरणकल्प	अच्युत कल्प	

२०

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टा ? कल्पवासिन ॥ स्पर्शश्च रूप च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषा ते स्पर्शरूपशब्दमन:प्रवीचारा: ॥

२१ = (ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नान्देवा) स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ॥ ऊर्ध्वम् ॥ शेषा ॥ कल्पोपपन्ना: ॥ देवा ॥	= ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)
स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्—	= स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें
प्रविचारा: ॥ यथासंख्यम् ॥ भवन्ति ॥	= काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥
पुनरुवाद—उक्त—अवशिष्ट—	= (तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के
ग्रहण—अर्थ ॥ शेष—ग्रहणम् ॥ पुनर्—उक्त—	= आदानके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[पुन:] बहुरि कथित (देवों) मेंसे
अवशिष्टा: ॥ के ॥ कल्प—वासिन ॥	= शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥
स्पर्श: ॥ च ॥ रूपं ॥ च शब्द: ॥ च मन: ॥	= और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]
स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि ॥ तेषु ॥	= स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं। तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषैं
प्रविचार ॥ येषां ॥ ते ॥ स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-प्रविचारा: ॥	= काम सेवन है जिनके ते स्पर्श-रूप-शब्द-मन प्रविचारा हैं

इस सबके मिलने से दोनों सम्प्रदायों के अर्थ भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में ' द्वयोर्द्वयो: " वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका, कापिष्ठकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्ठकल्पको नहीं माना है। इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्र कल्प, शतारकल्प सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद [illegible] सकते है कि स्पर्शकरि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्—

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः ॥८॥

—(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें' हमारे यहांके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहांके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "ऐशानादूर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासंख्यम्"—ऐशानात् ऊर्ध्व शेषाः कल्पोपपन्नाः देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप-शब्द मनः-प्रवीचाराः भवन्ति यथासंख्यम्—"ऊपर कहे हुये ईशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपपन्न देव हैं। वे दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयो"=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमें। दोनों आम्नायके इन सूत्रोंके अर्थभेद समझनेमें स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में बारह कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९२ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमें से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। कल्पाः समुदाय सन्निवेशा विमानमात्रपृथिवीप्रस्तारनिमित्तश्रेष्ठा द्वादशा" "सूत्र २० 'सौधर्मादि' पृष्ठ १४५।" आरणाच्युताविस्तेव द्वादश कल्पाः तत् उपरिमग्रैवेयकानि नवोपपुष्पिक पंच महा विमानानि इति" पृ.८।११६॥ इस भाष्य में बाईस सहस्र श्लोक से अधिक हैं श्वेताम्बरों में सबसे महत्व का ग्रंथ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के लेखमें मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं॥ बांये ओर दिगम्बर आम्नाय का लेख है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहाँ काय द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है
सनत्कुमार कल्प	माहेन्द्र कल्प	यहाँ स्पर्शन द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है
ब्रह्म कल्प	ब्रह्मोत्तर कल्प	} यहाँ रूपदर्शन द्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है
लांतव कल्प	कापिष्ठ कल्प	}	—एक ही इन्द्र है
शुक्र कल्प	महाशुक्र कल्प	} " शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है
शतार कल्प	सहस्रार कल्प	}	—एक ही इन्द्र है
आनत कल्प	प्राणत कल्प	} " मनोविकल्प से काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है
आरण कल्प	अच्युत कल्प	}	—एक एक इन्द्र है

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहाँ काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमार कल्प	माहेन्द्र कल्प	यहाँ स्पर्शन द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मलोक कल्प		} यहाँ रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लान्तक कल्प		}
	महाशुक्र कल्प	} यहाँ शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
	सहस्रार कल्प	}
आनत कल्प	प्राणत कल्प	} यहाँ मनो विकल्प से काम सेवन है
आरण कल्प	अच्युत कल्प	}

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टा ? कल्पवासिन ॥ स्पर्शश्च रूपं च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषां ते स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥

२१ =(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नान्देवा.) स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ।। ऊर्ध्वम् ॥ शेषा ॥ कल्पोपपन्नाः ॥ देवा ॥	=ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)
स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्—	=स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें
प्रविचाराः ॥ यथासंख्यम् ॥ भवन्ति ॥	=काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥
वृत्त्यनुसार—उक्त—अवशिष्ट—	=(तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के
ग्रहण—अर्थ ॥ शेष—ग्रहणम् ॥ पुनर्—उक्त—	=आव्हानके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[प्रश्न]बहुरि कथित (देवों) मेंसे
अवशिष्टा ॥ के ॥ कल्प—वासिन' ॥	=शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥
स्पर्शः ॥ च ॥ रूपं ॥ च शब्दः ॥ च मनः ॥	=और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]
स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि ॥ तेषु ॥	=स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं । तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषै
प्रविचार' ॥ येषां ॥ ते ॥ स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-प्रविचाराः ॥	=काम सेवन है जिनके वे स्पर्श-रूप-शब्द-मनः प्रविचारा हैं

इस सबके मिलाने से दोनों सम्प्रदायों के मत भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प, प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में " द्वयोर्द्वयोः " वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका, कापिष्ठकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्ठकल्पको नहीं माना है । इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्रकल्प, शतारकल्प, सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शादि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्– शेषा स्पर्शरूपशब्दमनः प्रविचारा ॥८॥

–(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें' हमारे यहाँके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहाँके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "ऐशानात्पूर्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासंख्यम्" – ऐशानात् ऊर्ध्व शेषाः कल्पोपपन्ना देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप-शब्द मनःप्रवीचाराः भवन्ति यथासंख्यम् – "ऊपर कहे हुये ईशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपपन्न देव हैं। व दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श, रूप शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयोः"=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमें। दोनों आम्नायके इस सूत्रोंके अर्थमेद समझनेमें स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में बारह कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९२ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमें से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। कल्पः समुदाय सन्निवेशो विमानप्रस्तारपृथिवीप्रस्तारसमन्वितमेवा द्वादशधा" "सूत्र २० सौधर्मादि' पृष्ठ ३४५।" आरणाच्युतविस्तेन द्वादश कल्पाः तद् उपरिग्रैवेयकानि नवोपपुष्पकेषु पंच महा विमानानि इति" पृ.३१११ ॥ इस भाष्य में बाईस सहस्र श्लोक से अधिक हैं श्वेताम्बरों में सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के लेखमें मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहाँ सोलह कल्प माने हैं॥ बाँयें ओर दिगम्बर आम्नाय का लेख है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहाँ काय द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्रकल्प	यहाँ स्पर्श द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है
ब्रह्मकल्प	ब्रह्मोत्तरकल्प	यहाँ रूपदर्शनद्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है
लांतवकल्प	कापिष्ठकल्प	"	—एक ही इन्द्र है
शुक्रकल्प	महाशुक्र कल्प	" शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है
सतारकल्प	सहस्रार कल्प	"	—एक ही इन्द्र है
आनतकल्प	प्राणत कल्प	" मनोविकल्प से काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है
आरणकल्प	अच्युत कल्प	"	—एक एक इन्द्र है

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहाँ काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहाँ स्पर्श द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मलोक कल्प		यहाँ रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लान्तक कल्प		"
	महाशुक्र कल्प	यहाँ शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
	सहस्रार कल्प	"
आनतकल्प	प्राणत कल्प	यहाँ मनो विकल्प से काम सेवन है
आरणकल्प	अच्युत कल्प	"

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टाः ? कल्पवासिनः ॥ स्पर्शश्च रूपं च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषां ते स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥

२१ =(ऐशानादूर्ध्वं) शेषा (कल्पोपपन्ना देवा) स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ।। ऊर्ध्वम् ॥ शेषा ।। कल्पोपपन्ना ।। देवा ।।	=ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)
स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्—	=स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें
प्रविचाराः ।। यथासंख्यम् ।।। भवन्ति ।	=काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥
पुनरनुवाद—उक्त—अवशिष्ट—	=(तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के
ग्रहण—अर्थ ।।। शेष—ग्रहणम् ।।। पुनर्—उक्त—	=ग्रहणके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[प्रश्न]बहुरि कथित (देवों) मेंसे
अवशिष्टा ।। के ।। कल्प—वासिन ।।	=शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥
स्पर्शः ।। च ॥ रूपं ।।। च शब्द ।। च मनः ।।।	=और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]
स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि ।।। तेषु ।।।	=स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं । तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषै
प्रविचारा ।। येषां ।। ते ।। स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-प्रविचाराः ।।	=काम सेवन हैं जिनके ते स्पर्श-रूप-शब्द-मन प्रविचारा हैं

इस सबके मिलाने से दोनों सम्प्रदायों के मत भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प, प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प माननेमें ' द्वयोर्द्वयोः ' वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका, कापिष्ठकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्ठकल्पको नहीं माना है। इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्रकल्प, शतारकल्प, सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शादि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्— शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः ॥८॥

—(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें' हमारे यहाँके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" शब्द अधिक है। शेषपाठ हमारे यहाँके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे किया है कि "ऐशानादूर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासंख्यम्"—ऐशानात् ऊर्ध्व शेषाः कल्पोपपन्नाः देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप शब्द मनःप्रवीचाराः भवन्ति यथासंख्यम्—"ऊपर कहे हुये ईशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पवासी देव हैं। वे दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श, रूप, शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयोः"=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमें। दोनों आम्नायके इन सूत्रोंके अर्थभेद समझनेमें स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में बारह कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९२ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमें से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। कल्पाः समुदाय सन्निवेशा विमानप्रस्तारपृथिवीप्रस्तारसन्निविष्टमेवा द्वादशधा" "सूत्र २० 'सौधर्मादि' पृष्ठ ३२५।" आरणाच्युतावसितेषु द्वादश कल्पाः तद् उपरिनवग्रैवेयकानि ... पंच महा विमानानि इति" पृ०३३६॥ इस भाष्य में बाईस सहस्र श्लोक से अधिक हैं स्वतन्त्रमें सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के क्षेत्रमें मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहाँ सोलह कल्प माने हैं॥ बाँयें ओर दिगम्बर आम्नाय का क्षेत्र है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहाँ काय द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्रकल्प	यहाँ स्पर्शन द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है
ब्रह्मकल्प	ब्रह्मोत्तरकल्प	यहाँ रूपदर्शन द्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है
लांतवकल्प	कापिष्ठकल्प		—एक ही इन्द्र है
शुक्रकल्प	महाशुक्र कल्प	" शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है
सतारकल्प	सहस्रार कल्प		—एक ही इन्द्र है
आनतकल्प	प्राणत कल्प	" मनोविकल्प से काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है
आरणकल्प	अच्युत कल्प		—एक एक इन्द्र है

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहाँ काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहाँ स्पर्शन द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मलोक कल्प		यहाँ रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लान्तक कल्प		
	महाशुक्र कल्प	यहाँ शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
	सहस्रार कल्प	
आनतकल्प	प्राणत कल्प	यहाँ मनो विकल्प से काम सेवन है
आरणकल्प	अच्युत कल्प	

सर्वार्थ- उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टाः ? कल्पवासिनः ॥ स्पर्शश्च रूपं च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषां ते स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥ सिद्धि

21 =(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ॥ ऊर्ध्वम् ॥ शेषाः ॥ कल्पोपपन्नाः ॥ देवाः ॥	=ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)
स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्—	=स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें
प्रविचाराः ॥ यथासंख्यम् ॥ भवन्ति ॥	=काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥
पूर्वसूत्रे—उक्त—अवशिष्ट—	=(तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के
ग्रहण—अर्थ ॥ शेष—ग्रहणम् ॥ पुनर्—उक्त—	=जाननेके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[प्रश्न]बहुरि कथित (देवों) मेंसे
अवशिष्टाः ॥ के ॥ कल्प—वासिनः ॥	=शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥
स्पर्शः ॥ च ॥ रूपं ॥ च शब्दः ॥ च मनः ॥	=और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]
स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि ॥ तेषु ॥	=स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं। तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषै
प्रविचाराः ॥ येषां ॥ ते ॥ स्पर्श-रूप शब्द-मनस्-प्रविचाराः ॥	=काम सेवन हैं जिनके ते स्पर्श-रूप-शब्द-मन प्रविचारा हैं

इस सबके मिलाने से दोनों सम्प्रदायों के अर्थ मेंसे सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प माननेमें ' द्वयोर्द्वयोः ' वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका, कापिष्टकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्टकल्पको नहीं माना है। इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्र कल्प, शतारकल्प, सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहाँ शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शादि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्– शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रविचाराः ॥८॥

–(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें' हमारे यहांके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहांके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "ऐशानादूर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासंख्यम्"–ऐशानात् ऊर्ध्व शेषाः कल्पोपपन्ना देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप शब्द मनः-प्रवीचाराः भवन्ति यथासंख्यम्–"ऊपर कहे हुये ईशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपपन्न देव हैं। व दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श, रूप, शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयो"=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमें। दोनों आम्नायके इन सूत्रोंके अर्थभेद समझनेमें स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में बारह कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९१ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमें से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। "कल्पः समुदाय सन्निवेशा विमानप्रस्तारपृथिवीप्रस्तारसन्निमित्तमेवा द्वादशा" "सूत्र २० 'सौधर्मादि' पृष्ठ ३२५।" आरणाच्युतावित्येव द्वादश कल्पाः तद् उपरिग्रैवेयकानिअनुत्तरोपपातिक पंच महा विमानानि इति" पृ०३१२९॥ इस भाष्य में बाईस सहस्र श्लोक से अधिक है श्वेताम्बरों में सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के लेखमें मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं॥ बांयें ओर दिगम्बर आम्नाय का लेख है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका–

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहां स्पर्शन द्वारा काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहां स्पर्शन द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मकल्प	ब्रह्मोत्तरकल्प	यहां रूपदर्शनद्वारा कामसेवन है—एक ही इन्द्र है	ब्रह्मलोक कल्प		यहां रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लांतवकल्प	कापिष्ठकल्प	—एक ही इन्द्र है	लान्तक कल्प		
शुक्रकल्प	महाशुक्र कल्प	"शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है—एक ही इन्द्र है		महाशुक्र कल्प	यहां शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
सतारकल्प	सहस्रार कल्प	—एक ही इन्द्र है		सहस्रार कल्प	
आनतकल्प	प्राणत कल्प	"मनोविकल्प से काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	आनतकल्प	प्राणत कल्प	यहां मनो विकल्प से काम सेवन है
आरणकल्प	अच्युत कल्प	—एक एक इन्द्र है	आरणकल्प	अच्युत कल्प	

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टा ? कल्पवासिन ॥ स्पर्शश्च रूप च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेपु प्रविचारा येषां ते स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचाराः ॥

२१ =(ऐशानादूर्ध्वं) शेषा (कल्पोपपन्नान्देवा) स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ऊर्ध्वम् शेषा कल्पोपपन्ना देवा	=ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)
स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्—	=स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें
प्रविचाराः यथासंख्यम् भवन्ति	=काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥
पृच्छुवाय—उक्त—अवशिष्ट—	=(तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के
ग्रहण—अर्थ शेष—ग्रहणम् पुनर्—उक्त—	=आदानके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[प्रश्न] बहुरि कथित (देवों) मेंसे
अवशिष्टा के कल्प—वासिन	=शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥
स्पर्श च रूप च शब्द च मनः	=और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]
स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि तेषु	=स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं। तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषे
प्रविचार येषां ते स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-प्रविचाराः	=काम सेवन हैं जिनके ते स्पर्श-रूप-शब्द-मन प्रविचारा हैं

इस सबके मिलाने से दोनों सम्प्रदायों के मत भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका कापिष्ठकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्ठकल्पको नहीं माना है। इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्र-कल्प, शतारकल्प सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शकरि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

कथमभिसम्बन्ध ? आर्षाविरोधेन । कुत पुन प्रवीचारग्रहणं ? इष्टसम्प्रत्ययार्थमिति ॥ कः पुनरिष्टोऽभिसम्बन्ध आर्षाविरोधी ? । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवा देवाङ्गनास्पर्शमात्रादेव परा प्रीतिमुपलभन्ते तथा देव्योऽपि । ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु देवा दिव्याङ्गनाना

	अर्थात् स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें और मनके विचारनेमें कामसेवनेवाले हैं
कथम् * अभिसम्बन्धः ॥	=(इन देव और मैथुनके भेदोंमें) कैसे अभिसम्बन्ध है अर्थात् प्रश्न यह है कि इन शेष चौदह स्वर्गोंके देवोंका स्पर्शप्रविचार, रूपप्रविचार, शब्दप्रविचार, मनःप्रविचारोंमें से किस किस प्रकार या भांतिके प्रविचारसे सम्बन्ध है ॥
आर्ष-अविरोधेन ३।	=(उत्तर) आगम अथवा धर्मशास्त्रकी विरुद्धता (=विरोध) से रहित (अभिसम्बन्ध) है
कुतः * पुनः * प्रविचार—	=(प्रश्न) क्यों फिर (जब पूर्व सूत्रमें प्रविचार शब्द विद्यमान है) प्रविचारका (इस सूत्रमें)
ग्रहणं १॥ इष्ट—सम्प्रत्यय—अर्थम् १॥ इति * ॥	=उपादान है । (उत्तर) अभिलषित अभिसम्बन्धके लिये है अर्थात् शिष्यके पूछने पर कि जब सातवां सूत्रमें प्रविचार शब्द विद्यमान है तब फिर इस सूत्रमें क्यों लाये हो उत्तरमें कहते हैं कि वांछित अभिसम्बन्धके (जो चौदह स्वर्गके देवोंके जिस जिस भांति के प्रविचार है) प्रगट करने के लिये लाये हैं ।
कः १। पुनः—इष्टः १। अभिसम्बन्धः १।	=(प्रश्न) बहुरि क्या वांछित अभिसम्बन्ध (कथित देवों और उक्त प्रविचारोंमें) है
आर्ष-अविरोधी १। सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः ७। देवाः १।	=(उत्तर) आगमसे अविरोधरूप (सम्बन्ध) है। (अर्थात्) सनत्कुमार, महेन्द्र स्वर्गमें देव
देव-अङ्गना-स्पर्श-मात्रात् ५। एव परां २। प्रीतिम् २।	=देवियोंके स्पर्श करने मात्रसे ही परम प्रीतिको
उपलभन्ते । तथा * देव्यः १। अपि * ।	=प्राप्त होते हैं। तैसे देवाङ्गना भी (परमप्रीति को प्राप्त होती हैं) ॥
ब्रह्म—ब्रह्मोत्तर—लान्तव—	=ब्रह्म [पांचवां स्वर्ग] ब्रह्मोत्तर [छठवां स्वर्ग] लान्तव [सातवां स्वर्ग]
कापिष्ठेषु ७। देवाः १। दिव्य—अङ्गनानाम् ६।	=कापिष्ठ [आठवां स्वर्ग] में, देव स्वर्गकी [= दिव्य] स्त्रियोंके अर्थात् देवियोंके

शृङ्गाराकारविलासचतुरमनोज्ञवेषरूपावलोकनमात्रादेव परमसुखमाप्नुवन्ति । शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु देवा देववनितानां मधुरसङ्गीतमृदुहसितललितकथितभूषणरवश्रवणमात्रादेव परां प्रीतिमास्कन्दन्ति । आनतप्राणतारणाच्युतकल्पेषु देवाः स्वाङ्गनामनःसङ्कल्पमात्रादेव परं सुखमाप्नुवन्ति ॥

अथोत्तरेषां किंप्रकारं सुखमित्युक्ते तन्निश्चयार्थमाह—

शृङ्गार आकार-विलास-चतुर-मनोज्ञ-वेष-रूप-	=शृङ्गार, आकार, हर्ष (=विलास) चतुर, सुंदर (=मनोज्ञ) वेष और रूपके
अवलोकन-मात्रात् ॥॥ एव॥ परम्-सुखम् ॥॥ आप्नुवन्ति ॥	=केवलमात्र देखनेसे ही उत्कृष्ट सुखको प्राप्त होते हैं ॥
शुक्र-महाशुक्र-शतार	=शुक्र (नवमां स्वर्ग) महाशुक्र (दसवां स्वर्ग) शतार (ग्यारहवां स्वर्ग)
सहस्रारेषु,॥॥ देवाः॥ देव-वनितानाम्॥॥ मधुर	=सहस्रार (बारहवां स्वर्ग) में देव और देवियोंके प्रिय (=मधुर)
सङ्गीत-मृदु	=नाचना-गाना-बजाना (=संगीत) अथवा गान (=संगीत) कोमल (=मृदु)
हसित-ललित-कथित-भूषण-रव-	=हास्य, मनोहर (=ललित) बोलना (=कथित) और आभूषण के शब्द (=रव)के
श्रवण-मात्रात्॥॥ एव॥ पराम्॥ प्रीतिं॥ आस्कन्दन्ति	=केवल (=मात्र) सुननेसे ही अतिशय प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥
आनत-प्राणत-आरण-अच्युत	=आनत (तेरहवां) प्राणत (चौदहवां) आरण (पंद्रहवां) और अच्युत (सोलहवां)
कल्पेषु॥ देवाः॥ स्व-अङ्गना-	=स्वर्गोंमें (=कल्पेषु) देव अपनी २ (=स्व) सुंदरियोंकी (=अङ्गना) अर्थात् देवियोंका
मनः-सङ्कल्प-मात्रात्॥॥ एव॥ परं॥ सुखम्॥॥	=मनमें विचार अथवा चिंतवन मात्रसे ही उत्कर्ष सुखको
आप्नुवन्ति। अथ-उत्तरेषाम्॥	=पाते हैं । अब अग्रिम (अहमिन्द्र अथवा कल्पातीत देव) जिनके
किम्॥ प्रकारं,॥ सुखम्॥ इति॥ उक्ते॥ तत्	=सुख कौन प्रकार है ऐसा पूछने पर उस (सुख) के
निश्चय-अर्थम्,॥ आह।	=निर्धारणके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) परम् (अव्य०)—केवल अनन्तर ॥ परम (त्रि०)—उत्कृष्ट, प्रधान, बड़ा, पहिला ॥ परमम् (अव्य०)—हां, स्वीकार, अनुज्ञा ॥ पर—का अर्थ सबसे अच्छे का भी है । (देखो परास प्रीति आस्कन्दन्ति पृ० २१६ पुष्टि०)

(२) 'कल्प' यह शब्द "समाप्ततत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्" में लिम्न वाक्योंमें पुल्लिङ्गमें आया है । सौधर्मस्य कल्पस्योपदेशाः कल्प । सा (=सभा) तस्मिन्नस्तीति सौधर्मः कल्पः । सर्वेकल्पाः (देखो पृष्ठ १०१ चौथा अध्याय सूत्र २० का)

। परेऽप्रवीचारा ॥९॥

परग्रहणमितराशेषसंग्रहार्थम् । अप्रवीचारग्रहणं परमसुखप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ प्रवीचारो हि वेदनाप्रतिकार । तदभावे तेषां परमसुखमनवरतं भवति ॥ उक्ता ये आदिनिकायदेवा–

सूत्रम्– परेऽप्रवीचारा,	=(कल्पोपपन्नेभ्य)[तीसरे सूत्रसे लिया]परे देवा अप्रवीचारा भवन्ति
सूत्रार्थ–कल्प-उपपन्नेभ्यः ।, परे ।, देवा ।,	=स्वर्ग में उत्पन्न होनेवाले देवोंसे परे वा अन्य अशेष देव अर्थात् कल्पातीत देव वा अहमिन्द्र
अप्रविचाराः ॥	=काम सेवन सेरहित है।
इत्यर्थ-पर-ग्रहणम् ॥ इतर अशेष–	=(इस सूत्र में) पर शब्दका ग्रहण अन्य समस्त (अशेष) (देवों) के
संग्रह-अर्थम् ॥ अप्रविचार-ग्रहणम् ॥ परम–	=संग्रह के लिये है। अप्रविचारका ग्रहण उत्कृष्ट
सुख-प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ प्रविचारः ॥ हि वेदना–	=सुख के जनावने के लिये है काम सेवन ही (=हि) (मैथुन) वेदना वा पीड़ाका
प्रतिकार ॥ तद्-अभावे ॥	= उपाय वा चिकित्सा (प्रतिकार = प्रतीकार) है तिस (मैथुनरूपी वेदना) के न होने पर
तेषाम् ॥ परम-सुखं ॥ अनवरतम् ॥ भवति ॥	= तिन (कल्पातीत देवों) के उत्कृष्ट (=परम) निरंतर वा लगातार (=अनवरत) सुख होता है
उक्ता ॥ ये ॥ आदि-निकाया-देवाः ॥	=कहे वे प्रथम समुदाय के देव (अर्थात् भवनवासी)

(१) इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है सामान्य रूप से अर्थ भी एक है क्योंकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "नवमनुदिश" नहीं माने हैं तब भी विमानों की संख्या जो सोलहवां स्वर्ग से ऊपर हैं दोनों आम्नायोंमें ३२३ (तीन सौ तेईस) ऐसे हैं कि और ग्रैवेयकोंके अधोभागमें एक सौ ग्यारह (१११) विमान है। मध्य भाग में एकसौ सात (१०७) और ऊपर केवल सात (१००) विमान हैं। और अनुत्तरदेवोंके केवल पांच हैं समाष्य० पृष्ठ१०९। तीन अधोग्रैवेयक विषै एकसौ ग्यारह विमान हैं। और तीन मध्यम ग्रैवेयक विषै एकसौ सात विमान हैं। और तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयकनि विषै इक्याणवे विमान हैं बहुरि नव अनुदिश विषै नव विमान हैं और अनुत्तर विषै पांच विमान हैं अर्थ प्रकाशिका सूत्र १९ पृष्ठ २३४ अतः ३२३ हुये
(२) पं० जयचन्द रायजीकी वचनिकामें इस वाक्यसे कि 'यहां पर शब्द का ग्रहण अवशेष रहे जे अहमिन्द्र तिन के ग्रहण के अर्थि हैं'। जान पड़ता है कि जिस संस्कृत प्रति से उन्हों ने वचनिका की है उसमें ऐसा पाठ होगा कि 'परग्रहणमितरावशेषसंग्रहार्थम्' अर्थात् अशेष शब्द के स्थान में अवशेष शब्द होगा। परन्तु सदासुख जी की अर्थप्रकाशिकाके इस वाक्यसे कि यहां 'पर' शब्दके कहने करि कल्पातीत समस्त देवनिका संग्रह भया जान पड़ता है कि जिस प्रति से उन्हों ने भाष किया है उसमें 'अशेष' शब्द था जैसा कि ऊपर पाठ है। दोनों पाठोंका एकही आशय है। हस्तलिखित एक प्रतिमें इसको 'अशेष' शब्द मिला है।

दशविकल्पा इति तेषां सामान्यविशेषसञ्ज्ञाविज्ञापनार्थमिदमुच्यते—

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः॥१०॥

भवनेषु वसन्तीत्येवंशीला भवनवासिनः। आदिनिकायस्येयम्

दश-विकल्पाः ।। इति ● तेषां ।। सामान्य-विशेष- =दश भेदरूप जिन (भवनवासी देवों) के सामान्य और विशेष
सञ्ज्ञा-विज्ञापन-अर्थम् ।। इदम् ।। उच्यते । =संज्ञाओंके बतानेके लिये यह (अभिमसूत्रमें) कहा जाता है कि

सूत्रम्— भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥
= भवनवासिनः असुरकुमाराः नागकुमाराः विद्युत्कुमाराः सुपर्णकुमाराः अग्निकुमाराः वातकुमाराः स्तनितकुमाराः उदधिकुमाराः द्वीपकुमाराः दिक्कुमाराः च दशविकल्पाः भवन्ति ॥

पदार्थ— भवनवासिनः ।। असुरकुमाराः ।। नागकुमाराः ।। =भवनवासी देव, असुरकुमार, नागकुमार,
विद्युत्कुमाराः ।। सुपर्णकुमाराः ।। अग्निकुमाराः ।। =विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार,
वातकुमाराः ।। स्तनितकुमाराः ।। उदधिकुमाराः ।। =वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार,
द्वीपकुमाराः ।। दिक्कुमाराः ।। च ● दश-विकल्पाः ।। भवन्ति=द्वीपकुमार, और (=च) दिक्कुमार, दशभेदरूप हैं
वृत्त्यनुवादः—भवनेषु ।। वसन्ति । इति ● एवं शीलाः ।। =भवनोंमें बसते हैं ऐसे स्वभाव वाले (=शीलाः)
भवनवासिनः ।। आदिनिकायस्य ।। इयम् ।। =भवनवासी देव हैं (चार समूहके देवोंमेंसे) प्रथमसमुदायकी यह

(१) दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्र का अर्थ और पाठ एक है। हमारे यहाँ यह दशवाँ सूत्र है श्वेताम्बर आम्नाय में यह ग्यारहवाँ सूत्र है।

(२) द्वन्द्व समासमें जितने शब्द जोड़े जावें उन प्रत्येकके अन्तका एक चकार गुप्त समझा जाता है अथवा प्रत्येक शब्द के साथ जितने शब्द जोड़े जावें उतने ही चकार समझ लिये जावें इसलिये ऊपरके दशदेवोंके भेदोंमें इस प्रकार दश चकार होंगे कि असुरकुमाराः च, नागकुमाराः च, विद्युत्कुमाराः च, सुपर्णकुमाराः च, अग्निकुमाराः च, वातकुमाराः च, स्तनितकुमाराः च, उदधिकुमाराः च, द्वीपकुमाराः च, दिक्कुमाराः च, इस अवस्थामें अनुवादमें भी दश बार 'और' शब्द आवेगा परन्तु अनुवादक ने केवल एक चकार लेकर ऊपरका अनुवाद किया है।

२६

सामान्यसञ्ज्ञा । असुरादयो विशेषसञ्ज्ञा विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तयः । सर्वेषां देवानामवस्थितवयः स्वभावत्वेऽपि वेषभूषायुधयानवाहनक्रीडनादिकुमारवदेषामाभासन्त इति भवनवासिषु कुमारव्यपदेशो रूढः । स प्रत्येकं परिसमाप्यते असुरकुमारा इत्येवमादि ॥ क्व तेषां भवनानीति चेदुच्यते— रत्नप्रभायाः पङ्कबहुलभागेऽसुर

सामान्य-सञ्ज्ञा ॥ असुर-आदयः ॥ =सामान्य संज्ञा है असुर, नाग, विद्युत, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्

विशेष-सञ्ज्ञा ॥ विशिष्ट-नामकर्म-उदय आपादित— —विशेषसंज्ञा है। विशेष नाम कर्मके उदयके प्राप्तसे (—आपादित)

वृत्तयः ॥ सर्वेषाम् ॥ देवानाम् ॥ —(ये दश विशेषसंज्ञा) प्रवर्ते हैं। समस्त (भवनवासी) देवों के

अवस्थितवयः ॥ —स्थिर अथवा एकरूप (—अवस्थिति) (बालपन यौवनादिक) अवस्था

स्वभावत्वे ॥ अपि ॥ वेष-भूषा-आयुध— =स्वभावसे होनेपर भी वेष सजावट (=भूषा) अस्त्र (=आयुध)

यान-वाहन— —लेजानेके साधन रथ, गाडी आदिक (=यान) सवारी (=वाहन)

क्रीडन-आदि-कुमार-वत् ॥ एषाम् ॥ आभासन्ते ॥ इति =परिहास या कौतुक आदिक कुमारके सदृश इन (भवनवासी देवों)के शोभे हैं अर्थात्

यद्यपि समस्त भवनवासी देवोंकि जन्म समयसे मरण पर्यन्त एकसी दशा अथवा अवस्था रहती है। बाल, यौवन, जरा आदिक अवस्था पलटती नहीं है तो भी इनकी कुमार संज्ञा पूर्वोक्त निमित्तसे नहीं है वरण इस कारणसे है कि ये वेष, आभूषण, यान, वाहन, क्रीडनकरि कुमारके समान प्रवर्ते हैं।

भवनवासिषु ॥ कुमार-व्यपदेशः ॥ रूढः ॥ —भवनवासी (देवों) विषैं कुमारनाम प्रसिद्ध (=रूढ) है

सः ॥ प्रत्येकं ॥ परिसमाप्यते =यह कुमार व्यपदेश या संज्ञा प्रत्येक (दश विशेष संज्ञाओं पर) जोड़ा जाता है।

असुर-कुमाराः ॥ इति ॥ एवम् ॥ आदि ॥ —(जैसे) असुरकुमार एवं आदिक (पूर्वोक्त दश संज्ञा) हैं।

क्व ॥ तेषाम् ॥ भवनानि ॥ इति ॥ चेत् ॥ उच्यते —कहाँ तिनके निवासस्थान हैं? इस प्रकार शंका होनेपर (=चेत्) कहा जाय है कि

रत्नप्रभायाः ॥ पङ्कबहुल-भागे ॥ असुर— =रत्नप्रभा (पृथिवी) के पङ्कबहुल भागमें अर्थात् दूसरे भागमें असुर

२९

(१) यह शब्द भूष् धातु जिसका अर्थ सजाना है या कृषाले अर्थात् भूष्+आ =भूषा (स्त्रीलिंगमें) होता है जिसका अर्थ भूषण, आभूषण, सजावट, अलंकिया, अलंकार, आभरण है। देखो ...कोष पृष्ठ २७९

कुमाराणां भवनानि । खरपृथिवीभागे उपर्यधश्च एकैकयोजनसहस्रं वर्जयित्वा शेषनवानां कुमाराणामावासा ॥

द्वितीयनिकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञावधारणार्थमाह—

कुमाराणाम्।। भवनानि,।।। खर-पृथिवी-भागे।।	=कुमारोंके भवन हैं (रत्नप्रभाके तीन भागोंमेंसे ऊपरके) खर पृथिवी भागमें
उपरि॥ अधस्॥ च॥ एक-एक-योजनसहस्रं;॥ वर्जयित्वा	=ऊपर और नीचे एक एक सहस्र योजन छोड़कर
शेष-नवानाम्।।	=अवशेष (भागमें) नो (नाग, विद्युत, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्)
कुमाराणाम्।। आवासा ।।	=कुमारोंके निवास स्थान हैं अर्थात् रत्नप्रभा नामकी पृथिवी एक लाख अस्सी

सहस्र योजनकी मोटी है। उसके तीन विभाग हैं, उन तीन भागोंमें से ऊपरका खरभाग १६००० योजन मोटा है। उसमें चित्रा, वज्रा, वैडूर्य इत्यादि एक एक सहस्र योजनकी मोटी १६ पृथिवी हैं॥ इनमेंसे ऊपर और नीचे की एक एक सहस्र योजनकी दो पृथिवी छोड़कर बीचकी चौदह सहस्र योजन मोटी और एक राजू लम्बी चौड़ी पृथिवीमें नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार अग्निकुमार वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार, इन नव प्रकारके भवनवासी देवोंके निवास स्थान हैं॥ इस खर भागके नीचे दूसरा पङ्कबहुल भाग है जो चौरासी सहस्र योजन मोटा है। उसमें असुरकुमार रहते हैं और पङ्क भागके नीचे अस्सी सहस्र या ८००००×२०००=१६०००००० सोलह करोड़ कोस मोटा अब्बहुल भाग है उसमें प्रथम नरक है।

द्वितीय-निकायस्य।। सामन्य-विशेष सञ्ज्ञा-	=दूसरे समुदायके सामान्य और विशेष संज्ञाओंके
अवधारण-अर्थम्,।।। आह।।	=निश्चय करने के लिये (आचार्य उपर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) वर्जित्वा संबंधकसूचक भूत कृदन्त है।

सामान्यसञ्ज्ञा । असुरादयो विशेषसञ्ज्ञा विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तयः । सर्वेषां देवानामवस्थितवयः स्वभावत्वेऽपि वेषभूषायुधयानवाहनक्रीडनादिकुमारवदेषामाभासन्त इति भवनवासिषु कुमारव्यपदेशो रूढः । स प्रत्येकं परिसमाप्यते असुरकुमारा इत्येवमादि ॥ क्व तेषां भवनानीति चेदुच्यते— रत्नप्रभायाः पङ्कबहुलभागेऽसुर

सामान्य-सञ्ज्ञा ।१ असुर-आदयः ।१ =सामान्य संज्ञा है असुर, नाग, विद्युत, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्

विशेष-संज्ञा ।१ विशिष्ट-नामकर्म-उदय आपादित- =विशेषसंज्ञा है । विशेष नाम कर्मके उदयके प्राससे (=आपादित)

वृत्तयः ।१ सर्वेषाम् ।१ देवानाम् ।१ =(ये दश विशेषसंज्ञा) प्रवर्ते हैं । समस्त (भवनवासी) देवों के

अवस्थितवयः ।१ =स्थिर अथवा एकरूप (=अवस्थिति) (बाल्यन यौवनादिक) अवस्था

स्वभावत्वे ।१ अपि ० वेष-भूषा-आयुध- =स्वभावसे होनेपर भी वेष सजावट (=भूषा) अस्त्र (=आयुध)

यान-वाहन- =लेजानेके साधन रथ, गाड़ी आदिक (=यान) सवारी (=वाहन)

क्रीडन-आदि-कुमार-वत् ० एषाम् ।१ आभासन्ते ।१ इति =परिहास या कौतुक आदिक कुमारके सदृश इन (भवनवासी देवों)के होते हैं अर्थात

यद्यपि समस्त भवनवासी देवोंके जन्म समयसे मरण पर्यन्त एकसी दशा अथवा अवस्था रहती है । बाल, यौवन, जरा आदिक अवस्था पलटती नहीं है तो भी इनकी कुमार संज्ञा पूर्वोक्त निमित्तसे नहीं हैं वरन इस कारणसे है कि वे वेष, आभूषण, यान, वाहन, क्रीडनादि कुमारके समान प्रवर्ते हैं ।

भवनवासिषु ।१ कुमार-व्यपदेशः ।१ रूढः ।१ =भवनवासी (देवों) विषै कुमारनाम प्रसिद्ध (=रूढ) है

सः ।१ प्रत्येकं ० परिसमाप्यते ।१ =यह कुमार व्यपदेश या संज्ञा प्रत्येक (दश विशेष संज्ञाओं पर) जोड़ा जाता है ।

असुर-कुमाराः ।१ इति ० एवम् ० आदि ।१ =(सब) असुरकुमार एवं आदिक (पूर्वोक्त दश संज्ञा) हैं ।

क्व ० तेषाम् ।१ भवनानि ।१ इति ० चेत् ० उच्यते ।१ =कहां तिनके निवासस्थान हैं ? इस प्रकार शंका होनेपर (=चेत) कहा जाय है कि

रत्नप्रभायाः ।१ पङ्कबहुल-भागे ।१ असुर- =रत्नप्रभा (पृथिवी) के पङ्कबहुल भागमें अर्थात दूसरे भागमें असुर

(१) यह शब्द भूष् धातु जिसका अर्थ सजाना है या सजाने अर्थात भूष्+आ =भूषा (स्त्रीलिंगमें) होता है जिसका अर्थ भूषण, आभूषण, सजावट, सज्जमजिना, अलंकार, आभरण है । देखो शब्दकल्पद्रुम पृष्ठ २७१

आवासा ॥ राक्षसानां पङ्कबहुलभागे ॥ तृतीयस्य निकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञासंकीर्तनार्थमाह-

॥ ज्योतिष्काःसूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

आवासा ॥ राक्षसानाम् ॥ पङ्कबहुलभागे ॥	= निवासस्थान हैं। राक्षसोंके (निवासस्थान) पङ्कबहुलभागमें हैं।
तृतीयस्य ॥ निकायस्य ॥ सामान्य-	= तीसरे निकायके (देवोंकी) सामान्य और
विशेष-सञ्ज्ञा-संकीर्तन-अर्थम् ॥ आह ॥	= विशेष संज्ञा कहनेके लिये (आचार्य उपर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्- ज्योतिष्का सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

= ज्योतिष्का. सूर्यो चन्द्रमसौ ग्रह नक्षत्र-प्रकीर्णकतारकाः च (पञ्चविकल्पा भवन्ति

(१) सूर्य अथवा सूर्य्य यह शब्द भलीभांति शुद्ध हैं क्योंकि संस्कृतके व्याकरणमें यदि किसी शब्दमें पहिले स्वर आवे र् अथवा ह् पीछेसे आवे और पश्चात् कोई व्यंजन हु को छोड़कर आवे तो वह व्यंजन इच्छानुसार द्वित्व हो जाता है अर्थात् चाहो तो उस व्यंजनका दोहरा करदो चाहो न करो जैसे अर्क वा अर्क्क, मर्क वा मर्क्क, धर्म वा धर्म्म, कर्म वा कर्म्म, ब्रह्मा वा ब्रह्म्मा अनुष्टुपे वा अपह्नुते इसी प्रकार सूर्य वा सूर्य्य दोनोंही ठीक है

(२) इससूत्र का पाठ हमारे यहां की बहुधा पुस्तकोंमें "सूर्याचन्द्रमसौ" है कहीं कहीं पर "सूर्याचन्द्रमसौ" भी है ऊपरकी टिप्पणीसे यह प्रगट है कि इनका पाठ ठीक है शेष पाठ हमारे यहां सर्वत्र एकसा है। अब प्रश्न यह है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों शब्दोंका समास 'सूर्यचन्द्रमसौ' क्यों नहीं हुआ 'सूर्याचन्द्रमसौ' कैसे हुआ। (उत्तर, यहां पर सूर्याचन्द्रमसौ शब्दमें देवता द्वन्द्वसमास है अर्थात् देवताओंके नामोंके द्वन्द्वसमास बनाने में पहिले अवयवके अन्तको 'आनङ् (=आ=) आदेश हो। जैसे इन्द्रावरुणौ, इन्द्रासोमौ, मित्रावरुणौ, इन्द्राबृहस्पती, अतः सूर्याचन्द्रमसौ हुआ, महाध्यायी अध्याय ६ पाद ३ सूत्र २५,२६ देखो।

(३) श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें हमारे यहांके "सूर्याचन्द्रमसौ" शब्दके स्थानमें 'सूर्याश्चन्द्रमसो' शब्द है अर्थात् सूर्या (बहुत यानी दो से अधिक सूर्य), चन्द्रमसः (बहुत या दो से अधिक चन्द्रमा) हमारे यहां अर्थ सूर्याचन्द्रमसौ शब्दका = एक सूर्य और एक चन्द्रमा किया है परन्तु श्वेताम्बरके सूर्याश्चन्द्रमसो शब्द का अर्थ = बहुत सूर्य बहुत चन्द्रमा किया है श्वेताम्बर में सूर्य चन्द्रमाका समास न करनेका हेतु ऐसा है कि इस सूत्रमें समास न करनेका और आर्षप्रमाणसे सूर्य तथा चन्द्रमा का क्रमभेद करनेका कारण यह है कि जिससे यह सूचित होजाय कि इनकी यथा क्रम ऊपर स्थिति है अर्थात् आगे सबसे प्रथम पूर्व पठित है। और सूर्य पश्चात् यह यहां पर इस नहीं है। यहां पर सूर्यकी ही प्रथम कहना है क्योंकि पाठ के क्रमानुसार ऊपर इन सूर्योंकी स्थिति नहीं है। किन्तु इनकी एकके पश्चात् दूसरकी ऊपर ऊपर स्थिति है। जैसे सबके नीचे प्रथम सूर्य हैं। चन्द्रमाओंके ऊपर ग्रह हैं, उनके ऊपर नक्षत्र हैं। और नक्षत्रोंके ऊपर प्रकीर्णक तारका हैं। और तारा, यह तो अनियत। पाठी अर्थात्

॥व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

विविधदेशान्तराणि येषां निवासास्ते व्यन्तरा इत्यन्वर्था सामान्यसञ्ज्ञेयमष्टानामपि विकल्पानाम् ॥ तेषां व्यन्तराणामष्टौ विकल्पाः किन्नरादयो वेदितव्या नामकर्मोदयविशेषापादिताः ॥ क्व पुनस्तेषामावासा इति चेदुच्यते-अस्माज्जम्बूद्वीपादसंख्येयान्द्वीपसमुद्रानतीत्य उपरिष्टे खरपृथिवीभागे सप्तानां व्यन्तराणाम्

सूत्रम्- व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

=व्यन्तराः किन्नर किम्पुरुष महोरग गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः (अष्ट विकल्पाः) भवन्ति

सूत्रार्थ—व्यन्तराः,। किन्नर-किम्पुरुष-महोरग	=व्यन्तर, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग,
गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः,। अष्ट,। विकल्पाः,। भवन्ति	=गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आठ प्रकारके हैं।
तत्त्वार्थ—विविध-देश-अन्तराणि,॥ येषाम्,।	=नाना प्रकारके अन्य देश हैं, जिनके
निवासाः,। ते,। व्यन्तराः,। इति०	=वासस्थान वे व्यन्तर हैं इस प्रकार
अन्वार्था,॥ सामान्य-सञ्ज्ञा,॥ इयम्,॥ अष्टानाम्,। अपि०	=सार्थक अथवा यथा नाम तथा गुणरूप सामान्य संज्ञा यह आठों ही
विकल्पानाम्,। तेषां,। व्यन्तराणां,। अष्टौ,।	=भेदों की है। तिन व्यन्तरोंके आठ
विकल्पाः,। किन्नर-आदयः,।	=भेद किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आदिक
विशेष-सञ्ज्ञाः,॥ वेदितव्याः,॥ नाम-कर्म-	=विशेष संज्ञायें जानना चाहिये। (ये आठ विशेष संज्ञा) नाम कर्मके
उदय-विशेष-आपादिताः,॥ क्व० पुनः० तेषां,। आवासाः,।	=उदयकी विशेषतासे प्राप्त(आपादित)हैं। फिर तिन (व्यन्तरों)के वासस्थान कहां हैं
इति० चेत्-उच्यते। अस्मात्,। जम्बूद्वीपात्,।	=इसप्रकार प्रश्न या शंका (=चेत्) होने पर कहाजाय है कि इस जम्बूद्वीपसे
असंख्येयान्,। द्वीप-समुद्रान्,। अतीत्य-	=असंख्यात द्वीप और समुद्रोंको उल्लंघकरि (=अतीत्य) (इस रत्नप्रभाके)
उपरिष्टे० खर-पृथिवीभागे,। सप्तानाम्,। व्यन्तराणाम्,।	=ऊपरके अर्थात् पहिले खर पृथिवी भागमें सात व्यन्तरोंके
	(अर्थात् किन्नर किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत, पिशाचोंके)

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है॥ तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इस सूत्रको बारहवां किया है॥

किं कृतं पुन प्राधान्य ? प्रभावात्कृतम् ॥ क पुनस्तेषामावासाः ? इत्यत्रोच्यते अस्मात्समानभूमि भागादूर्ध्वं सप्तयोजनशतानि नवत्युत्तराणि ७९० उत्पत्य सर्वज्योतिषामधोभागाविन्यस्तास्तारकाश्चरन्ति । तेता दशोयोजनान्युत्पत्य सूर्याश्चरन्ति । ततोऽशीतियोजनान्युत्पत्य चन्द्रमसो भ्रमन्ति । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य नक्षत्राणि । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य बुधा । ततस्त्रीणि

उसी प्रकार इन पांचों भेदोंको मिलाकर इसप्रकार सूत्र करदेते कि “ सूर्य-चन्द्रम-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्ण- कतारकाश्च” सो ऐसा सूत्र न करके “सूर्याचन्द्रमसो” इन दो शब्दोंकी प्रथमा विभक्ति दो वचन न्यारीकी और शेष सूत्र “ ग्रह-नक्षत्र प्रकीर्णकतारकाश्च” इन तीन शब्दोंकी न्यारी विभक्तिकी सो ऐसा क्यों किया । उत्तरमें कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रकी शेष तीन प्रकारके ज्योतिषी देवोंपर प्रधानता (=भाषा १)जतानेके लिये सूर्य-चन्द्रमाकी विभक्ति अथवा कारक न्यारा किया और शेष तीन ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक तारका का न्यारा कारक किया ॥

किं,॥। कृतम् ,॥। पुनः॰ प्राधान्यम् १॥।	=(प्रश्न) बहुरि कैसा प्रधानपना वा श्रेष्ठता (इन सूर्य चन्द्रकी अन्य ज्योतिषियोंपर) है
प्रभाव-आदि-कृतम् ३॥। । क॰ पुनः॰ तेषाम्६।	=(उत्तर) प्रताप आदिक करि (प्रधानपना) किया है । (प्रश्न) बहुरि तिनके कहां
आवासा ,। इति॰ । अत्र॰ उच्यते	=निवास स्थान हैं (उत्तर) यहां कहा जाय है कि
अस्मात्५। समान-भूमि-भागात्५। ऊर्ध्वम्॰	=इस (मध्यलोकके) समान भूमिभागसे अर्थात चित्राभूमिसे ऊपरकी ओर(=ऊर्ध्वम्)
सप्त-योजन-शतानि२॥। नवति-उत्तराणि,॥। उत्पत्य	=सात सौ योजन नब्बे अधिक ७९० ऊंचा (=उत्पत्य)
सर्व-ज्योतिषाम् ६। अधस्॰ भाग-विन्यस्ताः,।	=समस्त ज्योतिषियोंके नीचे भागमें फैले हुये (=विन्यस्त)
तारका ,। चरन्ति तत॰ दशयोजनानि,॥।	=तारे विचरते हैं यहांसे अर्थात तिन तारकाओंसे दशयोजन
उत्पत्य॰ सूर्या,। चरन्ति-ततः॰ अशीति योजनानि२॥।	=ऊपर सूर्य भ्रमण करते हैं । यहांसे अस्सीयोजन
उत्पत्य॰ चन्द्रमसः,। भ्रमन्ति। ततः॰ चत्वारि,॥	=ऊपर चन्द्रमा विचरे हैं । यहांसे चार
योजनानि,॥। उत्पत्य॰ नक्षत्राणि,॥। ततः॰ चत्वारि,॥।	=योजन ऊपर नक्षत्र (२८) हैं । यहांसे चार
योजनानि॥। उत्पत्य॰ बुधाः१। ततः॰ त्रीणि२॥।	=योजन ऊंचे बुद्ध हैं । यहांसे तीन

सर्वार्थ

ज्योतिस्स्वभावत्वादेषां पञ्चानामपि ज्योतिष्का इति सामान्यसञ्ज्ञा अन्वर्था ॥ सूर्यादयस्तद्विशेषसञ्ज्ञा नामकर्मोदयप्रत्यया ॥ सूर्याचन्द्रमसाविति पृथग्ग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम् ॥

सिद्धि

३० सूत्रार्थ—ज्योतिष्का,। सूर्य-चन्द्रमसौ,। ग्रह-नक्षत्र च॰ =ज्योतिष्कदेव सूर्य चन्द्रमा और (=च) ग्रह, नक्षत्र
प्रकीर्णकतारकाः,। पञ्च,। विकल्पा,। भवन्ति =प्रकीर्णक तारे पांच प्रकार हैं
भावार्थ— ज्योतिः-स्वभावत्वात्,॥ एषां॥ पञ्चानाम्॥ =ज्योतिरूप स्वभाव होनेसे इन पांचों (सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक तारों) की
अपि॰ ज्योतिष्का,। इति॰ सामान्य-सञ्ज्ञा॥ अन्वर्था,॥ =ही ज्योतिष्का ऐसी सामान्य संज्ञा सार्थक अर्थात् यथा नाम तथा गुणरूप है।
सूर्य-आदयः॥ =सूर्यादिक अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक, तारका
तद् विशेष-सञ्ज्ञा॥ नाम-कर्म-उदय-प्रत्यया,। =उन (ज्योतिषी देवों)की विशेष संज्ञायें (विशेष) नाम कर्मके उदयके निमित्तसे हैं
सूर्या-चन्द्रमसौ॥ इति॰ पृथक्॰ ग्रहणं,॥ =सूर्याचन्द्रमसो ऐसे (इस सूत्रके इस भागसे) अलग (विभक्ति) ग्रहण
प्राधान्य-ख्यापन-अर्थम्,॥ =(इन दोनों सूर्य चन्द्रकी)मुख्यता वा प्रधानता(ग्रह नक्षत्र तारकोंपर) जतावनेके लिये है

अर्थात् मतलब यह है कि जैसे दशवें सूत्रमें भवनवासी देवोंके दश भेद मिलाकर कहे और अन्तमें प्रथमा विभक्ति बहुवचन दे दी और व्यन्तरोंके आठ भेद मिलाकर अन्तमें प्रथमा विभक्ति बहुवचन देदी।

बिनकी गति निश्चल नहीं ऐसे होनेसे सूर्य तथा चन्द्रमाके ऊपर तथा नीचे भी भ्रमण करते हैं और सूर्यसे दश योजन अवलम्ब होते हैं अर्थात् सूर्यसे दश योजन दूर रहते हैं ॥ ( ) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र॰ में हमारे यहांके प्रकीर्णक' शब्दके स्थानमें 'प्रकीर्ण' शब्द है। शेषपाठ एक है दोनों सम्प्रदायोंमेंअर्थ लगभग एक सा है।

(श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र'का पाठ "ज्योतिष्काः सूर्याश्चन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णतारकाश्च॥१३॥" श्वेताम्बर समाजके 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका'–सिद्धसेनसूरि रचितका पाठ "ज्योतिष्काः सूर्याः चन्द्रमसो ग्रहा नक्षत्राणि प्रकीर्ण ताराश्च"

(१) इस पदविकल्प" वाक्यका तीसरे सूत्रसे इस सूत्रमें लिया है अथवा अनुवर्तन किया है ( ) (प्रश्न) चन्द्रमस्' शब्द सूत्रमें क्यों लाये? जब पुल्लिङ्गमें ही 'चन्द्र'शब्द उसी अर्थमें लाया जाता है। अथवा इन्दु, विधु शशि,सोम,श्री इस जाते शब्दोंमेंसे कोई शब्द लाते। अमरकोश १ वर्ग ११ श्लोक (उत्तर)चन्द्र और शब्दोंसे प्रसिद्ध है परन्तु चन्द्रमा सब से प्रसिद्ध है यो तक चन्द्रमा कहते हैं इससे सूत्रमें चन्द्रमस् शब्द लाये हैं।

३०

दस सीदी चदुदुगातियचउक्कम् तारारविससिरिक्खा बुहभग्गवगुरुअंगिरारसणी ॥१॥

ज्योतिष्काणा गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

दस,॥। सीदी,॥ चदुदुग-तियचउक्क ॥॥ (दश,॥। अशीतिः,॥ चतुर्द्विक-त्रयचतुष्कम्॥॥)	}=दशयोजन अस्सीयोजन-चारयोजन दो बार अर्थात् चारयोजन चारयोजन तीनयोजन चारबार अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन,
तारा-रवि-ससि-रिक्खा,। (तारा-रवि-शशि-ऋक्षाः,।)	=तारे, भानु, चन्द्रमा, नक्षत्र (अठाईस)
बुह-भग्गव-गुरु-अंगिरा-रसणी॥ बुध-भार्गव-गुरु-अंगारका-शनयः॥	}=बुद्ध शुक्र-बृहस्पति-मंगल (और) शनैश्चर (यथासंख्य सम भूमिसे विचरें) हैं

भावार्थ सम भूमि चित्रा पृथिवीसे सातसो नव्वे योजन ऊंचे तारे हैं। तिन तारों से दश योजन ऊपर सूर्य हैं। तिन से ८० योजन ऊपर चन्द्रमा हैं। तिनसे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं। तिनसे चारयोजन ऊपर बुद्ध हैं। तिनसे तीनयोजन ऊर्ध्व शुक्र हैं। तिनसे तीनयोजन ऊपर बृहस्पति है। तिनसे तीनयोजन ऊंचे मंगल हैं और मंगलसे तीनयोजन ऊपर शनिश्चर हैं।

ज्योतिष्काणां,। विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं,॥॥ आह	= ज्योतिषी देवोंके गमन विशेषके ज्ञानके लिये (उपर सूत्रमें) कहते हैं कि

* पूज्यपाद स्वामीके मतमें चन्द्रमासे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं और नक्षत्रोंसे चारयोजन ऊपर बुध (इव) है परन्तु तत्त्वार्थराजवार्तिकके रचयिता श्री अकलंक स्वामी तथा श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीमद् विद्यानंदि स्वामीके मतमें चन्द्रमासे तीन योजन ऊपर नक्षत्र हैं और नक्षत्रोंसे तीन ही योजनपर बुध हैं इन आचार्योंके मतानुसार बृहस्पति देवोंसे चारयोजनकी ऊंचाईपर मंगल है और मंगलसे चार योजनकी ऊंचाईपर शनैश्चर नामके ज्योतिषदेव भ्रमण करते हैं अर्थात् सब आचार्य (i) ज्योतिष्क समस्तदेवोंके क्रमानुसार अवस्थित (ii) तथा क्रमानुसार एक दूसरेके ऊपर ऊपर होनेमें सहमत हैं (iii) इस बातमें भी सहमत हैं कि ज्योतिष्क पटल एकसौ दशयोजन ऊंचाईमें नभमें फैल रहा है। केवल मतभेद इतना है कि एकके मतमें नक्षत्र और बुध चार चार योजन ऊंचे हैं और मंगल शनिश्चर तीन तीन योजन ऊंचे हैं अन्य आचार्योंके मतमें मंगल शनिश्चर प्रत्येक गम चार चार योजन ऊंचे हैं और नक्षत्र, बुध (इव) तीन तीन योजन ऊपर हैं॥ श्वेताम्बर आम्नायके समाधान में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्री सिद्धसेनसूरि रचित) में ऐसा आशय दिया है कि समान भूमिभागसे आठसो (८००) योजनपर सूर्य है, सूर्यसे अस्सी (८०) योजनपर चन्द्रमा है और चन्द्रमासे बीस (२०) योजनपर तारा हैं श्वेताम्बर आम्नायके समाधानतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ १०० पर "सम तल भूमि भागसे ऊपर सातसो (७००) योजन अधिक नब्बे (९०) योजन, प्रथम ज्योतिष्क विमानका प्रस्तार है

योजनान्युत्पत्य शुक्रा । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य बृहस्पतयः । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्यागारका । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य शनैश्चराश्चरान्ति । स एष ज्योतिर्गणगोचरो नभोऽवकाशो दशाधिकयोजनशतबहलस्तिर्यगसंख्यातद्वीपसमुद्रप्रमाणो घनोदधिपर्यन्त ॥ उक्तं च-णउदुत्तरसत्तसया–

योजनानि ॥ उत्पत्य • शुक्राः ॥ ततः • त्रीणि ॥ =योजन ऊंचे शुक्र हैं। वहां से तीन

योजनानि ॥ उत्पत्य • बृहस्पतयः ॥ ततः • त्रीणि ॥ =योजन ऊंचे बृहस्पति हैं। वहां से तीन

योजनानि ॥ उत्पत्य • अंगारकाः ॥ ततः • त्रीणि ॥ =योजन ऊपर मंगल हैं। वहां से तीन

योजनानि ॥ उत्पत्य • शनैश्चराः ॥ चरन्ति । =योजन ऊपर शनैश्चर भ्रमण करते हैं।

सः ॥ एषः ॥ ज्योतिर्गण-गोचरः ॥ नभस् अवकाश* ॥ =सो यह ज्योतिष्क मंडल (=गण) के विषयरूप (=गोचर) आकाशका स्थानपेना (अवकाश)

दश-अधिक-योजन-शत-बहलः ॥ =दश ऊपर सो योजन मोटा (=बहल) है अर्थात् इस समतल भूमिसे अर्थात् चित्रा पृथिवीसे सातसोनब्बे योजनके ऊपर नौसो योजन पर्यन्त एकसौदश योजन मोटा ज्योतिषी देवोंका पटल है

तिर्यग् • =और तिर्यग् विस्तार अर्थात् तिरछा या दायें बायें या इधर उधर फैलाव

असंख्यात-द्वीप-समुद्र-प्रमाण ॥ घनोदधिपर्यन्तः ॥ =असंख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण (लम्बा चौड़ा) घनोदधि वातवलय पर्यन्त है अर्थात् घनोदधिवातवलय (जो घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय जो तनुवातवलयके आधार है तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश अपने ही आधार है) गीली पवनका है उसके भीतर इनका तिर्यग् विस्तार नहीं है परन्तु जहां यह घनोदधिवातवलय आरम्भ हुआ है वहां इन ज्योतिष्क देवोंके विस्तारका अन्त है (घनोदधि पर्यन्त वाक्य का आशय और भावार्थ मेरी समझमें ऐसाही आया है सो स्पष्ट करदिया, शेष पाठकगण निर्णय करें)

उक्तम् ॥ च • णउदु-उत्तर-सत्तसया(नवति उत्तर-सप्तशतानि ॥) =कहा गया भी है कि नब्बे ऊपर सातसौ योजन अर्थात् सातसौ नब्बे योजन

* यह गाथा जिस स्थानसे कीलित है उसके पाठकोंको आर्यामें 'योजन' शब्द का जो प्रकरणवश इस गाथामें नहीं है अनुवर्तन उठा लेना चाहिये।

तिर्यग् असंख्यात द्वीप-समुद्रप्रमाणः घनोदधिपर्यंत	=(और) तिरछा विस्तार असंख्याते द्वीप समुद्र प्रमाण घनोदधि वातवलय तक है।
उक्ते च—सप्तदुत्तरसप्तशया (भवति उत्तर-सप्तशतानि)	=कहा जाता भी है कि नव्वे ऊपर सातसौ (योजन) अर्थात् सातसौ नव्वे योजन
दस-सीदि-चदु तियं च दुगचदुक्कं दश अशीति-चतुःत्रिक-च द्विक चतुष्कम्	=दशयोजन, अस्सीयोजन, चारचार तीनयोजन, और (=च) दोबार चार योजन अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन और चारयोजन चारयोजन (चित्रा भूमिके समतलसे उत्तरोत्तर-क्रमसे)
तारा-रवि-ससि-रिक्खा (तारा-रवि शशि-ऋक्षाः)	=तारे, सूर्य, चन्द्रमे, नक्षत्र
बुह-भग्गव-गुरु-अंगिरा-सणी बुध-भार्गव-गुरु-अंगारका-शनय	=बुध शुक्र-बृहस्पति-मंगल शनिश्चर (देव) (विद्यमान) हैं

यह आर्या छंदके सर्वार्थसिद्धि पुस्तकमें (और एक हस्त लिखित प्रतिमें भी) और राजवार्तिक की दो मुद्रित प्रतियोंमें, पन्नालाल दुनीकी हस्तलिखित प्रतिमें तथा पन्नालाल न्यायदिवाकर हस्तलिखित और अनुवादित एक प्रतिमें भी प्रथम, तृतीय और चतुर्थ पाद सर्वथा एक ही है केवल द्वितीय पादके अंत भागके पाठमें सर्वार्थसिद्धिका पाठ "चदुपुग तियचदुक्कं" (अर्थ दोबार तीन चारचार) के स्थानमें तत्त्वार्थराजवार्तिक में "चदु तियं" व "दुग चदुक्क" पाया जाता है इसीसे अर्थमें भेद है जिसको हम ऊपर लिख चुके हैं और दोनों पाठोंमें जो अन्तर है उस तृतीय पादका भी अर्थ दोनों मतानुसार ऊपर लिख चुके हैं विद्यानंदि स्वामीने 'मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके' ॥१३॥ इससूत्रके नीचे अकलंक स्वामी से सहमत होते हुये निम्न श्लोक दिये हैं :—

योजनानां शतान्यष्टौ (=शतानि अष्टौ) हीनानि दश योजनैः। उत्पत्य तारकास्तावच्चरंत्यध (तारकाः तावत् चरंति अधयत्) इति श्रुतिः =आठसौ योजनमेंसे दशयोजन कमि यानि सातसौ नव्वे योजन तो (चित्रा भूमिके समतलसे) ऊपर (=उत्पत्य) तारे (सब ज्योतिष्कोंसे) नीचे विचरते हैं ऐसा शास्त्र है॥ ततः सूर्या दशोत्पत्य (दश-उत्पत्य) योजनानि महाप्रभाः। ततश्चन्द्रमसो शीति (ततः चन्द्रमसोऽशीति) मानि भी च तत्त्वयः (ततः त्रय) ॥२॥ इन (ताराओं)से दशयोजन ऊपर महाप्रभावान सूर्य भ्रमते हैं। इन (सूर्योंसे) अस्सीयोजन (ऊपर) चन्द्रमे हैं। इन तीनोंसे (ऊपर) तीन (त्रीणि) योजन नक्षत्र हैं ॥३॥ त्रीणि त्रीणि बुधाः शुक्रा गुरवश्चोपरि (च्युरवः च उपरि) क्रमात्। चत्वार्यंगारकास्तद्वच्चत्वारि (=चत्वारि-अंगारकः तद्वत् चत्वारि) च शनैश्चराः ॥४॥ तीन तीन (योजन) बुध शुक्र बृहस्पति क्रमसे (एक दूसरेके) ऊपर हैं। वैसे ही (=तद्वत) चारयोजन ऊपर मंगल है और (=च) चारयोजन ऊपर शनीश्चर है ॥५॥ भाषाके टीकाकार पं० सदासुख जी और पं० जयचंद राय जी ने अकलंकदेव स्वामी और विद्यानन्दि स्वामीके मतानुसार अर्थ प्रकाशिका और सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें वर्णन किया है परन्तु कविवर धानतराय जीने चरचा शतकमें (संवत् १७८०) पूज्यपाद स्वामीके मतानुसार ऐसा छप्पय बनाया है कि "सात सतक अरु नव्वे तासपर तारे राजैं। दश ऊपर दशभान असीपर चन्द्र विराजैं। चार नक्षत्र बुधचार तीनपर शुक्र बतायो। तीन गुरु कुज तीन तीन पर शनि (=शनिश्चर) ठहरायो

उसके दश योजन ऊपर भाग या सूर्य विमानका प्रस्तार या पटल है। उसके ऊपर अस्सी योजन चन्द्रमाके विमानका प्रस्तार है। तिस (चन्द्र विमान) के ऊपर बीस योजन तारा ग्रहोंके विमानका विस्तार है। इस प्रकार ज्योतिष्कलोक एकसौ दश योजन मोटा है। ऐसे भाष्यानुसारिणी तत्वार्थदीपिका इसी सूत्रपर पृष्ठ १७४ उसमें उपयुक्त भाष्यका शब्दशः अनुवाद किया है। संस्कृतभाष्य विस्तारभयसे नहीं लिखा है। इससे स्पष्ट है कि उनके यहां भी या भाष्योंमें विशेषरूपसे नहीं दर्शाया है कि जिससे हमको निश्चय करनेमें सहायता मिले। यह बातको आचार्योंके मतमें पढ़कर बहुत अचम्भित और विस्मय हुआ कि उसी एक गाथासे पूज्यपाद स्वामीने अपना मत पोषण किया है और उसी गाथा उससे कुछ एक शब्दको इधरसे उधर अकलंक स्वामीने अपना मत पोषण किया है। अब हम उक्त तीनों आचार्योंका मत शब्दशः लिखते हैं। पूज्यपाद स्वामीका मत शब्दशः हम पृष्ठ ११, १२ ११ में लिख चुके हैं विस्तारभयसे दुहरानेकी आवश्यकता नहीं।

(१) अकलंक स्वामीका मत ऐसे है कि—

अस्मात् समात् भूमिभागात् ऊर्ध्वं सप्तयोजनशतानि	= इस समतल (चित्रा पृथिवीके) भूमिभागसे ऊपर सातसौ योजन (और)
नवत्युत्तराणि उत्प्लुत्य	= नव्वे सहित ऊंचाईपर (= उत्प्लुत्य) अर्थात् सातसौ नव्वे योजनकी ऊंचाईपर
सर्वे ज्योतिषां अधोभाविन्यः तारकाः चरन्ति	= समस्त ज्योतिषियोंमें नीचे रहने वाले (= अधोभाविन्य) तारे भ्रमण करते हैं।
ततो दशयोजनानि उत्प्लुत्य सूर्याः चरन्ति	= उन (तारों) से दशयोजन ऊंचाई पर (= उत्प्लुत्य) सूर्य भ्रमण करते हैं।
ततः अशीतिं योजनानि उत्प्लुत्य चन्द्रमसः भ्रमंति	= उन (सूर्यों) से अस्सी योजन ऊंचाईपर या उछलकर चन्द्रमा भ्रमण करते हैं।
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य नक्षत्राणि	= उन (चन्द्रमाओं) से तीन योजन ऊंचाईपर नक्षत्र (भ्रमण करते हैं)
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य बुधाः	= उन (नक्षत्रों) से तीन योजन ऊंचाईपर बुध (देव भ्रमण करते) हैं
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य शुक्राः	= उन (बुधदेवों) से तीन योजन ऊपर शुक्र (देव भ्रमण करते) हैं
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य बृहस्पतयः	= उन शुक्र (देवोंसे) तीन योजन ऊपर बृहस्पति (देव) हैं
ततः चत्वारि योजनानि उत्प्लुत्य अंगारकाः	= उन बृहस्पति (देवों) से चार योजन ऊंचे मंगल (= अंगारका) भ्रमण करते) हैं
ततः चत्वारि योजनानि उत्क्रम्य शनैश्चराः चरन्ति	= उन (मंगल देवों)से चार योजन ऊंचे (= उत्क्रम्य) शनिश्चर (भ्रमण करते) हैं
सः एषः ज्योतिर्गणगोचर नभ अवकाशः दशाधिक—	= सो यह ज्योतिषियोंका समूहके गोचर आकाशका अवकाश या आकाशदेश दशाऊपर
योजनशतबहुलः	= सौ योजन मोटा है (= बहुलः = बहुलः) अर्थात् एक सौ दश योजन गगनमें फैले हुये परमाणियें

ज्योतिष्कविमानाना गतिहेत्वभावात्तद्वृत्त्यभाव इति चेन्न,असिद्धत्वात् ॥ गतिरताभियोग्यदेवप्रेरितगतिपरिणामात्कर्मविपाकस्य वैचित्र्यात्तेषा हि गतिमुखेनैव कर्म विपच्यत इति ॥ एकादशभिर्योजनशतैरेकविंशैर्मेरुमप्राप्य ज्योतिष्का प्रदक्षिणाश्चरन्ति॥गतिमज्ज्योतिरसम्बन्धेन व्यवहारकालप्रतिपत्त्यर्थमाह

॥ तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

ज्योतिष्क विमानानाम्॥ गति हेतु अभावात्॥	=(प्रश्न) ज्योतिषी देवोंके विमानोंके गमनका कारण न होनेसे
तद्-वृत्ति-अभावः॥ इति॰चेत्॰न॰	=उस(गति)का प्रवर्तन नहीं(=अभाव)है। ऐसा संदेह होना चाहिये(उत्तर)(शंका) नहीं (क्योंकि यह कहना कि ज्योतिषीदेवोंके विमान स्थिर हैं इससे गमन नहीं करते हैं)
असिद्धत्वात्॥ गति-रत आभियोग्य-	=असिद्ध होता है। क्योंकि गमन विषैं लीन ऐसे आभियोग्य जातिके
देव-प्रेरित-गति-परिणामात्॥	=देवोंकरि किया (=प्रेरित) गमन परिणाम है। अर्थात् गतिरूप अवस्थामें परिवर्तन अथवा पलटाव है ॥
कर्म-विपाकस्य॥ वैचित्र्यात्॥ तेषाम्॥ हि॰	=सो कर्मकी उदयकी विलक्षणतासे तिन (आभियोग्य जातिके देवों) के ही
गति मुखेन॥ एव॰कर्म॥ विपच्यते॥ इति॰	=गमन रूप प्रधानतासे ही कर्म पकाया जाता है अर्थात् उदय होता है।
एकादशभिः॥ योजन शतैः॥ एकविंशैः॥ मेरुम्॥ अप्राप्य	=ग्यारह सौ इक्कीस योजन मेरु को छोड़कर (उरै)
ज्योतिष्काः॥ प्रदक्षिणाः॥ चरन्ति। गतिमत्-ज्योतिस्	=ज्योतिषी देव प्रदक्षिणा करते हैं। गमन करने वाले अथवा गतिमान्ज्योतिषीयोंके
सम्बन्धेन॥ व्यवहार-काल-प्रतिपत्ति अर्थम्॥ आह।	=सम्बन्धसे व्यवहार कालके जाननेके लिये (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि
[1]सूत्रम्—	तत्कृत कालविभाग ॥ १४ ॥
सूत्रार्थः—तत्कृतः॥(=तत्-कृत)काल विभागः	=तिन गतिमान् ज्योतिषियों से (=तत्) कियागया काल या समयका विभाग है अर्थात् गमन करतेहुये सूर्य चन्द्रमादिक द्वारा व्यवहार कालके भाग जैसे समय, आवली, पल, घड़ी, पहर, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग,इत्यादि सूचित कियेजाते हैं

(१) समाप्ततत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा सिद्धसेन सूरिरचित भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकामें तथा हमारे यहां सर्वत्र इस सूत्रका एक पाठ और अर्थ है।

॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥

मेरोः प्रदक्षिणाः मेरुप्रदक्षिणाः। मेरुप्रदक्षिणा इति वचनं गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थं विपरीतगतिर्मा विज्ञायीति ॥ नित्यगतय इति विशेषणमनुपरतक्रियाप्रतिपादनार्थम्। नृलोकग्रहणं विषयार्थम्। अर्धतृतीयेषु द्वीपेषु द्वयोश्च समुद्रयोर्ज्योतिष्का नित्यगतयो नान्यत्रेति ॥

सूत्रम्— मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ =(ज्योतिष्काः) मेरुप्रदक्षिणाः नित्यगतयः नृलोके ॥१३

सूत्रार्थ— ज्योतिष्काः ॥	=(ये पांच प्रकारके) ज्योतिषीदेव
मेरु-प्रदक्षिणाः ॥	=सुमेरुकी प्रदक्षिणा देते हुये अथवा मंडलाकार फिरते हुये
नृ-लोके ॥ नित्य-गतयः ॥	=मनुष्य लोकमें अर्थात् अढाई द्वीप और दो समुद्रोंमें निरन्तर गमन करनेवाले हैं
टीकानुवाद— मेरोः ॥ प्रदक्षिणा ॥ मेरु-प्रदक्षिणा ॥	=सुमेरुके भेंटआकार फिरना सो मेरुप्रदक्षिणा है।
मेरु-प्रदक्षिणा ॥ इति ● वचनं ॥ गति-विशेष-	=मेरुप्रदक्षिणा ऐसा वाक्य गमनविशेष
प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ विपरीतगतिः ॥ मा ● विज्ञायि-इति	=जाननेके लिये है अन्य प्रकार गमन न जाना अर्थात् पूर्वोक्त ज्योतिषी देवोंका गमन सुमेरु पर्वतके मंडलाकार ही जानो भिन्न प्रकारसे न मानना
नित्य-गतयः ॥ इति ● विशेषणं ॥ अनु-उपरत-	=(सूत्रमें) 'नित्यगतय' ऐसा गुणवाचक शब्द निरन्तर अथवा लगातार
क्रिया-प्रतिपादन-अर्थम् ॥ नृ-लोक-	=(गमनरूप) क्रियाके जनानेके लिये है। मनुष्य लोकका
ग्रहणं ॥ विषय-अर्थम् ॥	=ग्रहण देश (=विषय) के लिये है। अर्थात् ज्योतिषी देवोंके गमनकी मर्यादा अथवा सीमाके लिये है।
अर्ध-तृतीयेषु । द्वीपेषु ॥ द्वयोः च समुद्रयोः ॥	=अढाई (=अर्धतृतीयेषु) द्वीपमें और (=च) दो समुद्रोंमें
ज्योतिष्काः ॥ नित्यगतयः ॥ न-अन्यत्र ● इति ●	=ज्योतिषीदेव नित्यगमन (करने) वाले हैं न दूसरे स्थानमें।

● श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगम सूत्रका पाठ और हमारे यहाँ का पाठ और अर्थ एक है परन्तु उनके यहाँके आम्नायानुसारिणी तत्त्वार्थटीका हस्तलिखितमें (श्री सिद्धसेनगणि रचित) में 'मेरु प्रदक्षिणा नित्यगतयः' ऐसा पाठ है ॥

गति क्रिया रहित केवल ज्योतिषियोंको परिवर्तन रहित स्थिर माना जायगा। इसलिये कालके निश्चयमें स्थितिशील ज्योतिषियोंसे कालका निर्णय नहीं हो सकता। उन्हींसे कालका निर्णय होता है राजवार्तिक गतिमान ज्योतिषी ही असाधारण कारण हैं। पं० मक्खनलाल न्यायालंकारद्वारा संशोधित पृष्ठ१०२॥ अनुवादित पं० गजाधरलाल शास्त्री

अर्थ—सूत्रके विषैं तत् शब्दका ग्रहण है सो गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है" ॥ अथ टीकाका—मतिरूप परिणये जे ज्योतिषी देव गति विशिष्ट ज्योतिषीनिके

ग्रहण के अर्थ सूत्र के विषैं तत् शब्द कह्या है ॥

तहां यह व्यवहारकाल है सो केवल गतिही करि तथा ज्योतिषीनिकरि नाहीं जान्या जावै है ॥ जातैं गमनतो इनका काहू कूं दीखे नाहीं और गमन न होय तो ज्योतिषीनिका परिवर्तनका समान होय तो ये विरुद्ध रहैं ॥ ऐसे गमनकी अनुपलब्धितैं तथा ज्योतिषीनिके अपरिवर्तनतैं व्यवहार काल नहीं जाना जाय है ॥

तातैं निश्चयकरि (=हि) ज्योतिषिनिके परिवर्तनतैं व्यवहारकाल जाना जाय है" पं० पन्ना लाल न्याय दिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थ रत्नमाला पृष्ठ ६३२ "गतिमान ज्योतिषीनिका किया काल विभागकूं जनावने के अर्थ तत् ऐसोशब्द कहिये है। अर निश्चयकरि केवल गति करि भी काल नहीं जानिये है अर केवल ज्योतिषीनिकरि भी काल नहीं जानिये है क्योंकि अनुपलब्धितैं कि प्रत्यक्ष नहीं दीखनेतैं। अर अपरिवर्तनतैं कालकी सत्ता नहीं जात होय है अर्थात् काल प्रत्यक्ष भी नहीं दीखे है अर कालका पलटना भी नहीं दीखे है। यातैं ज्योतिषीनिका परिवर्तन करिही कालका जानपना है" ॥ पं०पन्नालाल जी पूनीवाले अनुवादित राजवार्तिक पृष्ठ २१ ॥

मैंने पं० पन्नालालजी पूनीवाले के साथ सहमत होकर ऊपर अनुवाद किया है। मुझको लगभग दशवर्ष प्रथम भी संदेह हुआ था कि अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च" वाक्यका अनुवाद ठीक नहीं है उस समय मैंने उसे छोड़ दिया था अब इन्द्रप्रस्थमें नाना प्रकार के साधन प्राप्त होने पर लिखा है। कारण यह है कि ज्योतिषियों का गमन अनुपलब्ध नहीं है क्योंकि हम सूर्य उनका गमन प्रत्यक्ष आंखों से देखते हैं निस्संदेह काल प्रत्यक्ष नहीं दीखता है और कालका पलटना भी नहीं दीखता है। स्मरण रहे कि जितने भी ज्योतिषीदेव थिर हैं उनका गमन नहीं होता अतः नहीं देखा जासकता है।

तद्ग्रहणं गतिमज्ज्योति प्रतिनिर्देशार्थम्। न केवलया गत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भि काल परिच्छिद्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च ॥

वृत्त्यनुवादः—तद्-ग्रहणम्॥ गतिमत्-ज्योतिस् प्रति॰निर्देश-अर्थम्॥ न॰केवलया॥ गत्या॥	=(सूत्रमें) तत् शब्दका आदान गमन सहित ज्योतिषी देवों =के (=प्रति) कथनके लिये है न अकेले गमनसे (और)
न॰अपि॰केवलैः॥ ज्योतिर्भिः॥ कालः॥ परिच्छिद्यते॥	=न केवल ज्योतिषी देवों करि ही (=अपि) (यह व्यवहार) काल जानाजाता है (गमन करतेहुये ज्योतिषी देवोंकरि ही उक्त व्यवहारकाल समय आवलीआदि ज्ञात हैं)
अनुपलब्धेः॥ च॰ अपरिवर्तनात्॥	=क्योंकि (व्यवहार काल) प्रत्यक्ष नेत्रों द्वारा नहीं देखाजासक्ता है और (=च) =न (उस व्यवहार काल का) पलटना (भी दीखे है)

(१) अनुपलब्धेः और अपरिवर्तनात् ये दो शब्द व्यवहार काल से सम्बन्ध रखते हैं अथवा ज्योतिष्क देवों से अर्थात् व्यवहार काल प्रत्यक्ष नेत्रों द्वारा और उस व्यवहारकालका परिवर्तन और पलटन नहीं दीखते हैं अथवा ज्योतिषी देवोंकी गति, गमन नहीं देखा जासका है और वे परिवर्तन रहितहैं अर्थात् अवस्थित हैं। इस 'तत' शब्दके सम्बन्धमें इसको श्लोकवार्तिकमें अर्थप्रकाशिकामें पं॰सदासुखजीकी लघुटीकामें श्वेताम्बरसम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उसकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें तथा दो चार अन्य आचार्योंकी टीका में कुछ भी नहीं मिलता है। तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें ठीक उसी आशय का लेख है जो सर्वार्थसिद्धि में है जैसे

संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका पाठ

तद् ग्रहणं गतिमज्ज्योति प्रतिनिर्देशार्थम्

नकेवलया गत्यानापिकेवलैर्ज्योतिर्भिःकालःपरिच्छिद्यते,अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च॥

"इहां ततशब्दका ग्रहण गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है। सो यह व्यवहार काल केवल गतिही करि तथा केवल ज्योतिषीहीनिकरि नाहीं जान्या जायहै जातैं गमनतो इनिका काहू कूं दीखै नाहीं। बहुरि गमन न होयतौ ये तिरही रहैं। तातैं दोनौं सम्बन्ध लैना"प॰ जयचन्दजी कृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ १३७ हस्तलिखित पृष्ठ १५७ वा १५८

तत्त्वार्थ राजवार्तिकालंकार का पाठ

तद्वचन गतिमज्ज्योति प्रति निर्देशार्थम् ॥१॥ गतिमतां ज्योतिषां प्रतिनिर्देशार्थं तदित्युच्यते नहि केवलगत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भिः काल परिच्छिद्यते अनुपलब्धेर परिवर्तनाच्च ज्योति परिवर्तनसम्बन्धो हि कालपरिच्छेदः।

"सूत्रमें जो तत् शब्दका ग्रहण किया गया है वह गतिमान ज्योतिषियोंके ग्रहणार्थ है ॥१॥ केवल गति क्रियाके आधीन कालका निर्णय नहीं हो सकता क्योंकि गतिकी अनुपलब्धि है नेत्र से नहीं दीखपड़ती। केवल ज्योतिषियों सेभी काल का निश्चय नहीं होसका क्योंकि

गति क्रिया रहित केवल ज्योतिषियोंको परिवर्तन रहित स्थिर माना जायगा।

स्थितिशील ज्योतिषियोंसे कालका निर्णय नहीं हो सकता। इसलिये कालके निश्चयमें गतिमान ज्योतिषी ही असाधारण कारण हैं। उन्हींसे कालका निर्णय होता है राजवार्तिक अनुवादित पं० गजाधरलाल शास्त्री पं० मक्खनलाल न्यायालंकारद्वारा संसोधित पृष्ठ१०३५॥

अर्थ—सूत्रके विषैं तत् शब्दका ग्रहण है सो गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है"

अथ टीकाका—गतिरूप परिणये जे ज्योतिषी ऐसे गति विशिष्ट ज्योतिषीनिके

ग्रहण के अर्थ सूत्र के विषैं तत् शब्द कहा है॥

तहां जो व्यवहारकाल है सो केवल गतिही करि तथा ज्योतिषीनिकरि नाहीं जान्या जायहै॥ जातैं गमनतो इनका काहू कू दीखै नाहीं और गमन न होय तो ज्योतिषीनिका परिवर्तनका अभाव होय तो न फिरही रहै॥ ऐसे गमनकी अनुपलब्धितैं तथा ज्योतिषीनिके अपरिवर्तनतैं व्यवहार काल नहीं जाना जाय है॥

तातैं निश्चयकरि (=हि) ज्योतिषिनिके परिवर्तनतैं व्यवहारकाल जाना जाय है पं० पन्ना लाल न्याय दिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थ रत्नमाला पृष्ठ ८३३

"गतिमान ज्योतिषीनिका क्रिया काल विभागकूं जनावने के अर्थ तत् ऐसोशब्द कहिये है। अर निश्चयकरि केवल गति करि भी काल नहीं जानिये है अर केवल ज्योतिषीनिकरि भी काल नहीं जानिये है क्योंकि अनुपलब्धितैं कि प्रत्यक्ष नहीं दीखनेतें। अर अपरिवर्तनतैं कालकी सत्ता नहीं ज्ञात होय है अर्थात् काल प्रत्यक्ष भी नहीं दीखे है अर कालका पलटना भी नहीं दीखे है। यातैं ज्योतिषीनिका परिवर्तन करिही कालका ज्ञापन है" ॥ पं०पन्नालाल जी दूनीवाले अनुवादित राजवार्तिक पृष्ठ २१॥

मैंने पं० पन्नालालजी दूनीवाले के साथ सहमत होकर ऊपर अनुवाद किया है॥ मुझको लगभग तीन वर्ष प्रथम भी संदेह हुआ था कि "अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च" वाक्यका अनुवाद ठीक नहीं है उस समय मैंने उसे छोड़ दिया था अब इन्द्रप्रस्थमें नाना प्रकार के साधन प्राप्त होने पर लिखा है॥ कारण यह है कि ज्योतिषियों का गमन अनुपलब्ध नहीं है क्योंकि हम सर्व उनका गमन प्रत्यक्ष आंखों से देखते हैं जिससे काल प्रत्यक्ष नहीं दीखता है और कालका पलटना भी नहीं दीखता है॥ स्मरण रहे कि जितने ही ज्योतिषीदेव थिर हैं उनका गमन नहीं होता अतः नहीं देखा जासकता है॥

कालो द्विविधो व्यावहारिको मुख्यश्च ॥ व्यावहारिक कालविभागस्तत्कृत समयावलिकादिः क्रियाविशेषपरिच्छिन्नोऽन्यस्यापरिच्छिन्नस्य परिच्छेदहेतु ॥ मुख्योऽन्यो वक्ष्यमाणलक्षण ॥ इतरत्र ज्योतिषामवस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

॥ बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥

बहिरित्युच्यते, कुतो बहि ? नृलोकात ॥ कथमवगम्यते ?

कालः द्वि विधः व्यावहारिक मुख्य च	=काल दो प्रकार है व्यवहार और निश्चय (=परमार्थकाल) अर्थात् कालके अणु ॥
व्यावहारिकः काल-विभाग तत्-कृत	=व्यवहार कालका विभाग तिन(गमन करते हुयेज्योतिषी देवों)स सूचितक्रियाहुआ
समय आवलिक आदिः क्रिया विशेष-परिच्छिन्नः	=समय, आवली आदिक क्रिया विशेषकरि जाना गया है।
अन्यस्य अपरिच्छिन्नस्य परिच्छेद-हेतु	=(सो) दूसरे बिना जाने हुयेक जनावनेका कारण है। अर्थात् उसव्यवहारकालके विभाग समय आवली घटिका, दिन, मास, वर्ष, इत्यादि दूसरे निश्चयकाल जो जाननेमें नहीं आसक्ता है। उसके सूचित करने वा जनावने का कारण है।
मुख्यः अन्यः वक्ष्यमाण-लक्षण ॥	=दूसरा परमार्थकालका कहेजानेवाला स्वरूप (अ०पांच २२,३९,४०सूत्रोंमें) है
इतरत्र ज्योतिषाम् अवस्थान प्रतिपादन अर्थम् आह	=यहां (मनुष्यलोक)स भिन्न ज्योतिषी देवोंके अवस्थितहोनेके कथनको कहते हैं कि
[1]सूत्रम्—बहिरवस्थिता ॥ १५ ॥	=([2]ज्योतिष्का [1]नृलोकात्)बहिर् अवस्थिता (भवन्ति)।१५।
सूत्रार्थ—ज्योतिष्का नृ-लोकात्	=ज्योतिषी देव मनुष्य लोक से अर्थात् जम्बूद्वीप धातकी खंड, पुष्करार्ध और लवणोदधि और कालोदधि दो समुद्रोंसे
बहिर् अवस्थिता भवन्ति	=बाहिर गमन रहित हैं (जहां के तहां स्थिर रहते हैं)
वृत्त्यनुवाद—बहिर् इति उच्यते। कुतः बहिः	=बाहिर ऐसा (सूत्रमें) कहा गया है। (प्रश्न) कहां से बाहिर
नृ-लोकात् कथम् अवगम्यते	=(उत्तर) मनुष्यलोकस (बाहिर) (प्रश्न) (मनुष्यलोकसे बाहिर यह) कैसे जानागया

(१) श्वेताम्बराम्नायके अधिगमसूत्र में तथा भगवत्प्रभाचार्यकृत तत्त्वार्थबोधिनी टीकामें और हमारे यहां सबमें इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ एक है ॥
(२) (१) 'ज्योतिष्का' बारहवां और नृलोकात् तेरहवां सूत्रसमसे लियेगयेहैं। सबकीसन्धिकरनेसे ज्योतिष्का नृलोकाद्बहिरवस्थिता "ऐसासूत्रहोगा ॥

अर्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवति ॥ ननु च नृलोके नित्यगतिवचनादन्यत्रावस्थानं ज्योतिष्काणां सिद्धं । अतो वहिरवस्थिता इति वचनमनर्थकमिति । तन्न । किं कारणम् ? नृलोकादन्यत्र वहिर्ज्योतिषामस्तित्वमवस्थानं चासिद्धम् । अतस्तदुभयसिध्यर्थं वहिरवस्थिता इत्युच्यते ॥ विपरीतगतिनिवृत्त्यर्थं कादाचित्कगतिनिवृत्त्यर्थं च सूत्रमारब्धम् ॥

तुरीयस्य निकायस्य सामान्यसञ्ज्ञासङ्कीर्तनार्थमाह—

अर्थवशात् विभक्ति-परिणामः भवति ।	=(उत्तर) अभिप्रायके वश वा सामर्थ्यसे विभक्तिका पलटाउ, वा परिणमन होजाता है अर्थात् १३ वां सूत्रमें कहा है कि "नित्यगतयो नृलोके" (=नरलोकमें नित्यगमनकरनेवाले हैं) इस वाक्यसे स्वाभाविक प्रश्न आता है कि नरलोकमें तो नित्यगमनकरनेवाले हैं। फिर नरलोकसे बाहिर क्या है यहां पर सप्तमी विभक्ति "नरलोकमें" अभिप्रायवश पंचमी विभक्ति "नरलोकसे" में परिणमन होजाती है अथवा परिवर्तन करली जाती है
ननु च नृलोके नित्य-गति-वचनात् अन्यत्र	=यहां प्रश्न मनुष्यलोकमें नित्यगमन(पसे) वाक्यसे यहां(मनुष्यलोक)से अन्यस्थानमें
अवस्थानम् ज्योतिष्काणाम् सिद्धम्	=ज्योतिषी देवोंका अवस्थान सिद्ध वा निष्पन्न है।
अत वहिर् अवस्थिताः इति वचनम्	=इस लिये "बहिर् अवस्थिताः" ऐसा वचन अर्थात् यह पन्द्रहवां समस्त सूत्रही
अन् अर्थकम् इति । तत् न	=निष्प्रयोजन है (उत्तर) सो (=तद्) नहीं है
किम् कारणम् नृ लोकात् अन्यत्र	=क्या कारण कि मनुष्य लोकसे अन्यत्र
वहिर ज्योतिषाम् अस्तित्वम् अवस्थानम् च असिद्धम्	=बाहिर ज्योतिषी देवोंकी विद्यमानता और गमनका अभाव (१५सूत्रसे सिद्ध है)
अतः तद् उभय सिद्धि अर्थम्	=इसलिये उन(=तद्) दोनों (अस्तित्व सत्ता और अवस्थान स्थिरता)प्राप्तिकेलिये
"वहिरवस्थिताः" इति उच्यते ॥ विपरीत गति	= 'बहिरवस्थिता' ऐसा(सूत्र)कहागया है। उलटागमन अर्थात् अप्रदक्षिणारूपगतिके
निवृत्ति अर्थम् कादाचित्क गति-निवृत्ति अर्थम् च	=निषेधके लिये और (=च) कभी कभी होने वाले गमन के निराकरणकेलिये
सूत्रम् आरब्धम् ॥ तुरीयस्य निकायस्य	=(यह पन्द्रहवां) सूत्र प्रारम्भ कियागया है ॥ (देवोंकी) चौथे समुदायकी
सामान्य-सञ्ज्ञा-सङ्कीर्तन अर्थम् आह ।	=सामान्य संज्ञा कहनेके लिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

॥ वैमानिका ॥ १६ ॥

वैमानिकग्रहणमधिकारार्थम् । इत उत्तरं ये वक्ष्यन्ते तेषां वैमानिकसम्प्रत्ययो यथा स्यादिति अधिकार क्रियते॥ विशेषेणात्मस्थान् सुकृतिनो मानयन्तीति विमानानि । विमानेषु भवा वैमानिका ॥ तानि विमानानि त्रिविधानि । इन्द्रकश्रेणिपुष्पप्रकीर्णकभेदेन॥ तत्र इन्द्रकविमानानि इन्द्रवन्मध्ये व्यवस्थितानि ।

[1]सूत्रम्—वैमानिका ॥ १६ ॥	=([2]चतुर्थ [3]देवनिकाय) वैमानिका (सामान्यसञ्ज्ञा भवति)
सूत्रार्थ—चतुर्थ देवनिकाय वैमानिका सामान्यसंज्ञा भवति	=चौथा देवोंका समुदाय वैमानिक ऐसी (उन देवों की) सामान्य संज्ञा है
वृत्त्यनुवाद—वैमानिक-ग्रहणम् अधिकार-अर्थम्	=वैमानिक शब्दका ग्रहण अधिकार या प्रकरण के लिये है
इतस् उत्तरम् वक्ष्यन्ते । तेषाम्	=यहांसे आगे जो कहे जांयगे तिनकी
वैमानिक-सम्प्रत्ययः [4]यथा स्यात्	=यथायोग्य वैमानिक संज्ञा जानना चाहिये वा समझना चाहिये (=सम्प्रत्यय स्यात्)
इति अधिकारः क्रियते ॥ विशेषेण आत्मस्थान्	=(यहां) ऐसा प्रकरण किया गया है॥ जिनमें रहनेवाले जीवोंको विशेषकरि
सुकृतिनः मानयन्ति इति विमानानि ॥	=पुण्यवंत (भव्यजीव) मानते हैं । ऐसे विमान हैं ॥
विमानेषु भवाः वैमानिकाः । तानि विमानानि	=विमानोंमें (उत्पन्न) होनेवाले वैमानिक हैं । वे विमान
त्रिविधानि इन्द्रक-श्रेणि-पुष्पप्रकीर्णक भेदेन	=तीन प्रकार इन्द्रक, श्रेणीबद्ध, और पुष्पप्रकीर्णक भेदसे हैं ।
तत्र इन्द्रक विमानानि इन्द्रवत् मध्ये व्यवस्थितानि	=वहां इन्द्रक विमान इन्द्रके समान बीचो बीचमें (=मध्ये) तिष्ठते हैं

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥ (२) इस वाक्यकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पहिले सूत्रसे कीगई है ।

(३) क्योंकि इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें देवोंके चार निकाय वा समुदाय कहे हैं और १०वां ११वां १२वांसूत्रमें भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंकी सामान्य और विशेषसंज्ञायें यथासंख्य कही हैं । तब केवल चौथासमुदाय अवशेष रहता है इसलिये चतुर्थशब्दका अध्याहार (=वह वाक्य जो स्पष्ट समझमें न आसके उसे किसी दूसरे शब्दको कल्पना करि स्पष्ट करदेना) इस सोलवां सूत्र में किया है ॥

(४) यहां 'यथा' शब्द यथायोग्यके अर्थ में लाया गया जान पड़ता है अर्थात् जिस जिस प्रकारके वैमानिक देव हैं जैसे कल्पोपपन्न उनमें भी सौधर्मादि जातिके देव और कल्पातीत वैमानिका इत्यादि हो तैसे तैसे यथायोग्य जानो ॥ यथायोग्य यथाचित यथाविधि विधिपूर्वक ये चारों समान अर्थ वाचक हैं । सरस्वती पुस्तिहस्तलिखित दो प्रतियोंसे मिलान किया तो यथा शब्द ही पाठ प्राप्त हुवा परन्तु राजवार्तिक मुद्रित तथा दो हस्त लिखित प्रतियों में "वैमानिक सम्प्रत्ययः कथं स्यादित्यधिकारः क्रियते" अर्थात् 'यथा' शब्दके स्थान में कथम् शब्द है ॥ "पन्नालाल दूनीवालेने "वैमानिकपणो की भले प्रकार प्रतीति कैसे होय याते अधिकाररूप सूत्र करिये हैं" ऐसा अनुवाद किया है ॥

तेषां चतसृषु दिक्षु आकाशप्रदेशश्रेणिवदवस्थानात् श्रेणिविमानानि । विदिक्षु प्रकीर्णपुष्पवदवस्थानात्पुष्पप्रकीर्णकानि ॥ तेषां वैमानिकानां भेदाववोधनार्थमाह—

॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

कल्पेषूपपन्नाः कल्पोपपन्नाः कल्पानतीताः कल्पातीताश्चेति द्विविधा वैमानिकाः ॥

तेषामवस्थानविशेषनिर्ज्ञापनार्थमाह—

तेषाम् चतसृषु दिक्षु	=तिन (इन्द्र विमानों) की चारों दिशाओंमें
आकाश प्रदेश-श्रेणिवत् अवस्थानात्	=आकाशके प्रदेशकी श्रेणीके सदृश तिष्ठनेसे
श्रेणि-विमानानि विदिक्षु प्रकीर्ण-पुष्पवत्	=श्रेणीबद्ध विमान हैं ॥ विदिशाओंमें बिखरे फूलोंके समान
अवस्थानात् पुष्पप्रकीर्णकानि	=स्थिति होनेसे वा तिष्ठनेसे पुष्प प्रकीर्णक हैं ।
तेषाम् वैमानिकानाम् भेद अवबोधन अर्थम् आह	=तिन वैमानिकदेवोंके भेद जाननेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
[1]सूत्रम्—कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥	=(वैमानिका) कल्पोपपन्ना कल्पातीता च (द्विविधाभवन्ति)
सूत्रार्थ –वैमानिकाः कल्प उपपन्नाः	=वैमानिक देव कल्प (अर्थात् स्वर्गों) में उत्पन्न होनेवाले
कल्प अतीताः च	=तथा =च) कल्पातीत अर्थात् स्वर्गोंसे ऊपर उत्पन्न होनेवाले भावार्थ स्वर्गों को उल्लंघकरि (ऊपर ऊपर) नवग्रैवेयक, नवअनुदिश, पांचअनुत्तरोंमें उपजनेवालेपनेसे
द्वि-विधाः भवन्ति	=दो प्रकार होते हैं
वृत्यनुवादः—कल्पेषु उपपन्नाः	=स्वर्गोंमें (=कल्पेषु) उपजने वाले हैं
कल्पोपपन्नाः कल्पान् अतीताः च	=(वे) कल्पोपपन्न हैं और (=च) स्वर्गोंको लांघने वाले (अर्थात् स्वर्गोंमें न उपजकरि उनके ऊपर नवग्रैवेयक नव अनुदिश, पांच अनुत्तर इन तेईस स्थानोंमें उत्पन्न होने वाले)
कल्प अतीताः इति द्वि-विधाः वैमानिकाः	=कल्पातीत हैं । ऐसे दो प्रकार वैमानिक देव हैं ।
तेषाम् अवस्थान-विशेष-निर्ज्ञापन अर्थम् आह	=तिनके निवासस्थानका विशेष जाननेके(=निर्ज्ञापन) लिये कहते हैं कि

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥

॥ वैमानिका ॥ १६ ॥

वैमानिकग्रहणमधिकारार्थम्। इत उत्तरं ये वक्ष्यन्ते तेषां वैमानिकसम्प्रत्ययो यथा स्यादिति अधिकारः क्रियते॥ विशेषेणात्मस्थान् सुकृतिनो मानयन्तीति विमानानि। विमानेषु भवा वैमानिकाः॥ तानि विमानानि त्रिविधानि। इन्द्रकश्रेणिपुष्पप्रकीर्णकभेदेन॥ तत्र इन्द्रकविमानानि इन्द्रवन्मध्ये व्यवस्थितानि।

[1]सूत्रम्—वैमानिका ॥ १६ ॥ =([2]चतुर्थ [3]देवनिकाय)वैमानिका (सामान्यसञ्ज्ञा भवति)

सूत्रार्थः—चतुर्थः देवनिकायः वैमानिकाः सामान्यसञ्ज्ञा भवति=चौथा देवोंका समुदाय वैमानिक ऐसी (उन देवों की) सामान्य संज्ञा है

पूर्यनुवादः—वैमानिक-ग्रहणम्॥ अधिकार अर्थम्॥ =वैमानिक शब्दका ग्रहण अधिकार वा प्रकरण के लिये है

इतः॥ उत्तरम्॥ वक्ष्यन्ते। तेषाम्॥ =यहांसे आगे जो कहे जांयगे तिनकी

वैमानिक-सम्प्रत्ययः॥ [4]यथा॥ स्यात् [=यथायोग्य वैमानिक संज्ञा जानना चाहिये वा समझना चाहिये(=सम्प्रत्यय स्यात्)

इति॥ अधिकारः॥ क्रियते [॥ विशेषेण॥ आत्मस्थान्॥ =(यहां) ऐसा प्रकरण किया गया है॥ जिनमें रहनेवाले जीवोंको विशेषकरि

सुकृतिनः॥ मानयन्ति॥ इति॥ विमानानि॥ =पुण्यवंत (भव्यजीव) मानते हैं। ऐसे विमान हैं॥

विमानेषु॥ भवाः॥ वैमानिकाः॥। तानि॥ विमानानि॥ =विमानोंमें (उत्पन्न) होनेवाले वैमानिक हैं। वे विमान

त्रिविधानि॥ इन्द्रक-श्रेणि-पुष्पप्रकीर्णक भेदेन॥ =तीन प्रकार इन्द्रक, श्रेणीबद्ध, और पुष्पप्रकीर्णक भेदसे हैं।

तत्र॥ इन्द्रक विमानानि॥ इन्द्रवत्॥ मध्ये॥ व्यवस्थितानि॥ =वहां इन्द्रक विमान इन्द्रके समान बीचा बीचमें (=मध्ये) तिष्ठते हैं

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है॥ (२) इस वाक्यकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पहिले सूत्रसे आती है।

(३) क्योंकि इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें देवोंके चार निकाय वा समुदाय कहे हैं और १०वां ११वां १२वां सूत्रोंमें भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंको सामान्य और विशेषसंज्ञामें यथासंख्य कही हैं। तब केवल चौथासमुदाय अवशेष रहता है इसलिये चतुर्थशब्दका अध्याहार(=वह वाक्य जो स्पष्ट समझमें न आसके उसे किसी दूसरे शब्दकी कल्पना करि स्पष्ट करदेना) इस सोलवां सूत्र में किया है॥

(४) यहां 'यथा' शब्द यथायोग्यके अर्थ में लाया गया जान पड़ता है अर्थात् जिस जिस प्रकारके वैमानिक देव हैं जैसे कल्पोपपन्न कल्पमें भी सौधर्मादि जातिके देव और कल्पातीत वैमानिक इत्यादि हो तैसे तैसे यथायोग्य जानो॥ यथायोग्य यथोचित यथाविधि विधिपूर्वक ये चारों समान अर्थ वाचक हैं॥ सरस्वती पुस्तकहस्तलिखित दो प्रतियोंसे मिलान किया तो यथा शब्द ही पाठ प्राप्त हुआ परन्तु राजवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखित प्रतियों में "वैमानिक सम्प्रत्ययः कथं स्यादित्यधिकार: क्रियते" अर्थात् यथा शब्दके स्थान में कथम् शब्द है॥ यथाकाल पूज्योंजीने "वैमानिकपणे की भले प्रकार प्रतीति कैसे होय याते अधिकाररूप सूत्र करिये हैं" ऐसा अनुवाद किया है॥

भावार्थ प्रथम युगल पहले सौधर्म दूसरे ईशान स्वर्गके जो मध्य छोकसे

() देवा इतिचेन्नाऽनिष्टत्वात् ॥१॥ यदि देवा उपर्युपरीत्यनेनाभिसम्बध्यन्ते। तत्, किं कारणं अनिष्टत्वात् देवानां हि उपर्युपरि अवस्थानमनिष्टम् ॥ =जो 'देवा उपरि उपरि' के साथ सम्बन्ध कियेजांय तो हो नहीं सकते, किस कारण कि आगमके विरुद्ध होने से अनिष्ट है अतः देवोंका ऊपर ऊपर अवस्थान नहीं माना जासका है ॥ तत्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ १५८

() विमानानि इति चेन्न श्रेणि प्रकीर्णकानां तिर्यगवस्थानात् ॥२॥ संस्कृतमर्थ। अथ विमानान्युपर्युपरीति कल्प्यते तदपिनोपपद्यते। श्रेणिप्रकीर्णकानां तिर्यगवस्थानात्। श्रेणिविमानानि पुष्प प्रकीर्णक विमानानि च मर्तान्द्रकं तिर्यगवस्थितानि इति इष्यन्ते ॥ राजवार्तिक पृष्ठ १५८=विमान ऊपर ऊपर हैं यदि (= अथ) ऐसो कल्पनाकी जाय सो अथ भी उत्पन्न नहीं होय है क्यों कि श्रेणीबद्ध विमानोंका अरु प्रकीर्णक विमानोंका तिर्यग् तिरछा अवस्थान है। (अर्थात्) श्रेणीबद्ध विमान, पुष्पप्रकीर्ण विमान और प्रतीन्द्रक विमान (ये) तिर्यग् अवस्थित हैं ऐसा आगममें इष्ट करते हैं

() कल्पा इति चेद्दोषः ॥३॥ संस्कृत अथ। यदि कल्पा न दोषो भवति यथा न दोष तथास्तु कल्पाहि उपर्युपरि स्थिता इति॥ राजवार्तिक १५८ =जो (ऊपर ऊपर) कल्प (स्वर्ग) अवस्थित (है) तब (कुछ) दोष नहीं है। जैसे दोष न होय तैसे ही ठीक है। निश्चयकरि (=हि) कल्प ऊपर ऊपर अवस्थित हैं भावार्थ यदि कहा जायगा कि कल्प ऊपर ऊपर अवस्थित हैं तब कुछ दोष नहीं। तथा जिस बातके मानने में किसी प्रकारका दोष नहीं वही बात मानना ठीक है। स्वर्गों का ऊपर ऊपर अवस्थान मानने में कोई दोष नहीं इसरीति से देव और विमानोंका ऊपर ऊपर अवस्थान बाधित होनेसे स्वर्गोंका ही ऊपर ऊपर अवस्थान सुनिश्चित है।

() कल्पातीतेषु किमभिसम्बध्यते ? विमानानि। तत्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १५८

(प्रश्न) कल्पातीतनिमें क्या सम्बन्ध किया जाय अर्थात् प्रश्न का सारांश यह है उपर्यु परि'में यदि हम कल्प कल्पा शब्दकी अनुवृत्ति लेवेंई तो यह अर्थ होता है कि स्वर्गों का कल्प ऊपर ऊपर है स्वर्गों से परे नवग्रैवेयक विमान, नव अनुदिश विमान, पांच अनुत्तर विमानों के अवस्थानके सम्बन्धमें कुछ न आया तो इनके अवस्थान जानने के लिये 'उपर्युपरि' वाक्य के साथ कौन शब्द अनुवर्तता है सो कहियेजिये ।

(उत्तर) "उपर्युपरि के साथ विमानानि (का सम्बन्ध करना चाहिये) इस सबका सारांश यही है कि जहां हमें कल्पोपपन्न देवोंका'अवस्थान जानना है वहां 'उपर्यु परि' के साथ कल्पा शब्द लगाना चाहिये कि स्वर्ग और उनके पटल ऊपर ऊपर हैं और जहां अहमिन्द्रों का अवस्थान विवक्षित है वहां 'उपर्युपरि' के साथ विमानों" इस शब्द को जोड़लो और कल्पातीत विमान ऊपर ऊपर हैं यह अर्थ समझलेना चाहिये ॥

॥ उपर्युपरि ॥ १८ ॥

(१)सूत्रम्–उपर्युपरि (उपर्युपरि) =(वैमानिका) उपर्युपरि (अवस्थितयः भवन्ति) ॥१८॥

सूत्रार्थ –वैमानिकाः उपरि उपरि अवस्थिताः भवन्ति =वैमानिक देवोंके निवासस्थान (एक दूसरेसे) ऊपर ऊपर =अवस्थित हैं या विद्यमान है अर्थात् कल्पोंके युगल तथा उनके पटल तथा नवग्रैवेयक नव अनुदिश और पांच अनुत्तर ये सब विमान क्रमसे ऊपर ऊपर अवस्थित हैं

(१) हमारे यहाँ 'उपर्युपरि' और कहीं कहीं 'उपर्युपरि' पाठ है अथोरहायां से या व्याकरणके सूत्रसे दूसरा पाठ भी ठीक है ॥ श्वेताम्बर आम्नाय सभाष्य में 'उपर्युपरि' पाठ है परन्तु भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका श्रीसिद्धसेन सूरिरचितमें 'उपर्युपरि च' ऐसा पाठ है अर्थ सर्वत्र एक है ॥

(२) इससूत्रमें अनुवृत्ति किसकिस वाक्यकी है इसमें चार मतभेद हैं (क) पूज्यपाद स्वामीके मतमें "कल्पा" शब्द अनुवर्तता है (सर्वार्थसिद्धिपृष्ठ २४३)

(ख) श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकों से अधिक हैं उसके अनुकूल "कल्पा" शब्द अनुवर्तता है। न तो 'देवा' न 'विमानानि' शब्द अनुवर्तते हैं। देखो भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका पृष्ठ ३३५

(ग) तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार 'कल्पाः' शब्द की अनुवृत्ति सोलह स्वर्ग तकके लिये और 'विमाना' शब्दकी कल्पोंसे (स्वर्गोंसे) ऊपरके लिये है अर्थात् कल्पा और विमाना दो शब्द अनुवर्तते हैं ॥ (घ) तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकके अनुसार "वैमानिकाः" शब्दकी अनुवृत्ति इससूत्रमें होना चाहिये कि "वैमानिकाः" ऐसा अधिकार सूत्र सोलहवां जब कह चुके हैं तब उसके अनुकूल किसी अन्य शब्द या वाक्य का अनुवर्तन नहीं होना चाहिये। श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८१ देखो ॥ यहां आशयके सम्बन्धमें जो 'व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्तिः नहि सन्देहादलक्षणम्' (=संदेहात्मक वाक्यका यथार्थ तात्पर्य उसकी व्याख्यासे निर्णय किया जाता है क्योंकि नियम लक्षण रहित नहीं होता है) व्याकरण के इस सिद्धान्तसे स्पष्ट होसका है ॥ सब आचार्यों के वाक्य अथवा वाक्योंके अनुवादका उल्लेख नीचे क्रमसे किया है ॥

() "उपर्युपरीत्युच्यन्ते" (सूत्रमें) ऊपर ऊपर एसे वर्णित हुए (प्रश्न) के ते ? व (ऊपर ऊपर वर्णित) कौन हैं ॥ (उत्तर) कल्पाः = कल्प हैं (सर्वार्थ०पृष्ठ २४३

() "कल्पा सम्बध्यन्ते। न देवा विमानानि वा यो यं निर्देशः करिष्यते" भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीका पृष्ठ ३३५ देखो ॥

=इस उपर्युपरि सूत्रमें कल्पाः शब्द मिलायाजाता है न कि 'देवा' या 'विमानानि' शब्द जो यह कथन किया गया है ॥ (ऊपरके वाक्य का यह शब्दशः अनुवाद है)

() "इह विचार्यते किमग्रादेयत्वेन कल्प्यमानाः देवा उत विमानानि आहोस्वित् कल्पा इति किं वा कामचारः"। तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ १५६

=यह विचार उत्पन्न होता है कि यहां (उपरि उपरि इस वचनसे) उपादेयपनाकरि (आदेयपनाकरि) अर्थात् ग्रहण करने योग्य कल्पना कियेगये (=कल्प्यमानाः) देव (ऊपर ऊपर) हैं या विमान (ऊपर ऊपर) हैं अथवा स्वर्ग (=कल्प) (ऊपर ऊपर) हैं अथवा वक्ताकी इच्छाका विषय स्वतन्त्र कोई पदार्थ है (=कामचारः) अर्थात् वक्ताकी इच्छानुसार कहीं देवोंका ग्रहण है कहीं विमानोंका या कहीं स्वर्गों का ग्रहण है ॥

किमर्थमिदमुच्यते?तिर्यगवस्थितिप्रतिषेधार्थमुच्यते॥न ज्योतिष्कवत्तिर्यगवस्थिता।न व्यन्तरवदसमावस्थितय।उपर्युपरीत्युच्यन्ते॥के ते? कल्पा॥यद्येवं, कियत्सु कल्पविमानेषु ते देवा भवन्तीत्यत आह—

॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥

तिकड़ी ऊर्ध्व तिकड़ी) के नौ पटल जो मध्यलोकसे सातवां राजूसे आरम्भ होकर चौदहवें राजूके भीतर हैं । एक पटल नव अनुदिशका जो मध्यलोकसे साढ़े छठवां राजूसे आरम्भ होता है और उसही के भीतर है और एक पटल पांचअनुत्तरका जो मध्यलोकसे पोने सातवाँ राजूसे आरम्भ होता है और उसके भीतर ही है ये सब तेरह (=आठ युगलोंके, तीन तिकड़ी ग्रैवेयकोंके, एक अनुदिशका, एक पांच अनुत्तरका) स्थानों में त्रेसठ (६३) पटल एक दूसरेके ऊपर ऊपर अवस्थित है ॥

शब्दानुवाद।–किम्॥अर्थम्॥इदम्॥उच्यते।	=किसलिये यह (सूत्र) कहागया है।
तिर्यग् अवस्थिति-प्रतिषेध अर्थम्॥उच्यते।	=(उत्तर) (वैमानिकदेवोंकी) तिर्यग् अवस्थानके निषेधके लिये(यहसूत्र)कहागया है
न॰ज्योतिष्कवत्॰तिर्यग्-अवस्थिता॥	=न (वे वैमानिक देव) ज्योतिषी देवोंके सदृश तिर्यग् अवस्थित हैं।
न॰व्यन्तरवत्॰असम-अवस्थितय॥	=न व्यन्तरों के समान विषम (अर्थात् जहां तहां) अवस्थित हैं ॥
उपरि॰उपरि॰इति॰उच्यन्ते। के॥ते॥कल्पा॥	=(इसलिये)ऊपरऊपर ऐसे वर्णित हैं। वे कल्प कौन है? अर्थात् वे स्वर्ग क्या हैं?
यदि॰एवम्॰कियत्सु॥कल्पविमानेषु॥	=जो इस प्रकार हैं अर्थात् ऊपर ऊपर हैं तो कितने कल्प विमानोंमें
ते॥देवा॥भवन्ति।इति॰अत॰आह।	=वे देव हैं? इसलिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्र महाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानत प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय वैजयन्तजयन्ता पराजितेषु सर्वार्थसिद्धौच ॥ १९॥

दो राजू तक हैं इकतीस पटल, दूसरे युगल (तीसरे चौथे स्वर्ग सानत माहेन्द्र जो मध्यलोकसे तीसरे राजूमें है) के सातपटल तीसरे युगल (ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवां छठवां स्वर्ग जो मध्यलोकसे साढ़े तीसरे राजूमें है) के चार पटल, चौथा युगल (लांतव सातवां स्वर्ग कापिष्ट आठवां स्वर्ग जो तीसरे युगलसे आधे राजू ऊपर में है) के दो पटल, पांचवे युगल (शुक्र नवमां स्वर्ग महाशुक्र दशवां स्वर्ग जो मध्यलोक से साढ़े चौथे राजू में है) का एक पटल, छठवां युगल (शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार बारहवां स्वर्ग जो पांचवां युगलसे ऊपर आधे राजूमें है)का एक पटल, सातवां युगल(आनत तेरहवां स्वर्ग प्राणत चौदहवां स्वर्ग जो मध्यलोकसे साढ़े पांचवां राजूमें है)के तीनपटल, आठवां युगल(आरण पन्द्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग जो सातवां युगलसे ऊपर आधे राजू में है) के तीन पटल इसप्रकार बावन पटलतो सोलह स्वर्गों के और तीन तिकड़ी ग्रैवेयक(अधोतिकड़ी, मध्यकी

() कल्पा इत्येके = कल्पाः इति एके (मुद्रित श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८१) = (उपर्युपरि के साथ अनुवृत्ति) 'कल्पाः शब्दकी होना ऐसा कितनोंका मत है श्लोकवार्तिकका शब्दशः संस्कृत पाठ विस्तारभयसे न लिखकर प० गजाधरलाल शास्त्रीकी टिप्पणी जो पृष्ठ १०५५ (राजवार्तिकके अनुवाद) में दी है ऐसे है कि "उपर्युपरि यहांपर कल्प शब्दका सम्बन्ध मानना सर्वसम्मत नहीं है क्योंकि वैमानिकाः इस सूत्रको अधिकारसूत्र बतलाये हैं। इसलिये इस सूत्रमें उसीका सम्बन्ध मानना ठीक होगा इस रीतिसे जिस प्रकार वैमानिकदेव कल्पोपपन्न और कल्पातीत हैं(इस प्रकार कल्पोपपन्ना 'कल्पातीताश्च इस सूत्रमें वैमानिकोंका सम्बन्ध है उसी प्रकार वैमानिकदेव ऊपरऊपर हैं इस रूपसे 'उपर्युपरि' इस सूत्रमें भी वैमानिक देवोंका ही संबंध है। यदि यहांपर यह कहाजाय कि पहिले देवोंका ऊपरऊपर अवस्थान अनिष्ट कह आये हैं। यदि 'उपर्युपरि यहांपर वैमानिकदेवोंका सम्बन्ध कर उनका ऊपर अवस्थान माना जायगा तो अनिष्ट होगा। सो ठीक नहीं। विशेषण रहित केवल देवोंका यदि ऊपर ऊपर अवस्थान मानाजाय तब अनिष्ट कहा जा सकता है किन्तु वहांतो मध्य में स्थित इन्द्रक विमान तिर्यग् अवस्थित श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानरूप कल्पोपपन्नत्व विशेषण विशिष्ट देवों का तथा कल्पातीतत्व (नवग्रैवेयकत्व) आदि विशिष्ट देवोंका ग्रहण है। इस प्रकारके विशेषण विशिष्ट देवोंका ऊपर ऊपर रहना शास्त्र सम्मत है। अतएव इष्ट है। इसलिये कल्पोपपन्न और कल्पातीत दोनों की अपेक्षा 'उपर्युपरि यहां पर 'वैमानिक' शब्द का ही सम्बन्ध ठीक है॥

() श्लोकवार्तिकका यह कथन यद्यपि स्थूल दृष्टि से विरुद्धसा मालूम होता है कि राजवार्तिक कारने विमानों को ऊपर ऊपर कहा है और श्लोक वार्तिक कारने देवों को ऊपर ऊपर कहा है तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे दोनों एक रूप ही में पड़ते हैं श्लोक वार्तिक कारने केवल देवों को ऊपर २ नहीं कहा है किन्तु विमानोंसे विशिष्ट देवोंको कहा है विमान सहित देव कहा जाय या विमान कहाजाय दोनों का एक ही अर्थ है॥ "ते कल्प उपरि उपरि हैं प० जयचन्द्रकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ २७१॥

इस स्वामी विद्यानन्दिके सहमत हैं कि उक्त सूत्रमें 'वैमानिकाः की अनुवृत्ति आती है क्योंकि यह अधिकार सूत्र है। इसीलिये अधिकार सूत्र होनाहै कि उसकी अनुवृत्ति बराबर आगे आगे सूत्रोंमें चलीजावै॥ रहा सूत्रोंका आशय सो प्रकरणके प्रसंगवश द्वारा निकल आता है॥

शुक्र-महाशुक्र — शुक्र नवमे और महाशुक्र दशवें स्वर्गों में

एक विभक्ति 'नवग्रैवेयकेषु' ऐसी करते। सारांश हमारे यहां नवअनुदिश संज्ञक विमानोंको माना है। श्वेताम्बर समाजमें नहीं माना है। अर्थात् उनके यहां नव अनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं स्वीकार किये हैं यद्यपि दोनों आम्नायोंमें प्रथम स्वर्ग सौधर्मसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानोंकी संख्या चौरासीलाख सतानवै सहस्र तेईस (८४९७०२३) एकसी मानी है जैसाकि निम्न लिखित लेखसे ज्ञात होता है

दिगम्बर तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १०७ अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ२६७	श्वेताम्बर आम्नायमें देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १०९
प्रथम सौधर्म स्वर्गमें बत्तीस लाख (३२०००००) विमान हैं	प्रथम सौधर्म कल्पमें बत्तीसलाख (३२०००००) विमान हैं
द्वितीय ईशान स्वर्गमें अट्ठाईस लाख (२८०००००) विमान हैं	द्वितीय ऐशान कल्पमें अट्ठाईस लाख (२८०००००) विमान हैं
तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें बारह लाख (१२०००००) विमान हैं	तीसरे सानत्कुमार कल्पमें बारहलाख (१२०००००) विमान हैं
चौथे माहेन्द्र स्वर्गमें आठलाख (८०००००) विमान हैं	चौथे माहेन्द्र कल्पमें आठलाख (८०००००) विमान हैं
पांचवां ब्रह्म ब्रह्मोत्तर युगलमें चारलाख (४०००००) विमान हैं	पांचवां ब्रह्मलोक कल्पमें चारलाख (४०००००) विमान हैं
छठवां लांतवकापिष्ठ युगलमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं	छठवां लान्तक कल्पमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं
सातवां शुक्र महाशुक्र युगलमें चालीससहस्र (४००००) विमान हैं	सातवां महाशुक्र कल्पमें चालीससहस्र (४००००) विमान हैं
आठवां शतार सहस्रार युगलमें छहसहस्र (६०००) विमान हैं	आठवें सहस्रार कल्पमें छहसहस्र (६०००) विमान हैं
आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें सातसौ (७००) विमान हैं	आनत प्राणत आरण अच्युत कल्पोंमें सातसौ (७००) विमान हैं
नवम तीनअधो ग्रैवेयकनि विर्षै एकसौग्यारह (१११) विमान हैं	नवम तीन अधो ग्रैवेयकनिमें एकसौ ग्यारह (१११) विमान हैं
दशम तीन मध्यको ग्रैवेयकनिमें एकसौसात (१०७) विमान हैं	दशम तीन बीचकी ग्रैवेयकनि में एकसौसात (१०७) विमान हैं
ग्यारहवें तीन ऊपरको ग्रैवेयकनिमें इक्यानवै (९१) विमान हैं	ग्यारम तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनि में एक शत (१००) विमान हैं
बारहवें नव अनुदिशके वा नवनवोत्तर के भी (९) विमान हैं	(नवअनुदिश नाम न देतेहुये उन्होंने इसमेंकी संख्याको ऊपर सौमें गर्भितकियाहै)
तेरहवें अनुत्तरके पांच (५) विमान हैं सर्वयोग(८४९७०२३) हुआ	अनुत्तर (बारहवीं संख्या पर) पांच विमान हैं॥ सर्वयोग (८४९७०२३) हुआ ॥

पदच्छेद (वैमानिका) सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ,शुक्र-महाशुक्र,शतार-सहस्रारेषु, आनत-प्राणतयो , आरण-अच्युतयो , ग्रैवेयकेषु, नवसु, विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजितेषु-सर्वार्थसिद्धौ च भवन्ति ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—वैमानिका(1) सौधर्म-ऐशान,	=वैमानिकदेव सौधर्म और ऐशानमें (प्रथमस्वर्ग और द्वितीयस्वर्गमें)
सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ,	=सानत्कुमार और माहेन्द्रमें, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरमें, लान्तव और कापिष्ठमें,

(१) हमारे यहांके सूत्रके 'ब्रह्म शब्दके स्थानमें श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें ब्रह्मलोक' शब्द है और 'ग्रैवेयकेषु' शब्दके स्थानमें उक्त सभाष्य में ग्रैवेयेषु' शब्द है परन्तु उनके यहांकी श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें "ग्रैवेयकेषु" ही है और 'सर्वार्थसिद्धौ" शब्दके स्थानमें उक्त समाजके दोनों भाष्योंमें सर्वार्थसिद्धे शब्द है। इन चारों शब्दोंमें अर्थभेद नहीं है । उनके दोनों ही भाष्योंमें ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ शुक्र शतार शब्द नहीं है अर्थात् उनके यहां केवल बारह ही स्वर्ग माने हैं लान्तवके स्थानमें लांतक है शेष पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है । इस सूत्रकी सख्या उनके यहां बीसवीं है । हमारे यहां भी इन्द्रोंकी अपेक्षासे बारह कल्पही माने हैं । देखो तत्त्वार्थराजवार्तिक वार्तिक८॥

दिगम्बर आम्नायके उन्नीसवां सूत्रका पाठ	श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके बीसवां सूत्रका पाठ
सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठ	सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोक———लान्तक———
शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो	———महाशुक्र——सहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो
र्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च	र्नवसु ग्रैवेयेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धे च
	(यदि ग्रैवेयेषुके स्थानमें ग्रैवेयकेषु' लिखदें तो भाष्यानुसारिणी का पाठ है)

अर्थभेद—सभाष्य० और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकाके अनुकूल बारह स्वर्ग हैं हमारे यहां सोलह स्वर्ग हैं । ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ शुक्र शतारको स्वर्ग नहीमाने हैं। उक्त आम्नायके दोनों भाष्योंमें 'नवसुग्रैवेयेषु' या 'नवसुग्रैवेयकेषु' वाक्य केवल नौग्रैवेयकोंका द्योतक है नकि नव अनुदिशविमानोंका भी। हमारे यहां सर्वभाष्योंमें तथा हिन्दीअनुवाद और टीकाओंमें उक्त वाक्यसे नौग्रैवेयक और नौ ही अनुदिश ग्रहण किये हैं जिन अनुदिशोंका केवल एकही पटल है। क्योंकि यदि उमास्वामी नौ ग्रैवेयक ही ग्रहणकरते तो 'नव शब्दका और ग्रैवेयक शब्दको भिन्नभिन्नसप्तमीविभक्तियोंमेंनहीलाते।

शुक्र-महाशुक्र — शुक्र नवमें और महाशुक्र दशवें स्वर्गों में

एक विभक्ति 'नवग्रैवेयकेषु' ऐसी करना। सारांश हमारे यहां नवअनुदिश संज्ञक विमानोंको माना है। श्वेताम्बर समाजने नहीं माना है। अर्थात् उनके यहां नव अनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं स्वीकार किये हैं यद्यपि दोनों आम्नायोंमें प्रथम स्वर्ग सौधर्मसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानोंकी संख्या चौरासीलाख सत्तानवे सहस्र तेईस (८४९७०२३) एकसी मानी है जैसाकि निम्न लिखित लेखसे ज्ञात होता है

दिगम्बर तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १०७ अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ२१४	श्वेताम्बर आम्नायमें देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १०६
प्रथम सौधर्म स्वर्गमें बत्तीस लाख (३२०००००) विमान हैं	प्रथम सौधर्म कल्पमें बत्तीसलाख (३२०००००) विमान हैं
द्वितीय ईशान स्वर्गमें अट्ठाईस लाख (२ ०००००) विमान हैं	द्वितीय ऐशान कल्पमें अट्ठाईस लाख (२८०००००) विमान हैं
तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें बारह लाख (१२०००००) विमान हैं	तीसरे सानत्कुमार कल्पमें बारहलाख (१२०००००) विमान हैं
चौथे माहेन्द्र स्वर्गमें आठलाख (८०००००) विमान हैं	चौथे माहेन्द्र कल्पमें आठलाख (८०००००) विमान हैं
पांचवां ब्रह्म ब्रह्मोत्तर युगलमें चारलाख (४०००००) विमान हैं	पांचवां ब्रह्मलोक कल्पमें चारलाख (४०००००) विमान हैं
छठवां लांतवकापिष्ठ युगलमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं	छठवां लान्तक कल्पमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं
सातवां शुक्र महाशुक्र युगलमें चालीससहस्र (४००००) विमान हैं	सातवां महाशुक्र कल्पमें चालीससहस्र (४०० ०) विमान हैं
आठवां शतार सहस्रार युगलमें छहसहस्र (६०००) विमान हैं	आठवें सहस्रार कल्पमें छहसहस्र (६०००) विमान हैं
आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें सातसौ (७००) विमान हैं	आनत-प्राणत आरण अच्युत कल्पोंमें सातसौ (७००) विमान हैं
नवम तीनअधो ग्रैवेयकनि विषैं एकसौग्यारह (१११) विमान हैं	नवम तीन अधो ग्रैवेयकनिमें एकसौ ग्यारह (१११) विमान हैं
दशम तीन मध्यकी ग्रैवेयकनिमें एकसौसात (१०७) विमान हैं	दशम तीन बीचकी ग्रैवेयकनि में एकसौसात (१०७) विमान हैं
ग्यारहवें तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनिमें इक्यानवें (९१) विमान हैं	ग्यारह तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनि में एक शत (१००) विमान हैं
बारहवें नव अनुदिशके ना मवनयोत्तर के भी (९) विमान हैं	(नव अनुदिश नाम न देतेहुये उन्होंने इसमीकी संख्याको ऊपर सौमें गर्भितकियाहै)
तेरहवें अनुत्तरके पांच (५) विमान हैं सर्वयोग(८४९७०२३) हुआ	अनुत्तर (बारहवीं संख्या पर) पांच विमान हैं॥ सर्वयोग (८४९७०२३) हुआ ॥

'शतार-सहस्रारेषु'	=शतार और सहस्रार ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गोंमें (इन छह युगलों में)
आनत 'प्राणतयोः' आरण-'अच्युतयोः'	=आनत और प्राणत तेरहवां और चौदहवां स्वर्गोंमें, आरण और अच्युत स्वर्गोंमें

(१) यहां प्रश्न यह है कि कल्पोपपन्नदेव और कल्पातीतदेव जब सब वैमानिक हैं और विमानोंके रहनेवाले हैं तो उमास्वामीने सूत्रके अन्तमें ही एकबार सप्तमी विभक्ति बहुवचनमें क्यों नहीं की सातबार सप्तमी विभक्ति क्योंकी एक विभक्ति करनेमें छह अक्षर और च और कईएक मात्राओंका लाभ होजाता अर्थात् जिसरूपमें सूत्र है उस रूपमें न करके ऐसा सूत्र रचते सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारानतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकविजयवैजयन्तजयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धिषु ॥ १९ ॥

(उत्तर) आनत प्राणतयो । आरण अच्युतयो इन दो युगलोंकी जुदी जुदी विभक्तियां करनेसे यह जानना चाहिये कि सोलह स्वर्गोंके आठ युगल हैं सो प्रत्येक युगल एक दूसरेके ऊपर है न कि एक स्वर्ग दूसरेके ऊपर है जैसे सौधर्म स्वर्गके ऊपर ऐशान स्वर्ग नहीं है वरन सौधर्म ऐशान युगलके ऊपर सानत्कुमार माहेन्द्र युगल है इसी प्रकार और भी शेष सात युगलोंको एकसे दूसरेको ऊपर ऊपर जानो जैसाकि हम भावार्थ पृष्ठ ४५, ४६ और ४७ में लिख चुके हैं । पं० जयचन्द्रजी इस सम्बन्धमें लिखते हैं कि "इहां कल्पका युगलका उपरि उपरि होयबोय कहना यातें दोय युगलनिके जुदी विभक्ती करी समास न किया तातें जाना जावे ॥ इस सम्बन्धमें अपर या अधिकतर प्रश्न यह है कि श्री उमास्वामीने 'सौधर्मैशानयो 'सानत्कुमार माहेन्द्रयो ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोः लांतवकापिष्ठयोः 'शुक्रमहाशुक्रयोः शतारसहस्रारयोः 'आनतप्राणतयो' आरणाच्युतयोः ऐसे आठ विभक्तियां क्यों न की प्रथम बारह स्वर्गोंकी एक विभक्ति क्योंकी फिर आनत प्राणतकी एक विभक्ति क्योंकी अन्तमें आरण अच्युतकी एक विभक्ति क्यों की ? यदि आठ विभक्तियां करदेते तो स्पष्ट होजाताकि स्वर्गोंके आठ युगल हैं सो एकयुगलसे दूसरा युगल ऊपर है दूसरे से तीसरा ऐसेही सबसे ऊपर आठवां युगल 'कल्पोपपन्न' देवोंके है ।

(उत्तर) आनतप्राणतद्वंद्वमारणाच्युतयोरिति । सूत्रसामर्थ्यात् सा वचनभेदाद्वैकल्पतः" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक श्लोक २ पृष्ठ ३८२

= आनतस्वर्गप्राणतस्वर्गका द्वन्द्व समास है आरण अच्युतमें (द्वंद्वसमास) है ऐसी सूचना है कि सप्तमी(=सा)का अंत कल्पोंमें ही (कल्पोंतक ही) है यहां से (अर्थात् पन्द्रहवां सोलहवां आरण अच्युत कल्पों या स्वर्गोंसे ऊपर) एकवचनकी (विभक्ति) है ॥ अर्थात् आनत प्राणत और आरणअच्युतमें पृथक् पृथक् द्वन्द्व समास और विभक्तियोंसे प्रगट है कि सोलह स्वर्गतककी एक युगल दूसरे युगलसे ऊपर ऊपर है उसके ऊपर फिर एक एक है ॥ आठ युगलोंकी आठ विभक्तियां जुदी जुदी इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढ़जाता । अथवा यौंभी कहसकतेहैं कि आनत प्राणतकी विभक्तिसे यह भासहोताहै कि एक एक युगल दूसरे दूसरे से ऊपर ऊपर है और आरणअच्युतकी विभक्तिसे यह बातभी झलकती है कि युगलोंका अन्त सोलह स्वर्ग तक है और द्वन्द्व समास भी सोलह स्वर्ग तक ही है ॥

() बहुतसे विद्वानोंका मत है कि उमास्वामीने बारहस्वर्गोंकी एक विभक्ति और आनत प्राणत की दूसरी विभक्ति और आरण अच्युत की तीसरी विभक्ति इसहेतुसे भी की है कि सौधर्म ऐशान युगलमें दो सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है । सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें सात सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है । ब्रह्म ब्रह्मोत्तर कल्पमें दशसागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट अवस्थाहै । लांतवकापिष्ठ युगलमें चौदह सागरसे कुछअधिक उत्कृष्ट जीवन काल है । शुक्र महाशुक्र युगलमें सोलह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयुहै । सतार सहस्रार युगलमें अठारह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ॥ परन्तु आनत प्राणत युगलमें उत्कृष्ट स्थिति ठीक बीस सागरकी और आरण अच्युत युगलमें भी उत्कृष्ट स्थिति ठीक बाईस सागरकी समस्त है । छह युगलोंमें जहां पूरेसागरोंसे कुछ अधिक स्थिति थी वहां विभक्ति जुदी की और एकही द्वन्द्वसमासमें लेआये और जहां पूरी पूरी स्थिति थी वहां वहां प्रथम छह युगलोंसे पृथक् पृथक् विभक्तिकी ॥ (इसी अध्याय के देखो सूत्र २९ ३० ३१,)

तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१ में छह युगलोंकी एक विभक्ति करना और आनतप्राणतकी भिन्न विभक्ति करना और आरणअच्युत को एक पृथक् विभक्तिमें लानेका यह हेतु दिया है कि बारह स्वर्गोंमें प्रत्येक में एक एक इन्द्र और आनतप्राणत दो स्वर्गों में एक इन्द्र और आरण अच्युत में एक इन्द्र ऐसे लोक अनुयोगके उपदेशसे इन्द्र चौदह भी कहहैं ॥ इससे तीन विभक्ति जुदी जुदीदीहैं सम्भवहै कि उमास्वामी के मतानुसार चौदह इन्द्रहों । वार्तिक सात पृष्ठ१६१में और पृष्ठ १६६ में इन्द्र बारहभी कहे हैं । राजवार्तिकका सब ऐसेहै कि तथाचोत्तरयो पृथग्वचनमर्थवत्" ॥ वार्तिक ॥ संस्कृतअर्थ ॥ एवकृत्वा उत्तरयो पृथग्वचनमर्थवत् भवति आनत प्राणत योरारणाऽच्युतयोरिति । इतरथाहि सर्वार्थ एकएवद्वन्द्व क्रियते । तथा ते एते लोकानुयोगापदेशेन चतुर्दशेन्द्रा उक्ताः । इह द्वादश इष्यंते ।

तथा+च+उत्तरयोः,।पृथग्वचनम्,।।अर्थवत्+ =तीनों युगलोंदा(युगलों) में जुदी जुदी विभक्ति है सो सार्थक है वा अर्थवत् है ॥ = ॥

एवम्+कृत्वा+ =ऐसे करके अर्थात् सातवी वार्तिक [प्रत्येकम्इन्द्रसम्बन्धात् मध्ये प्रतिद्वयं] में बारह इन्द्र (सौधर्म ऐशान दो स्वर्गोंमें दोइन्द्र सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें दोइन्द्र ब्रह्मलोक,ब्रह्मोत्तरदोमें एक ब्रह्मनाम इन्द्र लांतव कापिष्ठ दोमें एक लांतवनामक इंद्र, शुक्रमहाशुक्र दोमें शुक्र नामक एक इंद्र शतारसहस्रार दोमें एकइन्द्र आनत प्राणत दोमें एक एक ऐसे दो इन्द्र आरण अच्युत में एक एक ऐसे दो इन्द्र) कहकर (तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पष्ठ १६१

उत्तरयो ।आनत प्राणतयो,।आरण-अच्युतयोः,।इति+ =(सौधर्म ऐशान से) अगले (=उत्तरयोः) आनत प्राणतमें आरण अच्युतमें ऐसी

पृथग्+वचनम्,।।अर्थवत्+भवति। =भिन्न भिन्न विभक्ति है सो प्रयोजनको लिये हुये है (व्यर्थ नहीं है)

इतरथा+हि+ =अन्यथाही अर्थात् जो प्रयोजनीय भिन्न भिन्न विभक्ति न लाते तो निश्चयकरि (=हि)

सर्वार्थः,।एकः,।एव+द्वन्द्वः,।क्रियते। =सबुताकेलिये एक(आनतप्राणतारणाच्युतयोः ऐसा)ही द्वन्द्वसमास करते सोठीक या इष्टनहीथा

'शतार सहस्रारेषु'	=शतार और सहस्रार ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गोंमें (इन छह युगलों में)
आनत 'प्राणतयोः' आरण 'अच्युतयोः'	=आनत और प्राणत तेरहवां और चौदहवां स्वर्गोंमें, आरण और अच्युत स्वर्गोंमें

(१) यहां प्रश्न यह है कि कल्पोपपन्न और कल्पातीतरूप जब सब वैमानिक हैं और विमानोंके रहनेवाले हैं तो उमास्वामीने सूत्रके अन्तमें ही एकबार सप्तमी विभक्ति बहुवचनमें क्यों नहीं की सातवार सप्तमी विभक्ति क्योंकी एक विभक्ति करनेमें छह अक्षर और च और कईएक मात्राओंका लाभ होजाता अर्थात् जिसरूपमें सूत्रहै उस रूपमें न करके ऐसा सूत्र रचते सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतार सहस्रारानतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकविजयवैजयन्तजयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धिषु' ॥ १९ ॥

(उत्तर) आनत प्राणतयो । आरण अच्युतयो इन दो युगलोंकी जुदी जुदी विभक्तियां करनेसे यह जानना चाहिये कि सोलह स्वर्गोंके आठ युगल हैं सो प्रत्येक युगल एक दूसरके ऊपर है न कि एक स्वर्ग दूसरेके ऊपर है जैसे सौधर्म स्वर्गके ऊपर ऐशान स्वर्ग नहीं है वरन सौधर्म ऐशान युगलके ऊपर सानत्कुमार-माहेन्द्र युगल है इसी प्रकार और भी शेष सात युगलोंको एकसे दूसरेको ऊपर ऊपर जानो जैसाकि हम भावार्थ पृष्ठ ४५, ४६ और ४७ में लिखचुके हैं ॥ पं० जयचन्द्रजी इस सम्बन्धमें लिखते हैं कि यहां कल्पका युगलका उपरि उपरि दोयदोय कहना अंतके दोय युगलनिके जुदी विभक्ती करी समास न किया तातें जाना जायहै ॥ इस सम्बन्धमें अपर या अधिकतर प्रश्न यहहै कि श्री उमास्वामीने 'सौधर्मैशानयो 'सानत्कुमार माहेन्द्रयो ब्रह्मब्रह्मोत्तरयो लांतवकापिष्ठयो 'शुक्रमहाशुक्रयोः शतारसहस्रारयो 'आनतप्राणतयो आरणाच्युतयो ऐसे आठविभक्तियां क्योंन की प्रथम बारह स्वर्गोंकी एक विभक्ति क्योंकी फिर आनत प्राणतकी एक विभक्ति क्योंकी अन्तमें आरण अच्युतकी एक विभक्ति क्यों की ? यदि आठ विभक्तियां करदेते तो स्पष्ट होजाताकि स्वर्गोंके आठ युगलहैं सो एकयुगलसे दूसरा युगल ऊपर है दूसरे से तीसरा ऐसेही सबसे ऊपर आठवां युगल 'कल्पोपपन्ना' देवोंमें है ।

(उत्तर) आनतप्राणतयोःआरणाच्युतयोरिति । सूत्रमाह(?) सा पञ्चम्येवेयं(?)" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक श्लोक ३ पृष्ठ ३८२
= आनतस्वर्गप्राणत-स्वर्गका द्वन्द्व समास है आरण अच्युतमें (द्वंद्वसमास) है ऐसी सूचना है कि द्वन्द्ववृत्ति(= सा)का अंत कल्पोंमें ही(कल्पोंतक ही) है यहां से(अर्थात पन्द्रहवां सोलहवां आरण अच्युत कल्पों या स्वर्गोंसे ऊपर) एकएकही(विभक्ति) है ॥ अर्थात् आनत प्राणत और आरणअच्युतमें पृथक् पृथक् द्वन्द्व समास और विभक्तियोंसे प्रगट है कि सोलह स्वर्गतकही एक युगल दूसरे युगलसे ऊपर ऊपर है उसके ऊपर फिर एक एक है ॥ आठ युगलोंकी आठ विभक्तियां जुदी जुदी इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढ़जाय । अथवा योंभी कहसकतेहैं कि आनत प्राणतकी विभक्तिसे यह मालूम होताहै कि एक एक युगल दूसरे दूसरे से ऊपर ऊपर है और आरणअच्युतकी विभक्तिसे यह बातभी झलकती है कि युगलोंका अन्त सोलह स्वर्ग तक है और द्वन्द्व समास भी सोलह स्वर्ग तक ही है ॥

() बहुतसे विद्वानोंका मत है कि उमास्वामीने बारहस्वर्गोंकी एक विभक्ति और आनत प्राणत की दूसरी विभक्ति और आरण अच्युत की तीसरी विभक्ति इसहेतुसे भी की है कि सौधर्म ऐशान युगलमें दो सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है। सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें सात सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें दशसागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट अवस्था है। लांतवकापिष्ठ युगलमें चौदह सागरसे कुछअधिक उत्कृष्ट जीवन काल है। शुक्र महाशुक्र युगलमें सोलह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है। सतार सहस्रार युगलमें अठारह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है॥ परन्तु आनत प्राणत युगलमें उत्कृष्ट स्थिति ठीक बीस सागरकी और आरण अच्युत युगलमें भी उत्कृष्ट स्थिति ठीक बाईस सागरकी क्रमसे है। छह युगलोंमें जहां पूरेसागरोंसे कुछ अधिक स्थिति थी वहां विभक्ति जुदी की और एकही द्वन्द्वसमासमें समाये और जहां पूरी पूरी स्थिति थी वहां वहां प्रथम छह युगलोंसे पृथक् पृथक् विभक्तिकी॥ (इसी अध्याय के देखो सूत्र २९, ३०, ३१,)

तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१ में छह युगलोंकी एक विभक्ति करना और आनतप्राणतकी भिन्न विभक्ति करना और आरणअच्युत को एक पृथक् विभक्तिमें लानेका यह हेतु दिया है कि बारह स्वर्गोंमें प्रत्येक में एक एक इन्द्र और आनतप्राणत दो स्वर्गों में एक इन्द्र और आरण अच्युत में एक इन्द्र ऐसे लोक अनुयोगके उपदेशसे इन्द्र चौदह भी कहे हैं॥ इससे तीन विभक्ति जुदी जुदीहोईं लक्षणहै कि उमास्वामी के मतानुसार चौदह इन्द्रहो। वार्तिक सात पृष्ठ१६१में और पृष्ठ १६६ में इन्द्र बारहभी कहे हैं। राजवार्तिकका अंश ऐसेहै कि 'तथाचोत्तरयो पृथग्ग्रहणमर्थवत्" ॥ वार्तिक=॥ संस्कृतअर्थ॥ एवंकृत्वा उत्तरयो पृथग्ग्रहणमर्थवत् भवति आनत प्राणत यारारणाऽच्युतयारिति। इतरथाहि लघ्वर्थं एकएवद्वन्द्व क्रियते।

तथा ते एते लोकानुयोगपदेशेन चतुर्दशेन्द्रा उक्ताः। इह द्वादश इष्यते।

तथा॥च॥उत्तरयोः।पृथग्ग्रहणम्॥अर्थवत्॥	=तीनों जगहों(युगलों) में जुदी जुदी विभक्ति है सो सार्थक है वा अर्थवत् है॥ = ॥
एवम्॥कृत्वा+	=ऐसे करके अर्थात् सातवीं वार्तिक [प्रत्येकम्‌इन्द्रसम्बन्धा मध्ये प्रतिश्रयं] में बारह इन्द्र
	(सौधर्म ऐशान दो स्वर्गोंमें दोइन्द्र सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें दोइन्द्र,ब्रह्मलोक,ब्रह्मोत्तरदोमें
	एक ब्रह्मनाम इन्द्र लांतव कापिष्ठ दोमें एक लांतवनामक इंद्र शुक्रमहाशुक्र दोमें शुक्र नामक एक इन्द्र शतारसहस्रार दोमें एकइन्द्र
	आनत प्राणत दोमें एक एक ऐसे दो इन्द्र आरण अच्युत में एक एक ऐसे दो इन्द्र) कहकर (तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१
उत्तरयो ।आनत प्राणतयो,।आरण अच्युतयो॥इति॥	=(सौधर्म ऐशान से) अगले (=उत्तरयो।) आनत प्राणतमें आरण अच्युतमें ऐसी
पृथग्॥ग्रहणम्॥अर्थवत्॥भवति	=भिन्न भिन्न विभक्ति है सो प्रयोजनको लिये हुये है (व्यर्थ नहीं है)
इतरथा॥हि॥	=अन्यथाही अर्थात् जो प्रयोजनीय भिन्न भिन्न विभक्ति न लाते तो निश्चयकरि (=हि)
लघ्वर्थं॥एक॥एव॥द्वन्द्वः॥क्रियते	=लघुताकेलिये एक(आनतप्राणतारणाच्युतयो।ऐसा,)ही द्वन्द्वसमास करते सोठीक था इसमें

पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने "पर्वंकस्या इत्यादि वाक्यका निम्न लिखित अर्थ पृष्ठ ६५२में किया है ऐसे किये आगिले दोय युगल आनत प्राणत आरण अच्युत इनके विषैं भिन्न भिन्न विभक्तिकरि निर्देश है सो सार्थिक होय है। आनत प्राणतयो आरणअच्युतयो ऐसे भिन्नविभक्तिरूप निर्देश करा है।सो एकएक कल्पमें एकएक इन्द्र है। ऐसे जानिये"। पिछला वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है अशुद्ध है क्योंकि यहां कथन चौदह इन्द्रोंके सम्बन्धमें है (नकि बारह इन्द्रोंकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक होता) यदि हम इन आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें भी चार इन्द्र मानलें और बारह इन्द्र सौधर्मसे सहस्रार स्वर्गतक मानलें तो इंद्र सोलह हुये जाते हैं। पश्चात् पृष्ठ ६५३ में और पृष्ठ ६६४में स्वयम् न्यायदिवाकरजी लिखते हैं कि आनतप्राणत आरण अच्युत स्वर्गों में "आरणनामादेवराज है——अच्युतनामा देवराज है" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरण नामक और अच्युत नामक (चौदह इन्द्रोंकी अपेक्षासे) दोनों इन्द्र हैं पं० पन्नालाल दूनीवालोंने अपनी तत्त्वदीपिकामें और पं० गजाधर शास्त्रीने पृष्ठ १०७८ और १०७६ (सभ्याद्वारा अनुवादित और प्रकाशित तत्त्वार्थ राजवार्तिक) में किया है।

तयाय०

=जैसे सौधर्म इन्द्र ऐशान इन्द्र सानत्कुमारइन्द्र माहेन्द्र इन्द्र ब्रह्मनामक इन्द्र ब्रह्मोत्तरनामकइन्द्र लांतव नामक इन्द्र कापिष्ठ नामक इंद्र शुक्र नामक इन्द्र शतार नामक इन्द्र सहस्रार नामक इन्द्र, आरण नामक इन्द्र अच्युत नामक इन्द्र (आनत प्राणत नामक कोई इन्द्र नहीं हैं) ते इतने लोक नियोगके उपदेशकरि चौदह इन्द्र कहेगये हैं (राजवार्तिक पृष्ठ १६१ से १६६ तक)

१६०आरण्।।इप्क्तेT

=यहां(=इह) (मूल सिद्धान्तकी अपेक्षासे) बारह(इन्द्र कहना)इष्ट है। इसका देखो पृष्ठ ५१।

[illegible] समस्त टिप्पणीका आरम्भसे अंततक सारांश यह है कि(क)प्रथम छहयुगलों बारह स्वर्गोंकी विभक्तियां इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढ़जाता (ख) 'आनत प्राणतयोः 'आरणाच्युतयो' की दो विभक्तियोंसे प्रगट है कि एकएक युगल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक [illegible] एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरणाच्युतयो विभक्तिसे यह भी समझता है कि युगल युगल की विभक्ति केवल सोलह स्वर्गों तककी है (घ) उक्त तीन विभक्तियोंसे यहभी समझताहै कि सागरोंसे कुछ अधिक देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति है सो केवल प्रथम छह युगल बारह स्वर्गों तक ही है और आनत प्राणतकी उत्कृष्टस्थित बीस ही सागर की है अधिक नहीं है और आरण अच्युतकी भी बाईस सागर पूरे की उत्कृष्टस्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (च) ये तीन विभक्तियां इस बातकीभी द्योतक हैं कि प्रथम बारह स्वर्गोंमें एक एक इन्द्र है ऐसे बारह ये हुये और आनत प्राणत जहां दूसरी विभक्ति की है एक इन्द्र है और आरण अच्युत जहां दूसरी विभक्ति कीहै वहांभी एक इंद्र है ऐसे तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार लोक अनुयोगउपदेशसे चौदह इन्द्रभी मानेहैं परन्तु प्रसिद्ध बारहही इंद्र हैं। श्वेताम्बरआम्नायमें १०ही मानेहैं।

ग्रैवेयकेषु नवसु विजय वैजयन्त-जयन्त-	=(नौ) ग्रैवेयकोंमें, नव अनुदिशोंमें, विजय वैजयन्त जयन्त
अपराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च॥	=अपराजित विमानोंमें और (=च) सर्वार्थसिद्धिमें (रहते) हैं

(१) सौधर्म स्वर्गसे आदि लेकर अच्युत पर्यंत बारह कल्प हैं अर्थात् इन्द्रोंकी अपेक्षासे श्वेताम्बर आम्नायके सदृश यहां बारह ही कल्प माने हैं (क्योंकि इन्द्रआदिकी रचना केवल बारहही स्वर्गोंमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ महाशुक्र सहस्रार स्वर्गोंके तो इन्द्र ब्रह्म लांतव शुक्र शतार दक्षिण इन्द्रोंके आधीन समझते हैं) अथवा सोलह स्वर्ग हैं उनके ऊपर कल्पातीत हैं इसबातके स्पष्ट करनेके लिये सौधर्म आदिसे ग्रैवेयकोंका भिन्न विभक्तिद्वारा पृथक् ग्रहण किया है।

(२) इस समस्त सूत्रका विचार पूर्वक पढ़नेसे ज्ञात पड़ता है कि जो जो विमान पहिले पहिले कहगये हैं वे उत्तर उत्तर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शब्दसे अनुदिश ग्रहण कर है (=लिखित है) मुद्रितसर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २४९ द्वितीयावृत्ति पृष्ठ १४३ देखो। नवसु शब्द यदि ग्रैवेयकेषु के पहिले मानाजावे तो 'नवअनुदिश' देवयकोंसे आगे छूटे जाते हैं। यदि कहाजावेकि नवसु शब्द नवग्रैवेयकोंकी संख्या बतलानेके लिये है तो फिर 'नवअनुदिश' छूटेजाते हैं इसलिये मैंने नवसु शब्दको 'ग्रैवेयकेषु' के पश्चात् रखकर नवअनुदिशोंमें ऐसा अनुवाद किया है। यदि यह कहाजावे कि 'नवसु' का पाठान्तर सामने ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट नहीं होती है सो हो नहीं सकता क्योंकि 'नवसु' शब्द को जब पूर्वको आकर्षण करते हैं तब ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट होजाती है जब ऊपर को ग्रहण करते हैं तब अनुदिशोंका वाचक 'नवसु' शब्द हो जाता है। यदि 'नवसु' शब्द से नव अनुदिशका अभिप्राय श्री उमास्वामीका न होता तो 'नवसु' शब्दकी जुदी विभक्ति नहीं करते नवसु शब्दको 'ग्रैवेयक' के साथ समास ऐसे करदेते कि 'नवग्रैवेयकेषु' और एक अक्षरका लाभ होजाता। हमारे कथनका समर्थन श्लोकवार्तिकके श्लोक चार से (देखो मुद्रित पृष्ठ ३८२) ऐसे होता है कि "ग्रैवेयकेषु नवसु नवस्वनुदिशेष्विव" =ग्रैवेयकेषु नवसु नवसु अनुदिशेषु इवम् =ग्रैवेयक नौमें, नौ अनुदिशोंमें यह (वृत्ति =विभक्ति भिन्नभिन्न) है ग्रैव ग्रीव्य ग्रैवेय तथा ग्रैवेयक सब एकार्थवाचक हैं। अनुदिशका अर्थ यहां प्रतिदिश है अर्थात् जो प्रत्येक दिशामें हो वह अनुदिश कहाजाता है। दिशा' शब्द जिसके अन्तमें 'श' है उसका समास अनु अव्ययके साथ करने पर अनुदिश' शब्दकी सिद्धि होती है।

(३) (प्रश्न) विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजितविमानोंसे सर्वार्थसिद्धिका विमान जुदा नहीं है फिर भिन्नविभक्तिद्वारा सूत्रमें क्यों निर्देश किया (उत्तर)(क) उक्तचार विमानोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक बत्तीस सागर है। उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिके रहनेवाले देवोंकी उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकारकी स्थिति तेतीस सागर प्रमाण हैं।

(ख) सर्वार्थसिद्धि वाला देव एक भव धारण कर मोक्ष को जाता है उक्त चार विमानोंके देव प्रायः दो भव धारण कर मोक्षको जाते हैं।

(ग) सर्वार्थसिद्धि वाले देवका जितना प्रभाव और प्रताप है उतना सर्व विजय आदि विमानके रहने वाले [illegible] देवोंका भी नहीं है।

(घ) सर्वार्थसिद्धिवासी देव निरंतर श्रुतभावनामें लीन रहते हैं और उपशांतश्रेणीकेविषैं अप्रमत्त मन्दकषायरूप विशुद्धपरिणामोंकी उत्कृष्टताको प्राप्त होचुके हैं इत्यादि विशेषता प्रतिपादनके लिये वा बतलानेके लिये "सर्वार्थसिद्धौ" ऐसी भिन्न विभक्ति विजय वैजयन्त जयन्तापराजितेषुसे की।

पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने "पृथक्त्वा इत्यादि वाक्यका निम्न लिखित अर्थ पृष्ठ ६४४में किया है ऐसे किये अगिले दोय युगल आनत प्राणत आरण अच्युत इनके विषैं भिन्न भिन्न विभक्तिकरि निर्देश है सो सार्थिक होय है । आनत प्राणतयो आरण अच्युतयोः ऐसे भिन्नविभक्तिरूप निर्देश करा है सो एकएक स्वर्गमें एकएक इन्द्र है । ऐसे जानिये" । लिखा वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है प्रयुक्त है क्योंकि यहां कथन चौदह इन्द्रोंके सम्बन्धमें है (नकि बारह इन्द्रोंकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक होता) यदि हम इन आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें भी चार इन्द्र मानलें और बारह इंद्र सौधर्मसे सहस्रार स्वर्गतक मानलें तो इंद्र सोलह हुये जाते हैं । पश्चात् पृष्ठ ६५३ में और पृष्ठ ६५७में स्वयम् न्यायदिवाकरजी लिखते हैं कि आनतप्राणत आरण अच्युत स्वर्गों में "आरणनामादेवराज है——— अच्युतनामा देवराजहै" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरण नामक और अच्युत नामक (चौदह इन्द्रोंकी अपेक्षासे) दोही इन्द्र हैं पं० पन्नालाल दूनीवालोंने अपनी तत्त्वदीपिकामें और पं० गजाधर शास्त्रीने पृष्ठ १०३८ और १०३९ (सभ्याद्वारा सम्पादित और प्रकाशित तत्त्वार्थ राजवार्तिक) में किया है ।

= जैसे सौधर्म इन्द्र ऐशान इन्द्र सानत्कुमारइन्द्र, माहेन्द्र इन्द्र ब्रह्मनामक इन्द्र ब्रह्मोत्तरनामकइन्द्र लांतव नामक इन्द्र कापिष्ठ नामक इंद्र शुक्र नामक इन्द्र शतार नामक इन्द्र सहस्रार नामक इन्द्र, आरण नामक इन्द्र अच्युत नामक इन्द्र (आनत प्राणत नामक कोई इंद्र नहीं हैं) ये इतने लोक नियोगके अपेक्षाकरि चौदह इन्द्र कहेगये हैं (राजवार्तिक पृष्ठ १६१ से १६६ तक)

= यहां (= इन्द्र) (मूल सिद्धान्तकी अपेक्षासे) बारह (इन्द्र कहना) इष्ट है । इसका देखो पृष्ठ ५१ ।

इस समस्त टिप्पणीका आरम्भसे अंततक सारांश यह है कि (क) प्रथम छहयुगलों बारह स्वर्गोंकी विभक्तियां इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढ़जाता (ख) आनत प्राणतयोः 'आरणाच्युतयोः की दो विभक्तियोंसे प्रगट है कि यहयह युगल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक स्वर्ग एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरणाच्युतयो विभक्तिसे यह भी झलकता है कि युगल युगल की विभक्ति केवल सोलह स्वर्गों तकही है (घ) उक्त तीन विभक्तियोंसे यहभी झलकताहै कि सागरोंसे कुछ अधिक देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति है सो केवल प्रथम छह युगल बारह स्वर्ग तक ही है और आनत प्राणतकी उत्कृष्टस्थिति बीस ही सागर की है अधिक नहीं है और आरण अच्युतकी भी बाईस सागर पूरे की उत्कृष्टस्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (ङ) ये तीन विभक्तियां इस बातकोभी द्योतक हैं कि प्रथम बारह स्वर्गमें एक एक इन्द्र है ऐसे बारह ये हुये और आनत प्राणत जहां दूसरी विभक्ति की है एक इन्द्र है और आरण अच्युत जहां दूसरी विभक्ति कीहै वहांभी एक इंद्र है ऐसे तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार लोक अनुयोगउपदेशसे चौदह इन्द्रभी मानेहैं परन्तु प्रसिद्ध बारहही इंद्र हैं । श्वेताम्बरआम्नायमें १०ही मानेहैं।

ग्रैवेयकेषु नवसु विजय वैजय त-जयन्त	=(नौ) ग्रैवेयकोंमें, नव अनुदिशोंमें, विजय वैजयन्त जयन्त
अपराजितेषु च सर्वार्थसिद्धौ॥	=अपराजित विमानोंमें और (=च) सर्वार्थसिद्धिमें (रहते) हैं

(१) सौधर्म स्वर्गसे आदि लेकर अच्युत पर्यंत बारह कल्प हैं अर्थात् इन्द्रोंकी अपेक्षासे श्वेताम्बर आम्नायके सदृश यहां बारह ही कल्प माने हैं (क्योंकि इन्द्र आदिकी कल्पना केवल बारहही स्वर्गोंमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ महाशुक्र सहस्रार स्वर्गोंके तो इन्द्र ब्रह्म लांतव शुक्र शतार दक्षिण इन्द्रोंके आधीन समझते हैं) अथवा सोलह स्वर्ग हैं उनके ऊपर कल्पातीत हैं इसबातके स्पष्ट करनेके लिये सौधर्म आदिसे ग्रैवेयकोंका भिन्न विभक्तिद्वारा पृथग् ग्रहण किया है।

(२) इस समस्त सूत्रको विचार पूर्वक पढ़नेसे ज्ञात पड़ता है कि जो जो विमान पहिले पहिले कहेगये हैं वे उत्तर उत्तर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शब्दसे अनुदिश बताये गये हैं (=निर्दिष्ट हैं) मुद्रितसर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २४७, श्लोकवार्तिक पृष्ठ १५२ देखो। नवसु' शब्द यदि 'ग्रैवेयकेषु' के पहिले मानाजावे तो 'नवअनुदिश' ग्रैवेयकोंसे नीचे हुये जाते हैं। यदि कहाजावेकि नवसु शब्द नवग्रैवेयकोंकी संख्या बतलानेके लिये है तो फिर 'नवअनुदिश' छूटेजाते हैं इसलिये मैंने 'नवसु' शब्दको ग्रैवेयक के पश्चात् रखकर 'नवअनुदिशोंमें' ऐसा अनुवाद किया है। यदि यह कहाजावे कि 'नवसु' का पश्चात् लानेसे ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट नहीं होती है सो हो नहीं सकता क्योंकि 'नवसु' शब्द को जब पूर्वको आकर्षण करते हैं तब ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट होजाती है जब ऊपर को ग्रहण करते हैं तब अनुदिशोंका द्योतक नवसु शब्द होजाता है। यदि 'नवसु' शब्द से नव अनुदिशका अभिप्राय श्री उमास्वामीका न होता तो 'नवसु' शब्दकी जुदी विभक्ति नहीं करते नवसु शब्दको 'ग्रैवेयक' के साथ समास ऐसे करदेते कि 'नवग्रैवेयकेषु' और यह प्रकरण लाभ होजाता। हमारे कथनका समर्थन श्लोकवार्तिकके श्लोक चार से (इसको मुद्रित पृष्ठ ३८२) ऐसे होता है कि "ग्रैवेयकेषु नवसु नवस्वनुदिशेष्विप =ग्रैवेयकेषु नवसु नवसु अनुदिशेषु इयम्=ग्रैवेयक नौमें, नौ अनुदिशोंमें यह (वृत्ति=विभक्ति सिद्धमिव) है

ग्रैव ग्रीव्य ग्रैवय तथा ग्रैवेयक सब एकार्थवाचक हैं। अनुदिशका अर्थ यहां प्रतिदिश है अर्थात् जो प्रत्येक दिशामें हो वह अनुदिश कहाजाता है। दिशा' शब्द जिसके अन्तमें 'आ' है उसका समास अनु' अव्ययके साथ करने पर 'अनुदिश' शब्दकी सिद्धि होती है।

(३) (प्रश्न) विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजितविमानोंसे सर्वार्थसिद्धिका विमान ऊंचा नहींहै फिर भिन्नविभक्तिद्वारा सूत्रमें क्यों निर्देश किया? (उत्तर)(क) उक्तचार विमानोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक बत्तीस सागर है। उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिके रहनेवाले देवोंकी उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकारकी स्थिति तेतीस सागर प्रमाण हैं।

(ख) सर्वार्थसिद्धि वाला देव एक भव धारण कर मोक्ष को जाता है उक्त चार विमानोंके देव प्रायः दो भव धारण कर मोक्षको जाते हैं।

(ग) सर्वार्थसिद्धि वाले देवका जितना प्रभाव और प्रताप है उतना सर्व विजय आदि विमानके रहने वाले सब देवोंका भी नहीं है।

(घ) सर्वार्थसिद्धिवासी देव निरंतर शुभभावनामें लीन रहतेहैं और उपशांतमोहीकेलियें अत्यन्त मन्दकषायरूप विशुद्धपरिणामोंकी उत्कृष्टताको प्राप्त होचुके हैं इत्यादि विशेषता प्रतिपादनके लिये या बतलानेके लिये "सर्वार्थसिद्धौ" ऐसी भिन्न विभक्ति "विजय वैजयन्त जयन्तापराजितेषु"से की।

पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने "पृथक्त्वा इत्यादि वाक्यका निम्न लिखित अर्थ पृष्ठ ६४२में किया है जैसे किये प्रतिभे होय गगत आनत प्राणत आरण अच्युत इनके विषैं भिन्न भिन्न विभक्तिकरि निर्देश है सो सार्थिक होय है। आनत प्राणतयो आरणअच्युतयोः ऐसे भिन्नविभक्तिरूप निर्देश करा है।सो एकएक कल्पमें एकएक इन्द्र है। ऐसे चाहिये" । पिछला वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है अशुद्ध है क्योंकि यहां कथन चौदह इन्द्रोंके सम्बन्धमें है (नकि बारह इन्द्रोंकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक होता) यदि हम इन आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें भी चार इन्द्र मानलें और बारह इन्द्र सौधर्मसे सहस्रार स्वर्गतक मानलें तो इंद्र सोलह हुये जाते हैं। पश्चात् पृष्ठ ६१३ में और पृष्ठ ६६४में स्वयम् न्यायदिवाकरजी लिखते हैं कि आनतप्राणत आरण अच्युत स्वर्गों में "आरणनामादेवराज है——अच्युतनामा देवराजहै" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरण नामक और अच्युत नामक (चौदह इन्द्रोंकी अपेक्षासे) दोही इन्द्र हैं पं० पन्नालाल दूनीवालोंने अपनी तत्त्वकौमदीमें और पं० गजाधर शास्त्रीने पृष्ठ १०७८ और १०३६ (सत्यावादारा अनवादित और प्रकाशित तत्त्वार्थ राजवार्तिक) में किया है।

तथ्य० ''

=जैसे सौधर्म इन्द्र, ऐशान इन्द्र सानत्कुमारइन्द्र माहेन्द्र इन्द्र ब्रह्मनामक इन्द्र ब्रह्मोत्तरनामकइन्द्र लांतव नामक इंद्र कापिष्ठ नामक इंद्र शुक्र नामक इन्द्र शतार नामक इन्द्र सहस्रार नामक इन्द्र, आरण नामक इन्द्र अच्युत नामक इन्द्र (आनत प्राणत नामक कोई इंद्र नहीं हैं) ये इतने लोक नियोगके उपदेशकरि चौदह इन्द्र कहेगये हैं (राजवार्तिक पृष्ठ १६१ से १६६ तक)

इद०शाद०]।इन्द्रोंT

=यहां(=इह) (मूल सिद्धान्तकी अपेक्षासे) बारह(इन्द्र कहना)इष्ट है। इसका देखो पृष्ठ ५१।

इस समस्त टिप्पणीका आरम्भसे अंततक सारांश यह है कि(क)प्रथम अनुपमको बारह स्वर्गोंकी विभक्तियां इससे नहीं की कि ग्रन्थ बहुत बढ़जाता (ख) 'आनत प्राणतयोः आरणाच्युतयोः की दो विभक्तियोंसे प्रगट है कि एकएक युगल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक स्वर्ग एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरणाच्युतयो विभक्तिसे यह भी झलकता है कि युगल युगल की विभक्ति केवल सोलह स्वर्गों तकही है (घ) उक्त तीन विभक्तियोंसे यहभी झलकताहै कि सागरोंसे कुछ अधिक देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति है सो केवल प्रथम छह युगल बारह स्वर्ग तक ही है और आनत प्राणतकी उत्कृष्टस्थित बीस ही सागर की है अधिक नहीं है और आरण अच्युतकी भी बाईस सागर पूरे की उत्कृष्टस्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (ङ) ये तीन विभक्तियां इस बातकीभी द्योतक हैं कि प्रथम बारह स्वर्गमें एक एक इन्द्र है ऐसे बारह ये हुये और आनत प्राणत जहां दूसरी विभक्ति की है एक इन्द्र है और आरण अच्युत जहां दूसरी विभक्ति कीहै वहांभी एक इन्द्र है ऐसे तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार लोक अनुयोगउपदेशसे चौदह इन्द्रभी मानेहैं परन्तु प्रसिद्ध बारहही इंद्र हैं। श्वेताम्बरआम्नायमें १०ही मानेहैं।

ग्रैवेयकेषु नवसु विजय वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु च सर्वार्थसिद्धौ॥	=(नौ) ग्रैवेयकोंमें, नव अनुदिशोंमें, विजय वैजयन्त जयन्त-=अपराजित विमानोंमें और (=च) सर्वार्थसिद्धिमें (रहते) हैं

(१) सौधर्म स्वर्गसे आदि लेकर अच्युत पर्यंत बारह कल्प हैं अर्थात् इन्द्रोंकी अपेक्षासे श्वेताम्बर आम्नायके सदृश यहां बारह ही कल्प माने हैं (क्योंकि इन्द्रआदिकी कल्पना केवल बारहही स्वर्गोंमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ महाशुक्र सहस्रार स्वर्गोंके तो इन्द्र ब्रह्म लांतव शुक्र शतार दक्षिण इन्द्रोंके आधीन समसे हैं) अथवा सोलह स्वर्ग हैं उनके ऊपर कल्पातीत हैं इसबातके स्पष्ट करनेके लिये सौधर्म आदिसे ग्रैवेयकोंका भिन्न विभक्तिद्वारा पृथग् ग्रहण किया है।

(२) इस समस्त सूत्रको विचार पूर्वक पढ़नेसे ज्ञात पड़ता है कि जो जो विमान पहिले पहिले कहेगये हैं वे उत्तर उत्तर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शब्दसे अनुदिश' दर्शाये गये हैं (=निर्दिष्ट हैं) मुद्रितसर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २४५, ढिलीपावृत्ति पृष्ठ १४३ देखो। नवसु शब्द यदि 'ग्रैवेयकेषु' के पहिले माना जावे तो नवअनुदिश' ग्रैवेयकोंसे नीचे हुए जाते हैं। यदि कहाजावेकि नवसु शब्द नवग्रैवेयकोंकी संख्या बतलानेके लिये है तो फिर 'नवअनुदिश छूटेजाते हैं इसलिये मैंने 'नवसु' शब्दको ग्रैवेयकेषु के पश्चात् रखकर नवअनुदिशोंमें ऐसा अनुवाद किया है॥ यदि यह कहाजावे कि 'नवसु' का पश्चात् लानेसे ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट नहीं होती है सो हो नहीं सकता क्योंकि नवसु' शब्द को जब पूर्वको आकर्षण करते हैं तब ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट होजाती है जब ऊपर को ग्रहण करते हैं तब अनुदिशोंका वाचक नवसु शब्द होजाता है॥ यदि 'नवसु' शब्द से नव अनुदिशका अभिप्राय श्री उमास्वामीका न होता तो 'नवसु' शब्दकी जुदी विभक्ति नहीं करते नवसु शब्दको 'ग्रैवेयक के साथ समास ऐसे करदेते कि 'नवग्रैवेयकेषु' और एक अक्षरका लाभ होजाता। हमारे कथनका समर्थन श्लोकवार्तिकके श्लोक चार से (नवो मुद्रित पृष्ठ ३८२) ऐसे होता है कि 'ग्रैवेयकेषु नवसु नवस्वनुदिशेष्विव =ग्रैवेयकेषु नवसु नवसु अनुदिशेषु इवम्=ग्रैवेयकोंमें, नो अनुदिशोंमें यह (वृत्ति=विभक्ति भिन्नभिन्न) है

ग्रैव ग्रीव्य ग्रैवय तथा ग्रैवेयक सब एकार्थवाचक हैं॥ अनुदिशका अर्थ यहां प्रतिदिश है अर्थात् जो प्रत्येक दिशामें हो वह अनुदिश कहाजाता है॥ दिशा' शब्द जिसके अन्तमें 'आ' है उसका समास 'अनु' अव्ययके साथ करने पर अनुदिश' शब्दकी सिद्धि होती है॥

(३) (प्रश्न) विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजितविमानोंसे सर्वार्थसिद्धिका विमान ऊंचा नहीं है फिर भिन्नविभक्तिद्वारा सूत्रमें क्यों निर्देश किया? (उत्तर)(क) उक्तचार विमानोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक बत्तीस सागर है। उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिके रहनेवाले देवोंकी उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकारकी स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है।

(ख) सर्वार्थसिद्धि वाला देव एक भव धारण कर मोक्ष को जाता है उक्त चार विमानोंके देव प्रायः दो भव धारण कर मोक्षको जाते हैं।

(ग) सर्वार्थसिद्धि वाले देवका जितना प्रभाव और प्रताप है उतना सर्व विजय आदि विमानके रहने वाले सब देवोंका भी नहीं है।

(घ) सर्वार्थसिद्धिवासी देव निरंतर भुतभावनामें लीन रहते हैं और उपशांतमोहीकेविषैं अत्यन्त मन्दकषायरूप विशुद्धपरिणामोंकी उत्कृष्टसीढीको प्राप्त होचुके हैं इत्यादि विशेषता प्रतिपादनके लिये या बतलानेके लिये "सर्वार्थसिद्धौ" ऐसी भिन्न विभक्ति "विजय वैजयन्त जयन्तापराजितेषुसे की।

कथमेषा सौधर्मादिशब्दाना कल्पाभिधान ? चातुरर्थिकेनाणा, स्वभावतो वा कल्पस्याभिधानं भवति ॥ अथ कथमिन्द्राभिधान ? स्वभावत साहचर्याद्वा ॥ तत्

वृत्त्यनुवाद—कथम्॥एषाम्॥सौधर्म आदि शब्दानाम्॥ =कैसे इन सौधर्म आदिक (सोलह) शब्दोंका (अर्थात् सोलह स्वर्गोंका)

कल्प अभिधानम्॥चातुरर्थिकेन॥अणा॥ =कल्प नाम हुआ ? (उत्तर) चातुरर्थिक अण्(=अ प्रत्यय)करि अर्थात् व्याकरणके तद्धितप्रकरणमें (=संज्ञामें प्रत्यय मिलाकर अर्थ बदलने रूप प्रकरणमें)

चातुरर्थिक प्रकरणके (=वह अधिकार जिसमें अण् अञ्-ठक् [1]वुञ्-छण् इत्यादि बहुतसे प्रत्ययोंमेंसे प्रत्येक प्रत्यय चारचार (क) [2]वह जिसमें हो (ख) [3] बनायागया (ग) [4] उसका निवास (घ) [5]अदूर अर्थोंमें विधान कियाजाता है उन प्रत्ययोंमेंसे इस) अण् (प्रत्यय) द्वारा (वह जिसमें हो—उसका निवास-इन अर्थोंमें लेकर [illegible] ग्रहणकरि)

वा॥स्वभावत ॥कल्पस्य॥अभिधानम्॥भवति॥ =अथवा (=वा) स्वभावसे, कल्पकी संज्ञा वा नाम (अभिधान) होता है भावार्थ सौधर्म आदिकी कल्पसंज्ञा चाहे अण् प्रत्यय 'वह जिसमें हो' 'उसका निवास' अर्थोंमें लेकर सुधर्मा, ईशान, सनत्कुमार, महेन्द्र आदि शब्दोंमें यथायोग्य लगाकर करलेनी चाहिये अथवा सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र आदि स्वाभाविक नाम हैं यों समझलेना चाहिये

अथ॥कथम्॥इन्द्र-अभिधानम्॥स्वभावत ॥ =प्रश्न (=अथ) इन्द्रका नाम कैसे है ? (उत्तर) स्वभावसे, प्रकृतिसे,

साहचर्यात्॥वा॥ =अथवा संसर्गतासे, सहचरितासे, उसमें रहनसहनसे (अर्थात् जैसा अमुक कल्प या स्वर्ग का नाम है वैसा उस स्वर्ग वा कल्प के इन्द्रका नाम है)

तत्॥ =सो (अर्थात् कल्पका अभिधान, नाम अण् प्रत्यय करि अथवा स्वभावसे और इन्द्रकी संज्ञा वा नाम स्वभावसे अथवा साहचर्यसे)

[१] वुञ छण क इत्यादि ४-२-८० । [२] तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥ ४-२-६७ ॥ [३] तेन निर्वृत्तम् ॥ ४-२-६८ ॥ [४] तस्य निवास ॥ ४-२-६९ ॥ [५] अदूरभवश्च ॥ ४-२-७० ॥ उक्त पांच सूत्रोंको अष्टाध्यायी पाणिनिमुनिकृतमें देखो ॥ इन्ही सूत्रोंके समानअर्थक निम्नलिखित सूत्र जैनेन्द्रव्याकरण में देखना चाहिये ॥ ये सूत्र इस प्रकार हैं कि

[१] पुमहणक इत्यादि । ३-२-६१ । [२] तदस्मिन्नस्तीति देशे च्यो ॥ ३-२-५८ ॥ (३) तेन निर्वृ त्त । ३।२।५९ (४) (५) तस्यनिवासादूरभवौ ३-२-६०

कथमिति चेदुच्यते—सधर्मा नाम सभा, साऽस्मिन्नस्तीति सौधर्म कल्प । तदस्मिन्नस्तीत्यण् तत्कल्पसाहचर्यादिन्द्रोऽपि सौधर्म ॥ ईशानो नाम इन्द्र स्वभावत । ईशानस्य निवास कल्प ऐशानस्तस्य निवास इत्यण् । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि ऐशान ॥

कथम्॰इति॰चेत्॰उच्यते सुधर्मा नाम

=कैसे है ? ऐसे प्रश्न (करने) पर कहा जाता है कि सुधर्मा नाम

सभा सा अस्मिन् अस्ति इति॰सौधर्म कल्प

=सभा है। वह (सभा) जिसमें है ऐसा सौधर्म कल्प है

"तदस्मिन्नस्तीत्यण्"(=तद् अस्मिन् अस्ति इति॰अण्)

='तदस्मिन्नस्ति' ऐसे (अष्टाध्यायीके चौथ अध्याय पाद दो सूत्र ६७ से और जैनेन्द्रव्याकरण के तीसरा अध्याय पाद दो सूत्र ५८ से) अण् (प्रत्ययको 'वह जिसमें हो' इस अर्थमें प्रयोग करके सौधर्म शब्द सिद्ध किया) है। भावार्थ सुधर्मा शब्दमें अण् प्रत्ययका यह प्रभाव है कि सुधर्मा शब्दके 'उ'की वृद्धि सज्ञा होजातीहै और अण्प्रत्ययका अ जोड़ाजाता है तब सौधर्मा+अ ऐसा रूप हुआ क्योंकि 'अण्' के 'ण्' का इत् सज्ञक होनेसे लोप होजाता है शेष 'अ' रहता है अण् प्रत्ययका यहभी प्रभाव है कि शब्दके स्वरोंमेंसे अंतिम स्वरवालेभाग वा खंडको मय उस भागके व्यंजनको यदि कोई व्यंजन उस भागमें होवे गिरादेताहै और अण् प्रत्ययका अ उस शब्दके शेषभागमें जुड़जाताहै इसलिये सौधर्मा शब्दका 'आ' गिरकर और अण्का अ मिलनेसे सौधर्म शब्द ऐसे सिद्ध हुआ कि सौधर्म्+अ=सौधर्म

तत्-कल्प-साहचर्यात्

=उस (सौधर्म) कल्पमें रहन सहन से अथवा सौधर्म कल्पकी सहचरितासे

इन्द्र अपि॰सौधर्म

=इन्द्र भी (=अपि) सौधर्म है ॥

ईशान नाम इन्द्र स्वभावत॰ । ईशानस्य निवास

=ईशान नामा इन्द्र है सो स्वभावसे है। ईशान इन्द्रका निवास

कल्प ऐशान 'तस्य निवास'

=सो स्वर्ग(=कल्प)ऐशान है ॥ 'तस्य निवास' जैनेन्द्र व्याकरण और अष्टाध्यायीके इसी सूत्रसे

इति॰अण्

=ऐसे अण्(=अ)प्रत्यय(निवास अर्थमें)है कि ईशान+अण्=ऐशान्+अ=ऐशान बना

तत् साहचर्यात् इन्द्र अपि॰ऐशान

=उस (ऐशान कल्प, स्वर्ग) में रहनसहनसे अथवा सहचरितासे इन्द्र भी ऐशान है।

सनत्कुमारो नाम इन्द्रः स्वभावतः । तस्य निवास इत्यण् । सानत्कुमारः कल्पः । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि सानत्कुमारः ॥ महेन्द्रो नामेन्द्रः स्वभावतस्तस्य निवासः कल्पो माहेन्द्रः । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि माहेन्द्रः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ आगमापेक्षया व्यवस्था भवतीति, उपर्युपरीत्यनेन द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ प्रथमौ सौधर्मैशानकल्पौ, तयोरुपरि सानत्कुमारमाहेन्द्रौ तयोरुपरि ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरौ, तयोरुपरि लान्तवकापिष्ठौ, तयोरुपरि

सनत्कुमारः नाम इन्द्रः स्वभावतः । तस्य निवासः	=सनत्कुमार नाम इन्द्र (है सो) स्वभावसे है । 'तस्य निवासः' उक्तसूत्र द्वारा
इति अण्	=ऐसे अण्(=अ)प्रत्यय (निवास अर्थमें) होकर (सनत्कुमार से, सानत्कुमारबनकर)
सानत्कुमारः कल्पः, तत्साहचर्यात्	=सानत्कुमार स्वर्ग हुआ । उस (सानत्कुमार कल्प) में रहनेसे वा रहनसहनसे
इन्द्रः अपि सानत्कुमारः । महेन्द्रः नाम इन्द्रः	=इन्द्रभी सानत्कुमार है । महेन्द्र नाम इन्द्र है
स्वभावतः तस्य निवासः कल्पः माहेन्द्रः	=सो स्वभावसे है उसका निवासस्थान स्वर्ग माहेन्द्र है ("तस्य निवासः" इस सूत्र द्वारा ऐसे अण् प्रत्यय निवास अर्थमें होकर महेन्द्र से माहेन्द्र शब्द बनाया)
तत्-साहचर्यात् इन्द्रः अपि माहेन्द्रः ॥	=उस (माहेन्द्र कल्प)के साहचर्यसे इन्द्र भी माहेन्द्र है ।
एवम् उत्तरत्र अपि	=इस प्रकार यहां (माहेन्द्र कल्प) से आगे (उत्तरत्र) भी
योज्यम्	=(ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर इत्यादि सोलह स्वर्ग पर्यंत इन्द्र तथा कल्पकानाम) जोड़नाचाहिये
आगम अपेक्षया व्यवस्था भवति इति	=शास्त्रकी अपेक्षासे ऐसे निर्णय (=व्यवस्था) होता है कि
उपरि उपरि इति अनेन द्वयोः द्वयोः	=ऊपर ऊपर इस (वाक्य) करि दो दो (स्वर्गों) का
अभिसम्बन्धः वेदितव्यः । प्रथमौ सौधर्म-ऐशानकल्पौ	=सम्बन्ध जानना योग्य है । पहिले दो सौधर्म और ऐशान कल्प हैं ।
तयोः उपरि सानत्कुमार-माहेन्द्रौ	=उनके ऊपर सानत्कुमार और माहेन्द्र हैं ।
तयोः उपरि ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरौ	=तिनके ऊपर ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर हैं ।
तयोः उपरि लान्तव-कापिष्ठौ तयोः उपरि	=उनके ऊपर लान्तव और कापिष्ठ हैं । तिनके ऊपर

शुक्रमहाशुक्रौ, तयोरुपरि शतारसहस्रारौ, तयोरुपरि आनतप्राणतौ, तयोरुपरि आरणाच्युतौ ॥ अध उपरि च प्रत्येकमिन्द्रसम्बन्धो वेदितव्य । मध्ये तु प्रतिद्वयमेक ॥ सौधर्मैशानसानत्कुमार-माहेन्द्राणा चतुर्णा चत्वार इन्द्रा । ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोरेको ब्रह्मेन्द्रो नाम । लान्तवकापिष्ठयोरेको लान्तवाख्य । शुक्रमहाशुक्रयोरेक शुक्रसज्ञ । शतारसहस्रारयोरेक शतारनामा । आनतप्राणतारणाच्युताना चतुर्णा चत्वार । एव कल्पवासिना द्वादश इन्द्रा भवन्ति ॥ जम्बूद्वीपे महामन्दरो

शुक्र महाशुक्रौ कल्पौ ; उपरि शतार	=शुक्र और महाशुक्र हैं ॥ तिनके ऊपर शतार
सहस्रारौ तयो उपरि आनत प्राणतौ	=और सहस्रार हैं । उनके ऊपर आनत और प्राणत (कल्प) हैं
तयो उपरि आरण अच्युतौ ॥ अध	=तिनके ऊपर आरण और अच्युत हैं । नीचे (चार स्वर्गों में)
उपरि च प्रत्येकम् इन्द्रसम्बन्ध वेदितव्य	=और ऊपर(चार स्वर्गोंमें) एकएक (=प्रत्येकम्) इन्द्रका सम्बन्ध जानना चाहिये अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, इन प्रत्येक प्रत्येकमें एकएक इन्द्र एमचार और आनत,प्राणत,आरण,अच्युत प्रत्येकप्रत्येकमें एकएक ऐसे आठइन्द्रहैं
मध्ये तु प्रतिद्वयम् एक ॥ सौधर्म-ऐशान	=और (=तु) मध्य (आठ स्वर्गों) में प्रति युगल एक (एक) इन्द्र है सौधर्मऐशान
सानत्कुमार-माहेन्द्राणाम् चतुर्णाम् चत्वार	=सानत्कुमार और माहेन्द्र चार (स्वर्गों) के चार
इन्द्रा ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयो एक ब्रह्म	=इन्द्र हैं, ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर का एक ब्रह्म
इन्द्र नाम लान्तवकापिष्ठयो एक	=नाम इन्द्र है, लान्तव कापिष्ठ (कल्प) का एक
लान्तव नामक शुक्र-महाशुक्रयो एक	=लान्तव नाम (इन्द्र) है, शुक्र और महाशुक्र (स्वर्गों) का एक
शुक्र-नामक शतार-सहस्रारयो एक	=शुक्र नामा (इन्द्र) है, शतार सहस्रार का एक
शतारनामा आनत प्राणत आरण अच्युतानाम्	=शतार नामा (इन्द्र) है, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत
चतुर्णाम् चत्वार एवम् कल्प-वासिनाम्	=चार (स्वर्गों) के चार (इन्द्र) हैं, इस प्रकार स्वर्गों में निवास करनेवाले(देव)तिनके
द्वादश इन्द्रा भवन्ति । जम्बूद्वीपे महामन्दर	=बारह इन्द्र होते हैं ॥ जम्बूद्वीपमें सुमेरुपर्वत

(१) इन चारों स्वर्गोंका नामक पाठ सामी पूज्य आचार्य का के इनामें में" ऐसा अनुवाद भी हो सकता है जैसे ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर में एक ब्रह्म नाम इन्द्र है इत्यादि । (२) नाम यहां पर अव्यय है जैसे हिमालय नाम नगाधिराज कुम्भकर्णसम्भवो (टीकाका पृष्ठ १७४ देखो)

सनत्कुमारो नाम इन्द्र स्वभावत । तस्य निवास इत्यण् । सानत्कुमार कल्प । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि सानत्कुमार ॥ महेन्द्रो नामेन्द्र स्वभावतस्तस्य निवास कल्पो माहेन्द्र । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि माहेन्द्र । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ आगमापेक्षया व्यवस्था भवतीति, उपर्युपरीत्यनेन द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्य ॥ प्रथमौ सौधर्मैशानकल्पौ, तयोरुपरि सानत्कुमारमाहेन्द्रौ तयोरुपरि ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरौ, तयोरुपरि लान्तवकापिष्ठौ, तयोरुपरि

सनत्कुमारः नाम इन्द्रः स्वभावत । 'तस्य निवास ' इति अण्	=सनत्कुमार नाम इन्द्र (है सो) स्वभावसे है । 'तस्य निवासः' इत्यादि सूत्र द्वारा =ऐसे अण्(=अ)प्रत्यय (निवास अर्थमें) होकर (सनत्कुमार से, सानत्कुमार बनकर)
सानत्कुमारः कल्पः, तत्साहचर्यात्	=सानत्कुमार स्वर्ग हुआ । उस (सानत्कुमार कल्प) में रहनेसे या रहनसहनसे
इन्द्रः अपि सानत्कुमारः । महेन्द्रः नाम इन्द्रः	=इन्द्र भी सानत्कुमार है । महेन्द्र नाम इन्द्र है
स्वभावतः तस्य निवास कल्पः माहेन्द्रः	=सो स्वभावसे है उसका निवासस्थान स्वर्ग माहेन्द्र है ("तस्य निवासः" इस सूत्र द्वारा ऐसे अण् प्रत्यय निवास अर्थमें होकर महेन्द्र से माहेन्द्र शब्द बनाया)
तत्-साहचर्यात् इन्द्रः अपि माहेन्द्रः ॥	=उस (माहेन्द्र कल्प)के साहचर्यसे इन्द्र भी माहेन्द्र है ।
एवम् उत्तरत्र अपि	=इस प्रकार यहां (माहेन्द्र कल्प) से आगे (उत्तरत्र) भी
योज्यम् ॥	=(ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर इत्यादि सोलह स्वर्ग पर्यंत इन्द्र तथा कल्पका नाम) जोड़ना चाहिये
आगम-अपेक्षया व्यवस्था भवति इति	=शास्त्रकी अपेक्षासे ऐसे निर्णय (=व्यवस्था) होता है कि
उपरि उपरि इति अनेन द्वयोः द्वयोः	=ऊपर ऊपर इस (वाक्य) करि दो दो (स्वर्गों) का
अभिसम्बन्धः वेदितव्यः । प्रथमौ सौधर्म-ऐशानकल्पौ	=सम्बन्ध जानना योग्य है । पहिले दो सौधर्म और ऐशान कल्प हैं ।
तयोः उपरि सानत्कुमार-माहेन्द्रौ	=उनके ऊपर सानत्कुमार और माहेन्द्र हैं ।
तयोः उपरि ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरौ	=तिनके ऊपर ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर हैं ।
तयोः उपरि लान्तव-कापिष्ठौ तयोः उपरि	=उनके ऊपर लान्तव और कापिष्ठ हैं । तिनके ऊपर

शुक्रमहाशुक्रौ, तयोरुपरि शतारसहस्रारौ, तयोरुपरि आनतप्राणतौ, तयोरुपरि आरणाच्युतौ ॥ अध उपरि च प्रत्येकमिन्द्रसम्बन्धो वेदितव्य । मध्ये तु प्रतिद्वयमेक ॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्राणां चतुर्णां चत्वार इन्द्रा । ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोरेको ब्रह्मेन्द्रो नाम । लान्तवकापिष्ठयोरेको लान्तवाख्य । शुक्रमहाशुक्रयोरेक शुक्रसञ्ज्ञ । शतारसहस्रारयोरेक शतारनामा । आनतप्राणतारणाच्युतानां चतुर्णां चत्वार । एवं कल्पवासिनां द्वादश इन्द्रा भवन्ति ॥ जम्बूद्वीपे महामन्दरो

शुक्र-महाशुक्रौ तयो उपरि शतार	=शुक्र और महाशुक्र हैं ॥ तिनके ऊपर शतार
सहस्रारौ तयो उपरि आनत प्राणतौ	=और सहस्रार हैं। उनके ऊपर आनत और प्राणत (कल्प) हैं
तयो उपरि आरण अच्युतौ ॥ अधः	=तिनके ऊपर आरण और अच्युत हैं। नीचे (चार स्वर्गों में)
उपरि च प्रत्येकम् इन्द्रसम्बन्ध वेदितव्य	=और ऊपर(चार स्वर्गोंमें) एकएक (=प्रत्येकम्) इन्द्रका सम्बन्ध जानना चाहिये अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, इन प्रत्येक प्रत्येकमें एकएक इन्द्र एसमार और आनत,प्राणत,आरण,अच्युत प्रत्येकप्रत्येकमें एकएक ऐसे आठइन्द्र हैं
मध्ये तु प्रति-द्वयम् एक ॥ सौधर्म-ऐशान	=और (=तु) मध्य (आठ स्वर्गों) में प्रति युगल एक (एक) इन्द्र है सौधर्मऐशान
सानत्कुमार-माहेन्द्राणाम् चतुर्णाम् चत्वार	=सानत्कुमार और माहेन्द्र चार (स्वर्गों) के चार
इन्द्रा ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयो एक ब्रह्म	=इन्द्र हैं, ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर का एक ब्रह्म
इन्द्र नाम लान्तवकापिष्ठयो एक	=नाम इन्द्र है, लान्तव कापिष्ठ (कल्प) का एक
लान्तव आख्य शुक्र-महाशुक्रयो एक	=लान्तव नाम (इन्द्र) है, शुक्र और महाशुक्र (स्वर्गों) का एक
शुक्र-संज्ञ शतार सहस्रारयो एक	=शुक्र नामा (इन्द्र) है, शतार सहस्रार का एक
शतारनामा आनत प्राणत आरण अच्युतानाम्	=शतार नामा (इन्द्र) है, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत
चतुर्णाम् चत्वार एवम् कल्प-वासिनाम्	=चार (स्वर्गों) के चार (इन्द्र) हैं, इस प्रकार स्वर्गों में निवास करनेवाले(देव)निके
द्वादश इन्द्रा भवन्ति। जम्बूद्वीपे महामन्दर	=बारह इन्द्र होते हैं ॥ जम्बूद्वीपमें सुमेरुपर्वत

(१) इन चार) ... पृथक् सप्तमी दो वचन मानकर ... में" ऐसा अनुवाद भी होसकता है जैसे ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर में एक ब्रह्म नाम इन्द्र है इत्यादि । (२) 'नाम' यहां पर आख्य है जैसे हिमालयो नाम नगाधिराजः कुमारसम्भवसे (देखिये पृष्ठ १७५ देखो)

५७

योजनसहस्रावगाहो भवति नवनवतियोजनसहस्राच्छ्राय । तस्याधस्तादधोलोक । बाहुल्येन तत्प्रमाण--(मेरुप्रमाण) स्तिर्यक्प्रसृतस्तिर्यग्लोक । तस्योपरिष्टादूर्ध्वलोक । मेरुचूलिका चत्वारिं[illegible] योजनोच्छ्राया । तस्या उपरि केशान्तरमात्रे व्यवस्थितमृजुविमानमिन्द्रकं सौधर्म[illegible] ल्लोकानुयोगाद्वेदितव्यम् ॥ नवसु ग्रैवेयकेष्विति नवशब्दस्य पृथग्वचन[illegible] नवविमानानि अनुदिशसञ्ज्ञकानि सन्तीति ज्ञापनार्थम् ।

[illegible] नवा हीनाः ॥ २९ ॥

योजन-सहस्र अवगाह॥भवति॥नव-नवति-
योजन-सहस्र उच्छ्राय॥तस्य॥अधस्तात्
अधोलोक॥बाहुल्येन॥
तत्प्रमाण॥(मेरुप्रमाण॥)तिर्यक् प्रसृत॥तिर्यग्लोक॥
तस्य॥ उपरिष्टात् ऊर्ध्व लोक॥मेरु-चूलिका॥
चत्वारिंशत् योजन उच्छ्राया॥तस्या॥उपरि
केशा तरमात्रे॥व्यवस्थित॥ऋजुवि[illegible]
सर्वम्॥अन्यत्॥लोक-अनुयोग[illegible]
नवसु॥ग्रैवेयकेषु॥इति
पृथक्॥वचनम्॥

=सहस्र योजन पृथिवी[illegible]
=सहस्र योजन [illegible]
=अधो[illegible]
[illegible]
=कहिक अधिक है ऐसे [illegible]
=स्वर्गस्वर्ग प्रति और पटल प्रति [illegible]
=आदि करि अधिक अधिक है ऐसा [illegible]
=आदि करि ऊपर ऊपर अधिक अधिक है [illegible]

सर्वार्थ तेनानुदिशानां ग्रहणं वेदितव्यम्॥एषामधिकृतानां वैमानिकानां परस्परतो विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः॥२०॥

स्वोपात्तस्यायुष उदयात्तस्मिन्भवे शरीरेण सहावस्थानं स्थिति । शापानुग्रहशक्ति प्रभाव ।
सुखमिन्द्रियार्थानुभव ।

६ तेन अनुदिशानाम् ग्रहणम् वेदितव्यम्	=तिस ('नवसु' कारक) से अनुदिश विमानों का ग्रहण जानना चाहिए ॥
एषाम् अधिकृतानाम् वैमानिकानाम्	=इन प्रकरणकियेहुये वैमानिकदेवोंके
परस्परतः विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह	=आपसमें विशेष जाननेकेलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्— स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिका ॥ २० ॥

(=वैमानिका उपर्युपरि)स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्याविशुद्धि-इन्द्रियविषयत -अवधिविषयत अधिका

सूत्रार्थः—वैमानिकाः उपरि उपरि	=वैमानिकदेव हैं वे ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति तथा पटल पटल प्रति
स्थिति प्रभाव-सुख-द्युति-	=आयु, प्रताप वा महिमा, सुख, दीप्ति (शरीरादि की कान्ति वा प्रकाश)
लेश्याविशुद्धि-इन्द्रियविषयत	=लेश्याकी विशुद्धता अथवा उज्ज्वलता, इन्द्रियोंके विषयकरि
अवधि-विषयत अधिकाः	=और अवधि ज्ञानके विषयकरि (अर्थात् इन सातों बातोंमें) अधिक अधिक हैं
वृत्त्यनुवादः—स्व-उपात्तस्य आयुषः उदयात्	=स्वप्राप्त आयुके उदयसे
तस्मिन् भवे शरीरेण सह	=तिस भवमें वा जन्ममें शरीर सहित
अवस्थानम् स्थिति शाप-	=टिकाव वा ठहराव सो स्थिति है(परका)अपकार वा विग्रह(वशमेंलाकरदंडदेने)की
(शक्ति)-अनुग्रहशक्ति प्रभावः	=(सामर्थ्य और) उपकार करनेकी सामर्थ्य सो प्रभाव है
इन्द्रिय अर्थ अनुभव सुखम्	=(सातावेदनीय के उदयसे) इन्द्रिय विषय (=अर्थ) का भोगना सो सुख हैं

(१) हमारे यहांकी पुस्तकोंमें कहीं पर 'विशुद्धीन्द्रिया' पाठ है कहीं पर विशुद्धीन्द्रिया'पाठ है दोनोंपाठ ठीक हैं । शेषपाठ हमारे यहां सर्वत्र एक है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें और दिगम्बरआम्नायके भाष्योंमें पाठ तथा अर्थ एकसा है ।

योजनसहस्रावगाहो भवति नवनवतियोजनसहस्राच्छ्राय । तस्याधस्तादधोलोक । बाहुल्येन तत्प्रमाण-(मेरुप्रमाण) स्तिर्यक्प्रसृतस्तिर्यग्लोक । तस्योपरिष्टादूर्ध्वलोक । मेरुचूलिका चत्वारिंशद्योजनोच्छ्राया । तस्या उपरि केशान्तरमात्रे व्यवस्थितमृजुविमानमिन्द्रकं सौधर्मस्य ॥ सर्वमन्यल्लोकानुयोगाद्वेदितव्यम् ॥ नवसु ग्रैवेयकेष्विति नवशब्दस्य पृथग्वचनं किमर्थम् ? । अन्यान्यपि नवविमानानि अनुदिशसञ्ज्ञकानि सन्तीति ज्ञापनार्थम् ।

योजन-सहस्र अवगाहः॥भवति॥नव-नवति- =सहस्र योजन पृथिवीमें प्रविष्ट होता है (और) निन्यानवे
योजन-सहस्र उच्छ्रायः॥तस्य॥अधस्तात्॥ =सहस्र योजन की ऊंचाई है। तिस (सुमेरु पर्वत की जड़) के नीचे
अधोलोकः॥बाहुल्येन॥ =अधोलोक है बहुतायतसे अथवा प्रचुरतासे या बहुलतासे
तत्प्रमाणः॥(मेरुप्रमाणः)॥तिर्यक् प्रसृतः॥तिर्यग्लोकः॥ =उसके परिमाण (सुमेरुके बराबर मौटाई) तिर्यक् फैलवा तिर्यग्लोक है
तस्य॥(१) उपरिष्टात्॥ ऊर्ध्व लोकः॥मेरु-चूलिका॥ =उस (सुमेरु)के ऊपर ऊर्ध्व लोक है। मेरु पर्वतकी चूलिका
चत्वारिंशत् योजन उच्छ्राया॥तस्याः॥उपरि॥ =चालीस योजन ऊंचाई वाली है तिस (चूलिका) के ऊपर
केशान्तरमात्रे॥व्यवस्थितं॥ऋजुविमानं इन्द्रकं॥सौधर्मस्य॥ =बालके अन्तरमात्र तिष्ठा हुआ ऋजुनामा इन्द्रक विमान सौधर्म(स्वर्ग)का है
सर्वम्॥अन्यत् लोक अनुयोगात्॥वेदितव्यम्॥ =अन्य(=अन्यत्)समस्त वर्णन लोकनियोग(=लोकमें प्रचलित)ग्रंथसे जानना चाहिये
नवसु॥ग्रैवेयकेषु॥इति॥ । नव शब्दस्य॥ =(प्रश्न) "नवसु ग्रैवेयकेषु" इस प्रकार नव शब्दके (ग्रैवेयक शब्दसे)
पृथक्वचनम्॥किम्॥अर्थम्॥ ? =न्यारी विभक्ति किस लिये है अर्थात् प्रश्न यह है कि जब नवग्रैवेयक हैं तो "नवग्रैवेयकेषु" ऐसा मिलाकर एकही बहुवचन कारक या विभक्ति क्यों न की नवसु को सप्तमी बहुवचन में भिन्न कारक किया और 'ग्रैवेयकेषु' को सप्तमी बहुवचन न्यारा कारक किया यदि एकही में दोनों को मिलाकर एकही विभक्ति करदेते तो "सु" अक्षर न्यून होजाता।
अन्यानि॥अपि॥नव-विमानानि॥ =(उत्तर) (इन नवग्रैवेयकोंसे ऊपर) इतर वा दूसरे भी नौ विमान
अनुदिशसञ्ज्ञकानि॥सन्ति॥इति॥ज्ञापन अर्थम्॥ =अनुदिशनामक हैं ऐसा जनानेको(नवसु ग्रैवेयकेषुसे न्यारीन्यारी विभक्ति की) है॥

(१) उपरिष्टात् और उपरि दोनों अव्यय हैं इनके साथ (जैसे यहां) द्वितीया और षष्ठी विभक्तियां मिलती हैं। (२) सुमेरु के ऊपर चालीस योजन की चूलिका है सो तिर्यग्लोक का भाग है।

देशाद्देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गति । शरीरं वैक्रियिकमुक्तम् । लोभकषायोदयाद्विषयेषु सङ्ग परिग्रहः । देशान्तरविषयक्रीडारतिप्रमानकषायादुत्पन्नोऽहङ्कारोऽभिमान । एतैर्गत्यादिभिरुपर्युपरि हीना ॥ देशान्तरविषयक्रीडारतिप्रकर्षाभावादुपर्युपरि गतिहीना ॥ शरीरं सौधर्मैशानयोर्देवाना सप्तारत्निप्रमाणम् ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयो षडरत्निप्रमाणम् ॥ ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पञ्चारत्निप्रमाणम् ॥ शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु चतुररत्निप्रमाणम् ॥ आनतप्राणतयोरर्द्धचतुर्थारत्निप्रमाणम् ॥ आरणाच्युतयोस्त्र्यरत्निप्रमाणम् ॥ अधोग्रैवेयकेषु

देशात्‌=एक स्थानसे देशान्तर-प्राप्ति हेतुः=अन्य देशकी प्राप्तिका कारण
गति=सो गति अथवा गमन है ॥ शरीरम्=(देवों का) शरीर वैक्रियिकम्=वैक्रियक है
उक्तम्=जो (दूसरे अध्याय के ४६ वां सूत्रमें) कथित है । लोभ कषाय-उदयात्=लोभ तथा कषायके उदयसे
विषयेषु=विषयोंमें सङ्ग=सम्बन्ध सो परिग्रह=परिग्रह है । मान कषायात्=मान और कषायके उदयसे
उत्पन्न=उत्पन्न हुआ अहङ्कार=गर्व सो अभिमान=अभिमान है । एतैः=इन गति-
आदिभिः=शरीर, परिग्रह, अभिमानकरि, उपरि उपरि=ऊपर ऊपर अर्थात्‌ स्वर्ग स्वर्गप्रति पटल२ प्रति
हीना=घटते घटते हैं । देशान्तर-विषय-क्रीडा रति=अन्य देश-विषय-क्रीड़न प्रीति की
प्रकर्ष अभावात्=अधिकताके न होनेसे उपरि उपरि गति हीना=ऊपर ऊपर गमन हीन है ।
शरीरम्=शरीर सौधर्म ऐशानयोः देवानाम्=सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें देवोंका सप्त-अरत्नि=सात हाथ
प्रमाणम्=प्रमाण है । सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः षट्‌ अरत्नि प्रमाणम्=सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें छह हाथ प्रमाण (शरीर) है ।
ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर लान्तव-कापिष्ठेषु=ब्रह्मलोक तथा ब्रह्मोत्तर, लान्तव तथा कापिष्ठ (स्वर्गों) में
पञ्च अरत्नि-प्रमाणम्=पांच हस्त परिमाण (शरीर) है । शुक्र-महाशुक्र शतार=शुक्र तथा महाशुक्र शतार तथा
सहस्रारेषु चतुर्‌ अरत्नि-प्रमाणम्=सहस्रार स्वर्गोंमें चार हस्त प्रमाण (शरीर) है । आनत-प्राणतयोः=आनत प्राणत स्वर्गोंमें
अर्द्धचतुर्थ-अरत्नि प्रमाणम्=साढ़े तीन हाथ परिमाण (शरीर) है । आरण अच्युतयोः=आरण अच्युत स्वर्गोंमें
त्रि-अरत्नि प्रमाणम्=तीन हाथ माप (शरीर) है । अध अधोग्रैवेयकेषु=नीचली ग्रैवेयक (तिकड़ी) में

शरीरवसनाभरणादिदीप्ति द्युति । लेश्या उक्ता । लेश्याया विशुद्धिर्लेश्याविशुद्धि । इन्द्रियाणामवधेश्च विषय इंद्रियावधिविषय । तेभ्यस्तैर्वाऽधिका इति॥ तस्मिन्नुपर्युपरि प्रतिकल्प प्रतिप्रस्तारं च वैमानिका स्थित्यादिभिरधिका इत्यर्थ ॥ यथा स्थित्यादिभिरुपर्युपर्यधिका एवं गत्यादिभिरपीत्यतिप्रसङ्गे तन्निवृत्त्यर्थमाह–

॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

शरीर-वसन आभरण-आदि-दीप्ति द्युतिः,	=शरीर वस्त्र तथा भूषण अथवा गहना आदिक का प्रकाश सो द्युति है
लेश्या	=लेश्या अर्थात् कषायके उदयकरि रंजित योगों की प्रवृत्ति
उक्ता लेश्यायाः विशुद्धिः	=(दूसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें) वर्णित है। लेश्याकी उज्ज्वलता वा विशुद्धता
लेश्या-विशुद्धिः इन्द्रियाणाम् अवधेः च विषयः इन्द्रिय-	=सो लेश्या विशुद्धि है। इन्द्रियोंका और अवधिज्ञानका विषय है सो इन्द्रिय
अवधि-विषयः तेभ्यः	=अवधिविषय है। तिन(स्थिति,प्रभाव,सुख,द्युति,लेश्याविशुद्धि,इन्द्रिय,अवधि विषय)से
वा तैः	=अथवा तिन(स्थिति,प्रभाव,सुख,द्युति,लेश्याविशुद्धि,इन्द्रियविषय,अवधिविषय)करि
अधिकाः इति अस्मिन् उपरि उपरि	=अधिक अधिक हैं ऐसें तिस (ऊर्ध्वलोक) में ऊपर ऊपर
प्रति कल्पम् प्रति प्रस्तारम् च वैमानिकाः स्थिति-	=स्वर्गस्वर्ग प्रति और पटल प्रति वैमानिक देव स्थिति
आदिभिः अधिकाः इति अर्थः यथा स्थिति	=आदि करि अधिक अधिक हैं ऐसा आशय है जैसे स्थिति
आदिभिः उपरि उपरि अधिकाः एवम् गति-	=आदि करि ऊपर ऊपर अधिक अधिक हैं ऐसे गमन
आदिभिः अपि इति अतिप्रसङ्गे	=आदिकरि भी इस प्रकार अति प्रसक्ति अर्थात् विपरीत सम्बन्ध आने पर
तत्-निवृत्ति-अर्थम् आह	=उस (विपरीत प्रसक्ति) के निषेध के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्– गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीना ॥ २१ ॥

(वैमानिका उपर्युपरि) गति-शरीर-परिग्रह-अभिमानत हीना भवन्ति ॥

सूत्रार्थः–वैमानिकाः उपरि उपरि	=वैमानिक देव हैं वे ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति पटल पटल प्रति
गति-शरीर-परिग्रह अभिमानतः हीनाः	=गमन, शरीर की उच्चता, परिग्रह और अहंकार करि घटते घटते हैं

इदानीं वैमानिकेषु लेश्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

इदानीं=वैमानिकेषु लेश्या विधि प्रतिपत्ति अर्थम्॥ आह=अब वैमानिक देवोंमें लेश्याके नियमकी प्राप्तिके लिए (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्— पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु" ऐसा है श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका और हमारे यहांका पाठ एक है। हमारे यहां इस सूत्रका अर्थ सामान्यरूपसे और विशेषरूपसे पहले ग्रन्थकारसे किया है। एकसा पाठ होने पर भी अर्थ भेद है जिसको सविस्तार निम्नलेख में दिखलाते हैं।

श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका 'सिद्धसेनसूरि रचितका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु"

'पूर्वत्र बहुव्रीहिस्तत्र द्वन्द्वः। यथासंख्यं चाभि सम्बन्धः कार्यः। उपर्युपरि वैमानिका इत्यादि भाष्यम् पृष्ठ १८०—इस सूत्रके पहले पीतपद्मशुक्ललेश्या तक बहुव्रीहि समास है आगे द्वित्रिशेषेषु तक द्वन्द्व समास है। यथासंख्य शब्द इस सूत्रमें समझना चाहिये। उपर्युपरि वैमानिका इत्यादिक भाष्य का व्याख्या है। स्मरण रहे कि सौधर्मैशान इत्यादि सूत्र २० में ब्रह्मोत्तर, कापिष्ठ शुक्र शतार ये चार स्वर्ग नहीं माने हैं इसलिये उनके यहां दोनों भाष्योंके अनुकूल बारह स्वर्गोंमें "समानत्वेऽप्युपर्युपरिविशुद्धितरकाः सौधर्मैशानयोः ... " पृष्ठ १८० सानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकेषु ... =(लेश्याओंमें) समानता होनेपर भी(=सति अपि)ऊपर ऊपरके देवोंकी लेश्या अधिक विशुद्ध है। सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें पीतलेश्याके धारक देव हैं। सानत्कुमार-माहेन्द्र और ब्रह्मलोक (स्वर्गों)में पद्मलेश्या वाले देव हैं। लांतवसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक शुक्ललेश्या के प्रेमी देव हैं।

श्वेताम्बरस० 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र"तथा मेरुमदर्शककोषका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वि त्रिशेषेषु" ॥ २१ ॥

भाष्यम्—उपर्युपरि वैमानिका सौधर्मादिषु द्वयोस्त्रिषु शेषेषु च पीतपद्मशुक्ललेश्या, भवन्ति यथासंख्यम् ॥ द्वयोः पीतलेश्या सौधर्मैशानयोः। त्रिषु पद्मलेश्या सानत्कुमार माहेन्द्रब्रह्मलोकेषु। शेषेषु लान्तकादिष्वासर्वार्थसिद्धाच्छुक्ललेश्या। उपर्युपरि तु विशुद्धतरेत्युक्तम् =ऊपरऊपर वैमानिकसौधर्मादिक दो(स्वर्ग वा कल्प)में, तीनस्वर्गोंमें और (=च) बचेहुये (सातस्वर्ग-नवग्रैवेयक पंचोत्तर विमानोंमें) पीत पद्म-शुक्ललेश्या क्रम से हैं।

दो सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें पीतलेश्या है। तीन सानत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्मलोकमें पद्मलेश्या है। बचेहुये लांतवआदिमें अर्थात्महाशुक्रसहस्रार आनत प्राणत आरण अच्युत नवग्रैवेयक, पांच विजय वैजयंत जयंत अपराजित (=आदिषु)मेंमें सर्वार्थसिद्धि, पर्यंतमें(आ-सर्वार्थसिद्धेः) शुक्ललेश्या है (और समान लेश्याओं में भी) ऊपर ऊपर के देवों की लेश्या अधिक विशुद्ध है ऐसा कहचुके हैं (सभाष्य० पृष्ठ ११२)

श्वेताम्बर आम्नायके उक्त दोनों भाष्योंके अर्थ करने पर एक ही भाव या अभिप्राय प्रगट होता है यद्यपि सूत्र पाठमें भेद है सम्भव है कि सभाष्य०के पाठमें द्वि त्रि 'द्वि त्रि के स्थानमें प्रयुक्त हुआ हो या प्रयुक्त लिखगया। क्योंकि अन्यथा उक्त सूत्रका कोई अनुवाद समाधान योग्य नहीं होसका है

अर्द्धतृतीयारत्निप्रमाणम् ॥ मध्यग्रैवेयकेष्वरत्निद्वयप्रमाणम् ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु अनुदिशविमानेषु च अध्यर्द्धारत्निप्रमाणम् ॥ अनुत्तरेष्वरत्निप्रमाणम्॥ परिग्रहश्च विमानपरिच्छदादिरुपर्युपरि हीन ॥ अभिमानश्चोपर्युपरि तनुकषायत्वाद्धीन ॥ पुरस्तात्त्रिषु निकायेषु देवानां लेश्याविधिरुक्त

अर्द्ध-तृतीया-(१)अरत्नि प्रमाणम्॥ मध्य-ग्रैवेयकेषु॥	=अढ़ाई हाथ परिमाण (शरीर) है। मध्य ग्रैवेयक (तिकड़ी) में
अरत्निद्वय-प्रमाणम्॥ उपरिम-ग्रैवेयकेषु॥	=दो हाथ माप (शरीर) है। उपरिम ग्रैवेयक (तिकड़ी) में
अनुदिश-विमानेषु॥ च॰ अध्यर्द्ध अरत्नि प्रमाणम्॥ ॥	=और अनुदिश (नव) विमानोंविषैं डेढ़ हस्त प्रमाण(शरीर) है।
अनुत्तरेषु॥	=अनुत्तर (विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि) विषैं
अरत्नि-प्रमाणम्॥ । परिग्रहः॥ च॰ विमान (२)परिच्छद	=एक हाथ प्रमाण (शरीर) है। बहुरि परिग्रह विमान परिवार (=परिच्छद)
आदिः॥ ऊपरि॰ऊपरि॰हीन ॥ अभिमानः॥ च॰ उपरि॰उपरि॰	=आदिक ऊपर ऊपर घाटि घाटि है। बहुरि अभिमान वा अहंकार ऊपर ऊपर
तनु कषायत्वात्॥ हीनः॥ पुरस्तात् त्रिषु॥	=थोड़ी वा मंद कषाय होने स हीन है। पहिले तीन
निकायेषु॥ देवानाम्॥ लेश्या-विधिः॥ उक्तः॥	=समुदायके देवोंके लेश्याका नियम कहा गया।

(१) अरत्नि—(पु॰)(क)कुहनी(ख)मुट्ठी(ग)-पु॰स्त्री-कोहनीसे लेकर कनिष्ठका पर्यन्त हाथकी लंबाई(वैद्यकशब्दपृष्ठ १२) (कनिष्ठा छिगुनीको कहते हैं)

अरत्नि—(पु॰) "चौथी अंगुलीको फैलाकर मुट्ठी बांधा हुआ हाथ" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४१ ॥ चौथी अंगुली कनिष्ठा वा छिगुनीको कहते हैं॥

रत्नि—(पु॰स्त्री) बंधीहुई मुट्ठी वाले हाथ का माप (पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४१६ ॥ अमरकोष १६ वर्ग श्लोक ८६ में बंधीहुई मुट्ठी सहित हाथ ॥ उपर्युक्त लेखसे विदित है कि अरत्नि एक छगुनी (एक कनिष्ठा अंगुली) के बराबर रत्नि से बड़ी है और एक हस्त हाथ से न्यून है जैसाकि हलायुध ग्रन्थकारके निम्न लिखित श्लोक से प्रगट है

मध्यांगुली कुर्परयोर्मध्ये प्रामाणिक करः। (मध्य अंगुली-कुर्परयो) =बीचकी अंगुली और कुहनी(=कुर्पर)के बीचमें जो मापागया है वह हाथहै ॥

बद्धमुष्टि करो रत्निररत्नि सकनिष्ठक ॥ (बद्धमुष्टिकर रत्निः अरत्नि) =बंधी हुई मुट्ठी सहित हाथ है सो रत्नि है और बंधीहुई मुट्ठी सहित हाथ मय फैली हुई छगुनी के अरत्नि है अर्थात् कोहनी से लेकर कनिष्ठका तक लंबाई को अरत्नि कहते हैं जो हाथ भरसे एक इंच हीन होती है॥

(२) परिच्छेद—(पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २३० में) विशेष रूप से इयत्ताकरण सर्ग अध्याय, सीमा विचार अर्थो में है परन्तु परिच्छद का अर्थ (पृष्ठ २३०) में उपकरण सामान कपड़ा गहना-परिवार के हैं यहांपर परिवार के अर्थ में है॥ परिच्छद के स्थानमें परिच्छेद अशुद्ध छपगया है। हस्त लिखित प्रति पृष्ठ ३३ पर 'परिग्रहश्च विमान परिच्छदादि' ऐसा पाठ है॥ (३) विमान शब्द पुल्लिंग और नपुसक लिंग दोनोंमें आता है॥

पीता च पद्मा च शुक्ला च ता पीतपद्मशुक्ला । पीतपद्मशुक्ला लेश्या येषा ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥ कथं ह्रस्वत्वम् ?।

सौधर्म ऐशानमें पीतलेश्यावाले देव और सानत्कुमार माहेन्द्रमें पीत पद्म दोनों लेश्यावाले देव और ब्रह्मलोक ब्रह्मोत्तर और लान्तव कापिष्ठमें पद्मलेश्यावाले देव, शुक्र महाशुक्र और शतार सहस्रारमें पद्म शुक्ल दोनोंलेश्यावाले देव आनत प्राणत और आरण अच्युत और नव ग्रैवेयकोंमें शुक्ललेश्यावाले देव और नव अनुदिशमें और पांच अनुत्तरोंमें देव परम शुक्ल लेश्या वाले हैं ॥

वृत्त्यनुवादः–पीता१॥च॥पद्मा१॥च॥शुक्ला१॥च॥ =और पीता और पद्मा तथा शुक्ला हैं

ता१॥पीत-पद्म-शुक्ला१॥पीत-पद्म शुक्ला १॥लेश्या१॥येषाम्६॥ =जो पीतपद्मशुक्ला (द्वंद्व समास रूपमें)हैं। पीत पद्म और शुक्ल हैं लेश्यायें जिनके

ते१॥पीत-पद्म शुक्ल-लेश्याः१॥ =वे पीत-पद्म शुक्ललेश्यावाले(देव)हैं (यह वाक्य द्वन्द्वगर्भित बहुव्रीहि समासमें है) अर्थात् 'पीतपद्मशुक्ला१॥' यह वाक्य स्त्रीलिंग द्वन्द्व समासमें है और 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः१॥' यह वाक्य पुरुषलिंग द्वंद्व समास गर्भित बहुव्रीहिसमासमें है। सारांश पीत, पद्म, शुक्ललेश्या जिनके हैं वे पीत-पद्म-शुक्ललेश्या सहित देव हैं ॥

कथं॥ह्रस्वत्वम्१॥ ? =(प्रश्न) ह्रस्वपना या लघुपना (पीता, पद्मा और शुक्ला शब्दों के) कैसे हुआ ?

इस प्रश्न का दोहरा तात्पर्य है प्रथम यह कि पीता-पद्मा-शुक्ला तीनों शब्दोंका द्वंद्वसमास किया है तो 'पीतापद्माशुक्ला१॥' ऐसा रूप होना चाहिये क्योंकि द्वन्द्वसमासमें जो शब्द समुच्चय किये जाते हैं वे ह्रस्व हों तो ह्रस्व बने रहते हैं और दीर्घ हों तो दीर्घ बने रहते हैं द्वंद्वसमासमें पूर्व पदका कभी ह्रस्व नहीं होता है। जैसे हरिश्च हरश्च=हरिहरौ(विष्णु और महादेव)ईशश्च कृष्णश्च ईशकृष्णौ(शिव औरकृष्ण) माता च पितरा च=माता पितरौ (मा और बाप) इसलिये 'पीतापद्माशुक्ला१॥' रूप होना चाहिये। दूसरा तात्पर्य है कि यदि हम 'पीतापद्माशुक्ला१॥' द्वंद्व समासमें 'लेश्या' शब्द मिलाकर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास करदें तो 'पीतापद्माशुक्लालेश्याः१॥' ऐसा रूप होना चाहिये 'शुक्ला' शब्दका 'शुक्ल' ह्रस्व कैसे हुआ ॥ (उत्तर)

(उपर्युपरि वैमानिका) पीत-पद्म-शुक्ललेश्या द्वि-त्रि-शेषेषु (यथासंख्यम्) (भवन्ति)

उपरि॰उपरि॰वैमानिकाः॥पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः॥	=ऊपर ऊपर रहनेवाले वैमानिक देव पीत पद्म और शुक्ललेश्याओं के धारक
यथासंख्यम्॰द्वि	=क्रमसे (सामान्यपनेसे) दो (युगल सौधर्मैशान और सानत्कुमार माहेन्द्र) में
त्रि	=तथा तीन (युगल ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर और लांतव कापिष्ठ और शुक्र महाशुक्र) में
शेषेषु॥	=बचे हुये (शतार-सहस्रार और आनत-प्राणत और आरण अच्युत तथा नवग्रैवेयक और नव अनुदिशों और पांच अनुत्तर)निमें हैं परन्तु विशेष रीति से

केवल शब्दशः यह अनुवाद होसकता है कि पीत पद्म और शुक्ल लेश्यायें दो प्रकार प्रकार (भिन्न भिन्न-स्वर्गों) में होती हैं यह सुस्पष्ट नहीं है न किसी तात्पर्य को स्पष्ट रूपसे प्रगट करता है। पंडित ठाकुर प्रसादजी ने 'सौधर्मादि कल्पोंमें प्रथक् दो कल्पोंमें तो पीत लेश्या है, और उसके आगे तीन कल्पोंके देवोंमें पद्मलेश्या है, और आगे शेष देवोंमें शुक्ललेश्या है" अर्थ किया है सो 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका'के अनुकूल है इस सूत्रके पाठानुसार नहीं है। जो समझमें आया है वही लिखा है विशेष रूपसे पाठकगण अन्वेषण करलें।

दोनों समाजोंमें सूत्रका अर्थ भेद उपयुक्त टिप्पणीसे और हमारे यहां के मूल अर्थ से (जो विशेषरूप से किया है) इस प्रकार प्रगट होता है कि

() श्वेताम्बर आम्नायमें सौधर्म-ऐशान स्वर्गोंमें पीत लेश्या है वही पीतलेश्या दिगम्बर आम्नायके अनुकूल सौधर्म-ऐशान कल्पोंमें है

() श्वेताम्बरीय भाष्योंमें सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंमें पद्मलेश्या है। पीतलेश्या और पद्मलेश्या दिगम्बर समाजके अनुसार सानत्कुमार माहेन्द्रमें हैं

() श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ब्रह्मलोक स्वर्गमें पद्मलेश्या है वही पद्मलेश्या दिगम्बर आचार्यों के अनुकूल ब्रह्मलोक स्वर्ग या कल्पमें है

() श्वेताम्बर आचार्योंमें लान्तक कल्पमें शुक्ललेश्या है परन्तु पद्मलेश्या दिगम्बर आम्नायके अनुकूल लान्तव (=लान्तक) स्वर्गोंमें है

() श्वेताम्बर समाजमें महाशुक्र सहस्रार कल्पोंमें शुक्ललेश्या है परन्तु पद्म शुक्ललेश्यायें दिगम्बर सिद्धान्तके अनुसार महाशुक्र-सहस्रारस्वर्गों में हैं

() श्वेताम्बर भाष्योंमें आनत प्राणत आरण अच्युत-नवग्रैवेयक-पांच अनुत्तरोंमें शुक्ललेश्या है वही शुक्ललेश्या दिगम्बराचार्योंमें नव अनुदिश सहितमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ शुक्र-शतार स्वर्गोंको श्वेताम्बरोंने नहीं माना है इससे मिलान नहीं होसकता है हमारे यहां ब्रह्मोत्तर कापिष्ठमें पद्म, शुक्र शतारमें पद्मशुक्ल लेश्यायें मानी हैं

(१) वैमानिकाः' सोलहवांसूत्रसे और(२)उपर्युपरि अठारहवां सूत्र से अनुवर्तितहैं(३) यथासंख्यम् शब्दका अध्याहार सूत्रार्थ स्पष्टकेलिये कियागयाहै

(४) तेषाम्॥रक्तलेश्याः॥येषां॥	=तिन पीत पद्म शुक्ल रंगवाले पदार्थों के सदृश हैं लेश्यायें जिन (देवों) के
ते॥पीत-पद्म शुक्ललेश्या॥	=वे पीत पद्म और शुक्ल लेश्यावाले (देव) हैं।

अष्टाध्यायी अध्याय छह पाद तीन सूत्र (१) चौतीसवें अथवा जैनेन्द्र व्याकरण अध्याय चार पाद तीन सूत्र एकसौ छयालीसवें से (देखो निम्नलिखित टिप्पणी) पुंवद्भाव होकर (अर्थात् शुक्ला के आकारका अकार होकर पुरुष लिंगी शब्दके सदृश तात्पर्यको प्रगट करते हुये) 'शुक्ल' शब्द होगया अतः 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' ऐसा वाक्य होगया भावार्थ "पीतपद्मशुक्ला॥लेश्याः॥येषाम्॥(=पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥) यहांपर शुक्लाशब्द स्त्रीलिंग है उसके समान आकृति (=रूपवाला) और समान भावका (=भावका) द्योतक पुल्लिंग शब्द 'शुक्ल' है। इस स्त्रीलिंग शब्द 'शुक्ला'के अन्तमें 'ऊङ्' प्रत्यय नहीं है वरन अन्तमें 'आ' प्रत्यय है इस (शुक्ला शब्द)के पश्चात् वा उत्तरमें 'लेश्या' स्त्रीलिंग शब्द है यह 'लेश्या' शब्द शुक्ला शब्दके साथ समानाधिकरणमें है और यह लेश्या शब्द क्रमिक संख्या (जैसे पहला दूसरा-तीसरा चौथा इत्यादि) नहीं है और न प्रियादि गणके शब्दोंमें से एक शब्द है इसलिये यह शब्द 'शुक्ला'को स्त्रीलिंग है अपने अनुरूप वाले 'शुक्ल' पुल्लिंग शब्दमें पलट जाता है इसलिये 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यके स्थानमें उक्त सूत्र द्वारा 'पीतपद्मशुक्ल-लेश्याः' ऐसा वाक्य बनगया। इस 'शुक्ला' शब्दका इसीप्रकार से पुंवद्भाव हुआ है जिस प्रकारसे 'दर्शनीया' शब्दका पुंवद्भाव होकर 'दर्शनीय' शब्द दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य) वाक्यमें बन जाता है॥ अर्थात् दर्शनीयाभार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः हुआ।

पूज्यपाद स्वामीने 'गुणायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' पतञ्जलि वार्तिकको प्रमाणरूपमें केवल इसीलिये दिखाई कि जैसे पतञ्जलिने मध्यमाका मध्यम विलम्बिता अगलेपद होतेसंते करदिया उसीप्रकार उमास्वामीने 'पीता पद्मा' को शुक्ला परे होते संते क्रमसे पीत पद्म करदिया॥ उनको इस वार्तिक के वस्तुतः अर्थसे कुछ प्रयोजन नहीं और यथार्थ अर्थ इस वार्तिकका सूत्रके अर्थ वा भावसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता वार्तिकका अर्थ पृष्ठ६८–७४ तकहै।

(१)स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ६।३।३४ ॥ स्त्र्युक्तपुंस्कादनूङ्टेकार्थे ऽत्रड् प्रियादौ स्त्रियां पुंवत् ॥ ४।३।१४६
=स्त्रियाः॥ पुंवत्॥ भाषितपुंस्कात्॥ अनूङ्॥ समानाधिकरणे॥॥ स्त्रियाम्॥ अपूरणीप्रियादिषु,। ॥(अपूरणी-अप्रियादिषु)

स्त्रियाः॥ पुंवत्॥ समानाधिकरणे,॥। =स्त्रीलिंग शब्दका पुंवत्का समास रूप हो जब (समास में) समानाधिकरण में अथवा एकान्वय में

स्त्रियाम्,॥ अपूरणी =ऐसा स्त्रीलिंग(शब्द) उत्तरपद हो जो क्रमिक संख्या(प्रथम दूसरा-तीसरा-चौथा पांचवा इत्यादि)न हो और

प्रियादिषु,। =न प्रियादिगण के शब्दोंमेंसे कोई शब्द हो। (और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्दका)

भाषितपुंस्कात्॥ अनूङ्॥ =पूर्वपद भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि जिसके अन्तमें (स्त्रीलिंग) ऊङ् प्रत्यय न हो। जैसे दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य)। यहां दर्शनीया' स्त्रीलिंग शब्द है जिसका अनुरूप पुल्लिंग शब्द उसी आकृति और उसी अर्थवाला दर्शनीय शब्द है। इस 'दर्शनीया' शब्द के अन्तमें ऊङ् प्रत्यय नहीं है वरन 'आ' है इस दर्शनीया' शब्द के पश्चात् स्त्रीलिंगी शब्द भार्या है जो दर्शनीया शब्द के साथ एकान्वयमें है॥

श्रोत्तरपदिकम् ।

प्रोत्तरपदिकम् =अग्रिम पद (दीर्घ) रहनेसे पूर्व पदको ह्रस्व हुआ है अर्थात् 'पीतापद्मा' द्वंद्वसमासमें 'पद्मा' अग्रिम पद स्त्रीलिंग दीर्घ होनेसे 'पीता' का तकार ह्रस्व होकर 'पीतपद्मा' हुआ पश्चात् 'पीतपद्माशुक्लाः॥' वाक्य में 'शुक्ला' शब्द स्त्रीलिंग दीर्घ पद होने से 'पद्मा' का ह्रस्व हुआ, अतः 'पीतपद्मशुक्लाः' ऐसा वाक्य द्वन्द्वसमास स्त्रीलिंग प्रथमा विभक्ति बहुवचनमें बनगया। स्मरण रहे कि यहांपर 'पीतापद्मा' शब्दोंको पुंवद्भाव (=पुरुषलिंगी शब्दकेसदृश तात्पर्यको प्रगट करनेवाला) नहीं हुआ, केवल पीता पद्मा ह्रस्व होगये हैं॥ 'पीतपद्मशुक्लाः॥' वाक्य का अर्थ 'पीत और पद्म और शुक्ल' है ऐसा है। ऐसा रूप बनजानेके लिये कोई व्याकरणका नियम और वार्तिक इस विषयपर नहीं है। श्री पतञ्जलिमुनिने जिनका अस्तित्व खृष्टीयशतकसे लगभग १५० वर्ष पहिले निर्णय कियागया है और जिनने पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायी पर लगभग एकलाख श्लोकका महाभाष्य रचा है उनने अध्याय १ पाद १ सूत्र ७० 'तपरस्तत्कालस्य' पर 'द्रुतायां तपर करणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' यह वार्तिक उक्तमहाभाष्यमें दी है इसमें 'मध्यमविलम्बितयोः' ='मध्यमा च विलम्बिता च मध्यमविलम्बिते तयोः' का प्रयोग किया है इस द्वंद्वसमास युक्त पदमें 'विलम्बिता' उत्तर पद दीर्घ रहनेसे 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्वकर निर्देश किया है। जैसे इस द्वंद्वसमास युक्तपद में 'विलम्बिता' उत्तर दीर्घ पद रहनेसे 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्वकर निर्देश किया है उसी प्रकार यहांपर 'पद्मा' अग्रिम पद रहते 'पीता' को ह्रस्व किया और 'शुक्ला' को उत्तरपद रहते 'पद्मा' को ह्रस्व किया। यह एक बात प्रसिद्ध है कि यदि किसी रूपकी सिद्धिके लिये व्याकरणमें किसी सूत्र, वार्तिक वा अन्य नियमका अभाव हो और किसी शब्दको किसी रूपमें (चाहें वह व्याकरणके विरुद्धही क्यों न हो) पाणिनि,कात्यायन,पतञ्जलि योगी और श्रीकुन्दकुन्द, उमास्वामी, भद्रबाहु स्वामी इत्यादि आचार्य प्रयोग करदें वह शुद्ध मानलिया जाताहै और उसको आर्ष प्रयोग भी कहतेहैं यही दशा हमारे 'पीतापद्मा'वाक्यकी है। उक्त वार्तिकके अनुवादमें हम इसकी पूरी व्याख्या देंगे॥'ह्रस्व'के लिये उत्तरपद दीर्घ और स्त्रीलिंगमें होना चाहिये॥

दूसरी शंका (कि 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यमें शुक्ला शब्दका ह्रस्वहोकर 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥' वाक्य कैसे होगया) का उत्तर पीत और पद्म और शुक्ल हैं लेश्या जिनके वे पीत और पद्म और शुक्ल लेश्यावाले (देव) हैं। ऐसा अर्थ 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥' इस द्वंद्व गर्भित बहुव्रीहि समास वाले वाक्य का हुआ॥ 'शुक्ला' शब्दका

अष्टाध्यायी अध्याय छः पाद तीन सूत्र (१) चौतीसवें अथवा जैनेन्द्र व्याकरण अध्याय चार पाद तीन सूत्र एकसौ छयालीसवें से (देखो निम्नलिखित टिप्पणी) पुंवद्भाव होकर (अर्थात् शुक्ला के आकारका अकार होकर पुरुष लिंगी शब्दके सदृश तात्पर्यको प्रगट करते हुये) 'शुक्ल' शब्द होगया अतः 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' ऐसा वाक्य होगया भावार्थ 'पीतपद्मशुक्लाः'।'लेश्याः'।'यषाम्'।(=पीतपद्मशुक्ललेश्याः।) यहांपर शुक्लाशब्द स्त्रीलिंग है उसके समान आकृति (=रूपवाला) और समान भावका (=आशय) द्योतक पुल्लिंग शब्द 'शुक्ल' है। इस स्त्रीलिंग शब्द 'शुक्ला'के अन्तमें'ऊङ्' प्रत्यय नहीं है वरन अंतमें 'आ' प्रत्यय है इस (शुक्ला शब्द)के पश्चात् या उत्तरमें 'लेश्या' स्त्रीलिंग शब्द है यह'लेश्या' शब्द शुक्ला शब्दके साथ समानाधिकरणमें है और यह लेश्या शब्द क्रमिक संख्या (जैसे पहला दूसरा-तीसरा चौथा इत्यादि) नहीं है और न प्रियादि गणके शब्दोंमें से एक शब्द है इसलिये यह शब्द 'शुक्ला'जो स्त्रीलिंग है अपने अनुरूप वाले 'शुक्ल' पुल्लिंग शब्दमें पलट जाता है इसलिये 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यके स्थानमें उक्त सूत्र द्वारा 'पीतपद्मशुक्ल-लेश्याः' ऐसा वाक्य बनगया। इस 'शुक्ला' शब्दका उसीप्रकार से पुंवद्भाव हुआ है जिस प्रकारसे 'दर्शनीया' शब्दका पुंवद्भाव होकर 'दर्शनीय' शब्द दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य) वाक्यमें बन जाता है ॥ अर्थात् दर्शनीयाभार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः हुआ।

पूज्यपाद स्वामीने 'द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' पतञ्जलि वार्तिकको प्रमाणरूपमें केवल इसीलिये दिया है कि जैसे पतञ्जलिने मध्यमाका मध्यम विलम्बिता का लोप होतेसंते करदिया उसीप्रकार उमास्वामीने 'पीता पद्मा' को शुक्ला परे होते संते क्रमसे पीत पद्म करदिया ॥ उनको इस वार्तिक के वस्तुतः अर्थसे कुछ प्रयोजन नहीं और यथार्थ अर्थ इस वार्तिकका सूत्रके अर्थ वा भावसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता वार्तिकका अर्थ पृष्ठ६८-७४ तकहै।

---

(१)स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ॥६।३।३४॥ स्त्र्युक्तपुंस्कानूङ्याप्ये प्रवद् प्रियादौ स्त्रियां पुंवत् ॥ ४।३।१४६
=स्त्रियाः।॥ पुंवत्॥भाषितपुंस्कात्।अनूङ्।समानाधिकरणे,॥स्त्रियाम्।॥अपूरणीप्रियादिषु,।॥(अपूरणी-अप्रियादिषु)

स्त्रियाः।॥पुंवत्॥समानाधिकरणे,॥ =स्त्रीलिंग शब्दका पुंवाचक समान रूप हो जब (समास में) समानाधिकरण में अथवा एकान्वय में

स्त्रियाम्,॥अपूरणी =ऐसा स्त्रीलिंग(शब्द) उत्तरपद हो जो क्रमिक संख्या(प्रथम दूसरा-तीसरा-चौथा पांचवा इत्यादि)न हो और

प्रियादिषु।। =न प्रियादिगण के शब्दोंमेंसे कोई शब्द हो। (और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्दका)

भाषितपुंस्कात्,।अनूङ्।। =पूर्वपद भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि जिसके अन्तमें (स्त्रीलिंग) ऊङ् प्रत्यय न हो। जैसे दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य)। यहां 'दर्शनीया' स्त्रीलिंग शब्द है जिसका अनुरूप पुल्लिंग शब्द उसी आकृति और उसी अर्थवाला दर्शनीय शब्द है। इस 'दर्शनीया' शब्द के अन्तमें ऊङ् प्रत्यय नहीं है वरन 'आ' है इस दर्शनीया' शब्द के पश्चात् स्त्रीलिंगी शब्द भार्या है जो दर्शनीया शब्द के साथ एकान्वयमें है ॥

यथाहु द्रुताया तपरकरणे

यथा॰आहुः तपरकरणे॥	=जैसा कि वे कहते हैं कि 'तपर' करनेपर अर्थात् तकार जिससे परे करना हो, जिसके पश्चात् तकार जोड़ना हो या लगाना हो अथवा तकार से जिसको परे करना हो, तकार से जिसको पश्चात् लाना हो तो (ऐसे प्रयोग में)
द्रुतायाम्॥	=द्रुता वृत्तिमें अर्थात् शीघ्र उच्चारण की चाल, ढंग, क्रिया अथवा रीतिमें; शब्द क जल्दी बोलनेमें

या सामानाधिकरणमें है और यह भार्या शब्द क्रमिक संख्या वाला नहीं है और न प्रियादिगणके शब्दोंमेंसे कोई शब्द है अतः 'दर्शनीया' शब्द अपने अनुरूपक पुलिंगशब्द 'दर्शनीय'में पलट जाता है। ऐसेही दीर्घजङ्घः =दीर्घा जङ्घा यस्य दीर्घजङ्घ जिसकी जांघ बड़ी है और रूपवती भार्या यस्य = रूपवद्भार्यः॥

स्त्री॥पुंवत्॰भार्ये,। =(जैनेन्द्र व्याकरणके अध्याय ४ पाद ३ सूत्र १४५ का अनुवाद) स्त्रीलिंग शब्द पुलिंग सदृश हो जब (समासमें) एक अर्थमें

स्त्रियाम्,॥समडर्[प्रियादौ]॥ =ऐसा स्त्रीलिंग (शब्द) उत्तर पद हो जो संख्या न हो (=अष्ट॰ अष्टाध्यायी १-१-२३) न प्रियादि पद में (से) हो

उक्त-पुंस्कात्,। =(और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्द का) पूर्व पद भाषित पुंस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि

अन्-ऊङ्। =जिसके अन्त में ऊ प्रत्यय न (=अन्) हो। ऊङ् प्रत्ययके ङ् का इत् संज्ञक होनेसे लोप होजाता है ऊ शेष रहजाता है

प्रियादि शब्द ये हैं (१) प्रिया (२) मनोज्ञा (३) कल्याणी (४) सुभगा (५) दुर्भगा (६) भक्ति [७] सचिवा (८) स्वा (स्वसा) (९) कान्ता (१०) क्षान्ता (११) समा (१२) चपला (१३) दुहिता (१४) वामना (वामा) (१५) तनया [१६] अम्बा। इन शब्दोंमें एकमति समास नियम विरुद्ध है॥

(१) आहु यह शब्द हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ६६ पर नहीं है न राजवार्तिकमें है जिसका लेख लगभग वही है जो सर्वार्थसिद्धिमें है हस्तलिखित प्रति में 'यथा द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति द्रुतमध्यमविलम्बिता इति' ऐसा पाठ है अर्थात् 'आहु शब्द नहीं है और 'द्रुतमध्यमविलंबिता इति यह वाक्य अधिक है। हमने यह पाठ नहीं लियाहै क्योंकि श्रीपतञ्जलिकी वार्तिक केवल 'उपसंख्यानम्' तक है॥

[२] द्रु —यह शब्द सकर्मक अकर्मक परस्मैपद भ्वादि प्रथम गणका धातु है यह () बहना दौड़ना उड़ना दौड़पड़ना आक्रमणकरना ()गलजाना पतला होजाना इत्यादि अर्थोंमें आता है। जब द्रु, (पु॰। न॰) में लगा जाता है तो काठ, काठ का बनाहुआ लाबर, इन दो अर्थों में आता है ॥ 'द्रु' में त जोड़नें से 'द्रुत' विशेषणी होजाता है और ता जोड़ने पर द्रुता स्त्रीलिंग होजाता है जल्दी पिघला हुआ भागा हुआ अर्थोंमें प्रयोग कियाजाताहै। द्रुत पुलिंगमें वृक्ष बिच्छी बीछूके अर्थोंमें आता है द्रुतम् अव्यय है॥ जल्दी शीघ्र अर्थोंमें आता है॥ द्रुता यहांपर स्त्रीलिंग एक वचन सप्तमी विभक्तिमें 'द्रुतायाम्' ऐसे रूपमें शीघ्रता के अर्थमें आया है॥ श्लोकवार्तिक हस्त लिखित में "द्रुतायाम् सप्तमी एक वचन स्त्रीलिंगमें है परन्तु मुद्रित श्लोक वार्तिक पृष्ठ ३८४ पर द्रुतायाः पंचमी विभक्ति एक वचन नपुंसक लिंग तपरकरणात् शब्द से प्रथम आया है॥ द्रुतायाः =यहां पर 'शीघ्रतासे' इस अर्थमें आया है॥

मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति ॥

मध्यम	=मध्यमा वृत्तिका अर्थात् मध्यमकालिक उच्चारणका और
विलम्बितयोः¹ उपसंख्यानम्²॥ इति॥	=विलम्बिता वृत्ति अर्थात् विलम्ब या देरीकालिक उच्चारणका समावेश या अन्तर्गतहोना चाहिये
	(इस वार्तिक सम्बन्धीय, इतिहास, व्याख्या, श्री पतञ्जलिका भाष्य अनुवाद सहित नीचे टिप्पणी में देख रहे)

विक्रम शतकसे लगभग ६५० वर्ष पूर्व श्री पाणिनिजी ने जो शालोंके पुत्र शलातुरीय नामक ग्राममें उत्पन्न हुये थे अष्टाध्यायीरूप व्याकरण जिसमें ३९७५ सूत्र हैं बनाया तत्पश्चात् खृष्टीय शतकसे ६५० वर्ष पहिले कात्यायन मुनिने पाणिनि मुनिके सूत्रोंमें जो त्रुटि थी उसको दूर करनेके लिये लगभग एक सहस्र अस्सी वार्तिक रचे। तत्पश्चात् पतंजलि मुनिने खृष्टीय शतकसे १५०वर्ष पूर्व अष्टाध्यायीके सूत्रों पर महाभाष्य रचा जिसमें लगभग एक लाख श्लोक हैं इससे बड़ा कोई भाष्य या वृत्ति उक्त व्याकरण पर नहीं है। खृष्टीय शतक ६५५में भर्तृरचित भागवृत्ति इसी अष्टाध्यायी पर रचीगई। इसके कुछ समय पश्चात् लगभग ६५० खृस्ताब्दीमें वामन जी और जयादित्यजीने 'काशिकावृत्ति' लगभग दशसहस्र श्लोक के रची। इसी अष्टाध्यायी की इसी काशिका वृत्तिके ऊपर जिनेन्द्रबुद्धि (द्वितीय पूज्यपाद स्वामी) ने खृष्टीय ७०० से ७५० तक 'काशिकाविवर्ण पञ्जिका' इस काशिका पर बनाई जिसकी श्लोक संख्या १०००० सहस्र से अधिक है। इसका सम्पादन श्रीमान् शशीशचन्द्र चक्रवर्तिने कियाहै और वारिन्द्रअन्वेषण सभा,राजशाही प्रान्त से प्रकाशित हुई है। स्मरण रहे कि प्रथम पूज्यपाद स्वामी सर्वार्थसिद्धि वृत्ति के कर्ता ने विक्रम सम्वत् ५५० के लगभग जैनेन्द्र व्याकरण रचा॥ इसके पश्चात् अष्टाध्यायी पर भाषावृत्तिअर्थात् वैदिक सूत्रोंका छोड़कर संस्कृतमें ही लघुभाष्य रचा इसके रचयिता पुरुषोत्तमदेव हुये। पश्चात् भट्टोजी दीक्षितने खृष्टीय बारहवीं शतकमें 'सिद्धान्त कौमदी' रची॥ इसमें पाणिनि मुनिके समस्त सूत्र हैं परन्तु सूत्रोंका क्रम भट्टोजी दीक्षितने परिवर्तन करदियाहै॥ इसकेपीछे मध्यकौमुदी रचीगई फिर श्रीयुत् वरदराजने लघुकौमदी रची जिसमें अष्टाध्यायीके १२००सूत्रसे अधिकहैं॥

इस महाभाष्यके रचनेके सम्बन्धमें एक मनोरञ्जक वृत्त कथा इस प्रकार है कि एक बार पतञ्जलिकी माता सूर्य्यको अर्घ देरही थीं कि अर्घ देते समय लोटेमेंसे एक सांपका बच्चा भूमिपर गिरपड़ा श्रीमतीकी जिव्हासे घबराहटमें 'को भवान्' (=आप कौन हैं) के स्थान में कोर्भवान्' निकलगया तब ('सर्पोऽहम्' के स्थानमें) उत्तर मिला कि 'सपोऽहम्' (=मैं सांप हूं)। तब माताजीने सावधानीमें आकर प्रश्न किया कि 'रेफकुतः गतः' अर्थात् सांप के बच्चे से पूछा कि तुमने अशुद्ध उच्चारण सर्पोऽहम्' के स्थानमें सपोऽहम्' क्यों किया फिर उत्तर मिलाकि 'त्वयाऽपहृत' अर्थात् रेफ तुमने हरलिया भावार्थ को भवान् के स्थानमें तुम 'कोर्भवान्' वाक्यका उच्चारण करगईं फिर मैंने सपोऽहम् कहदिया। कोर्भवान्' का रेफ यदि सपोऽहम्' वाक्य में मिलादियाजावे तो दोनों वाक्य 'को भवान्' (=आप कौन हैं) और 'सर्पोऽहम्' (मैं सांप हूं) ठीक होजावेंगे। पश्चात् ऐसा

प्रसिद्ध है कि विक्रिया ऋद्धिद्वारा सांपके बच्चेने ऋषिका रूप धारण करके इस 'महाभाष्य' को लिखा और महाशेषजी इसको एक कोठरीमें से बोलते गये। पतञ्जलि ऋषि के लगभग एक सहस्र शिष्य थे। इस भाष्यके लेख को रोककर उक्त ऋषि कहीं आवश्यकीय कार्यका गये और शिष्योंको उपदेश करगये कि कोठरीका आवरणपट न उठाना परन्तु आपको अनमय होगा कि जिस कामको लड़कोंसे कहो कि मत करना बस उसको अवश्यही करें आवरणपट खोलदिया तो ऐसा कहाजाता है कि उष्णताके कारण समस्त शिष्य भस्म होगये केवल दो चार शिष्य जो कार्यवश बाहर चलेगये थे जीवित रह। अष्टाध्यायीके आठ भागहैं पर महाभाष्य भी आठ भागोंमें काशी बंबई इत्यादि देशोंमें मुद्रित हुआहै। कहतेहैंकि कुछेक भाग इस भाष्यका जहांकहीं प्रकरण ठीकठीक नहीं मिलता है भस्म होगया ह अर्थात् उपहासमें प्रसिद्ध है कि ऋषिके अनुपस्थितिमें बकरी कुछ पत्र महाभाष्यके चरगई॥

इस बातके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है कि पूज्यपादस्वामीने जैनेन्द्र व्याकरण रचा और बड़े प्रकर्ष वैयाकरण थे उन्होंने कहीं पर भी इस समस्त सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें अन्य मतके किसी शास्त्रका प्रमाण नहीं दिया है जैनमतके ही शास्त्रोंका प्रमाण दिया है। इस वार्तिकका प्रमाण देनेके दो कारण सम्भव हैं प्रथम यह कि प्रश्न करनेवाला कोई अन्य मतका विद्वान् हो और वह जैनमतके शास्त्रोंके प्रमाणसे इस वैयाकरणीय प्रश्नके उत्तरसे सन्तुष्ट न हुआ हो तब उक्त स्वामीजीने उसको इस महाभाष्यकी पंक्तिसे सन्तुष्ट किया हो जो अन्यमतमें सबसे प्राचीन, महत्वका और प्रमाण शाली महाभाष्य है। दूसरे यहकि उनको भी उमास्वामीसे पूर्वका कोई प्राचीन प्रमाण जैनमतके ग्रन्थोंसे प्राप्त न होसका हो और उमास्वामी जिन्होंने सम्वत् १०१ में तत्त्वार्थसूत्र की रचना कीथी उनके पश्चात् के ग्रंथों द्वारा इस व्याकरणके प्रश्नका समाधान नहीं होसका है। इसीकारण से हमने उक्त इतिहास दिया है कि कोई अन्यमतका विद्वान 'पीत पद्म शुक्ललेश्याः' वाक्यकी रचना पर संदेह और तर्क न कर सके।

प्रथम इसके कि हम जो पतञ्जलिकी वार्तिक और उसकी संस्कृत व्याख्याका शब्दशः अनुवाद और भावार्थ लिखें 'अ' स्वरके अठारहरूप और अष्टाध्यायीके 'अणुदित्सवर्णस्य चा प्रत्ययः' सूत्र ६९ 'तपरस्तत्कालस्य' ॥ सूत्र७० । और विप्रतिषेधे परं कार्यम्। अध्यायप्रथम पादचौथा सूत्र दूसरे को समझादेवें कि उक्त वार्तिकका अनुवाद भले प्रकार और सरलता से पाठकोंकी समझ में आजावे।

'अ' स्वर के अठारह रूप हैं। उदात्त 'अ' जिसका उच्चारण तालु आदि स्थानोंके ऊपरके भागसे होता है। अनुदात्त 'अ' जिसका उच्चारण तालु आदि स्थानों के निचले भाग से होता है और स्वरित 'अ' जिसके उच्चारणमें उदात्त और अनुदात्त दोनों धर्मधर्म समान हों अर्थात् दोनों उदात्त अनुदात्त धर्मधर्म मिले हों। इन प्रत्येक तीन के अनुनासिक उच्चारण और निरनुनासिक उच्चारण से दोदो भेद होकर छह भेद 'अ' स्वर के हुये, पश्चात् प्रत्येक छह भेद ह्रस्व (एक मात्रिक उच्चारण) दीर्घ (दो मात्रिक उच्चारण) प्लुत (तीन मात्रिक उच्चारण)से अठारह भेद इस प्रकार होजातेहैं अ-अ॒-अ॑ अँ-अँ॒-अँ॑ । आ आ॒ आ॑ आँ आँ॒ आँ॑ । अ३-अ॒३-अ॑३ अँ३-अँ॒३-अँ॑३ । इनमें उदात्त पर कोई चिन्ह नहीं है, अनुदात्त 'अ' के नीचे ऐसी—लकीर है और स्वरित 'अ' के ऊपर देखो। खड़ी लकीर है॥

प्रथम उदात्त ह्रस्व निरनुनासिक' अ है। दूसरा 'अनुदात्त ह्रस्व निरनुनासिक' अ है। तीसरा 'स्वरित ह्रस्व निरनुनासिक' अ' है। (बिना नाक बोलो)
चौथा 'उदात्त ह्रस्व अनुनासिक' अँ है। पांचवां 'अनुदात्त ह्रस्व अनुनासिक' अँ है। छठवां 'स्वरित ह्रस्व अनुनासिक' अँ है। (नाकसे बोलो)
सातवां'उदात्तदीर्घ निरनुनासिक'आ है। आठवां'अनुदात्त दीर्घनिरनुनासिक' आ है। नववां स्वरित दीर्घ निरनुनासिक आ' है। (बिना नाक बोलो)
दशवां 'उदात्तदीर्घ अनुनासिक' आँ है। ग्यारहवां 'अनुदात्त दीर्घअनुनासिक आँ है। बारहवां स्वरित दीर्घ अनुनासिक आँ' है। (नासिकासे बोलो)
तेरहवां'उदात्त प्लुत निरनुनासिक अ३ है। चौदहवां'अनुदात्त प्लुत निरनुनासिक'अ३ है। पंद्रहवां'स्वरित प्लुत निरनुनासिक'अ' ३ है। (बिनानाक बोलो)
सोलहवां'उदात्त प्लुतअनुनासिक अँ३ है। सत्रहवां अनुदात्त प्लुत अनुनासिक' अँ३। अठारहवां'स्वरित प्लुत अनुनासिक' अँ' ३ है। (नाकसे बोलो)

() अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः = अण्।१। उदित्।१। सवर्णस्य।६।, चअप्रत्यय १। स्वम्।१।रूपम्।१॥ ॥ अष्टाध्यायी प्रथम अध्याय प्रथमपादका ६९ वां सूत्र

अण्।१। = प्रत्याहार अण् के अक्षर अर्थात् अ इ, उ ऋ, ऌ ए ओ ऐ, औ ह य व र, ल, जिनमें अ इ उ प्रत्येक के अठारह 'ऋ के अठारह और बारह 'ऌ के रूप मिलने से ऋकार के तीस रूप ऐसे ही ऌ के बारह रूप और ऋ से अठारह रूप मिलने से ऐसे ऌ कारके भी तीस रूपहैं(क्योंकि ऋ और ऌ की आपस में सवर्ण संज्ञा मानी गई है) ए ओ ऐ, औ में स प्रत्येक के बारह बारह रूप हैं। अनुनासिक औरअननुनासिक भेदों से य व ल प्रत्येकके दोदो रूपहैं अर्थात् साधारण य व ल में अनुनासिक यँ वँ लँ का भी समावेश होजाता है। र ह यद्यपि 'अण् प्रत्याहारमें अन्तर्गत हैं तौभी अपने एक एक रूपका ही प्रगट करते हैं क्योंकि इनका कोई सवर्णीय अक्षर नहीं है

उदित्।१। = कु चु टु तु पु ये उदित् हैं अर्थात् कु = कवर्ग (= क, ख ग घ ङ) चु = चवर्ग (च छ, ज झ ञ)
टु = टवर्ग (= ट ठ ड ढ ण) तु = तवर्ग(= त थ द ध न) पु = पवर्ग (= प फ, ब, भ म) [समावेशहै)

स्वम्।१।रूपम्।१॥ च सवर्णस्य।६।रूपम्।१॥ = अपनेअर्थव रूपको तथासवर्णके अर्थवरूपको ग्रहणकरताहै(जैसे'अमें अठारा प्रकारके'अ और'कु'मेंक-ख-ग घ-ङ
इन सूत्रमें 'स्वंरूपम्' वाक्यकी अनुवृत्ति 'स्वं रूप शब्दस्या शब्द संज्ञा इस ६८ वां सूत्रसे आती है। स्वम्का अर्थ अपनाहीहै अर्थात् अर्थको प्रगटकरताहै और रूपम् शब्दके व्यक्तिगतआकारको प्रगट करताहै ॥ स्वम्रूपम्का मत यह मान है कि किसी शब्दके अर्थ और उसके आकार का द्योतक हो। जैसे कोई नियम जो अग्नि पर लागू होता है उस शब्द पर जो अ ग् न् इ से बना हो लागू होगा नकि अग्नि शब्द के समानार्थक वाची शब्दों पर जैसे कि पावक, ज्वलन इत्यादि ॥ जैसे सूत्र आद्गुणः (६-१-८७] का अर्थ है कि 'जब एक स्वर अ के पश्चात् आवे तो दोनों स्वरोंके स्थानमें गुण संज्ञाका आदेश हो यहांपर सूत्र में केवल ह्रस्व अ का निर्देश है परन्तु इस सूत्रसे दीर्घ आ' भी आजाता है जैसे केवल नर+ईशः=नरेश नहीं है परन्तु महा+ईश भी महेश है ॥ अन्य उदाहरणों के लियेदेखो ७-४-१२' ५.४५० १.४ १४८ सूत्र ॥

अप्रत्यय १। = यदि उक्त सर्व अक्षर प्रत्ययकी भांति वा प्रत्ययकी रीतिपर प्रयोगमें न लाये जावेंतो (अपने रूप और सवर्ण के रूपों

के ग्राही होवेंहैं) जैसे 'सनाशंसभिक्ष उः । ३ । २ । १६८ उन धातुओंके (जिनके अन्तमें सन् प्रत्ययहो) और आशंस् (=चाहना) और भिक्ष् (=मांगना) धातुओंके पश्चात् उनस्वभाववाले कर्ताओंके अर्थमें उ' प्रत्यहो जैसे भिक्षु मांगनासे भिक्षु भीख मांगनेवाला बना । यहांपर केवलह्रस्व उका ग्रहणहै दीर्घ ऊ और प्लुत'उ३ का ग्रहणनहीं हुआ ॥

() तपरस्तत्कालस्य ॥ ७० ॥ =त-परः॥ तत्कालस्य॥ (स्वम्॥रूपम्॥)=तकार जिससे परे हो वा तकारसे जो परे हो वह उतनेकी समयवाले सवर्ण को अपने अर्थ और का ग्राहक हो ॥

तपरः॥तत्कालस्य॥ =(अर्थात्) तकार (=त्) जिस अक्षर से पीछे आवै अथवा तकार (=त) से कोई अक्षर परेमें होतो वह अक्षर

स्वम्॥रूपम्॥ =अपने अर्थ रूप और अपने उन सवर्णीय अक्षरोंका रूप वअर्थका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें वही काल लगे उतनाही समयलगे जितना कि पूर्वोक्त अक्षर के उच्चारणमें लगता है सूत्र ६८ में यह कथन कियागया है कि व्यक्तिगत स्वरमें उसके सर्व सवर्णीय अक्षर समावेश होजावेंगे इस प्रकारकि 'अ' में आ भी अन्तर्गत होगा और इ में ई इत्यादि । यहसूत्र निर्देश करता है कि अक्षर का यही रूप ग्रहण किया जावेगा न कि उसके जाति के सर्व अक्षर ग्रहण किये जावेंगे यह कार्य अक्षर के पश्चात् अथवा प्रथम त् लाने से होता है जैसे अत् का आशय केवल अ अक्षर ग्रहण करना है न कि उसके सर्व सवर्णीय अक्षर । इसी प्रकार उत् का अभिप्राय केवल ह्रस्व'उ' ग्रहण करने का है न कि दीर्घ और प्लुत उ । इस सूत्रमें तपरः और तत्कालस्य दोपद हैं । तपरःका अर्थ जो तकार के परे हो अथवा तकार जिसके पीछे हो 'तत्काल' का अर्थ है उतनाही काल ॥ समय की अपेक्षासे स्वरोंकेह्रस्व दीर्घ और प्लुत तीन भेद हैं 'ह्रस्व' स्वर में एक मात्रा होती है दीर्घ स्वर दो मात्रिक होते हैं और प्लुत स्वर तीन मात्रा वालेहोते हैं । व्यंजन के उच्चारण में ह्रस्व स्वर से आधा समय लगता है इसलिये एक अक्षर त् जिसके पश्चात् हो औरजो त् केपश्चात् हो अपने अर्थ वरूपका ग्राहक है और केवल उन सवर्णीय अक्षरोंके अर्थवरूपोंका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें उतनाहीवासमान काल लगताहोजैसे अक्षर'अत्' में उदात्त अनुदात्त,स्वरित अनुनासिकऔरअननुनासिक'अ'अर्थात्छह ह्रस्वरूप'अ' केगर्भितहोंगे दीर्घऔर प्लुत रूप अक्षरका एकभी समावेश न होगा ॥ यहसूत्र आज्ञा ज्ञापकहै । इस सूत्रमें 'अण्' शब्दकी अनुवृत्तिपूर्व सूत्रसे नहीआती है । अण् प्रत्याहार के चौदह अक्षरों के अतिरिक्त किसी भी अक्षर के पश्चात् तकार आवे तब उसपर भी यह सूत्र लागू होगा । यह सूत्र पूर्व सूत्रको परिमित और समर्यादा करता है अतः इससे पूर्व सूत्रका अर्थ होगाकि अण्प्रत्याहारके अक्षर यदि उनमेंसे किसी भी अक्षर के प्रथम या पश्चात् में 'त्' न हो तो वे अपने अर्थ व रूपके और अपने सवर्णीय अक्षरो के अर्थ व रूपों के क्रमसे ग्राहक होंगे ॥ इसप्रकार कि सूत्र ७-१-६ 'अतोभिस ऐस्' शब्द जिनके अन्तमें अत् (अर्थात ह्रस्व अकार) हो तो भिस्के स्थानमें ऐस् हो जैसे वृक्ष+भिस् के स्थानमें वृक्ष+ऐस् होकर वृक्षैः बना परन्तु खट्वा जिसके अन्तमें दीर्घ 'आ' है और जिसका उच्चारण काल अकारके उच्चारण कालसे भिन्नहै उक्तसूत्र लागू न होगा और खट्वाभिः रूप बनेगा अर्थात् भिस् का ऐस् नहोगा ॥

() विप्रतिषेधे,। =(परस्पर) तुल्यबल विरोधमें (=विप्रतिषेधे) अर्थात् तुल्य वा समान बलवाले आपसमें विरोधी

परम्॥॥ कार्यम्॥॥ =नियम वा सूत्र किसी स्थानमें (किसी कृतिमें)एक साथ लगते हों तो (अष्टाध्यायीके) पिछले दिये नियम वा सूत्रके अनुसार कार्य हो भावार्थ अष्टाध्यायीमें दिया हुआ पिछला सूत्र लागू हो इससे पूर्वका सूत्र न लगेगा ॥ श्री पतंजलिभाष्य ऐसा है कि

तपरस्तत्कालस्येत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन। यद्येवं द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानं कालभेदात्। द्रुतायां तपर-करणे मध्यम-विलम्बितयोरुपसंख्यानं कर्तव्यम्। तथा मध्यमायां द्रुतविलम्बितयोः। तथा विलम्बितायां द्रुतमध्यमयोः। किं पुनः कारणं न सिध्यति कालभेदात्। ये हि द्रुतायां वृत्तौ वर्णास्त्रिभागाधिकास्ते मध्यमायां ये च मध्यमायां वर्णास्त्रिभागाधिकास्ते द्रुविलम्बितायाम्॥ सिद्धं त्ववस्थितावर्णा। वक्तुश्चिराचिर वचनाद् वृत्तयो विशिष्यन्ते। सिद्धमेतत्। कथम्। अवस्थिता वर्णा द्रुतमध्यमविलम्बितासु किं कृतस्तर्हि वृत्ति विशेषः। वक्तुश्चिराचिर वचनाद् वृत्तयो विशिष्यन्ते। वक्ता कश्चिदाशुभिधायी भवति। आशु वर्णानभिधत्ते। कश्चिच्चिरेण कश्चिच्चिरतरेण॥ कश्चिच्चिरतमेन॥ पतञ्जलि महाभाष्य प्रथमपाद 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्र की व्याख्यासे उद्धृत है॥

विप्रतिषेधन¹।तपरस्तत्कालस्य¹।इति०	= विप्रतिषेधे परं कार्यम्' सूत्र द्वारा 'तपरस्तत्कालस्य ऐसे (सूत्रकी)
एतद्०भवतिT	=इस समय (=एतद्०वैयाकाश पृष्ठ १५३ में अव्यय माना है) प्राप्ति होतीहै अर्थात्'अणुदित्सवर्णस्यचाप्रत्ययः सूत्रकी निवृत्ति और 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्रकी प्रवृत्ति विप्रतिषेधेन परंकार्यम्' सूत्रसे होती है॥
यदि०एवम्०	=(प्रश्न) जो ऐसेहै अर्थात् तत्काल(=उसकाल)कीप्रवृत्ति करताहै और भिन्नकालकी निवृत्ति
द्रुतायाम्¹।तपरकरणे¹।मध्यम	=तो शीघ्र कालिक उच्चारणकी वृत्तिमें 'तपर' करनेमें मध्यमकालीन उच्चारणका
विलम्बितयो¹।उपसंख्यानम्¹।कालभेदात्।।	=और विलम्बित या देरी कालीन उच्चारणका समावेश है (उसमें) काल भेद पड़जाता है (क्योंकि उतनेही कालमें शीघ्रतावृत्ति मध्यमावृत्ति और विलम्बिता वृत्ति नहीं होसकी)
द्रुतायाम्¹।तपरकरणे¹।।	=(अर्थात् शिष्यके प्रश्न या शंकाका आशय यहहै कि) शीघ्र कालिक उच्चारणमें तपरकरणमें
मध्यम-विलम्बितयो¹।उपसंख्यानम्¹।कर्तव्यम्¹।	=मध्यमा कालीन उच्चारण और विलम्बिता कालीन उच्चारणका समावेश करनाचाहिये
तथा०मध्यमायाम्¹।(तपर करणे¹।)द्रुत	=और मध्यमा कालीन उच्चारणमें (तपर करणमें) द्रुताकालीन उच्चारणका
विलम्बितयो¹।(उपसंख्यानम्¹।)	=और विलम्बिता कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)
तथा०विलम्बितायाम्¹।(तपरकरणे) द्रुत	=और विलम्बित कालीन।उच्चारणमें (तपर करणमें) द्रुता कालीन उच्चारण का
मध्यमयो¹।(उपसंख्यानम्¹।)	=और मध्यमा कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)
किम्¹।पुन०कारणम्¹।	=(शिष्य बल देकर कहता है कि गुरुजी समझे) फिर क्या कारण है कि
न०सिद्ध्यतिTकालभेदात्¹।	=(ऊपर के दोनो उच्चारणोंकी) सिद्धि नहीं होती है। क्योंकि (उसमाही काल नहींसमता है) काल भेद पड़जाता है॥

के ग्राही होवहिं) जैसे 'सनाशसभिक्ष उः । ३ । २ । १६८ उन धातुओंके (जिनके अन्तमें सन् प्रत्ययहो) और आशस् (=चाहना) और भिक्ष् (=मांगना) धातुओंके पश्चात् उनस्वभाववाले कर्ताओंके अर्थमें 'उ' प्रत्ययहो जैसे भिक्षु मांगनासे भिक्षु भीख मांगनेवाला बना । यहांपर केवलह्रस्व उका ग्रहणहै दीर्घ ऊ और प्लुत'उ३ का ग्रहणनहीं हुआ ॥

() तपरस्तत्कालस्य ॥ ७० ॥ =त-परः॥ तत्कालस्य॥ (स्वम्॥ रूपम्॥)=तकार जिससे परे हो या तकारसे जो परे हो वह उतनेकी समयवाले सवर्ण को अपने अर्थ और का ग्राहक हो ॥

तपर ॥तत्कालस्य॥ =(अर्थात्) तकार (=त्) जिस अक्षर से पीछे आवे अथवा तकार (=त) से कोई अक्षर परेमें होतो वह अक्षर

स्वम्॥ ॥रूपम्॥ ॥ =अपने अर्थ रूप और अपने उन सवर्णीय अक्षरोंका रूप समर्थका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें वही काल लगे उतनाही समयलगे जितना कि पूर्वोक्त अक्षर के उच्चारणमें लगता है सूत्र ६६ में यह कथन कियागया है कि व्यक्तिगत स्वरमें उसके सर्व सवर्णीय अक्षर समावेश होजायेंगे इस प्रकारकि 'अ में आ भी अन्तर्गत होगा और इ में ई इत्यादि । यहसूत्र निर्देश करता है कि अक्षर का यही रूप ग्रहण किया जायेगा न कि उसके जाति के सर्व अक्षर ग्रहण किये जावेंगे यह कार्य अक्षर के पश्चात् अथवा प्रथम त् आने से होता है जैसे अत् का आशय केवल अ अक्षर ग्रहण करना है न कि उसके सर्व सवर्णीय अक्षर । इसी प्रकार उत् का अभिप्राय केवल ह्रस्व'उ' ग्रहण करने का है न कि दीर्घ और प्लुत उ । इस सूत्रमें तपरः और तत्कालस्य दोपद हैं । तपरःका अर्थ जो तकार के परे हो अथवा तकार जिसके पीछे हो 'तत्काल' का अर्थ है उतनाही काल ॥ समय की अपेक्षासे स्वरोंकेह्रस्व दीर्घ, और प्लुत तीन भेद हैं 'ह्रस्व' स्वर में एक मात्रा होती है दीर्घ स्वर दो मात्रिक होते हैं और प्लुत स्वर तीन मात्रा वालेहोते हैं । व्यंजन के उच्चारण में ह्रस्व स्वर से आधा समय लगता है इसलिये एक अक्षर त् जिसके पश्चात् हो औरजो'त् केपश्चात् हो अपने अर्थ स्वरूपका ग्राहक है और केवल उन सवर्णीय अक्षरोंके अर्थस्वरूपोंका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें उतनाहीयासमान काल लगताहोजैसे अक्षर'अत् में उदात्त अनुदात्त स्वरित अनुनासिकऔरअननुनासिक'अ अर्थात्छह ह्रस्वरूप'अ केगर्भितहोंगे दीर्घऔर प्लुत रूप अकारका एकभी समावेश न होगा ॥ यहसूत्र आज्ञा ज्ञापक है । इस सूत्रमें अण् शब्दकी अनुवृत्तिपूर्व सूत्रसे नहींआती है । अण् प्रत्याहार के चौदह अक्षरों के अतिरिक्त किसी भी अक्षर के पश्चात् तकार आवे तब उसपर भी यह सूत्र लागू होगा । यह सूत्र पूर्व सूत्रको परिमित और समर्यादित करता है अतः इसमे पूर्व सूत्रका अर्थ होगाकि 'अण्प्रत्याहारके अक्षर यदि उनमेंसे किसी भी अक्षर के प्रथम या पश्चात् में त् न हो तो वे अपने अर्थ व रूपके और अपने सवर्णीय अक्षरों के अर्थ व रूपों के क्रमसे ग्राहक होंगे ॥ इसप्रकार कि सूत्र ७-१ ६ 'अतोभिस ऐस्' शब्द जिनके अन्तमें अत् (अर्थात ह्रस्व अकार) हो तो भिस् के स्थानमें ऐस् हो जैसे वृक्ष+भिस् के स्थानमें वृक्ष+ऐस् होकर वृक्षैः बना परन्तु खट्वा जिसके अन्तमें दीर्घ आ है और जिसका उच्चारण काल अकारके उच्चारण कालसे भिन्नहै उक्तसूत्र लागू न होगा और खट्वाभिः रूप बनेगा अर्थात् भिस् को ऐस् नहोगा ॥

() विप्रतिषेधे,। =(परस्पर) तुल्यबल विरोधमें (=विप्रतिषेधे) अर्थात् तुल्य या समान बलवाले आपसमें विरोधी

परम्॥ ॥ कार्यम्॥ ॥ =नियम या सूत्र किसी स्थानमें (किसी कृतिमें)एक साथ लगते हों तो (अष्टाध्यायीके) पिछले दिये नियम या सूत्रके अनुसार कार्य हो भावार्थ अष्टाध्यायीमें दिया हुआ पिछला सूत्र लागू हो इससे पूर्वका सूत्र न लगेगा ॥ जी पतंजलिभाष्य ऐसा है कि

पं० जयचंद्रायजी की वच निकासे उद्धृत	पं० पन्नालाल दूनी के अनुवादसे उद्धृत	पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकरके अनुवाद से उद्धृत	पं० जगन्मोहनलाल शास्त्रीके अनुवादसे उद्धृत
"इहां प्रश्न जो, इहां समास विर्षे पीत पद्म शुक्ल इनके ह्रस्व अकार कैसे भया ? शब्द तो पीता पद्मा शुक्ला ऐसा चाहिये। तहां कहिये है, जो व्याकरण विर्षे उत्तर पदसे ह्रस्व होना भी कहा है। जैसे द्रुता (द्रुती ?) ऐसा शब्द का तपर करण विर्षे है। तहां मध्याविलंबिता का उपसंख्यान है ऐसे इहां भी जानना जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ ३८२ (यह पाठ होहस्त लिखित पाठोंसभी मिलाकर लिखा है जिनमें मध्याविलंबिता उपसंख्यान है। मुद्रित में मध्याविलंबिता का उपसंख्यान है ऐसा पाठ है॥	पीतपद्मामें इहां उत्तर पद संबंधी ह्रस्वपणो है। सो कैसे भया कार्यका विपरिणाममें सिद्ध भयो है। जैसे द्रुतायां या सूत्रमें तपर करण है। तामें मध्यविलंबितयो उपसंख्यानमें सो व्याकरण को वार्तिक है। तहां मध्याविलंबिता शब्दमें उत्तर पद सर्व पी ह्रस्वपणो भयाहै तैसाही इहां भी उत्तर पद संबंधी ह्रस्वपणो जानने योग्य है॥ पं० पन्नालाल दूनी पृष्ठ ७४ अध्याय चौथेसे उद्धृत	(प्रश्न) "पीतपद्मशुक्ल इन शब्दनिकें ह्रस्व अकार है यातैं पुल्लिंग है॥ यातैं लेश्या का विशेषण करि पीतादि शब्दनिका निर्देश करना पुल्लिंगाहीं होय है। किंतु पीता पद्माशुक्ला ऐसा कहना चाहिये। यातैं लेश्या शब्द स्त्रीलिंग है ताके विशेषण भी स्त्री लिंग का होना चाहिये। ऐसा शब्द शास्त्र का न्याय है। समाधान। व्याकरण विर्षे उत्तर पदतैं ह्रस्व होना भी कह्या है। सो यथा कार्यके विपरिणामतैं सिद्ध है॥ जैसे द्रुतायां या सूत्रमें तपर करण है ताके विर्षे मध्याविलंबित का उपसंख्यान है। यह व्याकरण सूत्र है। यहां उत्तर पदका ह्रस्व होने तैं मध्यविलंबित ऐसा सिद्ध होय है। तैसे यहां भी पीतादिक शब्दनिके ह्रस्वपणा करि निर्देश जाननी पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखित पृष्ठ ६७४	"पीता च पद्मा च शुक्ला च पीतपद्मशुक्लाः पीतपद्मशुक्ला लेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः। यह यहां पर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास है। यदि यहां पर कहाजाय कि-'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' यहांपर द्वन्द्व समास किया जायगा तो द्वन्द्वमें पुंवद्भाव तो होता नहीं इसलिए 'पीतपद्मशुक्ललेश्या' यह जो पुंवद्भावविशिष्ट निर्देश कियागया है अर्थात् आकार का अकार करदियागया है वह अयुक्त है किन्तु यहां पर 'पीतापद्माशुक्लालेश्याः' ऐसा निर्देश करनाचाहिए। सो ठीक नहीं। यहां पुंवद्भाव नहीं हुआ है किन्तु उत्तर पद रहने से पूर्वपद का ह्रस्व हुआ है जैसे द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानम्" इस व्याकरण शास्त्रकी वार्तिकमें मध्यमा च विलंबिता च 'मध्यमविलंबितातयो' इसप्रकार समासयुक्त पदमें 'विलंबिता' उत्तर पद रहने से 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्व करि निर्देश कियागयाहै उसी प्रकार 'पीतपद्मशुक्ला लेश्या' यहांपर भी 'शुक्ला' उत्तरपद के रहते पीता और पद्मा इन दोनों पदों में ह्रस्व निर्देश न्याय्य है"॥

'द्रुतायाम्' जहांतक हमने ८-१० व्याकरण देखे हमको नहीं मिला और अन्य विद्वान् भी कहते हैं कि 'द्रुतायाम्' ऐसा कोई सूत्र नहीं है॥ जो महोदय इसपढ़ें उनको विद्यार्थियों के लाभार्थ उचित है कि यदि 'द्रुतायाम्' कोई सूत्र है तो कृपया मुझे सूचनादें कि अनुवादमें मुद्रित कियाजावे।

यः।।द्रुत।।आयाम् ।।वृत्तौ ।।
वर्णाः ।।त्रिभाग अधिकाः।।मध्यमायाम् ।।

ते,।

ते।।च०मध्यमायाम् ।।वर्णा ।।त्रिभाग
अधिका।।ते।।तु०विलम्बितायाम् ।।

स्थिरम् ।।।तु०अवस्थिता।।वर्णाः ।।

वक्तु।।चिर अचिर-वचनात् ।।।वृत्तय ।।।विशिष्यन्तेT
सिद्धम् ।।।एतत् ।।।कथम्० ?
अवस्थिता ।।वर्णा ।।
द्रुता-मध्यमा विलम्बितासु।।
किम्।।।कृतः०तर्हि०वृत्ति विशेषः।।
वक्तुं ।।चिर अचिर-वचनात् ।।।वृत्तय ।।।विशिष्यन्तेT
वक्ता।।कश्चित्०आशु०अभिधायी।।भवतिT
आशु०वर्णान् ।।अभिधत्तेTकश्चित्०चिरेण०
कश्चित्०चिरतरेण।।कश्चित्०चिरतमेन।।

=(शिष्य कथन करता है कि कितना काल भेद पड़ता है) जो ही द्रुतावृत्तिमें
=बोलनेके क्रम (=वर्णाः—देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३३७) हैं (समयका) तीन भाग
अधिक मध्यमा वृत्तिमें
=वे (बोलनेके क्रम=वर्णाः) हैं अर्थात् जो ही कालद्रुतावृत्तिमें वर्णोंके उच्चारणमें
लगताहै उससे तीसराभाग अधिक(काल)मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है
=और (=च) जे मध्यमा (वृत्ति) में बोलनेके क्रम (=वर्णाः) हैं। तीन भाग
=अधिक(मध्यमा वृत्तिसे)वे(बोलनेकेक्रम)विलम्बिता वृत्तिमेंभी(=तु पद्म०कोश१७२)हैं
अर्थात् जो (काल) मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है उससे तीसरा भाग
अधिक विलम्बिता वृत्तिके उच्चारणमें लगता है जैसे यदि नौ पल काल द्रुता
उच्चारणमें लगे तो मध्यमामें बारह पल और विलम्बितामें सोलह पल लगेंगे ॥
=(उत्तर) वर्ण वा अक्षर तोअवस्थितहैं इससे(गुरुजी कहते हैं हमारा कथन)बनजाताहै
अर्थात् काल भेद होने पर भी तीनों वृत्तियोंमेंवर्ण ज्योंकेत्यों रहतेहैंइससेबनजातीहै
=क्योंकि वक्ताके देर और शीघ्र उच्चारण सेही द्रुतादि वृत्तियोंमें भेदपडता है
=(गुरुजी कहते हैं कि) यह सिद्ध होजाता है। [प्रश्न] कैसे सिद्ध होजाता है
=(उत्तर) क्योंकि वर्ण (प्रत्येक वृत्तिमें जैसे के तैसे] अवस्थित वा स्थिर
=द्रुता-मध्यमा विलम्बिता कालके उच्चा णों में (रहते) हैं
=(प्रश्न (यदि वर्ण अवस्थित हैं)तो वृत्ति भेद कहांसे हुये(तीनों वृत्तियें कहांसे हुई)
=(उत्तर) वक्ताके देर और शीघ्र बोलने के कारण से वृत्तियोंमें भेद होगये ॥
=कोई वक्ता जल्द (=आशु) बोलता है (अर्थात्)
=शीघ्रता से वर्णोंका उच्चारण करता है। कोई वक्ता विलम्बसे बोलताहै
=कोई वक्ता और देरसे बोलता है कोई और भी देरसे बोलता है (जैसे पथिक से
घोड़ा धीरे चलता है। घोड़ा से मनुष्य धीरे चलता है और मनुष्यसे बच्चाधीरे

चलता है॥ सारांश यह है कि इनतीनों शीघ्र उच्चारण रूप वृत्तिमें मध्यम कालीन उच्चारणमें और विलम्बित कालके उच्चारण में काल भेद रहने पर भी वर्णों के अवस्थित (ज्यों के त्यों) रहने से काल भेद नहीं माना जाता है क्योंकि काल भेदमें वक्ताका जल्दी और देरसे कहना अथवा बोलना ही कारण है क्योंकि शब्द का रूप प्रत्येक अवस्थामें एकसा रहता है॥ किं कृत के स्थानमें किसी किसी मुद्रित भाष्योंमें किं कृतः पाठहै अर्थ दोनों पाठोंका एकसा है॥ पृष्ठ ७० में भिन्नभिन्न अनवादकोंके अनुवाद उद्धृत दिये हैं जिनसे पाठक कुछ लाभ उठासकें हमारी समझमें उनके अनुवाद सही आये हैं अगला एक पृष्ठ ७८ में भिन्न भिन्न पाठ इस वार्तिकके जो हमारे यहां के ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं वे दियेगये हैं॥ इस समस्तको पाठक बहुत ध्यानसे पढ़ें॥

पं० जयचंद्रायजी की वच निकासे उद्धृत

इहां प्रश्न,जो, इहां समास विषैं पीत पद्म शुक्ल इनके इस प्रकार कैसे भया ! शब्द तौ पीता पद्मा शुक्ला ऐसा चाहिये। तहां कहिये है जो व्याकरण विषैं उत्तर पदसे ह्रस्व होना भी कहा है। जैसे द्रुता (द्रुती ?) ऐसा शब्द व्याकरणविषैं है। तहां 'मध्याविलंबिता का उपसंख्यान है ऐसे इहां भी जानना जय० वचनिकामुद्रित पृष्ठ १८२ (यह पाठ दोहस्त लिखित पाठोंसेभीमिलाकर लिखाहै जिनमें 'मध्याविलं बिता उपसंख्यानहै। मुद्रित में मध्याविलंबिता का उप संख्यान है ऐसा पाठ है ॥

पं० पन्नालाल दूनी के अनुवादसे उद्धृत

पीतादिकोंमें ह्रस्वउत्तर पद संबंधी ह्रस्वपनो है। सो पना कार्यका विपरिणाममें सिद्ध भयो है। अर द्रुतायां त परकरण है। तामें मध्यविलंबितयो रुपसंख्यानंसो व्याकरण का वार्तिक है। तहां मध्याविलंबिता शब्दमें उत्तरपद संबंधी ह्रस्वपनो भयाहै वैसेही इहां भी उत्तर पद संबंधी ह्रस्वपनो जानने योग्य है ॥ पं० पन्नालाल दूनी पृष्ठ५४ अध्याय चौथेसे उद्धृत

पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकरके अनुवाद से उद्धृत

(प्रश्न) 'पीतपद्मशुक्ल' इन शब्दनिकैं ह्रस्व अकार है याते पुरुषलिंग है। तातें लेश्या का विशेषणकरि पीतादि शब्दनिका स्त्रीलिंग करता युक्त नाहीं होय है। किंतु पीता पद्माशुक्ला ऐसा कहना चाहिये। यातें लेश्या शब्द स्त्रीलिंग है ताके विशेषण भी ताही लिंग का होना चाहिये। ऐसा शब्द शास्त्र का न्याय है। समाधान। व्याकरणविषैं उत्तर पदतैं ह्रस्व होना भी कह्या है। सो पना कार्यके विपरिणमनतैं सिद्ध है। जैसे द्रुतायां त परकरण है ताके विषैं मध्याविलंबित का उपसंख्यान है। यह व्याकरण सूत्र है। यहां उत्तर पदका ह्रस्व होनेतैं मध्यविलंबित ऐसा सिद्ध होय है। तैसे यहां भी पीतादिक शब्दनिकै ह्रस्वपना करि निर्देश जाननी

पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखित पृष्ठ ६७४

पं० गजाधरलाल शास्त्रीके अनुवादसे उद्धृत

"पीता च पद्मा च शुक्ला च पीतपद्मशुक्लाः पीतपद्मशुक्लालेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः। यह यहां पर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास है। यदि यहां पर कहाजाय कि-'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' यहांपर द्वन्द्व समास किया जायगा तो द्वन्द्वमें पुंवद्भाव तो होता नहीं इसलिए 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' यह जो पुंवद्भावविशिष्ट निर्देश कियागया है अर्थात् आकार का अकार करदियागया है वह अयुक्त है किन्तु यहां पर'पीतापद्माशुक्लालेश्याः'ऐसा निर्देश करनाचाहिए। सो ठीक नहीं। यहां पुंवद्भाव नहीं हुआ है किंतु उत्तर पद रहने से पूर्वपद का ह्रस्व हुआ है जैसे द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुप संख्यानम्" इस व्याकरण शास्त्रकी वार्तिकमें मध्या च विलंबिता च 'मध्यमविलंबितयोः' इसद्वन्द्व समासयुक्त पदमें 'विलंबिता' उत्तर पद रहने से 'मध्यमा' शब्दका ह्रस्व करि निर्देश कियागयाहै उसी प्रकार पीतपद्मशुक्ला लेश्याः' यहांपर भी 'शुक्ला' उत्तरपद के रहते पीता और पद्मा इन दोनों पदों में ह्रस्व निर्देश न्याय्य है" ॥

'द्रुतायाम्' जहांतक हमने ८, १० व्याकरण देखे हमको नहीं मिला और अन्य विद्वानभी कहते हैं कि 'द्रुतायाम्' ऐसा कोई सूत्र नहीं है ॥ जो महोदय इसेपढ़ें उनको विद्यार्थियों के लाभार्थ उचित है कि यदि 'द्रुतायाम्' कोई सूत्र है तो कृपया मुझे सूचनादें कि अनुवादमें मुद्रित कियाजावे।

अथवा पीतश्च पद्मश्च शुक्लश्च पीतपद्मशुक्ला वर्णवन्तोऽर्थाः । तेषामिव लेश्या येषां ते पीतपद्म-शुक्ललेश्याः ॥

अथवा०	=वा (यदि उपर्युक्त उत्तरसे अधिकतम संशयशील प्रश्न कर्ताओंका समाधान न हो तो)
पीतः॥१॥ च०पद्म ॥१॥ च०शुक्लः॥१॥ च०पीतपद्मशुक्लाः॥	=पीत और पद्म और शुक्ल हैं ये पीत पद्म शुक्ल
वर्णवन्तः ॥ अर्थाः ॥	=रूपवाले पदार्थ हैं अर्थात् पीत पद्म शुक्ल ये तीनों मूलित शब्द पीत पद्म शुक्ल रंगवाले वस्तुओंके शब्दार्थहैं और उन्हीं रंगवाले पदार्थोंके वाचकहैं और येतीनों शब्दपुरुषलिंगीहैं॥
तेषाम्॥ इव०लेश्याः॥ येषाम्॥ ते॥	=जिन (पीत पद्म शुक्ल रंगवाले पदार्थों) के सदृश हैं लेश्यायें जिन (देवों) की ते
पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः॥ ॥	=पीत पद्म शुक्ल लेश्या वालेहैं(यहां उक्त रंगीन वस्तुओंकी उपमा भी इन लेश्याओं को दी गईहै और उपमित समासमें ह्रस्व होता ही है अतः पीतपद्मशुक्ल उपमितसमास ह्रस्वरूपमें है ॥

() यथाद्रु' (यथा-आद्रु) द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति ॥ सर्वार्थसिद्धि प्रथम संस्करण पृष्ठ ४६३, द्वितीयावृत्ति पृष्ठ १६५
"यथा द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति द्रुतमध्यमविलंबिता इति" ॥ हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ६६

() 'द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमित्यत्र्यौत्तरपदिकं ह्रस्वत्वमेवमिहापि वेदितव्यं" तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७०

() "द्रुतायां तपरकरणे मध्यविलम्बितयोरुपसंख्यानमित्यत्र औत्तरपदिकं ह्रस्वत्वमेवमिहापिवेदितव्यं यह पाठ पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर की हस्त लिखिततत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७४ परसे तथा पं०पन्नालालसूनीजीकी हस्तलिखित राजवार्तिक पत्र ५५ अध्याय ४ परसे लिया है इनदोनों प्रतियों के पाठमें 'मध्यम शब्दके स्थानमें'मध्य शब्द मिलता है। प०अय०वनलिकाकी एक मुद्रित दोहस्तलिखित प्रतियोंमें'मध्या मिलताहै। 'मध्यम'चाहिये

() पीतपद्मशुक्लानां ग्रहणे पीतपद्मयोरुत्तरपदिकं ह्रस्वत्वं 'द्रुतायास्तपरकरणान्मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमित्याचार्यवचनदर्शनात् मध्यमाशब्दस्य विलम्बितास्तपरे ग्रहणेपि ह्रस्वत्वसिद्धेः । यह पाठ मुद्रित तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८४ और दो हस्त लिखित प्रतियोंके क्रमसे पृष्ठ १७५ और१२१ पर है ॥ यहीपाठहै इसकाहमने बहुतमायधानीसे तीनोंप्रतियोंको मिलाकर लिखाहै इसमें विलंबिता के स्थानमें विद्यानंदिस्वामी विलंबिना' लायेहैं और सप्तमी विभक्तियोंके स्थानमें पंचमी विभक्तियां लाये हैं। हमारी ठीक ठीक समझमें यह नहीं आया है कि'इति आचार्य वचन दर्शनात् वाक्य में 'आचार्य से श्लोक वार्तिकके कर्ताका पूज्यपाद स्वामी श्रीमदकलंक भट्ट जिन्होंने यह वार्तिक शब्दशः पतंजलि मुनिके महाभाष्यसे उद्धृत की है इनमेंसे किसी से अभिप्राय है अथवा श्रीमान् पतंजलिसे तात्पर्य है अथवा किसी अन्य आचार्य से प्रयोजन है। विद्वज्जन इसका अन्वेषण करके इसका मुझको सूचित करें ॥

तत्र कस्य का लेश्येत्यत्रोच्यते—सौधर्मैशानयोः पीतलेश्या। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पीतपद्मलेश्ये। ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पद्मलेश्या। शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु पद्मशुक्ललेश्ये। आनतादिषु शुक्ललेश्या। तत्राप्यनुदिशानुत्तरेषु परमशुक्ललेश्या। सूत्रेऽनभिहितं कथं मिश्रग्रहणं? साहचर्याल्लोकवत्॥

तत्र॥कस्य॥का॥लेश्या॥इति॥अत्र॥उच्यते।	=वहां किस (देव) के कौन लेश्या है (ऐसे) यहां (=अत्र) कहा जाता है कि
सौधर्म-ऐशानयोः॥पीतलेश्या॥सानत्कुमार	=सौधर्म ऐशान में (देवनिके) पीत लेश्या है। सानत्कुमार
माहेन्द्रयोः॥पीत-पद्म-लेश्ये॥ब्रह्मलोक ब्रह्मोत्तर	= माहेन्द्र में (देवों के) पीतपद्मलेश्या है। ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर
लान्तव-कापिष्ठेषु॥पद्म-लेश्या॥शुक्र-महाशुक्र-	=लान्तव और कापिष्ठ में (देवों के) पद्मलेश्या है। शुक्र और महाशुक्र
शतार-सहस्रारेषु॥पद्म शुक्ल-लेश्ये॥आनत	=शतार और सहस्रार में (देवों के) पद्म शुक्ल दो लेश्या हैं। आनत
आदिषु॥	=और प्राणत, आरण और अच्युत इन दो युगलोंमें और नवग्रैवेयकोंमें और नव अनुदिशों में और पांच अनुत्तरोंमें (देवोंके)
शुक्ल-लेश्या॥तत्र॥अपि॥अनुदिश-अनुत्तरेषु॥	=शुक्ललेश्या है। वहां भी (नव) अनुदिशोंमें और (पांच)अन्तरोंमें (देवोंके)
परम-शुक्ल-लेश्या॥सूत्रे॥अन् अभिहितम्॥	=उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या है (प्रश्न) सूत्रमें अकथित
कथम्॥मिश्र-ग्रहणम्॥ ?	=मिश्र (लेश्या) का ग्रहण(यहां)कैसे है ? अर्थात् इस बाईसवां सूत्रमें तो किसी युगलके देवोंके दो लेश्या वर्णन नहीं की हैं इस सूत्रकी वृत्तिमें आपने कैसे

कहा कि सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें पीत-पद्म दो लेश्या हैं सूत्रमें तो इस युगलमें केवल पीतलेश्या कही है और शुक्र महाशुक्रके युगलमें सूत्रमें तो पद्मलेश्या कही वृत्तिमें आपने पद्मशुक्ल दोनों लेश्यायें कैसे कही और शतार सहस्रार युगलमें सूत्रानुसार केवल शुक्ल लेश्या है आपने वृत्तिमें पद्म शुक्ल दो लेश्यायें कैसे कहीं।

साहचर्यात्॥	=(उत्तर) एक ही आश्रय होनेसे अथवा साथ साथ रहनेसे
लोकवत्॥	=लोक (व्यवस्था या रीति) सदृश (मिश्र लेश्याओंका ग्रहण है अर्थात् मुख्यता करि जो जो लेश्या जिन जिन युगलोंमें हैं वहसो सूत्र विषैं कही उसके साथ लोक रीतिके समान गौण लेश्याका भी ग्रहण करना योग्य है॥

तद्यथा–छत्रिणो गच्छन्ति इति अछत्रिषु छत्रिव्यवहार । एवमिहापि मिश्रयोरन्यतरग्रहणंभवति॥ अयमर्थ सूत्रत कथं गम्यते ? इति चेदुच्यते—एवमभिसम्बन्ध क्रियते, द्वयो कल्पयुगलयोः पीतलेश्या । सानत्कुमारमाहेन्द्रयो पद्मलेश्याया

तद्यथा छत्रिणः गच्छन्ति इति = जैसे (लोक विदित वा प्रसिद्धमें राजादिक) छत्रधारी जाते हैं इस प्रकार

अछत्रिषु छत्रिन्-व्यवहारः = विना छत्रवाले (साथियों) विषैं छत्रधारीका व्यवहार होता है अर्थात् राजादिक छत्रधारी और उनके साथीगण सब साथ साथ जाते हैं परन्तु पूंछनेपर लोक प्रसिद्धमें यह कहा जाता है कि अमुक छत्रधारी राजा जाते हैं भावार्थ मुख्य अथवा प्रधानका जो नाम लेते हैं उसमें गौणभी गर्भित होजाते हैं ॥

एवम् इह अपि = इस प्रकार यहां (लेश्याओंके कथनमें) भी

अन्यतर-ग्रहणम् = दोनों (पृथक् और मिश्र लेश्याओं)मं से एकके(सूत्रमें) ग्रहणसे

मिश्रयोः भवति = मिश्र (पीतपद्म, पद्मशुक्ल वा शुक्लपद्म लेश्याओं) का (ग्रहण) होजाताहै भावार्थ ऐसाहैकि पीत-पद्म शुक्ल-तीन लेश्यायें पृथक् पृथक्है और पीतपद्म तथा पद्मशुक्ल (जोशतारसहस्रारमें भीहै) ये दो मिश्र हैं। सूत्रमें पीत,पद्म,शुक्ल व्यक्तिगत लेश्याओं का ग्रहण है इन व्यक्तिगत लेश्याओंके ग्रहणसे पीतपद्म, पद्मशुक्ल इन दो मिश्र लेश्याओंका ग्रहण उसी प्रकारसे होजाताहै कि जिस प्रकार किसीसड़कपर छत्री और विनाछत्री वाले दोनों प्रकारके मनुष्य जातेहों। उनमें छत्रीवाले अधिक होंतो वहांपर 'छत्रिणोगच्छंति' अर्थात् छत्रीवाले जारहे हैं ऐसा व्यवहार होताहै और वहां पर 'छत्रीवाले' कहनेसे छत्री और विनाछत्रीवाले दोनों प्रकारके पुरुषोंका ग्रहण होजाताहै वैसही इस सूत्रमें पीत,पद्म,शुक्ललेश्याओंसे मिश्रका भी है

अयम् अर्थः सूत्रत कथम् गम्यते = यहअर्थ सूत्रसे कैसे जानाजाताहै अर्थात् पीतपद्म पद्मशुक्लका ग्रहणसूत्रमेंकैसेहुआ

इति चेत् उच्यते एवम् अभि-सम्बन्ध क्रियते = ऐसा संदेह होने पर कहाजाता है कि इस प्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि

द्वयो कल्प-युगलयोः = दो स्वर्ग-युगलों (सौधर्म और ऐशान सानत्कुमार और माहेन्द्र) में

पीतलेश्या सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः पद्मलेश्यायाः = पीत लेश्या है सानत्कुमार माहेन्द्र में पद्मलेश्या का (अस्तित्व)

अविवक्षात ॥ ब्रह्मलोकादिषु त्रिपु कल्पयुगलेषु पद्मलेश्या। शुक्रमहाशुक्रयो शुक्ललेश्याया अविवक्षात ॥ शेषेषु शतारादिषु शुक्ललेश्या। पद्मलेश्याया अविवक्षातइति नास्ति दोष ॥ आह कल्पोपपन्ना इत्युक्तं तत्रेदं न ज्ञायते के कल्पा इत्यत्रोच्यते—

॥प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः॥ २३॥

अविवक्षात	=अपेक्षा रहित है अर्थात् पद्मलेश्या इस सूत्रमें गौण है इसलिये सूत्रमें कहनेकी इच्छा नहीं है भावार्थ सूत्रमें गौण लेश्याका कथन करनेका अभिप्राय, वांछा, या प्रयोजन नहीं है। इससे पद्मलेश्याका निर्देश इस सूत्रमें नहीं किया गया है ॥
ब्रह्मलोक आदिषु त्रिषु कल्पयुगलेषु	=ब्रह्मलोक, ब्रह्मोत्तर, लान्तव कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र तीन कल्प युगलोंमें
पद्मलेश्या ; शुक्र-महाशुक्रयो शुक्ललेश्याया	=पद्मलेश्या है। शुक्र और महाशुक्रमें शुक्ललेश्याका (अस्तित्व)
अविवक्षात	=विवक्षा से रहित है अर्थात् इस युगलमें शुक्ललेश्या गौण है इससे कहने की सूत्र में इच्छा नहीं है
शेषेषु शतार-आदिषु शुक्ललेश्या	=शेष शतार सहस्रार, आनत प्राणत, आरण अच्युत में शुक्ललेश्या है।
पद्मलेश्याया अविवक्षात	=(शतार सहस्रार विषैं) पद्मलेश्या का (अस्तित्व) विवक्षा से रहित है अर्थात् इस युगलके देवोंके पद्मलेश्या गौण है इससे सूत्र में कहने की इच्छा नहीं है
इति	=इस प्रकार (कथनसे कि मुख्यताकरि दो युगलोंमें पीतलेश्या, तीन युगलोंमें पद्मलेश्या शेष तीन युगलों में शुक्ललेश्या है)
न अस्ति दोष	=दूषण नहीं है (क्योंकि मुख्य लेश्या तो सूत्रद्वारा कहीं गौण लोक रीतिसे जानना चाहिये)।
आह 'कल्प-उपपन्ना' इति उक्तम्	=शिष्य प्रश्न करता है कि "कल्पोपपन्ना" ऐसा वाक्य सत्रहवां सूत्रमें कहा गया है।
तत्र इदम् न ज्ञायते	=वहां यह ज्ञान नहीं कराया गया है अथवा वहां यह नहीं जतलाया गया है कि
के कल्पाः इति अत्र उच्यते	=कल्प कौन हैं यहां (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

(१)सूत्रम्-प्राग्ग्रैवेयकेभ्य कल्पा ॥ २३॥ = (सौधर्म आदय) प्राग्ग्रैवेयकेभ्य कल्पा भवन्ति ॥२३॥

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका (श्री सिद्धसेन सूरि रचित) में केवल बारह स्वर्ग माने हैं हमारे यहां सोलह स्वर्ग माने हैं। हमारे यहां किसी २ पुस्तक में

इद न ज्ञायते इत आरम्भ कल्पा भवन्तीति सौधर्मादिग्रहणमनुवर्तते । तेनायमर्थो लभ्यते-सौधर्मादय प्राग्ग्रैवेयकेभ्य कल्पा इति पारिशेष्यादितरे कल्पातीता इति ॥

लौकान्तिका देवा वैमानिका सन्त क्व गृह्यन्ते? कल्पोपपन्नेषु । कथमिति चेदुच्यते—

॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥

सूत्रार्थ—सौधर्म आदय प्राग्ग्रैवेयकेभ्य कल्पा	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व (पूर्व) कल्प हैं अर्थात् सौधर्म पहिले स्वर्गसे लेकर अच्युत सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त 'कल्प' कहेजाते हैं
पृथगनुवाद —इदम् न ज्ञायते	=(सूत्रमें) यह नहीं बोध करायागया है अथवा जतायागया है कि
इत आरम्भ-कल्पा भवन्ति इति सौधर्म आदि	=यहांसे (=इत) कल्प आरम्भ होते हैं (उन्नीसवां सूत्रसे) 'सौधर्म आदिका'
ग्रहणम् अनुवर्तते	=(इससूत्रमें)ग्रहण प्रवर्तता है अर्थात् उन्नीसवां सूत्रसे सौधर्म आदि शब्दलियेगये हैं
तेन अयम् अर्थ लभ्यते	=तिस (सौधर्म आदिके ग्रहण)से यह अर्थ प्राप्त कियागया है कि
सौधर्म-आदय प्राग्ग्रैवेयकेभ्य कल्पा	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व २ वा पहिले २ कल्प हैं, स्वर्ग हैं।
इति पारिशेष्यात् इतरे कल्प-अतीता इति	=ऐसे इन (कल्पों) से अवशेष (=पारिशेष्यात्) अन्य (=इतरे) कल्पातीत हैं, अर्थात् प्रथम सौधर्म स्वर्गसे अच्युत सोलह स्वर्ग तक कल्प कहलाते हैं। सोलह स्वर्गों से भिन्न जे नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर पर्यन्त कल्पातीत कहेजाते हैं॥
लौकान्तिका देवा वैमानिका सन्त क्व गृह्यन्ते	=लौकान्तिकदेव वैमानिक हैं। कहां मानेगये हैं वा ग्रहण किय गये हैं?
कल्प-उपपन्नेषु कथम् इति चेत् उच्यते	=(उत्तर) कल्प वासियोंमें (प्रश्न) कैसे ऐसा संदेह होनेपर कहाजाता है कि
(१)सूत्रम्—ब्रह्मलोकालयालौकान्तिका	= ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका (भवन्ति) ॥२४॥

जैन ग्रन्थरत्नाकर जी (लाहौर) मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र में तथा पं० सदा सुखजी कृत लघुटीकामें कल्पाः शब्दके स्थानमें कल्प शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि कल्प सोलह हैं और कल्प शब्द प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग है केवल एक स्वर्गका द्योतक है। अत कल्पाः बहुवचन होना चाहिये।

(१) हमारे यहां कहीं कहीं पर 'लौकान्तिका' पाठ भी है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्वेताम्बरीयभाष्य) में "लोकान्तिका" पाठ है दोनों पाठ शुद्ध हैं (देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ५१ टिप्पणी पृष्ठ ५४० ५४१)। दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एकसा है।

एत्य तस्मिन् लीयन्त इति आलय आवास । ब्रह्मलोक आलयो येषा ते ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका देवा वेदितव्या । यद्येवं सर्वेषा ब्रह्मलोकालयाना देवाना लौकान्तिकत्वं प्रसक्तं?। अन्वर्थ सञ्ज्ञाग्रहणाददोष ॥ ब्रह्मलोको लोक तस्यान्तो लोकान्त तस्मिन्भवा लौकान्तिका इति न सर्वेषा ग्रहणम् ।

सूत्रार्थ—ब्रह्मलोक-आलयाः लौकान्तिकाः भवन्ति =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग है निवासस्थान जिनका ते लौकान्तिक देव हैं अर्थात् ब्रह्मलोकालय इस शब्दके साथ लौकान्तिक शब्दका सम्बन्ध है। ब्रह्मलोकके अंतका नाम लोकांत है और वहां पर रहनवाले लौकान्तिक कहेजाते हैं॥ इस रीति से ब्रह्मलोकके अन्तमें रहनेवाले ही देव लौकान्तिक होसकते हैं सब ब्रह्मलोक निवासी नहीं अथवा जन्म जरा और मरण से व्याप्त स्थानका नाम लोक है; उसका अन्त लोकान्त है जिन्हें उस लोकांतका प्रयोजन होवे, वे लौकांतिक कहेजाते हैं। ये लौकांतिक देव परीतसंसार हैं। ब्रह्मलोकसे च्युत होकर एक गर्भवास अर्थात् नर भव पाकर नियमसे मोक्ष प्राप्त करलेते हैं ऐसे दोनों प्रकारसे सार्थक नाम वाले लौकान्तिक देव हैं ॥

वृत्त्यनुवाद—एत्य तस्मिन् लीयन्त इति आलयः =आनकरि जिसमें मिलते हैं, छिपते हैं, वा रहते हैं ऐसा आलय

आवासः ब्रह्मलोकः आलयः येषाम् ते =निवास स्थान है। ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) है निवासस्थान जिनका ते

ब्रह्मलोक आलयाः लौकान्तिकाः देवाः वेदितव्याः =ब्रह्मलोक आलयवाले(पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले) लौकांतिक देव जानने चाहिये

यदि एवम् सर्वेषाम् =(प्रश्न)जो ऐसे हैं अर्थात् पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले लौकान्तिक देव हैं तो समस्त

ब्रह्मलोक आलयानाम् देवानाम् लौकान्तिकत्वं प्रसक्तं? =ब्रह्मलोकमें रहनेवाले देवोंके लौकान्तिक होना पाया जाता है

अन्वर्थ-सञ्ज्ञा =(उत्तर) (इन देवोंका) सार्थक नाम (अर्थात् जैसा नाम है वैसाही अर्थ

ग्रहणात् अदोषः ब्रह्मलोकः लोकः =ग्रहण करनेसे दूषण नहीं है। ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) सो लोक है

तस्य अन्तः लोक-अन्तः तस्मिन् भवाः लौकान्तिकाः =तिसका छोर सो लोकांत है तिस (पांचवां स्वर्गके अन्त)में (उत्पन्न)होनेवाले ये लौकांतिक हैं

इति न सर्वेषाम् ग्रहणम् =ऐसे समस्त (पांचवां स्वर्गके देवोंका) ग्रहण नहीं होता है ॥

इदं न ज्ञायते इत आरम्भ कल्पा भवन्तीति सौधर्मादिग्रहणमनुवर्तते । तेनायमर्थो लभ्यते- सौधर्मादय प्राग्ग्रैवेयकेभ्य कल्पा इति पारिशेप्यादितरे कल्पातीता इति ॥

लौकान्तिका देवा वैमानिका सन्त क्व गृह्यन्ते ? कल्पोपपन्नेषु । कथमिति चेदुच्यते—

॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥

पूर्वाः—सौधर्म आदयः प्राक् ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व (पूर्व) कल्प हैं अर्थात् सौधर्म पहिले स्वर्गसे लेकर अच्युत सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त 'कल्प' कहेजाते हैं
पृच्छनादः—इदम् न ज्ञायते	=(सूत्रमें) यह नहीं बोध करायागया है अथवा जतायागया है कि
इत आरम्भ-कल्पाः भवन्ति इति सौधर्म आदि	=यहांसे (=इतः) कल्प आरम्भ होतेहैं (उन्नीसवां सूत्रसे) 'सौधर्म आदिका'
ग्रहणम् अनुवर्तते	=(इससूत्रमें)ग्रहण प्रवर्तता है अर्थात् उन्नीसवां सूत्रसे सौधर्म आदि शब्दलियेगये हैं
तेन अयम् अर्थः लभ्यते	=तिस (सौधर्म आदिके ग्रहण)से यह अर्थ प्राप्त कियागया है कि
सौधर्म-आदयः प्राक् ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व २ वा पहिले २ कल्प हैं, स्वर्ग हैं ।
इति पारिशेष्यात् इतरे कल्प अतीताः इति	=ऐसे इन (कल्पों) से अवशेष (=पारिशेप्यात्) अन्य (=इतरे) कल्पातीत हैं, अर्थात् प्रथम सौधर्म स्वर्गसे अच्युत सोलह स्वर्ग तक कल्प कहलाते हैं। सोलह स्वर्गों से भिन्न जे नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर पर्यन्त कल्पातीत कहेजाते हैं॥
लौकान्तिकाः देवाः वैमानिकाः सन्तः क्व गृह्यन्ते	=लौकान्तिकदेव वैमानिक हैं। कहां मानेगये हैं वा ग्रहण किये गये हैं ?
कल्प-उपपन्नेषु कथम् इति चेत् उच्यते	=(उत्तर) कल्प वासियोंमें (प्रश्न) कैसे ऐसा संदेह होनेपर कहाजाता है कि

(१)सूत्रम्—ब्रह्मलोकालयालौकान्तिका = ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका (भवन्ति) ॥२४॥

श्रीमं झलमार जी (लाहौर) मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र में तथा प० सदा सुखजी कृत लघुटीकामें कल्पाः शब्दके स्थानमें कल्प शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि कल्प सोलह हैं और कल्प शब्द प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग है केवल एक स्वर्गका द्योतक है। अत कल्पाः बहुवचन होना चाहिये॥

(१) हमारे यहां कहीं कहीं पर 'लौकांतिका पाठ भी है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्वेताम्बरीयभाष्य) में "लोकान्तिका" पाठ है दोनो पाठ शुद्ध हैं (देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ५१ टिप्पणी पृष्ठ ५५० ५५१)॥ दोनो सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एकसा है॥

क इमे सारस्वतादय । अष्टास्वपि पूर्वोत्तरादिषु दिक्षु यथाक्रममेते सारस्वतादयो देवगणा वेदितव्याः । तद्यथा-

हैं और सारस्वत भी आठ प्रकारके लौकान्तिक देव हैं भावार्थ अग्न्याभ, सूर्याभ, चन्द्राभ, सत्याभ, श्रेयस्कर, क्षेमंकर, वृषभेष्ट, कामचर, निर्माणरज, दिगन्तरक्षित, आत्मरक्षित, सर्वरक्षित, मरुत्, वसु, अश्व, विश्व, ये सोलह प्रकारके लौकान्तिक देव हैं और सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, अरिष्ट भी आठ प्रकारके लौकान्तिक देव ऐसे सब लौकान्तिक चोवीस प्रकारके हैं।

पृष्ठानुवादः क=इमे॥सारस्वत-आदयः॥,अष्टासु॥	=(प्रश्न) कहां हैं ये सारस्वतादिक (लौकान्तिक देव), आठों
अपि=पूर्व-उत्तर आदिषु॥	=ही पूर्व ईशान-उत्तर,वायव्य-पश्चिम-नैऋत्य (नैऋत)-दक्षिण-आग्नेय (=आदिषु)
दिक्षु॥यथाक्रमम्=एते॥सारस्वत-आदयः॥	=दिशाओंमें अनुक्रमसे ये सारस्वत आदिक (निम्न लिखित चौवीस प्रकारके)
देवगणाः॥वेदितव्याः॥तद्यथा=	=देवोंके समूह जानने चाहिये-जैसे

और मरुत (अरिष्टाश्च) का अनुवाद यह किया है कि उत्तरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव रहते हैं। तत्त्वार्थभाष्यमें केवल आठ प्रकारके लौकान्तिक देवोंका कथन है इससे प्रगट है कि 'मरुत्' और 'अरिष्ट' एक ही प्रकार है। आठ दिशाओंमें रहनेकी अपेक्षासे हमारे यहांके कथनसे श्वेताम्बरसमाजका मेल मिलता है केवल इतना भेद है कि उत्तर दिशा में हमारे यहां अरिष्ट' देवोंका निवास है उनके यहां मरुत् देवों का, यदि मरुत् और अरिष्ट देवोंको अभेद रूपसे मानलें तो कुछभी अन्तर दोनोंमें नहीं रहता है जैसाकि निम्न लेखसे जो तत्त्वार्थभाष्य० के पृष्ठ ११३ और ११४ से लिया है विदित है

'जैसे पूर्वोत्तर दिशामें सारस्वत देव रहते हैं अर्थात् पूर्व और उत्तर दिशा के कोण (ऐशानकोण) में सारस्वत रहते हैं। पूर्व दिशामें आदित्य संज्ञक देव रहते हैं। इसी प्रकार अन्य देवोंके विषयमें भी जानलेना चाहिये अर्थात् पूर्व दक्षिण (आग्नेय कोण) में वह्नि, दक्षिणमें अरुण दक्षिणपश्चिम (नैऋत्यकोण) में गर्दतोय पश्चिम में तुषित, पश्चिमोत्तर(वायव्यकोण)में अव्याबाध और उत्तरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव' रहते हैं। तत्त्वार्थभाष्य०में'च' शब्द का कोई अर्थ नहीं किया है हमारे यहां चकार से सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देव लिये हैं। आठ प्रकार के देवोंमें 'अरिष्ट देव' उत्तर दिशामें रहने वाले हैं और सोलहप्रकार के देवोंमेंसे मरुत् देव हैं जो वायव्य और उत्तर दिशाओं के मध्यमें रहते हैं (देखो वृत्ताकार पृष्ठ ८५ में)।

श्वेताम्बर समाजके भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका के निम्नलेखसे प्रगट है कि कोई आठप्रकारके लौकान्तिक देव मानते हैं कोई कोई नव प्रकारके "म स्वेवमनेव नवभेदा भवंति। भाष्यकृतावाष्टविधा इति मुद्रिता उच्यते। लौकांत वर्तिन एतेऽष्टभेदा। सूरिक्षेपात्ता। अरिष्ट विमान प्रस्तार वर्तिभिं नवधा भवतीत्यर्थः" पृष्ठ ३४२॥

तेषां हि विमानानि ब्रह्मलोकस्यान्तेषु स्थितानि ॥ अथवा जन्मजरामरणाकीर्णो लोकः संसारः तस्यान्तो लोकान्तः । लोकान्ते भवा लौकान्तिकाः ते सर्वे परीतसंसाराः । ततश्च्युता एकं गर्भावासं प्राप्य परिनिर्वास्यन्ति ॥ तेषां सामान्येनोपदिष्टानां भेदप्रदर्शनार्थमाह—

॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

तेषाम् हि विमानानि ब्रह्म-लोकस्य अन्तेषु	=तिन (लौकान्तिक देवों)केही विमान ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) के अन्तमें
स्थितानि ॥ अथवा जन्म-जरा-मरण आकीर्णः लोकः	=स्थित हैं अथवा जन्म जरा और मृत्युकरि व्याप्त =आकीर्ण)जो भुवन (=लोक)
संसारः तस्य अन्तः लोक अन्तः	=जो जगत (=संसार) तिस (संसार)का अन्त वा छोर सो लोकान्त है
लोक अन्ते भवाः लौकान्तिकाः ते सर्वे	=संसारके अन्तमें हों वे लौकान्तिक हैं । वे समस्त (लौकान्तिकदेव)
परीत-संसाराः ततः	=संसारसे विरक्त वा उदासीन(=परीत)हैं वहां(ब्रह्मलोकके अंत अपने निवासस्थान)से
च्युताः एकम् गर्भ आवासम् प्राप्य परिनिर्वास्यन्ति(१)	=पतित होकर एक गर्भवासस्थानको प्राप्त कर कर्मों के विरुद्ध अर्थात् कर्मोंको जीतकर निर्वाण पावे हैं
तेषाम् सामान्येन उपदिष्टानाम् भेद प्रदर्शनअर्थम् आह ।	=सामान्यकरि कहेहुये तिन (लौकान्तिकदेवों)के भेद दिखावनेके लिये कहते हैं कि

(२)सूत्रम्—सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

= सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च + (लौकान्तिकाः)(२) भवन्ति

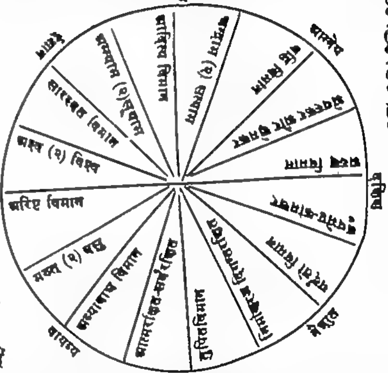
सूत्रार्थ —सारस्वत आदित्य-वह्नि अरुण-गर्दतोय तुषित	=सारस्वत, आदित्य वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित
अव्याबाध अरिष्टाः च लौकान्तिकाः भवन्ति ।	=अव्याबाध, अरिष्ट भी (= च)लौकान्तिकदेव हैं अर्थात् अन्य लौकान्तिकदेव

(१) 'परि' अव्यय जब क्रियाके साथ आताहै तब उसको उपसर्ग कहते हैं । इसके क्रियाके साथमें चारोंओर, अधिक,विरुद्ध प्रतिकूल,विपरीत, अतिशय अत्यन्त, इन चार अर्थोंमें आताहै यहां 'विरुद्ध' प्रतिकूल अर्थमेंहै अतः कर्मोंके विरुद्ध प्रतिकूल ऐसा अनुवादकियाहै पृष्ठ ८१में 'निर्वास्यन्ति है।

(२) 'लौकान्तिकाः' वाक्यकी अनुवृत्ति चौबीसवां सूत्रसे है । सूत्रमें 'च' शब्द अन्य सोलह प्रकारके लौकान्तिक देवोंके समुच्चय के लिये हैं ॥

(३) हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रका और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाका पाठ और हमारे यहां का पाठ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाध'तक एक है हमारे यहां अव्याबाधके पश्चात् "अरिष्टाश्च" पाठ औरहै । भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'अव्याबाध'के पीछे 'मरुतः' शब्द अधिक है । सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें 'अव्याबाध'के पश्चात् मरुतः (अरिष्टाश्च)वाक्य अधिक है ॥

तद्यथा सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभा । आदित्यस्य च वह्नेश्चान्तरे चन्द्राभसत्याभा । वह्न्यरुणान्तराले श्रेयस्करक्षेमकरा । अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचरा । गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरक्षिता । तुषिताव्याबाधमध्ये आत्मरक्षितसर्वरक्षिता । अव्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्वसव । अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्वविश्वा ॥ सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात् ॥

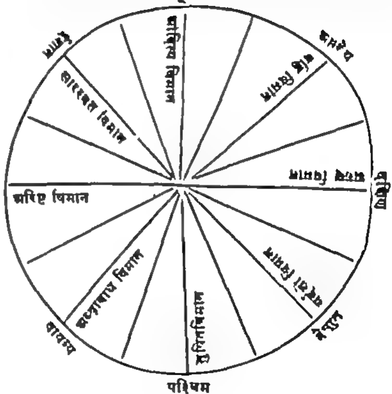


तथा=सारस्वत-आदित्य- =जैसे सारस्वत आदित्य के
अन्तरे=अग्न्याभ-सूर्याभा । =अन्तराल में अग्न्याभसूर्याभ हैं ।
आदित्यस्य च=वह्नेः च=अन्तरे=चन्द्राभ-सत्याभा । =और आदित्य के और वह्निके बीच में चन्द्राभ सत्याभ हैं ।
वह्नि-अरुण अन्तराले=श्रेयस्कर क्षेमकरा । =वह्नि और अरुण के मध्यमें श्रेयस्कर क्षेमकर हैं ।
अरुण-गर्दतोय अन्तराले=वृषभेष्ट-कामचरा । =अरुण गर्दतोय के अन्तर वा मध्य में वृषभेष्ट और कामचर हैं ।
गर्दतोय-तुषित-मध्ये=निर्माणरजो=दिगन्तरक्षिता । =गर्दतोय और तुषितके बीचमें निर्माणरज और दिगन्तर रक्षित हैं ।
तुषित-अव्याबाध-मध्ये । =तुषित और अव्याबाधके बीचमें
आत्मरक्षित-सर्वरक्षिता । =आत्मरक्षित और सर्वरक्षित हैं ।
अव्याबाध अरिष्ट-अन्तराले=मरुत्-वसव । =अव्याबाध और अरिष्ट के अन्तरालमें मरुत् और वसु हैं ।
अरिष्ट-सारस्वत अन्तराले=अश्व-विश्वा । =अरिष्ट और सारस्वतके बीचमें अश्व और विश्व हैं ।
सर्वे=एते=स्वतन्त्रा । =समस्त ये (चौबीस प्रकारके लौकान्तिक) स्वाधीन हैं
हीन अधिकत्व-अभावात् । =क्योंकि (इनके) हीनता, अधिकताका एक दूसरेसे अभाव है अर्थात् इन चौबीस प्रकारके देवोंमें कोई देव अन्य देवसे हीन अधिक नहीं है वरन् सब समान हैं ।

(१) हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिके पृष्ठ १०१में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके मुद्रित पृष्ठ१७७में 'अरिष्टसारस्वतांतरे अश्वविश्वाः' ऐसा पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं।

पूर्वोत्तरकोणे सारस्वतविमानं, पूर्वस्या दिशि आदित्यविमानं, पूर्वदक्षिणस्या दिशि वह्नि विमान, दक्षिणस्या दिशि अरुणविमान, दक्षिणापरकोणे गर्दतोयविमान, अपरस्या दिशि तुषितविमान, उत्तरापरस्या दिशि अव्याबाधविमान, उत्तरस्या दिशि अरिष्टविमानम्॥ चशब्दसमुच्चिता तेषामन्तरे द्वौ द्वौ देवगणौ॥

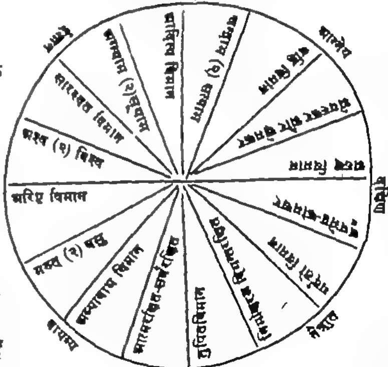
पूर्व उत्तर-कोणे॥	=पूर्व उत्तर कोनमें अर्थात् ईशान दिशामें
सारस्वत-विमानम्॥	=सारस्वत (देवोंका) विमान है
पूर्वस्यां॥ दिशि॥	=पूर्व दिशामें
आदित्य-विमानम्॥	=आदित्य (देवोंका) विमान है
पूर्व-दक्षिणस्याम्॥ दिशि॥	=पूर्व-दक्षिणदिशामें अर्थात् आग्नेय दिशामें
वह्नि-विमानम्॥	=वह्नि (देवोंका) विमान है
दक्षिणस्याम्॥ दिशि॥	=दक्षिण दिशामें
अरुण विमानम्॥	=अरुण (देवोंका) विमान है
दक्षिण अपर-कोणे॥	=दक्षिण पश्चिम कोनमें अर्थात् नैऋत्य दिशामें
गर्दतोय-विमानम्॥	=गर्दतोय (देवोंका) विमान है
अपरस्याम्॥ दिशि॥	=पश्चिम दिशामें
तुषित-विमानम्॥	=तुषित (देवों का) विमान है
उत्तर अपरस्याम् दिशि॥	=उत्तर पश्चिम दिशा में अर्थात् वायव्यदिशा में
अव्याबाध-विमानम्॥	=अव्याबाध (देवोंका) विमान है
उत्तरस्याम्॥ दिशि॥	=उत्तरदिशामें
अरिष्ट विमानम्॥ चशब्द	=अरिष्ट (देवोंका) विमान है (सूत्रमें) च शब्दसे
समुच्चिताः॥	=अन्य लौकान्तिक मिलायगये हैं
तेषाम्॥ अन्तरे॥	=तिन (सारस्वतादि आठ प्रकारके लौकान्तिक देवों) के मध्य में (क्रमसे)
द्वौ द्वौ देवगणौ॥	=दो दो (प्रकार के) देवों के समुदाय हैं अर्थात् सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देवोंके समूह और हैं।



तद्यथा सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभा । आदित्यस्य च वह्नेश्चान्तरे चन्द्राभसत्याभा । वह्न्यरुणान्तराले श्रेयस्करक्षेमकरा । अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचरा । गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तररक्षिता । तुषिताव्याबाधमध्ये आत्मरक्षितसर्वरक्षिता । अव्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्वसव । अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्वविश्वा ॥ सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात् ॥

तद्यथा=सारस्वत-आदित्य-	=जैसे सारस्वत आदित्य के
अन्तरे=अग्न्याभ-सूर्याभा॥	=अन्तराल में अग्न्याभसूर्याभ हैं ।
आदित्यस्य॥च=वह्नेः॥च=अन्तरे	=चतुरिआदित्य के और वह्निके बीच में
चन्द्राभ-सत्याभा॥ वह्नि अरुण	=चन्द्राभ सत्याभ हैं । वह्नि और अरुण के
अन्तराले॥ श्रेयस्कर क्षेमकरा॥	=मध्यमें श्रेयस्कर क्षेमकर हैं ।
अरुण-गर्दतोय अन्तराले॥	=अरुण गर्दतोय के अन्तर या मध्य में
वृषभेष्ट कामचरा॥	=वृषभेष्ट और कामचर हैं ।
गर्दतोय-तुषित-मध्ये॥ निर्माणरजो	=गर्दतोय और तुषितके बीचमें निर्माणरज
दिगन्तररक्षिता॥ तुषित-	=और दिगन्तर रक्षित हैं । तुषित और
अव्याबाध-मध्ये॥ ।	=अव्याबाधके बीचमें
आत्मरक्षित-सर्वरक्षिता॥	=आत्मरक्षित और सर्वरक्षित हैं ।
अव्याबाध-अरिष्ट-अन्तराले॥	=अव्याबाध और अरिष्ट के अन्तरालमें
मरुद्-वसव॥ अरिष्ट-सारस्वत-	=मरुत् और वसु हैं। अरिष्ट और सारस्वतके
अन्तराले॥ अश्व-विश्वा॥ सर्वे॥	=बीचमें अश्व और विश्व हैं । समस्त
एते॥ स्वतन्त्रा॥	=ये (चौबीसप्रकारके लौकान्तिक) स्वाधीन हैं
हीन अधिकत्व-अभावात्॥	=क्योंकि (इनके) हीनता, अधिकताका एक

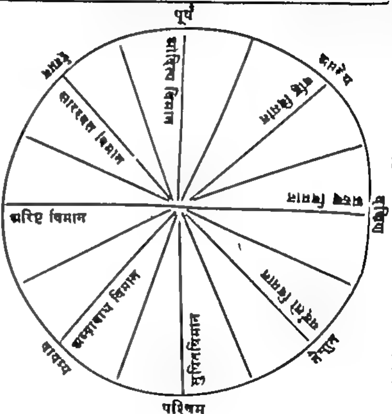
दूसरेसे अभाव है अर्थात् इन चौबीस प्रकारके देवोंमें कोई देव अन्य देवसे हीन अधिक नहीं है वरन् सब समान हैं ।



(१)हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिके पृष्ठ १०१में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके मुद्रित पृष्ठ१७४में अरिष्टसारस्वतांतरे अश्वविश्वाः ऐसा पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं॥

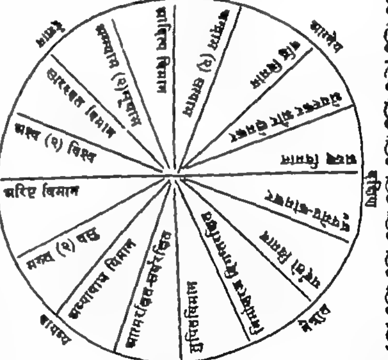
पूर्वोत्तरकोणे सारस्वतविमानं, पूर्वस्यां दिशि आदित्यविमानं, पूर्वदक्षिणस्यां दिशि वह्निविमानं, दक्षिणस्यां दिशि अरुणविमानं, दक्षिणापरकोणे गर्दतोयविमानं, अपरस्यां दिशि तुषितविमानं, उत्तरापरस्यां दिशि अव्याबाधविमानं, उत्तरस्यां दिशि अरिष्टविमानम्॥ चशब्दसमुच्चिता तेषामन्तरे द्वौ द्वौ देवगणौ॥

पूर्व उत्तर-कोणे॥ =पूर्व-उत्तरके कोनमें अर्थात् ईशान दिशामें
सारस्वत विमानम्॥ =सारस्वत (देवोंका) विमान है
पूर्वस्यां॥ दिशि॥ =पूर्व दिशामें
आदित्य-विमानम्॥ =आदित्य (देवोंका) विमान है
पूर्व-दक्षिणस्याम्॥ दिशि॥ =पूर्व-दक्षिणदिशामें अर्थात् आग्नेय दिशामें
वह्नि-विमानम्॥ =वह्नि (देवोंका) विमान है
दक्षिणस्याम्॥ दिशि॥ =दक्षिण दिशामें
अरुण विमानम्॥ =अरुण (देवोंका) विमान है
दक्षिण अपर-कोणे॥ =दक्षिण पश्चिम कोनमें अर्थात् नैऋत्य दिशामें
गर्दतोय-विमानम्॥ =गर्दतोय (देवोंका) विमान है
अपरस्याम्॥ दिशि॥ =पश्चिम दिशामें
तुषित-विमानम्॥ =तुषित (देवों का) विमान है
उत्तर अपरस्याम्॥ दिशि॥ =उत्तर पश्चिम दिशा में अर्थात् वायव्यदिशा में
अव्याबाध-विमानम्॥ =अव्याबाध (देवोंका) विमान है
उत्तरस्याम्॥ दिशि॥ =उत्तरदिशामें
अरिष्ट-विमानम्॥ चशब्द॥ =अरिष्ट (देवोंका) विमान है (सूत्रमें) च शब्दसे
समुच्चिता॥ =अन्य लौकान्तिक मिलायेगये हैं
तेषाम्॥ अन्तरे॥ =तिन (सारस्वतादि आठ प्रकारके लौकान्तिक देवों) के मध्य में (क्रमसे)
द्वौ॥ द्वौ॥ देवगणौ॥ =दो दो (प्रकार के) देवों के समुदाय हैं अर्थात् सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देवोंके समूह और हैं।



तद्यथा सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभा । आदित्यस्य च वह्नेश्चान्तरे चन्द्राभसत्याभा । वह्न्यरुणान्तराले श्रेयस्करक्षेमकरा । अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचरा ।गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरक्षिता । तुषिताव्याबाधमध्ये आत्मरक्षितसर्वरक्षिता । अव्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्वसव । अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्वविश्वा ॥ सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात् ॥

तद्यथा=सारस्वत आदित्य	=जैसे सारस्वत आदित्य के
अन्तरे=अग्न्याभ-सूर्याभा॥	=अन्तराल में अग्न्याभसूर्याभ हैं ।
आदित्यस्य॥च=वह्नेः॥च=अन्तरे	=बहुरि आदित्य के और वह्निके बीच में
चन्द्राभ-सत्याभा॥ वह्नि अरुण	=चन्द्राभ सत्याभ हैं । वह्नि और अरुण के
अन्तराले॥श्रेयस्कर क्षेमकरा॥	=मध्यमें श्रेयस्कर क्षेमकर हैं ।
अरुण-गर्दतोय अन्तराले॥	=अरुण गर्दतोय के अन्तर या मध्य में
वृषभेष्ट-कामचरा॥	=वृषभेष्ट और कामचर हैं ।
गर्दतोय-तुषित-मध्ये॥निर्माणरजा	=गर्दतोय और तुषितके बीचमें निर्माणरज
दिगन्तरक्षिता॥तुषित-	=और दिगन्तर रक्षित हैं । तुषित और
अव्याबाध-मध्ये॥	=अव्याबाधके बीचमें
आत्मरक्षित-सर्वरक्षिता॥	=आत्मरक्षित और सर्वरक्षित हैं ।
अव्याबाध-अरिष्ट-अन्तराले॥	=अव्याबाध और अरिष्ट के अन्तरालमें
मरुद्-वसवः॥अरिष्ट-सारस्वत-	=मरुत् और वसु हैं।अरिष्ट और सारस्वतके
अन्तराले॥अश्व-विश्वा॥सर्वे॥	=बीचमें अश्व और विश्व हैं । समस्त
एते॥स्वतन्त्राः॥	=ये (चौबीस प्रकारके लौकान्तिक) स्वाधीन हैं
हीन अधिकत्व-अभावात्॥	=क्योंकि (इनके) हीनता, अधिकताका एक



दूसरेसे अभाव है अर्थात् इन चौबीस प्रकारके देवोंमें कोई देव अन्य देवसे हीन अधिक नहीं है वरन् सब समानहैं ।

(१)हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिके पृष्ठ १०१में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके मुद्रित पृष्ठ१७७में 'अरिष्टसारस्वतांतरे अश्वविश्वा।' ऐसा पाठ है दोनों पाठ ठीकहैं।

विषयरतिविरहाद्देवर्षय इतरेषां देवानामर्चनीया, चतुर्दशपूर्वधरा, तीर्थकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्या ॥ आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एकगर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ता। किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते? इत्यत आह—

विषयरतिविरहात्॥ (१)देव ऋषयः॥	=विषयोंमें रागसे रहित होने (के कारण)से देवऋषि अर्थात् देवोंमें ऋषि हैं
इतरेषाम्॥ देवानाम्॥ अर्चनीयाः॥ चतुर्दशपूर्वधराः॥	=अन्य देवोंके पूजनीय अथवा पूज्य हैं ये समस्त देव चौदह पूर्वके धारक हैं अर्थात् अंग और दृष्टिवाद बारहवां अंगमें 'परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और पूर्वगत (चौदह पूर्व) के ज्ञानी हैं देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ४२७ की टिप्पणी
(२)तीर्थंकरनिष्क्रमण प्रतिबोधनपराः॥ वेदितव्याः॥	=तीर्थंकरके तप कल्याण विषें सम्भाषनमें तत्पर (तल्लीन वा निपुण) जानने चाहिये
आह॥ उक्ताः॥ लौकान्तिकाः॥ ततस्॥ (३)च्युताः॥	=(शिष्य) पूछता है कि लौकान्तिकदेव कहेगये। वहां (ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग) से चयकर
एकम्॥ गर्भवासम्॥ अवाप्य + निर्वास्यन्ति इति उक्ताः॥	=एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य भवको धारण करके मोक्ष जाते हैं ऐसे कहेगये हैं
किम्॥ एवम्॥ अन्येषु॥ अपि॥ निर्वाणप्राप्तिकालविभाग॥	=क्या इसप्रकार अन्य देवोंमें भी मोक्षके पावनके कालका विभाग अथवा पृथकता
(४)विद्यते इति॥ अतः॥ आह॥	=वर्तमान है(=विद्यते) इसलिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

---

(१) पहिले चाहे स्वर ए ऐ ओ औ को छोड़कर आवे उसके पश्चात् ह्रस्व ऋकार होतो ऐसा ऋ स्वरके साथ नहीं मिलता है और मिलता भी है अर्थात् चाहे उसको स्वरके साथ मिलाओ चाहे न मिलाओ जैसे देव ऋषि=देवऋषि अथवा देव ऋषि=देवर्षि। देवर्षयः बहुवचन देवर्षि का है। (२) तीर्थकर-तीर्थ (हिनशासन-हितको करनेहारा आगम-शास्त्रउपदेशक) करोति तीर्थंकर, तीर्थंकर तीर्थ कर इसी अर्थमें होताहै (पाइअ सद्दकोष पृष्ठ १७३) (३) 'च्युता —सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें च्युत्वा पाठ है परन्तु उसके सूत्र २५ २६ में तीन स्थानोंमें और हस्तलिखित तीन प्रति में इस सूत्रमें) तथा तीन स्थानोंमें सूत्र २५, २६ में और राजवार्तिकके सूत्र २५ में एक स्थानमें सूत्र २६ के गांच स्थानोंमें (च्युता) शब्द है इसने हस्तलिखित तथा तत्वार्थराजवार्तिक पाठके अनुकूल 'च्युता शब्द लिया है॥ 'च्यु'गमन आदि पतन होना अर्थमें है च्युत्वा शब्द भी ठीक है(देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ १६की टिप्पणी दो)॥ तत्वार्थराजवार्तिकमें २५ सूत्रकी व्याख्यामें 'च्युत्वा शब्दका प्रयोग है। (४) विद् धातु सत्तार्थक दिवादि आत्मनेपदका धातु है इस गणमें क्रियाका प्रत्यय जोड़नेके पहिले य विकरण आजाता है। अर्थ विद् धातुका होना सत्ता है जैसे विद् य ते=विद्यते=वर्तमान है)

॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

आदिशब्द प्रकारार्थे वर्तते, तेन विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टानां ग्रहणं सिद्धं भवति ॥ क पुनरत्र प्रकार ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्ट्युपपाद ।

(१)सूत्रम्—विजयादिषु द्विचरमा ॥ २६ ॥ = (वैमानिका(२)) विजयादिषु(१) द्विचरमा भवन्ति ॥

विजय आदिषु ।।। वैमानिका ।। =विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित, नव अनुदिश विमानोंमें वैमानिक देव
द्विचरमा ।। भवन्ति =दो अन्तिम देह धरनेवाले होते हैं या इनके दो जन्म अन्तके रहजाते हैं ॥
अर्थात् यदेव मनुष्यके दोभव धारणकर मोक्षजातहैं या इनके दो मनुष्यभव सिद्धावस्था प्राप्त होनेमें शेष रहजातेहैं भावार्थ ऐसाहै कि नोअनुदिश और विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित इन तरह विमानोंसे चयकर मनुष्य होय बहुरि संयम आराध कर फिर विजयादिक विमानों उपजें वहांसे चयकर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष पाते हैं।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छब्बीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

आदिशब्द ।। प्रकार अर्थे ।। वर्तते तेन ।। =सूत्रमें आदिशब्द सादृश्य (जनावन) के अर्थमें है। तिस (आदि शब्द)से
विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित-अनुदिश-विमानानाम् ।।। =विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित और नव अनुदिश विमानोंका
इष्टानाम् ।।। ग्रहणम् ।।। सिद्धम् ।।। भवति =जो वांछित अथवा मानित हैं ग्रहण सिद्ध होता है
क ।। पुन अत्र प्रकार ।। अहमिन्द्रत्वे ।।। सति ।।। सम्यग्दृष्टि उत्पाद =पुनि यहां क्या सदृशता हुई (उत्तर) अहमिन्द्र होनमें सम्यग्दृष्टिका उत्पाद है

(१) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है। परन्तु उनके यहां नवअनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं है इसलिये हमारे यहां तेरह विमानोंके वासीदेव द्विचरमा हैं उनके यहां केवल विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजितवासी द्विचरमा हैं देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ११४।
(२) सोलहवां सूत्रसे 'वैमानिकाः' शब्दकी अनुवृत्ति इससूत्रमें लीगई है (३) यह विजयादिकनितें आयजीव एक जन्मभी लेवें अरदो जन्मभी मनुष्यके लेवेहैं तातें ऐसो अर्थ है जो विजयादिकनितें चयकर मनुष्य होय बहुरि संयम आराधि फेर विजयादिकनिमें उपजें तहांते चय मनुष्य होय मोक्ष जावहैं ऐसे द्विचरम देहपना है। ऐसे अनुदिश अर चार अनुत्तरके देव तो दाय भवभी धारें एक भी धारें। स्वर्गोके आठ युगल हैं तिनमें बारह इन्द्र हैं छह इन्द्र दक्षिणके और छह इन्द्र उत्तरके इनमें उत्तरके छः इन्द्रोंको छोड़कर दक्षिणके जो छह इंद्र (१ सौधर्म २ सानत्कुमार ३ ब्रह्म ४शुक्र ५ आनत ६ आरण) और

विषयरतिविरहाद्देवर्षय इतरेषां देवानामर्चनीया, चतुर्दशपूर्वधरा, तीर्थकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्या ॥ आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एकं गर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ता। किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते? इत्यत आह—

विषयरतिविरहात्॥ (१)देव ऋषयः॥	=विषयोंमें रागसे रहित होने (के कारण)से देवऋषि अर्थात् देवोंमें ऋषि हैं
इतरेषाम्॥ देवानाम्॥ अर्चनीयाः॥ चतुर्दशपूर्वधराः॥	=अन्य देवोंके पूजनीय अथवा पूज्य हैं वे समस्त देव चौदह पूर्वके धारक हैं अर्थात् अंग और दृष्टिवाद बारहवां अंगमें 'परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और पूर्वगत (चौदह पूर्व) के ज्ञानी हैं देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ४२७ की टिप्पणी
(२)तीर्थकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपराः॥ वेदितव्याः॥	=तीर्थंकरके तपकल्याण विषैं सबधानमें तत्पर (सावधान वा निपुण) जानने चाहिये
आह॥ उक्ताः॥ लौकान्तिकाः॥ ततस्॥ (३)च्युताः॥	=(शिष्य) पूछता है कि लौकान्तिकदेव कहेगए। यहां (ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग) से चयकर
एकम्॥ गर्भवासम्॥ अवाप्य॥ निर्वास्यन्ति॥ इति॥ उक्ताः॥	=एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य भवको धारण करके मोक्ष जाते हैं ऐसे कहेगये हैं
किम्॥ एवम्॥ अन्येषु॥ अपि॥ निर्वाणप्राप्तिकालविभागः॥	=क्या इसप्रकार अन्य देवोंमें भी मोक्षके पावनेके कालका विभाग अथवा पृथक्ता
(४)विद्यते॥ इति॥ अतः॥ आह॥	=वर्तमान है(=विद्यते) इसलिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) यदि कोई स्वर ए ऐ ओ औ को छोड़कर आवे उसके पश्चात् ह्रस्व ऋकार होता ऐसा ऋ स्वरके साथ नहीं मिलता है और मिलता भी है अर्थात् चाहें उसको स्वरके साथ मिलादो चाहें न मिलादो जैसे देव ऋषि=देवऋषि अथवा देव ऋषि=देवर्षि। देवर्षयः बहुवचन देवर्षि'का है।
(२) तीर्थंकर-तीर्थ (इतिहास-हितको करनेहारा आगम शास्त्रउपदेशक) करोति तीर्थंकर, तीर्थंकर तीर्थं करहरो अर्थमें होता है(पाणव म्ब्रकोश पृष्ठ१७१)
(३) 'च्युत्वा —सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें च्युत्वा पाठ है परन्तु उनके सूत्र २७ २६ में तीन स्थानोंमें और हस्तलिखित तीन प्रति में इस सूत्रमें) तथा तीन स्थानोंमें सूत्र २७, २६ में और राजवार्तिकके सूत्र २७ में एक स्थानमें सूत्र २६ के पांच स्थानोंमें (च्युताः) शब्द है हमने हस्तलिखित तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक पाठके अनुकूल 'च्युताः' शब्द लिया है॥ 'च्यु'प्रथम स्यादि गमन होना अर्थमें है 'च्युत्वा' शब्द भी ठीक है(देखो प्रथम अध्याय पद १६की टिप्पणी को)॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें २७ सूत्रकी व्याख्यामें 'च्युत्वा' शब्दका प्रयोग है।(४)विद् सत्तायाम् दिवादि चतुर्थगणका धातु है इस धातुमें क्रियाका प्रत्यय आत्मनेपदसे य विकरण आजाता है। अर्थ विद् धातुका होना करता है जैसे विद् य ते=विद्यते=वर्तमान है)

॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

आदिशब्द प्रकारार्थे वर्तते, तेन विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टाना ग्रहणं सिद्ध भवति ॥ क पुनरत्र प्रकार ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्ट्युपपादः ।

[1]सूत्रम्–विजयादिषु द्विचरमा ॥ २६ ॥ = (वैमानिका[2]) विजयादिषु[3] द्विचरमा भवन्ति ॥

विजय आदिषु॥ वैमानिकाः॥ =विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित, नव अनुदिश विमानोंमें वैमानिक देव
द्विचरमाः॥ भवन्ति॥ =दो अन्तिम देह धरनवाले होते हैं या इनके दो जन्म अन्तके रहजाते हैं ॥

अर्थात् यदेव मनुष्यके दोभव धारणकर मोक्षजातेहैं या इनके दो मनुष्यभव सिद्धावस्था प्राप्त होनमें शेष रहजातेहैं भावार्थ ऐसाहै कि नोअनुदिश और विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित इन तरह विमानोंसे चयकर मनुष्य होय बहुरि संयम आराध कर फिर विजयादिक विमानों उपजैं वहांसे चयकर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष पावे हैं ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छब्बीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

आदिशब्दः॥ प्रकार अर्थे॥ वर्तते॥ तेन॥ =सूत्रमें आदिशब्द सादृश्य (बनावने) के अर्थमें है । तिस (आदि शब्द)से
विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित अनुदिश-विमानानाम्॥ =विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित और नव अनुदिश विमानोंका
इष्टानाम्॥ ग्रहणम्॥ सिद्धम्॥ भवति॥ =जो वांछित अथवा मानित हैं ग्रहण सिद्ध होता है
क॥ पुनः॥ अत्र॥ प्रकारः॥ अहमिन्द्रत्वे॥ सति॥ सम्यग्दृष्टि उत्पादः=पुनि यहां क्या सदृशता हुई (उत्तर) अहमिन्द्र होनमें सम्यग्दृष्टिका उत्पाद है

(१) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है ॥ परन्तु उनके यहां नवअनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं है इसलिये हमारे यहां तेरह विमानोंके वासीदेव द्विचरमा हैं उनके यहां केवल विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितवासी द्विचरमा हैं देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ११४ ।
(२) सोलहवां सूत्रसे वैमानिकाः शब्दकी अनुवृत्ति इससूत्रमें लीगई है (३) "अर विजयादिकनितें आयजीव एक जन्मसी लेवें अरदो जन्मभी मनुष्यके लेवेंहैं तातें ऐसो अर्थ है जो विजयादिकनितें चयकर मनुष्य होय, बहुरि संयम आराधि फेर विजयादिकनिमें उपजै तहांते चय मनुष्य होय मोक्ष जायहै ऐसे द्विचरम देहपना है । ऐसे अनुदिश अर चार अनुत्तरके देव तो दोय भवभी धारें एक भी धारें । स्वर्गके आठ युगल हैं तिनमें बारह इन्द्र हैं छह इन्द्र दक्षिणके और छह इन्द्र उत्तरके इनमें उत्तरके छः इन्द्रोंको छोड़कर दक्षिणके जो छह इंद्र (१ सौधर्म २ सानत्कुमार ३ ब्रह्म ४शुक्र ५ आनत ६ आरण) और

विषयरतिविरहाद्देवर्षयः इतरेषां देवानामर्च्चनीया, चतुर्दशपूर्वधरा, तीर्थकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्या ॥ आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एकगर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ता । किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते? इत्यत आह—

विषयरतिविरहात् (१)देव-ऋषयः	=विषयोंमें रागसे रहित होने (के कारण)से देवऋषि अर्थात् देवोंमें ऋषि हैं
इतरेषाम् देवानाम् अर्चनीया चतुर्दशपूर्वधराः	=अन्य देवोंके पूजनीय अथवा पूज्य हैं ये समस्त देव चौदह पूर्वके धारक हैं अर्थात् अग और दृष्टिवाद बारहवां अंगमें 'परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और पूर्वगत (चौदह पूर्व) के ज्ञानी हैं देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ४२७ की टिप्पणी
(२)तीर्थंकरनिष्क्रमण-प्रतिबोधनपराः वेदितव्याः	=तीर्थंकरके तप कल्याण विषैं सम्बोधनमें तत्पर (तल्लीन वा निपुण) जानने चाहिये
आह उक्ताः लौकान्तिकाः ततः (३)च्युताः	=(शिष्य) पूछता है कि लौकांतिकदेव कहेगये। वहां (ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग) से चयकर
एकम् गर्भवासम् अवाप्य निर्वास्यन्ति इति उक्ताः	=एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य भवको धारण करके मोक्ष जाते हैं ऐसे कहेगये हैं
किम् एवम् अन्येषु अपि निर्वाणप्राप्तिकालविभाग	=क्या इसप्रकार अन्य देवोंमें भी मोक्षके पावनेके कालका विभाग अथवा पृथकता
(४)विद्यते इति अत आह	=वर्तमान है(=विद्यते) इसलिये (आचार्य्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) यदि कोई स्वर ए ऐ ओ औ को छोड़कर आवे उसके पश्चात् ह्रस्व ऋकार होतो ऐसा ऋ स्वरके साथ नहीं मिलता है और मिलता भी है अर्थात् चाहे उसको स्वरके साथ मिलादो चाहे न मिलादो जैसे देव ऋषि=देवऋषि अथवा देव ऋषि=देवर्षि । देवर्षयः बहुवचन 'देवर्षि'का है। (२) तीर्थंकर-तीर्थ (हितशासन-हितको करनेवाला आगम शास्त्रउपदेशक)करोति तीर्थंकर, तीर्थंकर तीर्थ कर इसी अर्थमें होताहै(पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ१७३) (३) 'च्युता' —सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें च्युता पाठ है परन्तु उनके सूत्र २४ २५ में तीन स्थानोंमें और हस्तलिखित तीन प्रति में,(इस सूत्रमें) तथा तीन स्थानोंमें सूत्र २५, २६ में और राजवार्तिकके सूत्र २४ में एक स्थानमें सूत्र २५ के नीचे स्थानोंमें (च्युता) शब्द है हमने हस्तलिखित तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक पाठके अनुकूल 'च्युता' शब्द लिया है। 'च्यु'प्रथम भ्वादि पतन होना अर्थमें है च्युत्वा शब्द भी ठीक है(देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ११की टिप्पणी दो)। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें २४ सूत्रकी व्याख्यामें 'च्युत्वा' शब्दका प्रमाण है।(४)विद् पदार्थपर दिवादि चतुर्थगणका धातु है इस गणमें क्रियाका प्रत्यय आनेसे पहिले य विकरण आजाता है। अर्थ विद् धातुका 'होना' यसा है जैसे विद् य ते=विद्यते=वर्तमान है)

चरमत्वं देहस्य । मनुष्यभवापेक्षया द्वौ चरमौ देहौ येषां ते द्विचरमाः । विजयादिभ्यश्च्युता अप्रतिपतितसम्यक्त्वा मनुष्येषूत्पद्य संयममाराध्य पुनर्विजयादिषूत्पद्य ततश्च्युताः पुनर्मनुष्यभवमवाप्य सिद्ध्यन्तीति द्विचरमदेहत्वम्॥ आह जीवस्यौदयिकेषु भावेषु तिर्यग्योनिगतिरौदयिकीत्युक्ता, पुनश्च स्थितौ

चरमत्वम् ॥ (१) देहस्य	=(यहां एक चरमत्वसिद्धि इस वाक्यमें) चरमत्व शब्द है सो देहका चरमत्व है अर्थात् देहका अवसानपना वा अन्तपना ऐसा चरमत्व शब्दसे अभिप्राय है
मनुष्यभव अपेक्षया ॥ द्वौ चरमौ देहौ येषाम्	=मनुष्य जन्मकी विवक्षासे दो अन्तिम शरीर जिनके हैं
ते द्विचरमाः	=वे द्विचरमा हैं अर्थात् मनुष्यभवमें संयमको आराधनकर पुनः विजयादि विमानोंमें उत्पन्न होता है । वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य होता है और वहांसे फिर मोक्ष चला जाता है किन्तु भव सामान्यकी अपेक्षा यहां पर द्विचरमपना नहीं है अन्यथा दो मनुष्यभव और एक देवभव इस प्रकार तीन चरम देहपना सिद्ध होगा दो चरम देहपना सिद्ध न होसकेगा ।
विजयादिभ्यः च्युताः (२) अप्रतिपतितसम्यक्त्वाः	=विजयादिक (तेरह) विमानोंसे चयकर (निकलकर) अप्रतिपतित सम्यग् दर्शनवाले अर्थात् क्षायिकसम्यग् दर्शन सहित
मनुष्येषु उत्पद्य + संयमम् आराध्य (३) + पुनः विजय	=मनुष्योंमें उत्पन्न होकर संयमको धारणकर फिर विजय
आदिषु उत्पद्य (३) + ततः च्युताः पुनः मनुष्यभवम्	=आदिक (विमानोंमें) उत्पन्न होकर वहांसे च्युत होते हैं । फिर मनुष्यजन्मको
(३) अवाप्य + सिद्ध्यन्ति इति द्विचरमदेहत्वम् ॥	=प्राप्त होकर मोक्ष जाते हैं । इस प्रकार दो चरम अर्थात् दो अन्तिम देहपना है
आह जीवस्य औदयिकेषु भावेषु तिर्यग्योनिगतिः ॥	=(शिष्य) पूछता है कि जीवके औदयिक भावोंमें तिर्यञ्चगति
औदयिकी ॥ इति उक्तम् ॥ पुनः च स्थितौ	=औदयिकीपनेसे (दूसरा अध्याय सूत्र ६में) कथित वा वर्णित है वहुरि स्थितिमेंभी (=च)

(१) देहस्य षष्ठी विभक्तिका एक वचन पुल्लिंग वा नपुंसकलिंग दोनों होसकते हैं । (२) सर्वार्थसिद्धि हस्तलिखित तथा द्वितीयावृत्तिमें, तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें 'अप्रतिपतित' शब्द है, प्रथमावृत्तिमें 'अप्रतिपातित' शब्द है, ज्ञात होता है कि भूलसे छपगया है (३) उत्पद्य (=उत्पन्न होकर) आराध्य (=आराधनकर) और अवाप्य (=प्राप्त होकर) ये सम्बन्धसूचक भूत कृदन्त हैं । [४] 'यामि' शब्द स्त्रीलिंग पुल्लिंग दोनोंमें अमरकोश वर्ग १६में आया है ।

सर्वार्थसिद्धिप्रसंग इति चेन्न तेषा परमोत्कृष्टत्वात् । अन्वर्थसञ्ज्ञात एकचरमत्वसिद्धे ॥

सर्वार्थसिद्धि-प्रसंगः१ इति* चेत्* =सर्वार्थसिद्धि (विमानवासी) ग्रहण हुआ ऐसा सन्देह (शिष्यकी ओरसे) है अर्थात् आचार्यके उत्तर देने पर कि विजय आदिक तेरह विमानोंमें सम्यग् दृष्टिके अतिरिक्त कोई जीव जन्म धारण नहीं करता है शिष्यने यह संदेह किया कि ऐसा करनेमें सर्वार्थसिद्धि का विमान भी ग्रहण होजाता है क्योंकि सर्वार्थसिद्धि विमानमें बसनेवाले देव भी तो अहमिन्द्र ही हैं और सम्यग् दृष्टि ही हैं (उत्तर)

न*-तेषाम्१-परम उत्कृष्टत्वात्१ =नहीं तिन)सर्वार्थसिद्धिवासी देवों का(ग्रहण)परम उत्कृष्ट होने(के कारण)से (यहांपर) हुआ (क्योंकि सर्वार्थसिद्धि अर्थात् जहां सम्पूर्ण अभ्युदयके अर्थ सिद्धि होगये हैं ऐसी)

अन्वर्थ-सञ्ज्ञात* =सार्थक संज्ञा या जैसा नाम है वैसा अर्थ वाली संज्ञा होनेसे

एकचरमत्वसिद्धेः१॥ =एक (मनुष्य)देहके अन्तपनेसे (चरमत्व) सिद्ध होवे है अर्थात् सर्वार्थसिद्धिसे च्युत होकर मनुष्यका एक शरीर धारणकर मोक्ष पावें हैं। इस समस्त प्रश्न और उत्तरका भावार्थ यह है कि शंका करनेपर कि अहमिन्द्र और सम्यग्दृष्टी तो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी भी देव हैं । यदि यहाँ पर प्रकारका अर्थ यह कियाजायगा कि जो वैमानिकदेव अहमिंद्र और सम्यग्दृष्टि हों वे द्विचरम (=दो भव धारणकर मोक्ष जाते) हैं तबतो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंको भी दो मनुष्य भव धारण करके पीछे मोक्ष माननी पड़ेगी क्योंकि अहमिंद्र और सम्यग्दृष्टी वे भी हैं । परन्तु उ हे शास्त्रमें एक चरमी (=एक भव धारणकर मोक्ष जानेवाला माना) है इसलिये प्रकार शब्दका जो अहमिंद्र और सम्यग्दृष्टि अर्थ माना है वह अयुक्त है)। उत्तरमें कहते हैं कि सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव परमोत्कृष्ट हैं ।जहां पर सर्व प्रयोजनोंकी सिद्धि हो वह सर्वार्थसिद्धि है। यह सर्वार्थसिद्धि शब्दका अन्वर्थरूपसे अभिप्राय है । सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंके किसी प्रयोजनीय कार्य सम्पादन करनेवाला कर्म शेष नहीं रहता जिससे वे दो मनुष्य भव धारणकर मोक्ष जायं अत' भावार्थ वे एकही मनुष्य भव धारण करते हैं और वहांसे मोक्ष चले जाते हैं अत उनके एक चरमपनाही है द्विचरमपना नहीं है ॥

सौधर्म इन्द्रकी इन्द्राणी (जो तीर्थंकरको जन्म समय प्रसूत गृहमेंसे लाय इन्द्रको सौंपे सो सची) सौधर्म स्वर्गके चारो लोकपाल(१ सोम २ यम ३ वरुण ४ कुबेर) और सब लौकान्तिक देव अर सर्वार्थसिद्धिविमानके सब अहमिन्द्रदेव एक भव अवतारी हैं ॥

तेषा तिरश्चा देवादीनामिव क्षेत्रविभाग पुनर्निर्देष्टव्य । सर्वलोकव्यापित्वात्तेषा क्षेत्रविभागो नोक्त ॥ आह स्थितिरुक्ता नारकाणा, मनुष्याणां तिरश्चा च। देवाना नोक्ता। तस्या वक्तव्यायामादावुद्दिष्टाना भवनवासिनां स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणा सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता॥

पुनः तेषाम् तिरश्चाम् देव-आदीनाम् इव	=और उन तिर्यञ्चोंका देवादिकों के समान (=इव)
क्षेत्रविभागः निर्देष्टव्यः	=क्षेत्रविभाग अर्थात् जिस क्षेत्रमें तिर्यञ्च पाये जावें सो कहना चाहिये
सर्वलोक-व्यापित्वात् तेषाम् क्षेत्रविभागः न उक्तः	=(परन्तु) सर्वलोकमें पायेजानेसे उन (तिर्यञ्चों) का क्षेत्रविभागनहीं कहागया
आह स्थितिः उक्ता नारकाणाम् मनुष्याणाम्	=(शिष्य) पूछता है कि आयु नारकोंकी कही गई, मनुष्योंकी
तिरश्चाम् च देवानाम् न उक्ता तस्याः	=तिर्यञ्चोंकी भी (=च, कहीगई) देवोंकी नहीं कहीगई उसके
वक्तव्यायाम् आदौ उद्दिष्टानाम् भवनवासिनाम्	=कहनेकेआदिमें(इसअध्यायकासूत्र२,३,१०में)उपदेशकियेगयेभवनवासीदेवोंकी
स्थिति प्रतिपादन अर्थम् आह	=आयुके कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्[1]—स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणा सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता ॥ २८ ॥

= (परा[2]) स्थिति —असुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणाम्-सागरोपम त्रिपल्योपम-अर्द्धहीनं[3] इता भवति[3])

परा स्थिति असुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-	=उत्कृष्टआयु असुर कुमार, नाग कुमार, सुपर्ण कुमार, द्वीपकुमार, और
शेषाणाम्	=बचे हुए (छह विद्युत कुमार अग्नि कुमार-वातकुमार-स्तनितकुमार-उदधि कुमार दिक्कुमारों) की (यथासंख्य या अनुक्रमसे)

(१) हमारे यहांके इससूत्रके स्थानमें श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य में २९ ३० ३१ ३२ सत्र दियेहै। उनमें 'स्थितिः' यह २९ वां सूत्र अधिकारसूत्रहै

(२) तेतीसवां सूत्रके 'अपरा' शब्दको देखनेसे जिस सत्रसे अट्ठतीसवां सूत्रतक जघन्य स्थितिका कथनहै और विशेषत ३७वां सूत्रपर दृष्टिकरनेसे जिसमें भवनवासी देवोंकी जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्षकी वर्णित है यह आशय झलकता है कि इस २८ वां सूत्रमें भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वर्णन है अतः मैंने इस सूत्रमें 'परा' (=उत्कृष्ट) शब्दको जोड़कर अर्थ किया है 'अपरा' का प्रतिकूल परा है ॥

(३) हीनमिता स्मरण रहे कि इता शब्द का अर्थ प्राप्त ऐसा है और मिता' शब्दका अर्थ परिमित' मापा हुआ (पद्मचन्द्रकोश पृ ६६] है ॥ यहां पर'हीनमिता'=हीनम् इता ऐसा पदच्छेदहै नकि हीन-मिता क्योंकि इताका प्रथमा विभक्ति-एकवचन स्त्रीलिंगहै उसका अन्वय'स्थिति'शब्दके साथहै।

तिर्यग्योनिजाना चेति । तत्र न ज्ञायते के [१]तिर्यग्योनय ? इत्यत्रोच्यते—

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

औपपादिका उक्ता देवनारका । मनुष्याश्च निर्दिष्टा । प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या इति । एभ्योऽन्ये संसारिणो जीवा शेषास्तिर्यग्योनयो वेदितव्या ॥

तिर्यग्योनिजानाम्, च, इति, तत्र, न, ज्ञायते = 'तिर्यग्योनिजानां च' ऐसे (अध्याय ३ सूत्र ३९ वाँ) यहां नहीं बतलायागया है कि

के, तिर्यग्योनय, इति, अत्र, उच्यते = तिर्यग्योनिवाले कौन हैं इसलिये यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

सूत्रम्— [२]औपपादिकमनुष्येभ्य शेषास्तिर्यग्योनय ॥ २७ ॥

= औपपादिकमनुष्येभ्य शेषास्तिर्यग्योनय (भवन्ति) ॥२७॥

सूत्रार्थ —औपपादिकमनुष्येभ्यः, शेषा, = उपपादरूप जन्मसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् अध्याय २ सूत्र ३४वां में उक्त देव तथा नारकीजीव और तीसराअध्यायके ३५वां सूत्रमें वर्णितमनुष्योंसेभिन्न अवशेष

तिर्यग्योनय, भवन्ति = तिर्यञ्च योनिज होते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इससत्ताईसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

औपपादिका, उक्ता, देवनारका, = उपपादरूप जन्मसे उत्पन्न होनेवाले देव, व नारकी अध्यायदो सूत्र ३४में कहेगये हैं

मनुष्या, च, निर्दिष्टा, प्राक्-मानुषोत्तरात्, मनुष्या, इति = और मनुष्य भी कहेगये हैं कि मानुषोत्तर पर्वतसे पहिले पहिले मनुष्य हैं (अध्याय तीसरेका सूत्र ३५ वां देखो)

एभ्य, अन्ये, संसारिण, जीवा, शेषा, = इन (देव नारकी तथा मनुष्यों) से भिन्न संसारी जीव शेष

तिर्यग्योनय, वेदितव्या, = तिर्यञ्चयोनिवाले जानने चाहिये । (एभ्यः पंचमी बहु वचन पुल्लिंग इदम्का है)

[१] 'योनि शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनोंमें अमरकोश" वर्ग १६ श्लोक ३६ में है परन्तु यह बहुवचन पुल्लिंग में है अतः 'योनयः' भी बहुवचन पुल्लिंगमें है। [२]श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में "औपपादिक" शब्दके स्थानमें औपपातिक है। शेषपाठ दोनो आम्नायोंमें एकही अर्थमेंएकसाही।

सर्वार्थ सिद्धि ६३

शेषाणां पण्णामध्यर्द्धपल्योपमम् ॥

आद्यदेवनिकायस्थित्यभिधानादनन्तरं व्यन्तरज्योतिष्कस्थितिवचने क्रमप्राप्ते सति तदुल्लंघ्य वैमानिकानां स्थितिरुच्यते। कुतः ? तयोरुत्तरत्र लघुनोपायेन स्थितिवचनात् ॥ तेषु चादावुद्दिष्टयोः कल्पयोः स्थितिविधानार्थमाह—

शेषाणाम्, षण्णाम्	=बचे हुए छह (विद्युत कुमार अग्नि कुमार-वात कुमार-स्तनितकुमार-उदधिकुमार दिक्कुमारों) की (स्थिति)
अध्यर्द्धपल्योपमम्	=आधी अधिक सहित एक पल्य प्रमाण अर्थात् डेढ़ पल्य प्रमाण है
आद्य-देव-निकाय-स्थिति अभिधानात्, अनन्तरम्	=प्रथम अर्थात् भवन वासी देवोंके समुदायकी स्थितिके कहनेसे अत्यन्त समीप
व्यन्तर-ज्योतिष्क स्थिति-वचने, क्रमप्राप्ते, सति	=व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंकी आयुके कथन (वचन) विषैं क्रम प्राप्त होने पर
तत् उल्लंघ्य + वैमानिकानाम्, स्थितिः, उच्यते	=उस (क्रम)को छोड़कर या त्यागकर वैमानिक देवोंकी आयु कही जाती है
कुतः ? तयोः, उत्तरत्र	=(प्रश्न)क्योंकर उन(व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवों)की(स्थिति)यहांसे आगे(कही जायगी)
लघुना, उपायेन	=(उत्तर) लघुकरणद्वारा या लघुसाधनद्वारा (उन व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंकी)
स्थिति-वचनात्	=स्थितिका कथन होगा अर्थात् अग्रिमसूत्रोंमें वर्णन करेंगे जो सूत्र उनसे पहिले सूत्रोंसे अनुवृत्ति होनेके निमित्तसे लघुहोंगेदेखो ३८ ३९ ४० ४१सूत्र जो कितने लघु हैं और जिनसे स्पष्ट है कि यदि व्यन्तर ज्योतिषियोंकी स्थिति २८वांसूत्र के अनन्तर कहते तो इन सूत्रोंकी इतनी लघु रचना कदापि नहीं होसकती थी
तेषु, च आदौ, उद्दिष्टयोः, कल्पयोः	=और तिन (वैमानिक देवों) विषैं आदिमें कहे हुए (सौधर्म और ऐशान) स्वर्गोंमें
स्थिति-विधान अर्थम्, आह	=आयुके नियम के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

भवनेषु दक्षिणार्धाधिपतीनां पल्योपममध्यर्धम् ॥ ३० सत्र ॥ (तत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ११५ से उद्धृत)

भवनेषु, दक्षिणार्धाधिपतीनाम्	=भवनवासी (देवों) में दक्षिणार्धाधिपति (शेष) तिनका अर्थात् विद्युत अग्नि स्तनित और द्वीप कुमारों की
पल्योपमम्, अध्यर्धम्	=अर्ध अधिक (सार्ध) एक पल्य प्रमाण अर्थात् डेढ़पल्य प्रमाण[परा स्थिति-उत्कृष्ट स्थिति]है ॥२०सूत्र॥

असुरादीना सागरोपमादिभिर्यथाक्रममत्राभिसम्बन्धो वेदितव्य ॥ इय स्थितिरुत्कृष्टा । जघन्याऽप्युत्तरत्र वक्ष्यते ॥ तद्यथा-असुराणा सागरोपमा स्थिति । नागाना त्रिपल्योपमा स्थिति सुपर्णानामर्द्धतृतीयानि । द्वीपाना द्वे ।

सागरोपम-त्रिपल्योपम अर्धहीनम्॥ =एक सागर प्रमाण-तीन पल्यप्रमाण उससे आधी आधी पल्य प्रमाण घाटि तीनस्थानमें

हता॥ =प्राप्त है (हीनम्-हता॥भवति) अर्थात् उत्कृष्ट आयु असुर कुमारों की एक सागर है, नाग कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यहै, सुपर्ण कुमारोंकी उत्कृष्ट आयु ढाई पल्य है, और द्वीप कुमारोंकीउत्कृष्ट आयु दो पल्यहै,शेष छह विद्युत्कुमारोंकी-अग्निकुमारोंकी-वात कुमारोंकी-स्तनित कुमारोंकी,उदधिकुमारोंकी दिक्कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थिति डेढ डेढपल्य है॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अट्ठाईसवा[1] सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

असुरादीनाम्॥सागरोपमादिभिः॥यथाक्रमम्॥अत्र॥ =असुरादिकोंका सागर प्रमाणादिक गणनाकरि क्रमसे यहां

अभिसम्बन्धः॥वेदितव्यः॥इयम्॥स्थितिः॥उत्कृष्टा॥ =सम्बन्ध जानना चाहिये। यह आयु उत्कृष्ट है

जघन्या॥अपि॥उत्तरत्र॥वक्ष्यते तद्यथा॥असुराणाम्॥ =जघन्य (स्थिति) भी यहांसे आगे (तेतीसवांसूत्रमें) कहेंगे। जैसे असुर कुमारोंकी

सागरोपमा॥स्थितिः॥नागानाम्॥त्रिपल्योपमा॥स्थितिः॥ =सागर प्रमाण आयु है। नाग कुमारोंकी तीन पल्य प्रमाण आयु है

सुपर्णानाम्॥अर्द्धतृतीयानि॥द्वीपानाम्॥द्वे॥ =सुपर्ण कुमारोंकी ढाई (पल्यप्रमाण आयु)है द्वीप कुमारों की दो(पल्योपम) आयु है

---

(१)हमारे यहांके इस अट्ठाईस[२८]वां सूत्रमें स्थिति शब्द जो आदिमें आयाहै उसको श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें उन्तीसवांसूत्र माना है और उसका तात्पर्य यह है कि इस सूत्रसे अध्याय के अन्त तक देवोंकी स्थिति का कथन करेंगे अर्थात् उनके यहां यह अधिकार सूत्र है और प्रयोजन यह है कि अग्रिमके सर्व सूत्रोंमें अध्यायके अन्ततक 'स्थिति' शब्दको प्रत्येक सूत्रमें लगाना। मेरी समझमें यह विधान ठीक है क्योंकि ऐसा माननेमें कोई प्रकार और शब्द अधिक नहीं होता और दो बातें प्रगट होजाती हैं प्रथम यह कि यहांसे इस अध्यायके अन्ततक सब आयुका ही प्रकरण है और दूसरी बात यह कि इस स्थिति शब्दकी अनुवृत्ति सर्व सूत्रोंमें इस सूत्रसे अध्याय पर्यंत लीजाती है॥ दिगम्बर आम्नायके इस अट्ठाईसवां सूत्रमें इस भवनवासी देवोंकी आयु वर्णित है वेही स्थितियें कुछ भेदके साथ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित तीन सूत्रोंमें उन्हीं इस भवन वासी देवोंकी आयुका कथन किया गया है॥

सौधर्मैशानयोः सागरोपमे [1]अधिके ॥ २९ ॥

सूत्रम्—सौधर्मैशानयो सागरोपमे अधिके ॥ २९ ॥
= (परा-स्थिति सूत्र २८वा से) सौधर्म-ऐशानयो सागरोपमे अधिके (भवति)

श्वेताम्बर आम्नायके तत्वार्थाधिगमसूत्रके २९-३० ३१ ३२ और हमारे यहांके २८ वां सूत्रका मिलाकर विचार पूर्वक पढ़नेसे भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भेद दोनों सम्प्रदायोंमें निम्न सूचीसे भले प्रकार विदित होता है ॥ जैसे

भवन वासी देवका नाम ॥	श्वेताम्बरआम्नायके अनुसार उत्कृष्टस्थिति	दिगम्बरआम्नायके अनुकूल उत्कृष्ट आयु		सूचना
(१) असुर कुमार	एक सागर प्रमाण } समाप्य०	एक सागर प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	दोनों सम्प्रदायोंमें असुर
(२) नाग कुमार	एकसागरप्रमाणसेकुछअधिक } सूत्र३२देखो	तीन पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	कुमारकी आयु एक सागर
(३) विद्युत्कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण समाप्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	प्रमाण है और विद्युत्कुमार
(४) सुपर्ण कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण समाप्य०सूत्र३१देखो	ढाई पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	अग्निकुमार स्तनितकुमार
(५) अग्नि कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण समाप्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	की आयु डेढ़ डेढ़ पल्यकी
(६) वात कुमार	पोने दोपल्य प्रमाणसमाप्य० सूत्र३१देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	है अवशेष छह कुमारोंकी
(७) स्तनित कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण समाप्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	उत्कृष्ट स्थितिमें दोनोंसम्प्र
(८) उदधि कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण समाप्य०सूत्र३१ देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	दायोंमेंभेदहै जैसाकि सूची
(९) द्वीप कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण समाप्य० सूत्र ३० देखो	दो पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	से प्रगट है ॥
(१०) दिक्कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण समाप्य०सूत्र३१देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	

(१) दिगम्बर आम्नायमेंसर्वार्थसिद्धि वृत्तिके दोनों संस्करणोंमें 'अधिके' पाठ है हस्त लिखित प्रतिमें ऽधिके पाठ है अन्य अन्य पुस्तकोंमें कहीं कहीं पर अधिके पाठ है और कहीं कहीं पर 'ऽधिके पाठ भी है दोनों पाठ ठीक हैं देखो इस अनुवाद का अध्याय १ पृष्ठ १० की टिप्पणी (२)तेतीसवां सूत्रमें सौधर्म ऐशान स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति कही है और इस तेतीसवांसूत्रकी आदिमें 'अपरा शब्द आये हैं इससे स्पष्ट है कि इस सूत्र में उपर्युक्त दोनों स्वर्गोंकी ही उत्कृष्ट स्थिति कही है और परा शब्द का आवश्यकता से अध्याहार करना योग्य है ॥ अतः इसमें परा शब्द जोड़ा है ।

समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके ११ वां सूत्रमें (=हमारे यहांके यहा १० वां सूत्रके) कथित दो दो भवनवासी इन्द्रोंमेंसे एवं पूर्वका इन्द्र दक्षिणार्धाधिपति कहलाताहै और दूसरा उत्तरार्धाधिपतिहै [समाष्य० पृष्ठ ११५ सेउद्धृत]। तात्पर्य ऐसा है कि दश भवनवासियोंमेंसे समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित ३२ वां सूत्रमें वर्णित असुर कुमारेंद्र और नाग कुमारेंद्रको निकालकर जिनकी उत्कृष्टस्थिति अनुक्रमसे सागरोपम और कुछ अधिक सागरोपम है॥ समाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके तीसवां सूत्रके अनुकूल शेष चार विद्युत कुमार दक्षिणार्धाधिपति की डेढ़ पल्योपम परास्थिति है। अग्निकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है स्तनितकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है द्वीपकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है॥

शेषाणा पादोने ॥ ३१ वा सूत्र ॥ (समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५ से उद्धृत)

शेषाणां।।पाद-ऊने।।। =(भवनवासियोंमेंसे) बचे हुए उत्तरार्धाधिपतिनिकी एक पाद स हीन दो अर्थात् पौन दो (पल्योपम परास्थिति है) भावार्थ ऐसा है कि चार सुपर्ण कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दो पल्योपम उत्कृष्ट स्थिति है वात कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दो पल्योपम उत्कृष्ट आयु है उदधिकुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दोपल्योपम उत्कृष्ट अवस्था है, दिक्कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौनदोपल्योपम अधिकसे अधिक स्थिति है॥

असुरेन्द्रयो सागरोपममधिकं च ॥३२ वा सूत्र समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५सेउद्धृत

=असुरेन्द्रयोस्तु दक्षिणार्धाधिपत्युत्तरार्धाधिपत्यो सागरोपममधिकं च यथासख्यं परास्थितिर्भवति

तु।।दक्षिणार्धाधिपति उत्तरार्धाधिपत्यो।।असुरेन्द्रयो।। =और दक्षिणार्धाधिपति उत्तरार्धाधिपति दोनों असुरेन्द्रों की
सागरोपमम्।।अधिकं।।च।।यथासंख्यम्।।परा।।स्थिति।। =एक सागर प्रमाण और [च] कुछ अधिक सागर प्रमाण क्रम से उत्कृष्ट आयु
भवति =होती है अर्थात् असुर कुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी उत्कृष्ट आयु एक सागर प्रमाण है औरनागकुमार उत्तरार्धाधिपतिकी अधिकसे अधिकस्थिति कछअधिक एकसागर है॥

ये सब दशों "कुमारोंके समान रमणीय दर्शन सुकुमार, मृदु मधुर तथा ललित गतिवाले अगार सहित सुन्दर रूप विक्रिया युक्त होते हैं॥ और कुमारोंके तुल्य रूपभूतरूप वर भाषा आभरण, अस्त्रशस्त्रादि प्रहरण वस्त्र तथा यान वाहनादि युक्त होते हैं। और कुमारोंके ही समान इनका व्यक्त अर्थात् स्पष्टराग क्रीडामें तत्पर रहता है अतएव इन्हें कुमार कहते हैं। इनमें असुर कुमार असुर कुमारके आवासमें रहते हैं और शेष भवनोंमें निवास करते हैं। महामन्दरके दक्षिण और उत्तर दिग्विभागोंमें अनेक लाख योजन कोटी कोटीयोंमें असुर कुमारोंके आवास हैं और भवन भी दक्षिणार्धाधिपतियोंके और उत्तरार्धाधिपतियोंके यथास्थ हैं। वहां रत्नप्रभामें पंदह भागके अर्ध मध्यमें प्रवेश करके मध्यमें भवन हैं॥ भवनोंमें जो रहते हैं उन्हें भवनवासी कहते हैं॥ समाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र के पृष्ठ ८६ से उद्धृत॥

६७

। इदं तु कुतोऽज्ञायते ? उत्तरत्र तुशब्दग्रहणात । तेन सौधर्मैशानयोर्देवाना द्वे सागरोपमे सातिरेके प्रत्येतव्ये ॥ उत्तरयो स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

(¹ आ॰इदम्॥ तु॰	=(प्रश्न) तो (=तु) यह 'आ' अर्थात् 'आ' सहस्रारात् भावार्थ सहस्रार तक 'अधिके' का अधिकार है ॥
कुतः॰ज्ञायते। उत्तरत्र॰तुशब्दग्रहणात्॥	=क्योंकर जानाजाता है(उत्तर)यहांसे आगे (इकतीसवां सूत्रमें) 'तु' शब्दकेआनेसे
तेन॥सौधर्म-ऐशानयोः॥देवानाम्॥द्वे॥सागरोपमे॥	=तिससे सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें देवोंके दो सागर प्रमाण
सातिरेके॥प्रत्येतव्ये॥	=अधिक सहित जानना चाहिये अर्थात् 'सौधर्मैशान में दो सागरसे कुछअधिकहै
उत्तरयोः॥स्थिति-विशेष प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह।	=(सौधर्म ऐशानसे)अगले दो (स्वर्गों)में आयुका विशेष जाननेके लिये कहतेहैं कि

सम्मे॥घाते॥ऊनं॥(=सम्यक्त्वे॥घाते॥ऊनम्॥)	=सम्यक्त्व (अवस्था) में घातायुष्क विर्षे (अन्तर्मुहूर्त)न्यून
सागर-दशम्॥अधिकम्॥(=सागर-दशम्॥अधिकम्॥)	=आधे (=दश) सागर (आयु प्रथम युगल से) अधिक
आ॰सहस्सारा॥(आ॰सहस्रारात्॥)इति॰वचनात्॥	=सहस्रार तक (कीपृथक् पृथक् नियमित स्थितिसे) होताहै। ऐसा(वाक्यउपयुक्तआया)है

इस सबका भावार्थ यह है कि पूर्व भवमें किसी जीवने विशुद्ध परिणामोंसे आयु का बंध अधिक किया था पश्चात् संक्लेश परिणामोंके वशसे आयु घटाय थोड़ी रक्खी तिस जीवको घातायुष्क कहिये। जैसे कोई मनुष्य ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गका आयु दश सागर प्रमाण बंध किया। फिर उसही मनुष्यभवमें संक्लेश परिणामोंके बंधनेसे आयुकी स्थितिका घात करके सौधर्म ऐशानमें आय उपजा सो घातायुष्क है। सो अन्य देवोंकी अपेक्षा दो सागर प्रमाण आयुत अंतर्मुहूर्त न्यून आधा सागर अधिक आयु पावै है ॥ आयु का घात दो प्रकार है एक अपवर्तन घात दूजा कदली घात तहां बध्यमान आयु का घटावना सो अपवर्तन घात है अर भुज्यमान आयुका घटावना कदली घात है। देवोंमें कदली घात संभव नहीं है ॥

[१] सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकी द्वितीयावृत्तिमें और हस्तलिखित पुस्तकमें'आ नहीं है प्रथमावृत्तिमें'आ'है दोनों ही पाठ ठीक हैं क्योंकि इदम् का और इदम् का वोही अर्थ है ॥ कोई संख्याओं (जैसे विंशति त्रिंशत् चत्वारिंशत् इत्यादि) के अतिरिक्त विशेष्य और विशेषणके कारक, वचन लिंग एकहीहोते हैं इसलिये 'इदम्' के साथ आ' की विभक्ति लिंग और वचन भी वही होना चाहिये। 'आ अव्यय है और अव्यय वह शब्द है जो तीनों लिंग सातों विभक्ति और सब वचनोंमें विकार या रूप की पलटन को प्राप्त न हो ॥ जैसा कि कहागया है कि सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम् =जो[शब्द] समान तीन लिंगोंमें, और (=च] सब [सातों] विभक्तियोंमें और (=च] सब [तीनों) वचनोंमें विकारको प्राप्त नहीं होता है वह अव्यय है ॥

६७

सागरोपमे इति द्विवचननिर्देशाद् द्वित्वगति । अधिके इत्ययमधिकार । आ कुत ? आ सहस्रारात्

'सूत्रार्थ -परा॥स्थिति॥(सूत्र २८ वां से उद्धृत) =उत्कृष्ट स्थिति अथवा आयु
सौधर्म ऐशानयोः॥सागरोपमे॥अधिके॥ ॥२९॥ =सौधर्म ऐशान (स्वर्गों) में दो सागर प्रमाण और कुछ अधिक है ॥२९॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उनतीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

सागरोपमे॥इति॥द्वि-वचन-निर्देशात्॥द्वित्व-गति॥ =(इस २९ वां सूत्र में) 'सागरोपमे' ऐसे दो वचनके कथनसे दोकी प्राप्ति(=गति) है
अधिके॥इति॥अयम्॥अधिकार॥आ॥कुत॥? =(सूत्रमें) 'अधिके' ऐसा यह प्रकरण है॥ कहां तक (=आ) ('अधिके' शब्दका विषय है)
आ॥(१)सहस्रारात्॥ =(ऊपर) सहस्रार (बारहवां स्वर्ग) तक (=आ) ('अधिके' शब्द का अधिकार है)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में इस सूत्रका लगभग तात्पर्य नीचे के तीन सूत्रमें ऐसे किया है कि सौधर्मादिषु यथाक्रमम् ॥३३॥ अर्थात् सौधर्मादिक (कल्पोंमें) क्रमानुसार परा (उत्कृष्ट) स्थिति कहेंगे ॥ सागरोपमे ॥३४॥ अर्थात् सौधर्म कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो सागर प्रमाण है ॥ अधिके च ॥३५॥ अर्थात् और (=च) कुछ अधिक दो सागर प्रमाण ऐशान कल्पके देवोंकी स्थिति है। हमारे यहांके इस सूत्रके अर्थमें और श्वेताम्बर आम्नायके उक्त तीन सूत्रोंके तात्पर्यमें यह भेद हुआकि हमारे यहां सौधर्म स्वर्गके देवोंकी आयु कुछ अधिक दो सागर प्रमाण मानी है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमें केवल दो सागर है ऐशान स्वर्गके देवोंकी स्थिति दोनों आम्नायों में एकसी है अर्थात् दो सागरसे कुछ अधिक है
(२) आङ् (=आ) अव्यय जब 'प्रगृह्य' (=व्याकरणमें स्वरसन्धि न होने योग्य पद जैसे आ एवं मन्यसे ओह तुम ऐसा मानते हो) नहो तब चार अर्थोंमें आता है (i) थोड़ा जैसे-आ+उष्णम्=ओष्णम्=थोड़ा तप्त (ii) जब क्रिया के प्रथम आता है तब निकटके अर्थमें और बलना लेना देना इत्यादि क्रियापदोंके साथमें उक्त क्रियाओंके प्रतिकूल अर्थों का बोधक होता है जैसे गच्छति वह जाता है आगच्छति वह=आता है ददाति=वह देता है आदत्ते वह लेता है ॥ (iii) मर्यादा (जो सीमा कहीजाय उसके बाहर बाहर) (iv) अभिविधि अर्थमें (जो सीमा कही जाय उसको मिलाकर देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ७१ की टिप्पणी चार) जहां तक मेरा ज्ञान है उमास्वामीने इस चौथे अर्थमें सर्वत्र प्रयोग किया है यथा अध्याय १ सूत्र १० अध्याय २ सूत्र ४१, अध्याय ४ सूत्र ७, अध्याय ५ सूत्र ९ अध्याय ८ सूत्र १७, अध्याय ८ सूत्र २७, अध्याय १० सूत्र ५ इसी अर्थमें यहां आ सहस्रारात् वाक्यमें पूज्यपाद स्वामीने प्रयोग किया है अर्थात् सागरो से 'कुछ अधिक' आयुका सम्बन्ध 'सहस्रार स्वर्गको समावेश, या अन्तर्गत करते हुये है ॥

घातायुष्कसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया किञ्चिदूनार्ध सागरोपममधिकं भवति सौधर्मकल्पात्सहस्रारपर्यन्तम् ॥ सम्यक्त्वादेरूर्ध्वंसागरद्वयमधिकमासहस्रारा इति वचनात् ॥

घात-आयुष्क सम्यग्दृष्टि अपेक्षया॥ =सम्यग्दृष्टि जीवकी विवक्षासे घातायुष्क अर्थात् पूर्व भवमें विशुद्ध परिणामोंसे बंधीहुई आयुका पश्चात् संक्लेश परिणामोंसे घटिजाना अथवा न्यून होजाना
किञ्चित्-ऊन अर्ध सागरोपमम्॥अधिकम्॥ =कुछ न्यून (अर्थात् अन्तर्मुहूर्त आदि) आधे सागर प्रमाण अधिक
सौधर्म कल्पात्॥सहस्रारपर्यन्तम्॥भवति॥ =सौधर्मस्वर्गसे सहस्रार तक (की पृथक् पृथक् नियमित स्थितिसे) होय है—(क्योंकि)

त्रि-सप्त-नव-एकादशभिः।।।अधिकानि।।। (३१ सूत्रसे(१))=तीन-सात नौ-ग्यारह अधिक सहित (=अधिकानि इस ३१ वां सूत्र से)

सप्त।सागरोपमाणि।(३०वांसूत्रसे)अधिकानि(२६वांसूत्रसे)=सात सागर प्रमाण और कुछ अधिक

परा।।।स्थितिः। (२८ वां सूत्रसे) (२)ब्रह्मब्रह्मोत्तर =उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य वा अनुक्रमसे) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर

लान्तवकापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्र शतारसहस्रारेषु।। =लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र, शतार सहस्रार (स्वर्गों) में है अर्थात्

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवें और छठवां स्वर्गोंमें उत्कृष्टआयु कुछ अधिक (सात+तीन) दश सागर प्रमाण (प्रत्येकमें) है। लान्तव सातवां स्वर्ग कापिष्ठ आठवां कल्पमें उत्कर्ष आयु कुछ अधिक (सात+सात) चोदह सागर (प्रत्यकमें) है। शुक्र नववां स्वर्ग, महाशुक्र दशवां स्वर्गमें उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक (नव+सात) सोलह सागर (प्रत्यकमें) है। शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार बारहवां स्वर्गमें उत्कर्ष स्थिति कुछ अधिक (ग्यारह+सात) अठारह सागर प्रमाण प्रत्यक में है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायमें ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ-शुक्र और शतार ये चार स्वर्ग नहीं हैं उनके यहां केवल १२ स्वर्ग मान है हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं ॥

(३)तु।त्रयोदश-पञ्चदशभिः।अधिकानि।।।(३१वांसूत्रसे) =परन्तु(=तु)अर्थात् कुछअधिक स्थितिको छोड़कर तेरह पंद्रहकरि अधिक सहित

सप्त-सागरोपमाणि(३०वांसूत्रसे)परा।।स्थितिः।।(२८वांसूत्रसे)=सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

सूत्रसे विदित है॥ माहेन्द्र कल्पमें दोनों आम्नायके अनुकूल एकसी स्थिति उत्कृष्ट है अर्थात् सात सागरसे उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक है॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इससूत्रके स्थानमें ऐसा सूत्र है 'विशेषत्रिसप्तदशैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानिच' ३७ हमारे यहांके इकतीसवां सूत्रसे इस सैंतीसवां सूत्रमें विशेष शब्द अधिक है नव के स्थान में दश है 'तु' के स्थानमें 'च' है। शेष पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है॥ दोनों आम्नायोंके पूर्व सूत्रसे इस सूत्रमें सप्त शब्द की अनुवृत्ति आती है। इसलिये 'विशेष' =विशेष+अधिकानि इसमें सप्त अनुवर्तमानाको जोड़कर विशेष+अधिक+सप्त इतनी आयु अर्थात् सात सागरसे कुछ अधिक माहेन्द्र स्वर्गके देवोंकी है सो हमारेयहांकी आयुसमिलती है॥

(२) ब्रह्मब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्र-शतार सहस्रारेषु ये शब्द (यह देखकर कि २६ वां सूत्रमें सौधर्मैशानयोः तथा ३० वां सूत्रमें सानत्कुमार माहेन्द्रयोः इन स्वर्गोंके आचार्य ने नाम लिये हैं) अध्याहार किये गये हैं अथवा यों समझलो कि इस अध्यायके १६ वां सूत्र से ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव कापिष्ठ शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रारेषु अनुवर्तन हैं॥

(३) 'तु' शब्द अव्यय है यहांपर परन्तु किन्तु के अर्थात् भेद के अर्थमें प्रवर्तता है कभी वाक्यके पहिले नहीं आता है जिस अथवा जिन शब्दोंसे सम्बन्ध रखता है उसके अथवा उनके पश्चात् आता है जैसे यहां पर इस सूत्रके स्पष्टताके लिये मैंने 'तु' का उन शब्दोंसे (के) प्रथम रखदिया है जिनसे उसका सम्बन्ध है अर्थात् ऐसा अर्थ होता है कि सौधर्म स्वर्गसे सहस्रार तक उत्कृष्ट आयुसे कुछ अधिक आयु है आगे भेद (=तु) यह है कि पूरे पूरे सागरों की उत्कृष्ट स्थिति है 'स+अधिक' नहीं है॥

॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अनयो कल्पयोर्देवाना सप्तसागरोपमाणि साधिकानि उत्कृष्टा स्थिति ॥

ब्रह्मलोकादिष्वच्युतावसानेषु स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

सूत्रम्—सानत्कुमार माहेन्द्रयो सप्त ॥३०॥ = सानत्कुमार-माहेन्द्रयो सप्त सागरोपमाणि (४ अध्याय-सूत्र २९ से) अधिकानि (४ अध्याय सूत्र-२९ से) परास्थिति (४ अध्याय सूत्र २८ से) भवति

(१)सानत्कुमार-माहेन्द्रयो॥सप्त॥सागरोपमाणि॥अधिकानि॥ =सानत्कुमार (तीसरे) और (माहेन्द्र (चौथे स्वर्गों) में सात सागर प्रमाण
परा॥स्थिति॥ =और कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है ॥
वृत्त्यनुवाद—अनयो॥कल्पयो॥देवानाम्॥ =इन दो (सानत्कुमार और माहेन्द्र) स्वर्गों में देवों की
सप्त-सागरोपमाणि॥साधिकानि॥उत्कृष्टा॥स्थिति॥ =सात सागर प्रमाण अधिक सहित उत्कृष्ट आयु है(=सातसागरसेअधिकहै)
ब्रह्म-लोकादिषु॥अच्युत-अवसानेषु॥स्थिति-विशेष =ब्रह्मलोकादिकमें (और)अच्युत (सोलहवां स्वर्ग)पर्यन्तविषै आयुकाविशेष
प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह॥ =जानने के लिये आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(२)सूत्रम्—त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

(यह सूत्र इतना सार गर्भित है कि बहुत सी अनुवृत्तियों अथवा अध्याहार द्वारा इसका अर्थ पूरा करनेके लिये पहिले पहिले इससूत्र के दो भाग करके अनुवाद शब्दशः करना पड़ा है, दूसरे यह कि भले प्रकार समझाने के लिये इस सूत्रकी (में) पूर्ण रूप से अनुवृत्तियों को लाकर और शब्दोंका अध्याहार करके छह सूत्रोंमें इस सूत्रको बांट दिया है)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र में 'सप्तसानत्कुमारे' ॥३६॥ यह सूत्र है =सानत्कुमार कल्पके देवोंकी सात सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है हमारे यहां [illegible] तीसरा स्वर्ग सानत्कुमार स्वर्गमें उत्कृष्ट आयु सात सागरसे कुछ अधिक है। माहेन्द्र कल्पमें भी हमारे यहां उत्कृष्ट आयु सात सागर प्रमाणसे कुछ अधिक है। इतनी ही स्थिति माहेन्द्र स्वर्गमें श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके ३७ वां

(अधिकानि इस ३१ वां सूत्र से)

त्रि-सप्त-नव-एकादशभिः॥।अधिकानि॥।। (३१ सूत्रसे(१)) =तीन-सात-नौ-ग्यारह अधिक सहित (=अधिकानि इस ३१ वां सूत्र से)
सप्त॥सागरोपमाणि॥(३०वांसूत्रसे)अधिकानि(२९वांसूत्रसे) =सात सागर प्रमाण और कुछ अधिक
परा॥।स्थितिः॥ । (२८ वां सूत्रसे) (२)ब्रह्मब्रह्मोत्तर =उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य या अनुक्रमसे) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर
लान्तवकापिष्ठ शुक्रमहाशुक्र-शतारसहस्रारेषु॥ =लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र, शतार सहस्रार (स्वर्गो) में है अर्थात्

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवें और छठवां स्वर्गोमें उत्कृष्टआयु कुछ अधिक (सात+तीन) दश सागर प्रमाण (प्रत्येकमें) है। लान्तव सातवां स्वर्ग कापिष्ठ आठवां कल्पमें उत्कर्ष आयु कुछ अधिक (सात+सात) चोदह सागर (प्रत्येकमें) है। शुक्र नववां स्वर्ग, महाशुक्र दशवां स्वर्गमें उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक (नव+सात) सोलह सागर (प्रत्येकमें) है। शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार बारहवां स्वर्गमें उत्कर्ष स्थिति कुछ अधिक (ग्यारह+सात) अठारह सागर प्रमाण प्रत्येक में है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायमें ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ-शुक्र और शतार ये चार स्वर्ग नहीं हैं उनके यहां केवल १२ स्वर्ग माने हैं हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं॥

(३)तु॥त्रयोदश-पञ्चदशभिः॥अधिकानि॥।।(३१वांसूत्रसे) =परन्तु(=तु)अर्थात् कुछअधिक स्थितिको छोड़कर तेरह पंद्रहकरि अधिक सहित
सप्त-सागरोपमाणि(३०वांसूत्रसे)परा॥।स्थितिः॥।(२८वांसूत्रसे)=सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में इससूत्रके स्थानमें ऐसा सूत्र है विशेषत्रिसप्तदशैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि च"१७ सूत्रसे विदित है। माहेन्द्र कल्पमें दोनों आम्नायके अनुकूल पल्यकी स्थिति उत्कृष्ट है अर्थात् सात सागरसे उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक है॥ हमारे यहांके इकतीसवां सूत्रसे इस सैंतीसवां सूत्रमें विशेष शब्द अधिक है नव के स्थान में दश है 'तु' के स्थानमें 'च' है। शेष पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है॥ दोनों आम्नायोंके पूर्व सूत्रसे इस सूत्रमें सप्त शब्द की अनुवृत्ति आती है। इसलिये विशेष' =विशेष+अधिकानि इसमें सप्त अनुवर्तमानको जोड़कर विशेष+अधिक+सप्त इतनी आयु अर्थात् सात सागरसे कुछ अधिक माहेन्द्र स्वर्गके देवोंका है सो हमारेयहांकी आयुसेमिलती है॥

(२) ब्रह्मब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्र शतार सहस्रारेषु य शब्द (यह इसकर कि २९ वां सूत्रमें सौधर्मैशानयोः तथा ३० वां सूत्रमें सानत्कुमार माहेन्द्रयोः इन स्वर्गोंके आचार्य ने नाम दिये हैं) अध्याहार किये गये हैं अथवा यों समझनाकि इस अध्यायके १९ वां सूत्र से ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव कापिष्ठ-शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रारेषु अनुवृत्त हैं॥

(३) 'तु' शब्द अव्यय है यहांपर परन्तु किन्तु के अर्थात् भेद के अर्थमें प्रवर्तता है कभी वाक्यके पहिले नहीं आता है जिस अथवा जिन शब्दोंसे सम्बन्ध रखता है उसके अथवा उनके पश्चात् आता है जैसे यहां पर इस सूत्रके स्पष्टताके लिये मैंने 'तु' का उन शब्दोंसे (के) प्रथम रखदिया है जिनसे उसका सम्बन्ध है अर्थात् ऐसा अर्थ होता है कि सौधर्म स्वर्गसे सहस्रार तक उत्कृष्ट आयुसे कुछ अधिक आयु है आगे भेद (=तु) यह है कि पूरे पूरे सागरों की उत्कृष्ट स्थिति है 'स+अधिक नहीं है॥

आनत प्राणत आरण अच्युतेषु॥ =आनत, प्राणत, आरण, अच्युत (स्वर्गों) में है अर्थात्
आनत तेरहवांस्वर्ग, प्राणत चौदहवां स्वर्ग (प्रत्येक)
में उत्कर्ष आयु(तेरह + सात)पूरे बीस सागरकी है और आरण पंद्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां
स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कृष्ट स्थिति (पंद्रह + सात) पूरे बाईस सागरकी है ॥ उपर्युक्तचारों स्वर्गोंमें
पूरे पूरे सागरोंकी ही आयु है कुछ कुछ अधिक नहीं है इससे इस सूत्रमें 'तु' शब्द लाये हैं ॥

१०० (अ) (५) इस सूत्रको छह सूत्रोंमें विभाग करके अनुवृत्तियों और अध्याहारों द्वारा निम्न लेखसे अर्थको स्पष्ट करदिया है ॥

(१) त्रिभिः॥ अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (२९ और ३० सूत्रोंसे) =तीनकरिअधिक सातसागर प्रमाणअर्थात् दशसागरप्रमाण
स अधिकानि॥ (=सातिरेकानि सूत्र २९ और वृत्ति सूत्र २९ से) परा॥ स्थितिः॥ =और कुछ अधिक (कुछ अतिरेक) उत्कृष्ट आयु
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः॥ कल्पयोः॥ भवति। =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्गमें औरब्रह्मोत्तर छठास्वर्गमेंहोतीहै
सारांश ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर स्वर्गोंमें कुछ अधिक दश सागर उत्कृष्ट स्थिति है

(२) सप्तभिः॥ अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (३०, २९ सूत्रोंसे) =सातकरि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात् १४ सागर
स-अधिकानि॥ (=सातिरेकानि-सूत्र २९ और वृत्ति सूत्र २९ से) परा॥ स्थितिः॥ =औरकुछअधिकअर्थात् १४ सागरसेभीकुछअधिकउत्कृष्टआयु
लान्तव-कापिष्ठयोः॥ कल्पयोः॥ भवति। =लान्तवस्वर्ग और कापिष्ठ (प्रत्येक) कल्पमें होती है

(३) नवभिः॥ अधिकानि॥ (इसीसूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (२९ और ३० सूत्रोंसे) =नौ करि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात्सोलहसागर
स अधिकानि॥ (=सातिरेकानि सूत्र २९ और वृत्ति सूत्र २९ से) परा॥ स्थितिः॥ =कुछ अधिक (=स अधिकानि) उत्कर्ष स्थिति
शुक्र-महाशुक्रयोः॥ कल्पयोः॥ भवति। =शुक्र नौवां में और महाशुक्र दशवां स्वर्गमें है भावार्थ
नवमा स्वर्गमें और दशवां स्वर्ग प्रत्येक में सोलह सागर से कुछ अधिक स्थिति है॥

(१) त्रिभि ३॥ = त्रि-सागरोपमैः ३॥ क्योंकि सागरोपम शब्द नपुंसक लिंगी है और संख्याओंमें चारतक गणनाओंका लिंगभी वही होता है जो उनके सम्बन्धवाली संज्ञा का होता है अतः त्रिभिः को नपुंसक लिंगमें रक्खा है (२) सप्तभिः इत्यादि को त्रिलिंगी इस हेतुसे रक्खा है कि पांचसे उन्नीस तक संख्यायें विशेषण मानी जासकती हैं इन संख्याओंका वचन और कारक वही होता है जो संज्ञाका परन्तु ऐसेस्थानोंमें केवल बहुवचनमेंआती हैं और तीनों लिंगों में वही अर्थात् एकही रूप होता है ॥

(३) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके पृष्ठ ७५ में 'अधिके' शब्दजो सूत्रमें आयाहै उसकी वृत्ति पूज्यपादस्वामीने स अतिरेके की है अतिरेकका अर्थ अधिकहै इसलिये सूत्र में अधिके = स अधिके ॥

(अ) एकादशभि:।मधिकानि।।(इसीसूत्रसे)सप्त।सागरोपमाणि।।(२६,३०सूत्रोंसे) =ग्यारहकरिअधिक सातसागर प्रमाणअर्थात्अठारहसागर
स अधिकानि।।(सातिरेकानि २६सूत्रऔर वृत्तिसूत्र २६से) परा।स्थिति:।। =(और) कुछ अधिक (स-अधिकानि) उत्कृष्ट आयु
शतार-सहस्रारयो:।कल्पयो:। =शतार स्वर्गमें और सहस्रार (प्रत्येक) स्वर्गमें है
(ब) तु।त्रयोदशभि:।अधिकानि।।। (इसी सूत्रसे) =किन्तु(पर)अर्थात्कुछअधिकस्थितिकेबिना तेरहकरिअधिक
सप्त।सागरोपमाणि।।। (२६ और३०सूत्रोंसे)परा।स्थिति:।।(२८सूत्रदेखो) =सात सागर प्रमाण अर्थात् पूरे बीस सागर उत्कृष्ट आयु
आनत-प्राणतयो:।कल्पयो:। =आनत स्वर्ग और प्राणत (प्रत्येक) स्वर्गमें है
(स) तु।पञ्चदशभि:।अधिकानि।।(इसी सूत्रसे) =परन्तु(=तु)अर्थात्कुछअधिकस्थितिकेबिनापंद्रहकरिअधिक
सप्त।सागरोपमाणि।।। (३०और२६सूत्रोंसे)परा।स्थिति:।(टिप्पणीसूत्र२८) =सातसागर प्रमाण अर्थात् पूरे बाईस सागर,उत्कृष्टस्थिति
आरण अच्युतयो:।कल्पयो:। =आरण स्वर्ग और अच्युत स्वर्ग (प्रत्येक) में है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इकतीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

सौधर्म स्वर्गसे अच्युत स्वर्ग तक श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंके देवोंकी समानता और असमानता की सूची निम्न प्रकार है। देवोंकी उत्कृष्ट आयु सहित ॥

दिगम्बर आम्नायके स्वर्गोंके नाम और उनकी उत्कृष्ट स्थिति सहित ॥	श्वेताम्बर आम्नायके स्वर्गोंके नाम उन स्वर्गों की उत्कृष्ट आयु भिन्न
() दो सागर प्रमाणसे कुछअधिक उत्कृष्टआयु सौधर्मस्वर्गके देवोंकी है (सूत्र२६)	() सौधर्म कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट आयु दो सागर प्रमाण है (सूत्र ४)
() कुछ अधिकदो सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति ऐशान स्वर्गके देवोंकी है (सूत्र२६)	() ऐशानस्वर्गके देवोंकी उत्कृष्टस्थिति कुछअधिक दोसागरहै(सूत्र ४)
() कुछ अधिकसातसागर प्रमाणउत्कृष्टआयु सानत्कुमारकल्पकेदेवोंकी है (सूत्र३०)	() सानत्कुमार स्वर्गके देवोंकी उत्कृष्टआयु सात सागर है (सूत्र३६)
() कुछ अधिक सातसागर प्रमाण उत्कृष्टआयु माहेन्द्र कल्पके देवोंकी है (सूत्र३०)	() माहेन्द्र कल्पकेदेवोंकी परास्थितिकुछअधिक सागर सातहै(सूत्र३७)
() कुछअधिकदशसागरोपमउत्कृष्टस्थितिब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरकल्पकेदेवोंकीहै(सूत्र३१	() ब्रह्मलोक स्वर्गके देवोंकीउत्कृष्ट स्थिति दशसागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() कुछ अधिकचौदहसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिलान्तव कापिष्ठ स्वर्गोंके देवोंकीहै	() लान्तक स्वर्गके देवोंकी उत्कृष्टआयु चौदह सागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() कुछ अधिक सोलहसागर प्रमाण उत्कृष्टआयु शुक्र महाशुक्रस्वर्गके देवोंकीहै	() महाशुक्र कल्पके देवोंकी उत्कृष्टआयु सत्रहसागर प्रमाणहै (सूत्र३७)
() कुछ अधिक अठारहसागरोपम उत्कृष्टस्थिति शतारसहस्रार स्वर्गोंकेदेवोंकीहै,	() सहस्रार स्वर्गकेदेवोंकी परास्थिति अठारह सागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() आनत प्राणत स्वर्गोंके देवोंकी उत्कृष्ट आयु पूरेबीस सागर प्रमाण है (सूत्र३१)	() आनतप्राणतस्वर्गोंकेदेवोंकीउत्कृष्टआयुबीससागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() आरण अच्युतस्वर्गोंके देवोंकी उत्कृष्टआयु पूरेबाईस सागर प्रमाण है (सूत्र३१)	()आरणअच्युतस्वर्गोंकेदेवोंकीपरास्थितिबाईससागरप्रमाणहै(सूत्र३७)

आनत-प्राणत-आरण अच्युतेषु॥ =आनत, प्राणत, आरण, अच्युत (स्वर्गों) में है अर्थात् आनत तेरहवांस्वर्ग, प्राणत चौदहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कर्ष आयु(तेरह+सात)पूरे बीस सागरकी है और आरण पन्द्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कृष्ट स्थिति (पंद्रह+सात) पूरे बाईस सागरकी है ॥ उपर्युक्तचारों स्वर्गोंमें पूरे पूरे सागरोंकी ही आयु है कुछ कुछ अधिक नहीं है इससे इस सूत्रमें 'तु' शब्द लाये हैं ॥

१०० (अ) (ग) इस सूत्रको छह सूत्रोंमें विभाग करके अनुवृत्तियों और अध्याहारों द्वारा निम्न लेखसे अर्थको स्पष्ट करदिया है ॥

(१) त्रिभिः॥ अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (२८ और ३० सूत्रोंसे) =तीनकरि अधिक सातसागर प्रमाण अर्थात् दशसागरप्रमाण
स-अधिकानि॥ (=सातिरेकानि सूत्र २९ और वृत्ति सूत्र २९ से) परा॥ स्थितिः॥ =और कुछ अधिक (कुछ अतिरेक) उत्कृष्ट आयु
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः॥ कल्पयोः॥ भवति। =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्गमें औरब्रह्मोत्तर छठास्वर्गमेंहोती है
सारांश ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर स्वर्गोंमें कुछ अधिक दश सागर उत्कृष्ट स्थिति है

(२) सप्तभिः॥ अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (३०, २९ सूत्रोंसे) =सातकरि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात् १४ सागर
स-अधिकानि॥ (=सातिरेकानि-सूत्र २९ और वृत्ति सूत्र २९ से) परा॥ स्थितिः॥ =औरकुछअधिकअर्थात् १४ सागरसेभीकुछअधिकउत्कृष्टआयु
लान्तव-कापिष्ठयोः॥ कल्पयोः॥ भवति। =लान्तवस्वर्ग और कापिष्ठ (प्रत्येक) कल्पमें होती है

(३) नवभिः॥ अधिकानि॥ (इसीसूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (२९ और ३० सूत्रोंसे) =नौ करि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात् सोलहसागर
स अधिकानि॥ (=सातिरेकानि सूत्र २९ औरवृत्ति सूत्र २८ से) परा॥ स्थिति॥ =कुछ अधिक (=स अधिकानि) उत्कर्ष स्थिति
शुक्र-महाशुक्रयोः॥ कल्पयोः॥ भवति। =शुक्र नौवां में और महाशुक्र दशवां स्वर्गमें है भावार्थ
नवमा स्वर्गमें और दशवां स्वर्ग प्रत्येक में सोलह सागर से कुछ अधिक स्थिति है॥

(१) त्रिभिः॥ =त्रि-सागरोपमें॥ क्योंकि सागरोपम शब्द नपुंसक लिंगी है और सख्याओंमें चारतक गणनाओंका लिंगसी वही होता है जो उसके सम्बन्धवाली संज्ञा का होता है अतः त्रिभिः का नपुंसक लिंगमें रक्खा है (२) सप्तभिः इत्यादि को त्रिलिंगी इस हेतुसे रक्खा है कि पांचसे बत्तीस तक सख्यायें विशेषण मानी जासकती हैं इन सख्याओंका वचन और कारक वही होताहै जो संज्ञाका परन्तु येसख्यायें केवल बहुवचनमेंआती हैं और तीनों लिंगों में एही अर्थात् एकही रूप होता है ॥

(२) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके पृष्ठ ४५५में 'अधिके' शब्दजो सूत्रमें आयाहै उसकी वृत्ति पूज्यपादस्वामीने स अतिरेक की है अतिरेकका अर्थ अधिकहै इसलिये सूत्र में अधिके=स अधिके ॥

साईस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति दूसरेमें चौबीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, तीसरेमें पचीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, बहुरि मध्य ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें छब्बीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु दूसरेमें सत्ताईस सागर प्रमाण परा स्थिति, तीसरेमें अट्ठाईस सागर प्रमाण परा स्थिति है और ऊपरके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें उनतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति, दूसरेमें तीससागर प्रमाण परास्थिति, तीसरेमें इकतीस सागरप्रमाण परास्थिति है

और विमानवासी हैं जिनकी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर होसकी है। हम उसको यहांपर संस्कृत भाष्य हिंदी अनुवाद और अपनी टिप्पणी सहित तत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पृष्ठ ११८ से शब्दशः उद्धृत करते हैं

॥ परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थ—"माहेन्द्र कल्पसे परे पूर्व अर्थात् पूर्व २ स्वर्गोंमें जो परास्थिति है वह पर २ में जघन्य अर्थात् अपरा स्थिति होती है ॥"

भाष्यम्—"माहेन्द्रात्परतः पूर्वा पराऽनन्तरा जघन्यास्थितिर्भवति। तद्यथा माहेन्द्रे परा स्थितिर्विशेषाधिकानि सप्त सागरोपमाणि सा ब्रह्मलोके जघन्या भवति। ब्रह्मलोके दश सागरोपमाणि परास्थिति सा लान्तके जघन्या। एवमासर्वार्थसिद्धादिति। (विजयादिषु चतुर्षु परा स्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सा त्वजघन्योत्कृष्टा सर्वार्थसिद्ध इति)"

विशेष व्याख्या—माहेन्द्र कल्पसे आगे पूर्व २ की जो परास्थिति है वह पर २ अर्थात् आगे २ के स्वर्गोंमें अपरा स्थिति होजाती है। जैसे माहेन्द्र स्वर्गमें परास्थिति विशेष अधिक सप्त सागरोपम है वह ब्रह्मलोकमें अपरा अर्थात् जघन्या है। ऐसेही ब्रह्मलोकमें परा स्थिति दश सागरोपम है वह लान्तकमें जघन्या वा अपरा स्थिति है। इसी प्रकार पूर्व २ की परा स्थिति पर २ की जघन्या स्थिति सर्वार्थसिद्धि (१) पर्यन्त जाननी चाहिये। (२) (विजयादि चार विमानों में परा स्थिति तेंतीस सागरोपम है वह सर्वार्थसिद्धमें अजघन्योत्कृष्टा है।) ॥" अपनी टिप्पणी (१) (२) समाष्यमें ऐसेही है कि (१) यहां पर यह जानना उचित है कि विजय आदि चार विमानोंमें परास्थिति बत्तीस सागरोपम है और सर्वार्थसिद्धमें तेंतीस सागरोपम अज घन्योत्कृष्टा है अर्थात् वहां एकही स्थिति है परा अपरा भेद नहीं है। और भाष्यकार सर्वार्थसिद्धिमें भी जघन्या बत्तीस सागरोपम है ऐसा जो कहते हैं आसर्वार्थसिद्धात् उसका अभिप्राय नहीं ज्ञात होता है। कदाचित् यहां आङ् (आ) मर्यादावाचक हो अर्थात् सर्वार्थसिद्ध का छोड़के "तेन विना मर्यादा तत्सहितोऽभिविधिः ॥"

"(२) विजयादिककी परास्थिति तो बत्तीस की (३२) कही है यहां ३३ किस अभिप्राय से कहे यह नहीं जाना जाता। और कहीं २ कोष्ठका पाठ नहीं है क्योंकि अर्थ संगत नहीं है" आङ् मर्यादाभिविध्यो अष्टाध्यायी २।१।१३॥ आङ् (=आ) जिसके प्रथम आवे तिसको छोड़ कर (तेनविना) मर्यादा अर्थमें आता है जैसे आपाटलिपुत्रात् वृष्टो देव=पटना को छोड़कर मेह बरसा॥ तिस सहित (=तत्सहित) अभिविध अर्थमें आता है—आ आकाशादेकद्रव्याणि=आकाशको लेते हुये या आकाश को समावेश करते हुये एक एक द्रव्यें हैं॥ अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य औरआकाश ये एक२ हैं।

सूत्रार्थ-आरण-अच्युतात्[३] ऊर्ध्वम्[२] एकैकेन[१]	=आरण अच्युत (युगल) से ऊपर एक एक करि
(सागरोपमाधिकेन)[४] अधिकानि[५] परा[६] स्थितिः[७]	=सागर प्रमाण) बढ़ती हुई उत्कृष्ट आयु
ग्रैवेयकेषु[८] नवसु[९] अनुदिशेषु[१०]	=(क्रमसे प्रत्येक) नौग्रैवेयकदिकों और नौ अनुदिशोंमें
विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु[११] सर्वार्थसिद्धौ[१२] च[१३]	=विजय-वैजयन्त जयन्त-अपराजितमें है सर्वार्थसिद्धि में स्थिति उत्कृष्ट ही (=च) है जघन्य नहीं होती है अर्थात् नीचेके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथम ग्रैवेयकमें

सूत्रमें 'च' शब्द विशेषके अर्थमें है अर्थात् च=ही। आशय यह है कि जो नीचे नीचे में उत्कृष्ट स्थिति है वह ऊपर ऊपर में जघन्य जानें है जैसे नौ अनुदिशमें बत्तीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति है वही विजयादिकमें जघन्य है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमें ... उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरसे अधिक आयु नहीं हो सकती जघन्यस्थिति वालो आम्नायमें सर्वार्थसिद्धिमें नहीं है विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित विमानोंमें भी उत्कृष्टआयु तेतीससागरकी है

दिगम्बर आम्नायके कल्पातीतों के नाम स्थिति सहित	श्वेताम्बर आम्नायके कल्पातीतोंके नाम स्थिति सहित
() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिन्द्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३ २४, २५ २६, २७, २८, २९ ३० ३१ सागर प्रमाण है आनत तेरहवाँ स्वर्गसे नवग्रैवेयक पर्यन्त दोनों आम्नायकी स्थितिमें भेद नहीं है	() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिन्द्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३ २४ २५ २६ २७ २८, २९ ३० ३१ सागर प्रमाण है। आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक तक दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा जघन्य स्थितिमें अन्तर नहीं है
() नौ अनुदिशोंके प्रत्येक अहमिन्द्रकी उत्कृष्ट स्थिति ३२ सागर है हमारे यहां ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिकमें ९१ विमान माने हैं और नौ अनुदिश एसे १०० विमान माने हैं	() श्वेताम्बर आम्नायमें नवअनुदिश नामसे विमान नहीं माने हैं पर तीन ऊपर की ग्रैवेयकत्रिकमें १०० विमानोंमें हमारे यहांके नौ अनुदिशोंको भी समावेश करलिया है (देखो अध्याय ४ पृष्ठ ५६)
() विजय वैजयन्त-जयन्त-अपराजित चार विमानोंके अहमिन्द्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है	() विजय वैजयन्त-जयन्त अपराजित चार विमानोंके अहमिन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागरोपम है (तत्त्वार्थाधिगम सूत्र ८ पृष्ठ११७)
() सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट तथा जघन्यआयु तेतीस ही सागर प्रमाण है।	() सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है (देखो तत्त्वार्थाधिगम सूत्र ३८ ४२ पृष्ठ ११७ ११८)

इस टिप्पणी से प्रगट है कि श्वेताम्बर आम्नायमें नव अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में 'परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा' अ ४२ वां सूत्र है (हमारे यहां ३४वां है) यह इस बातका द्योतक है कि नवग्रैवेयकोंके और विजय वैजयन्त-जयन्त अपराजित विमानोंके मध्यमें कोई

तेईस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति दूसरेमें चौबीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, तीसरेमें पचीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, बहुरि मध्य ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें छब्बीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु दूसरेमें सत्ताईस सागर प्रमाण परा स्थिति, तीसरेमें अट्ठाईस सागर प्रमाण परा स्थिति है और ऊपरके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें उनतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति, दूसरेमें तीससागर प्रमाण परास्थिति, तीसरेमें इकतीस सागरप्रमाण परास्थितिहै

और विमानवासी हैं जिनको उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर हासकी है। हम उसको यहांपर संस्कृत भाष्य हिन्दी अनुवाद और चरण टिप्पणी सहित तत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पृष्ठ ११० से शब्दशः उद्धृत करते हैं

॥ परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थः—"माहेन्द्र कल्पके परे पूर्व अर्थात् पूर्व २ स्वर्गोंमें जो परास्थिति है वह पर २ में जघन्य अर्थात् अपरा स्थिति होती है ॥"

भाष्यम्—"माहेन्द्रात्परतः पूर्वा परानन्तरा जघन्यास्थितिर्भवति। तद्यथा माहेन्द्रे परा स्थितिर्विशेषाधिकानि सप्त सागरोपमाणि सा ब्रह्मलोके जघन्या भवति। ब्रह्मलोके दश सागरोपमाणि परास्थिति [illegible] लान्तके जघन्या। एवमासर्वार्थसिद्धादिति। (विजयादिषु चतुर्षु परा स्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सा त्वजघन्योत्कृष्टा सर्वार्थसिद्ध इति)"

विशेष व्याख्या—माहेन्द्र कल्पसे आगे पूर्व २ की जो परास्थिति है वह पर २ अर्थात् आगे २ के स्वर्गोंमें अपरा स्थिति होजाती है। जैसे माहेन्द्र कल्पमें परास्थिति विशेष अधिक सात सागरोपम है वह ब्रह्मलोकमें अपरा अर्थात् जघन्या है। ऐसेही ब्रह्मलोकमें परा स्थिति दश सागरोपम है वह लान्तकमें जघन्या वा अपरा स्थिति है। इसी प्रकार पूर्व २ की परा स्थिति पर २ की जघन्या स्थिति सर्वार्थसिद्धि (१) पर्यन्त जाननी चाहिये। (२) (विजयादि चार विमानों में परा स्थिति तैंतीस सागरोपम है वह सर्वार्थसिद्धमें अजघन्योत्कृष्टा है।) ॥" चरणटिप्पणी (१) (२) समाष्यमें ऐसेहैं कि (१) यहां पर यह जानना उचित है कि विजय आदि चार विमानोंमें परास्थिति बत्तीस सागरोपम है और सर्वार्थसिद्धमें तैंतीस सागरोपम अजघन्योत्कृष्टा है अर्थात् वहां एकही स्थिति है परा अपरा भेद नहीं है। और भाष्यकार सर्वार्थसिद्धिमें भी जघन्या बत्तीस सागरोपम है ऐसा जो कहते हैं आसर्वार्थसिद्धात् उसका अभिप्राय नहीं ज्ञात होता है। कदाचित् यहां आङ् (आ) मर्यादावाचक हो अर्थात् सर्वार्थसिद्ध का छोड़कर तेन विना मर्यादा तत्सहितोऽभिविधिः ॥"

"३२ विजयादिककी परास्थिति तो बत्तीस की (३२) कही है यहां ३३ किस अभिप्राय से कहे यह नहीं जाना जाता। और कहीं २ कोष्ठक्य पाठ नहीं है क्योंकि अर्थ संगत नहीं है" आङ् मर्यादाभिविध्यो अष्टाध्यायी २।१।१३॥ आङ् (=आ) जिसके प्रथम आवे तिसको छोड़ कर (तेनविना) मर्यादा अर्थमें आता है जैसे आपाटलिपुत्रात् वृष्टो देव=पटना को छोड़कर मेह बरसा ॥ तिस सहित (=तत्सहित) अभिविध अर्थमें आता है=आ आकाशादेकद्रव्याणि=आकाशको लेते हुये या आकाश को समावेश करते हुये एक एक द्रव्य हैं ॥ अर्थात् धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य औरआकाश ये एक२ हैं।

सूत्रार्थ—आरण अच्युतात्॥ ऊर्ध्वम्॥ एकैकेन॥	=आरण अच्युत (युगल) से ऊपर एक एक करि
(सागरोपमाणि॥) अधिकानि॥ परा॥ स्थिति॥	= सागर प्रमाण) बढ़ती हुई उत्कृष्ट आयु
ग्रैवेयकेषु॥ नवसु॥ अनुदिशेषु॥	=(क्रमसे प्रत्येक) नौ ग्रैवेयकद्विकोंमें और नौ अनुदिशोंमें
विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजितेषु॥ सर्वार्थसिद्धौ॥ च॥	=विजय-वैजयन्त जयन्त-अपराजितमें है सर्वार्थसिद्धि में स्थिति उत्कृष्ट ही (=च) है जघन्य नहीं होती है अर्थात् नीचेके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथम ग्रैवेयकमें

सूत्रमें 'च' शब्द निश्चय अर्थमें है अर्थात् च = ही। आशय यह है कि जो नीचे नीचे में उत्कृष्ट स्थिति है वह ऊपर ऊपर में जघन्य जानना है जैसे नौ अनुदिशमें बत्तीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति है वही विजयादिकमें जघन्य है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमें एक उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरसे अधिक आयु नहीं होसकती जघन्यस्थिति वाली आम्नायमें सर्वार्थसिद्धिमें नहीं है। विजय वैजयन्त जयंत अपराजित विमानोंमें भी उत्कृष्टआयु तेतीससागरहै

दिगम्बर आम्नायके कल्पातीतों के नाम स्थिति सहित

() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें प्रथम अहमिन्द्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३ २४, २५ २६, २७ २८, २९ ३० ३१ सागर प्रमाण है। आनत तेरहवाँ स्वर्गसे नवग्रैवेयक पर्यन्त दोनों आम्नायकी स्थितिमें भेदनहीं है

() नौ अनुदिशोंके प्रत्येक अहमिन्द्रकी उत्कृष्ट स्थिति ३२ सागर है हमारे यहां ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिकमें ९१ विमान माने हैं और नौ अनुदिश इससे १० विमान माने हैं

() विजय वैजयन्त जयन्त-अपराजित चार विमानोंके अहमिन्द्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है

() सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट तथा जघन्यआयु तेतीस ही सागर प्रमाण है॥

श्वेताम्बर आम्नायके कल्पातीतोंके नाम स्थिति सहित

() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिन्द्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३ २४ २५ २६ २७ २८, २९ ३० ३१ सागर प्रमाण है। आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक तक दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंकी उत्कृष्ट स्थिति या जघन्य स्थितिमें अन्तर नहीं है

() श्वेताम्बर आम्नायमें नव अनुदिश नामसे विमान नहीं माने हैं पर तीन ऊपर की ग्रैवेयकत्रिकमें १०० विमानोंमें हमारे यहांके नौ अनुदिशोंका भी समावेश करलिया है (देखो अध्याय ४ पृष्ठ ५६)

() विजय वैजयन्त-जयन्त अपराजित चार विमानोंके अहमिन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागरोपम है (तत्त्वार्थाधिगम सूत्र ८ पृष्ठ११७)

() सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है (देखो तत्त्वार्थाधिगम सूत्र' ३८ ४२ पृष्ठ ११७, ११८)

इस टिप्पणी से प्रगट है कि श्वेताम्बर आम्नायमें नव अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा जो ४२ वां सूत्रहै (हमारे यहां ३४वां है) यह इस बातका ज्ञापक है कि नवग्रैवेयकोंके और विजय वैजयन्त जयन्त-अपराजित विमानोंके मध्यमें कोई

तेनायमर्थ, अधोग्रैवेयकेषु प्रथमे त्रयोविंशतिः। द्वितीये चतुर्विंशति ॥ तृतीये पञ्चविंशति ॥ मध्यमग्रैवेयकेषु प्रथमे षड्विंशति ॥ द्वितीये सप्तविंसति ॥ तृतीयेऽष्टाविंशति ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु प्रथमे एकोनत्रिंशत् ॥ द्वितीये त्रिंशत् ॥ तृतीये एकत्रिंशत् ॥ अनुदिशविमानेषु द्वात्रिंशत् ॥ विजयादिषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्युत्कृष्टा स्थिति । सर्वार्थसिद्धेस्त्रयस्त्रिंशदेवेति ॥ निर्दिष्टोत्कृष्टस्थितिकेषु देवेषु जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

तन्॥ अयम्॥ अर्थः॥ अध॥ (१) ग्रैवेयकेषु॥	=तिस (नवशब्दके ग्रहण) से यह अर्थ होता है कि नीचले ग्रैवेयक त्रिकमें
प्रथमे॥ त्रयोविंशतिः॥ द्वितीये॥ चतुर्विंशतिः॥	=पहिलेमें तेईस(सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है। दूसरेमें चौवीस(सागरप्रमाणउत्कृष्टआयु)है।
तृतीये॥ पञ्चविंशतिः॥ मध्यम-ग्रैवेयकेषु॥	=तीसरेमें पचीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है। मध्यग्रैवेयकत्रिकमें
प्रथमे॥ षड्-विंशतिः॥ द्वितीये॥	=प्रथममें छब्बीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। दूसरेमें
सप्तविंशतिः॥ तृतीये॥ अष्टाविंशतिः॥	=सत्ताईस (सागरप्रमाणउत्कृष्ट आयु) है। तीसरेमें अट्ठाईस (सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है।
उपरिमग्रैवेयकेषु॥ प्रथमे॥ एकोनत्रिंशत्॥	=ऊपरके ग्रैवेयक त्रिकमें प्रथममें उनतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है।
द्वितीये॥ त्रिंशत्॥ तृतीये॥	=दूसरेमें तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। तीसरेमें
एकत्रिंशत्॥ अनुदिश-विमानेषु॥	=इकतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है। अनुदिश विमानोंमें
द्वा-त्रिंशत्॥ विजय-आदिषु॥	=बत्तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितमें
त्रयस्त्रिंशत्॥ सागरोपमाणि॥ उत्कृष्टा॥ स्थितिः॥	=तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है।
सर्वार्थसिद्धेः॥ त्रयस्त्रिंशत्॥ एव॥ इति॥	=सर्वार्थसिद्धिमें तेतीस ही (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है (जघन्यस्थिति नहींहोती है)
निर्दिष्ट उत्कृष्ट स्थितिकेषु॥ देवेषु॥	=वर्णित उत्कृष्ट स्थिति वाले देवोंमें
जघन्य-स्थिति प्रतिपादन अर्थम्॥ आह॥	=जघन्य आयुके कहने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) इस बत्तीसवाँ सूत्रमें नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु इस रूपसे पृथक् पृथक् उल्लेख क्यों किया है नवग्रैवेयक विजयादिषु ऐसा समासांतपद यहाँ मानना चाहिये था। ऐसा मानने में दो अक्षरों का लाघव भी होता। (उत्तर) ग्रैवेयकोंसे विजयादि विमानोंका जो पृथक् रूपसे ग्रहण कियागया है वह भी अनुदिश विमानोंके समावेशके लिये है यदि नवग्रैवेयक विजयादिषु ऐसा उल्लेख करते तो नव अनुदिश विमानोंका ग्रहण नहीं होता वे ग्रहण करनेसे रहजाते हैं॥

अधिकग्रहणमनुवर्तते। तेनेहाभिसम्बन्धो वेदितव्य । एकैकेनाधिकानीति ॥ नवग्रहणं किमर्थम् ? प्रत्येकमेकैकमधिकमिति ज्ञापनार्थम् ॥ इतरथा हि ग्रैवेयकेष्वेकमेवाधिक स्यात् ॥ विजयादिष्विति आदिशब्दस्य प्रकारार्थत्वादनुदिशानामपि ग्रहणम्॥सर्वार्थसिद्धे पृथग्ग्रहण जघन्याभावप्रतिपादनार्थम्

तथा अनुदिश विमाननिर्विषें बत्तीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित प्रत्येक विमान में उत्कृष्ट स्थिति बत्तीस सागर है सर्वार्थसिद्धि विषैं तेतीस सागर ही स्थिति है (-यहां जघन्य स्थितिनहीं एक ही आयु है)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित बत्तीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

अधिक ग्रहणम् । अनुवर्तते ।	=(इस सूत्रमें) अधिक शब्दका उपादान (पिछले ३१ वां सूत्रसे) प्रवर्तता है
तेन । इह अभिसम्बन्धः वेदितव्यः । एक एकेन ।	=तिस (अधिक शब्दके ग्रहण) से इह सम्बन्ध जानना चाहिये (कि) एक एक
अधिकानि । इति नव-ग्रहणम् । किम् । अर्थम् ।	=(सागर प्रमाण) करि अधिक है (प्रश्न) (इस सूत्रमें) नौ (शब्द) का ग्रहण किसलिये है
प्रत्येकम् । एकैकम् । अधिकम् । इति ज्ञापन अर्थम् ।	=(उत्तर) पृथक् पृथक् (ग्रैवेयकमें) एकएक सागर बढ़ती (आयु) ऐसा जाननेकेलिये है
इतरथा हि ग्रैवेयकेषु । एकम् । एव	=क्योंकि (=हि) अन्यथा (सर्व) ग्रैवयकोंमें एक (सागर प्रमाण) ही (स्थिति)
अधिकम् । स्यात् ।	=अधिक होती अर्थात् सब नव ग्रैवेयकों की स्थिति तेईस सागर होती किसी की भी अधिक नहीं होती इसलिये इससूत्रमें नव शब्दका ग्रहण है
विजय आदिषु । इति आदिशब्दस्य । प्रकार अर्थत्वात् ।	=विजय आदिकमें ऐसे आदि शब्दके प्रकारार्थ होनेसे
अनुदिशानाम् । अपि ग्रहणम् । सर्वार्थसिद्धेः ।	=अनुदिशोंका भी ग्रहण हुआ । सर्वार्थसिद्धि का (इस सूत्रमें)
पृथग्-ग्रहणम् । जघन्य-अभाव-प्रतिपादन अर्थम् ।	=भिन्न ग्रहण (यहां) जघन्य (स्थिति) का न होना जनायनके लियेहै अर्थात्

विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित-और सर्वार्थसिद्धि इन पांचों विमानों का भव एकही पटल है और सबमें उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है तौभी 'सर्वार्थसिद्धौ' ऐसा पृथक् वाक्य क्योंलाये औरभिन्न विभक्ति क्योंकी "विजयादिषु" इसमें गर्भित क्यों न रक्खा इसका कारण यह है कि अन्य चार विमानोंमें तो जघन्य स्थिति बत्तीस सागर प्रमाण है और उत्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य उत्कृष्टकी स्थितिभेद जघन्य नहीं इसको जनानेको भिन्नविभक्तिमें लाये हैं ॥

तेनायमर्थ, अधोग्रैवेयकेषु प्रथमे त्रयोविंशति । द्वितीये चतुर्विंशति ॥ तृतीये पञ्चविंशति ॥ मध्यमग्रैवेयकेषु प्रथमे षड्विंशति ॥ द्वितीये सप्तविंसति ॥ तृतीयेऽष्टाविंशति ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु प्रथमे एकोनत्रिंशत् ॥ द्वितीये त्रिंशत् ॥ तृतीये एकत्रिंशत ॥ अनुदिशविमानेषु द्वात्रिंशत् ॥ विजयादिषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्युत्कृष्टा स्थिति । सर्वार्थसिद्धेस्त्रयस्त्रिंशदेवेति ॥ निर्दिष्टोत्कृष्टस्थितिकेषु देवेषु जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

तेन॥ अयम्॥ अर्थः॥ अधः॥(१) ग्रैवेयकेषु॥	=तिस (नवशब्दके ग्रहण) से यह अर्थ होता है कि नीचले ग्रैवेयक त्रिकमें
प्रथमे॥ त्रयोविंशतिः॥ द्वितीये॥ चतुर्विंशतिः॥	=पहिलेमें तईस(सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है। दूसरेमें चौबीस(सागरप्रमाणउत्कृष्टआयु)है।
तृतीये॥ पञ्चविंशतिः॥ मध्यम-ग्रैवेयकेषु॥	=तीसरेमें पचीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है। मध्यग्रैवेयकत्रिकमें
प्रथमे॥ षड्-विंशतिः॥ द्वितीये॥	=प्रथममें छब्बीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। दूसरेमें
सप्तविंशतिः॥ तृतीये॥ अष्टाविंशतिः॥	=सत्ताईस (सागरप्रमाणउत्कृष्ट आयु) है। तीसरेमें अट्ठाईस (सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है।
उपरिम॥ ग्रैवेयकेषु॥ प्रथमे॥ एकोनत्रिंशत्॥	=ऊपरके ग्रैवेयक त्रिकमें प्रथममें उनतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है।
द्वितीये॥ त्रिंशत्॥ तृतीये॥	=दूसरेमें तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। तीसरेमें
एकत्रिंशत्॥ अनुदिश-विमानेषु॥	=इकतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है। अनुदिश विमानोंमें
द्वात्रिंशत्॥ विजय-आदिषु॥	=बत्तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितमें
त्रयस्त्रिंशत्॥ सागरोपमाणि॥ उत्कृष्टा॥ स्थितिः॥	=तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है।
सर्वार्थसिद्धे॥ त्रयस्त्रिंशत्॥ एव॥ इति॥	=सर्वार्थसिद्धिमें तेतीस ही (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है (जघन्यस्थिति नहींहोती है)
निर्दिष्ट उत्कृष्ट स्थितिकेषु॥ देवेषु॥	=वर्णित उत्कृष्ट स्थिति वाले देवोंमें
जघन्य-स्थिति प्रतिपादन अर्थम्॥ आह॥	=जघन्य आयुके कहने के लिये (आचार्य उपर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) इस श्लोकमर्थ सूत्रमें नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु इस रूपसे पृथक् पृथक् उल्लेख क्यों किया है नवग्रैवेयक विजयादिषु ऐसा समासांतपद पदही मानना चाहिये था। ऐसा मानने से दो अक्षरों का लाघव भी होता। (उत्तर) ग्रैवेयकोंसे विजयादि विमानोंका जो पृथक् रूपसे ग्रहण कियागया है वह भी अनुदिश विमानोंके समहके लिये है यदि नवग्रैवेयक विजयादिषु' ऐसा उल्लेख करते तो नव अनुदिश विमानोंका ग्रहण नहीं होता वे व्यर्थ करनेस रहजाते हैं।

॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

पल्योपमं व्याख्यातम् । अपरा जघन्यस्थितिः ॥ पल्योपमं साधिकम् ॥ केषां ? सौधर्मैशानीयानाम् ॥ कथं गम्यते परतः परत इत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥

ततः ऊर्ध्वं जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

[1]सूत्रम्—अपरापल्योपममधिकम्॥३३॥ =(सौधर्मैशानयोः २९वां सूत्रसे) अपरा (स्थिति २८वां सूत्रसे) पल्योपमम् अधिकम् भवति ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थ —सौधर्म-ऐशानयोः॥अपरा॥स्थितिः॥	=सौधर्म ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें जघन्य आयु
पल्योपमम्॥अधिकम्॥भवति।	=कुछ अधिक पल्य-प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इसतेतीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

पल्य उपमम्॥व्याख्यातम्॥	=पल्यका प्रमाण (तीसरे अध्याय के ३८ वां सूत्रमें) कहा जा चुका है
अपरा॥जघन्य-स्थितिः॥पल्योपमम्॥स-अधिकम्॥	=अपरा है सो निकृष्ट स्थिति है (सो) कुछ अधिक पल्य प्रमाण है
केषाम्॥?	=(प्रश्न) किनकी (जघन्य आयु कुछ अधिक-पल्य प्रमाण) है
सौधर्म-ऐशानीयानाम्॥	=(उत्तर) सौधर्म-ऐशानके देवोंकी निकृष्ट स्थिति कुछ अधिक पल्य प्रमाण है
कथम्॥गम्यते। परतः परतः इति उत्तरत्र	=(प्रश्न) कैसे जाना जाय है ॥ [उत्तर] अगले अगलेमें ऐसा यहांसे अग्रिम [सूत्रमें]
वक्ष्यमाणत्वात्॥	=कहेजानेसे सौधर्मऐशान स्वर्गोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक पल्य प्रमाणजानीजाती है
ततः ऊर्ध्वम्॥जघन्य स्थिति-प्रतिपादन अर्थम्॥आह।	=यहां [सौधर्म ऐशान युगल] से ऊपर निकृष्ट-आयुके कहनेके लिये कहतेहैं कि

(१) श्वेताम्बर आम्नायमें अपरा पल्योपममधिकम् च पाठ है अर्थात् हमारे यहांसे च अधिक है और सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ ११७ पर यह भाष्य है कि तत्र सौधर्मेऽपरा स्थितिः पल्योपममैशाने पल्योपममधिकं च =वहां सौधर्म (स्वर्ग) में जघन्य आयु पल्यप्रमाण है (और) ऐशान (स्वर्ग) में पल्य प्रमाण तथा कुछ अधिक है। हमारे यहां सौधर्म ऐशान प्रत्येकमें एक पल्यसे कुछअधिक निकृष्ट आयु है यही अर्थभेद दोनों आम्नायोंमें है

परतः परतः पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा ॥ ३४ ॥

सूत्रम्—परत परत पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा ॥३४॥ =पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा परत परत ॥३४॥

=पूर्वा पूर्वा [१]ऽनन्तरा(साधिका ३२वां सूत्रसे)([१]परास्थिति' २८वां सूत्रसे)[३]परतः[३] परतः(अपरा ३२वां सूत्रसे)(स्थितिः २८वां सूत्रसे)भवति

(१)अट्ठाईसवां सूत्रमें भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा आयुका वर्णन है उनतीसवां सूत्रसे बत्तीसवां तक चार सूत्रोंमें समस्त कल्पवासी और कल्पातीत अहमिन्द्रोंकी उत्कृष्ट आयुका कथन है। तीसवां सूत्रसे बत्तीसवां सूत्र तक और ४१वां सूत्रमें भी कल्पवासी देव कल्पातीत अहमिन्द्र (सर्वार्थसिद्धि को छोड़कर जहां उत्कृष्ट जघन्य तेतीस सागरकी एकही स्थिति है) नारकियों भवनवासी और व्यंतर देवोंकी जघन्य आयु का प्रकरण है। इस सूत्रमें कुछ अधिक = अधिका = साधिकाकी अनुवृत्ति ३२वां सूत्रसे आती है जैसाकि ३४वां सूत्रकी वृत्तिमें अधिक शब्दअनुवर्तते और तीन स्थानोंमें साधिका वाक्योंके प्रयोगसे प्रगट है नकि उस अनुवर्तन उनतीसवां सूत्रसे है क्योंकि वहां उनतीसवां सूत्रमें उत्कृष्ट आयुका कथन है।

(२) पूर्वा पूर्वा और अनन्तरा शब्द प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग हैं और स्थितिः शब्द जो प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग में है उसके विशेषण हैं नकि स्वर्ग कल्प वा युगल इत्यादि के (३)पर अर्थात् अगले देवमें जो रहे उसको 'परतः' कहते हैं 'परतः परतः' यहां पर वीप्सा वा अपेक्षा अर्थमें द्वित्व(=दोबार)है 'पूर्वा पूर्वा'यहां पर भी वीप्साअर्थमें द्वित्व है।(४)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें हमारे यहांके ३३वां और ३४वां सूत्रके मध्यमें उनके यहांका ४०वां सूत्र सागरोपमे = सानत्कुमार कल्पमें जघन्य स्थिति दो सागर प्रमाण है और ४१वां सूत्र अधिके च = माहेन्द्र स्वर्गमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक दो सागर प्रमाण वरती वा अधिक है। इन ४०वां वा ४१वां सूत्रोंके पश्चात् उनके यहां का ४२वां सूत्र 'परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा' हमारे यहांके उपर्युक्त ३४वां सूत्रके पाठसे अक्षरशः मिलता है परन्तु तात्पर्यमें अन्तर यह है कि सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रके अनुसार इस सूत्रसे महशुक्रकी जघन्य स्थिति का आरम्भ होता है और सर्वार्थ सिद्धिकी स्थिति तकका वर्णन है हमारे यहांके अनुकूल इस सूत्रसे सानत्कुमार माहेन्द्र युगल की जघन्य स्थिति का आरम्भ होता है और विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित विमानोंतककी जघन्य आयुका कथन है। दोनों आम्नायोंके अनुकूल सर्वार्थ सिद्धिमें एक तेतीस सागरकी अजघन्योत्कृष्ट स्थिति है यहां पर परा अपरा स्थितिका भेद नहीं है(सभाष्य० पृष्ठ ११७,११८)इसलिये हमारे यहां सौधर्म ऐशान दोनो स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति दो पल्य प्रमाणस प्रत्येकमें कुछ अधिक है। श्वेताम्बर आम्नायके अनुसार सौधर्म स्वर्गमें जहां पर स्थिति एक पल्य प्रमाण है ऐशान स्वर्ग में एक पल्यसे अधिक स्थिति कुछ अधिक है (सभाष्य सूत्र ३६)ऐसेही हमारे यहां सानत्कुमार माहेन्द्र प्रत्येक स्वर्गमें जघन्यस्थिति दोसागर प्रमाणसे कुछ अधिक हैं उनके यहां सानत्कुमार स्वर्गमें दोसागर प्रमाण जघन्य स्थिति है और माहेन्द्र कल्पमें अपरा स्थिति दो सागरसे कुछ अधिक है। जो टिप्पणी हमने पृष्ठ १०२, १०४, १०५ में उत्कृष्ट स्थितिके सम्बन्धमें दी हैं उनसे यद्यपि जघन्य स्थिति का भेद निकल आता है तो भी सरलताके लिए निम्न टिप्पणी भी देते हैं॥

दिगम्बर आम्नायकी सौधर्मस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य आयु
() सौधर्म और एशान स्वर्गों की देवों की जघन्य स्थिति एक पल्य से कुछ अधिक है(देखो सूत्र३३)

श्वेताम्बर आम्नायकी सौधर्मस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य स्थिति
() सौधर्मस्वर्गमें जघन्य आयु एक पल्य है और ऐशानस्वर्गमें एक पल्यसे कुछ अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें सूत्र ३६)

॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

पल्योपमं व्याख्यातम् । अपरा जघन्यस्थिति ॥ पल्योपमं साधिकम् ॥ केषा ? सौधर्मैशानीयानाम् ॥ कथं गम्यते परत परत इत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥

तत ऊर्ध्वं जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

(1)सूत्रम्–अपरापल्योपममधिकम्॥३३॥ =(सौधर्मैशानयो २९वां सूत्रसे) अपरा (स्थिति २८वा सूत्रसे) पल्योपमम् अधिकम् भवति ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थ –सौधर्म-ऐशानयोः॥१॥अपरा॥१॥स्थितिः॥१॥ =सौधर्म-ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें जघन्य आयु
पल्योपमम्॥१॥अधिकम्॥१॥भवति। =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इसतेतीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

पल्य उपमम्॥१॥व्याख्यातम्॥१॥ =पल्यका प्रमाण (तीसरे अध्याय के ३८ वां सूत्रमें) कहा जा चुका है
अपरा॥१॥जघन्य-स्थितिः॥१॥पल्योपमम्॥१॥स-अधिकम्॥१॥ =अपरा है सो निकृष्ट स्थिति है (सो) कुछ अधिक पल्य प्रमाण है
केषाम्॥१॥ =(प्रश्न) किनकी (जघन्य आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण) है
सौधर्म-ऐशानीयानाम्॥१॥ =(उत्तर) सौधर्म-ऐशानके देवोंकी निकृष्ट स्थिति कुछ अधिक पल्य प्रमाण है
कथम्॰गम्यते। परतः॰परतः॰इति॰उत्तरत्र॰ =(प्रश्न) कैसे जाना जाय है ॥ [उत्तर] अगले अगलेमें-ऐसा यहांसे अग्रिम [सूत्रमें]
वक्ष्यमाणत्वात्॥१॥ =कहेजानेसे सौधर्मऐशान स्वर्गोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक पल्य प्रमाण जानी जाती है
ततः॰ऊर्ध्वम्॥१॥जघन्य स्थिति-प्रतिपादन अर्थम्॥१॥आह। =यहां [सौधर्म ऐशान युगल] से ऊपर निकृष्ट आयुके कहनेके लिये कहते हैं कि

(1) श्वेताम्बर आम्नायमें अपरा पल्योपममधिकम् च' पाठ है अर्थात् हमारे यहांसे च अधिक है और सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ ११७ पर यह भाष्य है कि तत्र सौधर्मेऽपरा स्थितिः पल्योपमम् ऐशाने पल्योपममधिकं च =तहां सौधर्म (स्वर्ग) में जघन्य आयु पल्यप्रमाण है (और) ऐशान (स्वर्ग) में पल्य प्रमाण तथा कुछ अधिक है। हमारे यहां सौधर्म ऐशान प्रत्येकमें एक पल्यसे कुछ अधिक निकृष्ट आयु है यही अर्थभेद दोनों आम्नायोंमें है

परस्मिन्देशे परत । वीप्साया द्वित्वम् । पूर्वशब्दस्याप्यधिकग्रहणमनुवर्तते ॥ तेनैवमभिसम्बन्ध क्रियते-सौधर्मैशानयोर्द्वे सागरोपमे साधिके उक्ते, ते साधिके सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्जघन्यस्थिति ॥

सानत्कुमारमाहेन्द्रयो

सूत्रार्थ –पूर्वा॥ पूर्वा॥अनन्तरा॥साधिका॥परा॥स्थिति॥ =पहिली पहिली अत्यन्त निकट (=अनन्तरा) कुछ अधिक सहित, उत्कृष्ट स्थिति
परतः परतः अपरा॥ स्थिति॥ भवति। =अगले अगलेमें वा ऊपर ऊपरमें (=परतःपरतः) जघन्य स्थिति होती है अर्थात् सर्वार्थसिद्धिको छोड़कर जहाँ जघन्य और उत्कृष्ट एक स्थिति तेतीस सागरकी ही है। वैमानिकदेवोंमें नीचे नीचे युगलोंमें जो उत्कृष्ट आयु है वही ऊपर ऊपर क्रमसे निकृष्ट स्थिति है जैसे सौधर्म ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें कुछ अधिक दोसागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है वही सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें जघन्य है॥

वृत्त्यनुवाद—परस्मिन्॥ देशे॥ 'परतः' =ऊपर ऊपर वा अगले स्थानमें जो रहे (वा हो) सो 'परतः' है
वीप्सायाम्॥ द्वित्वम्॥ =अनेकवा वार वारके (अर्थ)में दो बार (=द्वित्व) (इस सूत्रमें परतः और पूर्वा प्रत्येक शब्द आये) हैं अर्थात् इस सूत्रमें "परतः परतः" दोबार आनेसे और 'पूर्वा पूर्वा' भी दोबार आनेसे बहुतबार अनेकबारके अर्थमें दोनोंही शब्दोंका प्रयोग सूत्रमें जानना चाहिये।
पूर्वशब्दस्य॥ अपि अधिक-ग्रहणम्॥ अनुवर्तते। =(इस सूत्रमें) 'पूर्व' शब्दके भी (=अपि) (तेतीसवां सूत्रसे) 'अधिक' शब्दका आदान आता है अर्थात् नीचले नीचले कल्प युगलोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति सागर प्रमाणोंसे कुछ अधिक है वह ऊपर ऊपरके शतारसहस्रार युगलों तक जघन्य स्थिति उतने सागर प्रमाण है और कुछ अधिक भी है परन्तु आनत प्राणत सातवां युगलमें पूरे बीस सागरकी आयु है और आरण अच्युत आठवां युगलमें बाईस सागरकी पूरी स्थिति है।
तेन॥ एवम् अभिसम्बन्धः॥ क्रियते। =तिस (अधिक ग्रहण) करि इसप्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि
सौधर्म-ऐशानयोः॥ द्वे॥ सागरोपमे॥ स अधिके॥ उक्ते॥ =सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें दो सागर प्रमाण कुछ अधिक (स्थिति) कही
ते॥ स-अधिके॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः॥ =वे (दो सागर प्रमाण स्थिति) किंचित् अधिक (स्थिति) सानत्कुमारमाहेन्द्रमें
जघन्यस्थितिः॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः॥ =निकृष्ट आयु है। सानत्कुमार माहेन्द्र (युगल) में

() सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंके (प्रत्येकके)देवों की जघन्य आयु दो सागर से कुछ अधिक है (देखो सूत्र२६,३४)

() ब्रह्म ब्रह्मोत्तर(प्रत्येक)स्वर्गके देवोंकी अपरा स्थिति सात सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३० ३४)

() लांतव—कापिष्ठ (प्रत्येक) स्वर्गके देवों की निकृष्ट आयु दश सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१ ३४)

() शुक्र—महाशुक्र (प्रत्येक)स्वर्गके देवोंकी जघन्य स्थिति चौदह सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१ ३४)

() शतार-सहस्रार (प्रत्येक) कल्पके देवोंकी अपरा आयु सोलह सागर से कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१ ३४)

() आनत—प्राणत(प्रत्येक) स्वर्गके देवोंकी निकृष्ट स्थिति पूरे अठारह सागर है (देखो सूत्र ३१ ३४)

() आरण—अच्युत (प्रत्येक) कल्पके देवोंकी जघन्य आयु पूरे बीस सागर प्रमाण है (देखो सूत्र ३१ ३४)

() प्रत्येक नव ग्रैवेयकमें प्रथम एक एक वृद्धिको प्राप्त बाईस सागर से ३० सागर तक जघन्य स्थिति है (देखो सूत्र ३२,३४)

() नव अनुदिश जिनका एक पटल है जघन्य स्थिति ३१ सागर है (देखो सूत्र ३२, ३४)

() विजय—वैजयन्त—जयन्त—अपराजितमें (प्रत्येकमें) जघन्य आयु ३२ सागर है (देखो सूत्र ३२,३४)

() सर्वार्थसिद्धिमें जघन्योत्कृष्ट एकही स्थिति तैतीससागर प्रमाणहै

() सानत्कुमार में जघन्य स्थिति दो सागर है (समाप्य० सूत्र ४०)माहेन्द्रमें दो सागर से अधिक है (देखो समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४१)

() ब्रह्मलोक (ब्रह्मोत्तर स्वर्ग समाप्य० सूत्रमें नहीं है) में सात सागर से कुछ अधिक है (देखो समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र ४२)

() लांतव (कापिष्ठ समाप्य०सूत्रमें नहीं माना है)में जघन्य स्थिति दस सागर है (देखो समाप्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)

() महाशुक्र कल्प (शुक्र कल्प समाप्य०सूत्र में नहीं है)में जघन्य स्थिति चौदह सागर है (देखो समाप्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)

() सहस्रार स्वर्ग (शतार समाप्य०में नहीं माना है)में जघन्य आयु सोलहसागर है (देखो समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)

() आनत प्राणत स्वर्गोंमें वही जघन्य स्थितिहै जो हमारे यहां है (समाप्य०सूत्र ३७, ४२)

() आरण अच्युत स्वर्गोंमें वही स्थितिहै जो हमारे यहां है(समाप्य०सूत्र३७ ४२)

[] समाप्य० के सूत्र ३८, ४२ से यही जघन्य स्थिति श्वेताम्बर आम्नाय में है

[] नव अनुदिश नहीं माने हैं इस लिये जघन्य और उत्कृष्ट कोई स्थिति नहीं हो सकती है।

[] विजय—वैजयन्त—जयन्त-अपराजित में समाप्य० के आरणाच्युत इत्यादि ३८वां सूत्र को पढ़त पढ़ता पर्वां पर्वाऽनन्तरा ४२वां समक साथ पढ़ने से यह बात निकलती है कि प्रत्येक उक्त चार विमानों में जघन्य आयु ३१ सागर है क्योंकि अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु ४४ सूत्रके कोष्ठकका पाठ कि विजयादि चार विमानोंमें वरास्थिति तंतीस सागर है इस पाठ का आपत्त है कि जघन्य आयु ३२ सागर है क्योंकि विजयादिक की उत्कृष्ट स्थिति ३८,४२ सूत्रमें बत्तीस सागर है ४०वां सूत्रके कोष्ठकमें ३३ सागर है

[] सर्वार्थसिद्धिमें जघन्योत्कृष्ट एक ही आयु तैतीस सागर है।

चशब्द किमर्थ ? । प्रकृतसमुच्चयार्थ ॥ किं च प्रकृतं ? । परत परत पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा अपरा स्थितिरिति ॥ तेनायमर्थो लभ्यते—रत्नप्रभाया नारकाणा परास्थितिरेकं सागरोपमम् । सा शर्कराप्रभाया जघन्या । शर्कराप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रीणि सागरोपमाणि । सा वालुकाप्रभाया जघन्येत्यादि । एव द्वितीयादिषु जघन्या स्थितिरुक्ता ॥ प्रथमायां का जघन्येति तत्प्रदर्शनार्थमाह—

सूत्रार्थ—पूर्वा पूर्वा अनन्तरा परा स्थिति	=पहिली पहिली व्यवधान रहित वा लगतारी उत्कृष्ट स्थिति
नारकाणाम् च परत परत द्वितीयादिषु	=नारकियों के भी [=च] ऊपर ऊपर में दूसरी आदि
भूमिषु अपरा स्थिति भवति	=भूमियोंमें जघन्य आयु है (जैसे प्रथम भूमिमें एक सागर उत्कृष्ट स्थिति है वही दूसरी पृथिवीमें जघन्य है दूसरीमें तीन सागर परा है वही तीसरीमें अपरा है) ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस पैंतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद ॥

च-शब्द किमर्थ प्रकृत-समुच्चय-अर्थ	=(इस सूत्रमें) च शब्द किसलिये है ? (उत्तर) प्रकरणके समुच्चय वा जोड़नेको है
किम् च प्रकृतम् अनन्तरा	=(प्रश्न) बहुरि (=च) क्या प्रकरण वा विषय है (उत्तर) अत्यन्तनिकट वर्ती है
पूर्वा पूर्वा परास्थिति परतपरत अपरा स्थिति	=पूर्व पूर्व की (उत्कृष्ट आयु) ऊपर ऊपरमें जघन्य आयु होती है ऐसा प्रकरण है
इति । तेन अयम् अर्थ लभ्यते रत्न-प्रभायाम्	=तिस (च शब्द) से यह अर्थ लियाजाता है कि रत्नप्रभा पृथिवीमें
नारकाणाम् परास्थिति एकम् सागरोपमम्	=नारकी जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण है ॥
सा शर्करा-प्रभायाम् जघन्या शर्कराप्रभायाम्	=वही (स्थिति) शर्करा प्रभा (दूसरी पृथिवी) में निकृष्ट स्थिति है । शर्कराप्रभामें
उत्कृष्टा स्थिति त्रीणि सागरोपमाणि सा	=उत्कृष्ट आयु तीन सागर प्रमाण है । वही (तीन सागर प्रमाण स्थिति)
वालुकाप्रभायाम् जघन्या इति आदि एवम्	=वालुकाप्रभामें जघन्य (आयु) है । ऐसे और भी (सातवीं भूमि पर्यंत) है ॥ ऐसे
द्वितीय आदिषु जघन्या स्थिति उक्ता प्रथमायाम्	=दूसरी आदिक (भूमि) में जघन्य आयु कही गई । पहली भूमिमें
का जघन्या इति तत्-प्रदर्शन अर्थम् आह	=क्या निकृष्ट (आयु) है । उस(प्रथम भूमिकी जघन्य आयु)केदिखानेको कहतेहैंकि

परा स्थिति सप्तसागरोपमाणि साधिकानि, तानि ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्जघन्या स्थितिरित्यादि ॥
नारकाणामुत्कृष्टा स्थितिरुक्ता । जघन्या सूत्रेऽनुपात्तामप्रकृतामपि लघुनोपायेन प्रतिपादयितुमिच्छन्नाह

नारकाणां च द्वितीयादिषु॥३५॥

परा॥ स्थितिः॥ स-अधिकानि॥ =उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक
सप्त-सागरोपमाणि॥ तानि॥ ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः॥ =सात सागर प्रमाण है से (सात सागर और कुछ अधिक) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें
जघन्या॥ स्थितिः॥ । इति॰आदि॥ =निकृष्ट स्थिति है । ऐसेही आगे आगे है अर्थात् सागरोंसे कुछ अधिक है यह अधिकता बारहवां सहस्रार स्वर्गतक है । आनत प्राणत स्वर्गोंसे आगे पूरेपूरे सागरोंकी आयुहै नीचली नीचली उत्कृष्ट स्थिति ऊपर ऊपर विजयादिक तक जघन्य जघन्य है ॥

नारकाणाम्॥ उत्कृष्टा॥ स्थितिः॥ उक्ता॥ सूत्रे॥ =नारकियोंकी प्रकृष्ट आयु(तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें)कही । (इस) सूत्रमें
अनुपात्ताम्॥ अप्रकृताम्॥ अपि॥ जघन्याम्॥ =अप्राप्त(=अनुपात्ताम्) और अनधिकृत (नारकियोंकी) जघन्य (स्थिति) भी
लघुना॥ उपायेन॥ प्रतिपादयितुम्॰ इच्छन्॥ आह॥ =लघु साधन द्वारा अर्थात् थोड़े अक्षरों द्वारा कहनेको इच्छुक (आगे दो सूत्रमें) कहतेहैं अर्थात् नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तो तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें कहदी और यहां वैमानिकोंकी स्थितिका प्रकरण किया है इसलिये नारकियोंकी जघन्यस्थितिकहने का कोई अवसर प्राप्त नहीं है और न नारकियोंका कथनका कोई प्रकरण या विषयही है तो भी आचार्यकी इच्छा नारकियोंकी जघन्य स्थिति बयान करनेकी इस हेतुसे है कि अल्प शब्दोंमेंही इस सूत्रकी अनुवृत्ति होनेसेअभीष्ट स्थिति कही जासकती है ॥

(२)सूत्रम्—नारकाणां च द्वितीयादिषु = नारकाणाम् च द्वितीयादिषु (भूमिषु[१] अध्याय३ सूत्र १से) पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा परा स्थिति परत परत अपरा स्थिति भवति

(१)'भूमिषु' इस शब्दकी अनुवृत्ति तीसरे अध्यायके पहिले सूत्रसे लीगई है क्योंकि इस स्थिति का वहां विषय न था बल्कि तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रके पश्चात् था, वहां लघु अक्षरोंमें यह स्थिति नहीं कही जासकती थी इस हेतुसे यहां कहीगई है तीसरा अध्याय सूत्र १से यह 'भूमिषु' शब्द अनुवृत्त है । चकारसे सबका सब सूत्र ३४वां की अनुवृत्ति आती है ।(२) श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥

दशवर्षसहस्राणीत्यभिसम्बध्यते ॥ व्यन्तराणां तर्हि का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ तेन व्यन्तराणामपरा स्थितिर्दशवर्षसहस्राणीत्यवगम्यते ॥ अथैषां परा स्थितिः का इत्यत्रोच्यते ॥

॥ परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

दशवर्षसहस्राणि॥ इति॥ अभिसम्बध्यते। व्यन्तराणाम्॥ तर्हि॥ का॥ जघन्या॥ स्थितिः॥ इति॥ अत॥ आह। =दश हजार वर्ष ऐसा वाक्य इस सूत्रमें) जोड़ा जाता है। तो व्यन्तरोंकी क्या जघन्य आयु है। ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

[1]सूत्रम्—व्यन्तराणाम् च ॥ ३८ ॥ = व्यन्तराणाम् च दशवर्षसहस्राणि(३६ वा सूत्रसे) अपरा(३३वा सूत्रसे) स्थिति (२८वासूत्र से)भवति

व्यन्तराणाम्॥ च॥ दशवर्षसहस्राणि॥ अपरा॥ स्थितिः॥ भवति। =व्यन्तर देवोंकी भी (=च) दशहजार वर्ष जघन्य आयु है (यहां अनुवृत्तिलेने के लियेकि सूत्रबोधसे व्यन्तरोंकी उत्कृष्टस्थितिनकहकरपहिले जघन्य कही)

वृत्त्यनुवाद –चशब्दः॥ प्रकृत-समुच्चय अर्थः॥ =(इस सूत्रमें) च शब्द (स्थितिरूप) प्रकरण के समुच्चके लिये है ॥

तेन॥ व्यन्तराणाम्॥ अपरा॥ स्थितिः॥ =तिस (च शब्द) करि व्यन्तर देवनिकी जघन्य आयु

दशवर्षसहस्राणि॥ इति॥ अवगम्यते। अथ॥ एषाम्॥ =दश हजार वर्ष ऐसे जानी जाती है। अब इन व्यन्तर देवोंकी

परा॥ स्थितिः॥ का॥ इति॥ अत्र॥ उच्यते। =उत्कृष्ट आयु क्या है ऐसे प्रश्न पर यहां कहाजाता है कि

[2]सूत्रम्—परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥ = व्यन्तराणाम् (३८वा सूत्र से) परा स्थिति (२८वा सूत्र से) पल्योपमम् अधिकम् भवति

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमें एकसा है श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४८ वी मानी है।

(२) श्वेताम्बर आम्नायमें इस सूत्रका पाठ "परापल्योपमम् ॥४७॥ ऐसा है हमारे यहां स्थिति पल्यसे अधिक है उनके यहां एकही पल्य है।

॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

अपरा स्थितिरित्यनुवर्तते । रत्नप्रभाया दशवर्षसहस्राणि अपरा स्थितिर्वेदितव्या ॥
अथ भवनवासिनां का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥

चशब्दः किमर्थः ? प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ तेन भवनवासिनामपरास्थिति

---

(१) सूत्रम्—दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

= दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् (भूमौ अध्याय ३ सूत्र १ से) अपरा (३३वा सूत्रसे) स्थिति (२८ वा सूत्रसे) नारकाणाम् (३५ वा सूत्रसे) भवति ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थ—दशवर्षसहस्राणि, प्रथमायाम्, भूमौ, =दश हजार वर्ष प्रथम भूमिमें (अर्थात् सीमंतक नाम पहिले पाथड़ेमें)
अपरा, स्थिति, नारकाणाम्, =जघन्य आयु नारकी जीवोंकी है
वृत्त्यनुवाद—अपरा, स्थिति, इति अनुवर्तते । रत्नप्रभायाम्, =(इस सूत्रमें) 'अपरा' और 'स्थितिः' ऐसी अनुवृत्ति है । रत्नप्रभा (पहिली भूमि)में
दशवर्षसहस्राणि, अपरा, स्थितिः, वेदितव्या, =दश हजार वर्ष निकृष्ट आयु जानना चाहिये
अथ भवनवासिनाम्, का, जघन्या, स्थितिः, इति =अब (=अथ) भवनवासी देवनिकी क्या जघन्य आयु है । इसलिये कहते हैं कि

(१) सूत्रम्—भवनेषु च ॥ ३७ ॥

= भवनेषु च दशवर्षसहस्राणि (सूत्र ३६ से) अपरा (सूत्र ३३ से) स्थिति (सूत्र २८वा से) भवति

भवनेषु, च, दशवर्षसहस्राणि, अपरा, स्थितिः, भवति =भवनवासी देवनिमें भी (=च) दश हजार वर्ष जघन्य या निकृष्ट आयु होती है
वृत्त्यनुवाद—चशब्दः, किमर्थः, प्रकृत-समुच्चय-अर्थः, =इस सूत्रमें च शब्द किसलिये है । स्थितिके प्रकरणके समुच्चयके लिये है ॥
तेन, भवनवासिनाम्, अपरा, स्थितिः, =तिस (च शब्द) करि भवनवासी देवोंकी जघन्य आयु

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है । तत्त्वार्थाधिगमभाष्यमें इसकी संख्या ४४ वां है ॥
(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें एकसा है तत्त्वार्थाधिगमभाष्यमें इसकी संख्या ४५ वीं है ॥

दशवर्षसहस्राणीत्यभिसम्बध्यते ॥ व्यन्तराणां तर्हि का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ तेन व्यन्तराणामपरा स्थितिर्दशवर्षसहस्राणीत्यवगम्यते ॥ अथैषा परा स्थितिः का इत्यत्रोच्यते ॥

॥ परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

दशवर्षसहस्राणि॥ इति॰अभिसम्बध्यते। व्यन्तराणाम्॥ तर्हि॰ =दश हजार वर्ष ऐसा वाक्य इस सूत्रमें) जोड़ा जाता है। तो व्यन्तरोंकी
का॥ जघन्या॥ स्थितिः॥ इति॰अतः॰आह। =क्या जघन्य आयु है। ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

[1]सूत्रम्—व्यन्तराणाम् च ॥ ३८ ॥ = व्यन्तराणाम् च दशवर्षसहस्राणि(३६ वा सूत्रसे) अपरा(३३वा सूत्रसे) स्थिति (२८वासूत्रसे)भवति

व्यन्तराणाम्॥ च॰दशवर्षसहस्राणि॥ अपरा॥ स्थितिः॥ भवति। =व्यन्तर देवोंकी भी (=च) दशहजार वर्ष जघन्य आयु है (यहां अनुवृत्तिलेने केलियेकि सूत्रद्वारा व्यन्तरोंकी उत्कृष्टस्थितिनकहकरपहिले जघन्य कही)
वृत्त्यनुवादः-च-शब्दः॥ प्रकृत-समुच्चय अर्थः॥ =(इस सूत्रमें) च शब्द (स्थितिरूप) प्रकरण के समुच्चके लिये है ॥
तेन॥ व्यन्तराणाम्॥ अपरा॥ स्थितिः॥ =तिस (च शब्द) करि व्यन्तर देवनिकी जघन्य आयु
दशवर्षसहस्राणि॥ इति॰अवगम्यते। अथ॰एषाम्॥ =दश हजार बरस ऐसे जानी जाती है। अब इन व्यन्तर देवोंकी
परा॥ स्थितिः॥ का॥ इति॰अत्र॰उच्यते। =उत्कृष्ट आयु क्या है ऐसे प्रश्न पर यहां कहाजाता है कि

[2]सूत्रम्—परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥ = व्यन्तराणाम् (३८वा सूत्र से) परा स्थिति (२८वा सूत्र से) पल्योपमम् अधिकम् भवति

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमें एकसा है श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४८ वीं मानी है ॥
(२) श्वेताम्बर आम्नायमें इस सूत्रका पाठ "परापल्योपमम् ॥४९॥" ऐसा है हमारे यहां स्थिति पल्यसे अधिक है उनके यहां एकही पल्य है ॥

...निवासी ...पदच्छेद और

...स्थितिर्व्यन्तराणां पल्योपममधिकम् ॥ ...

॥ ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

...कृतसमुच्चयार्थ ॥

...पल्योपमम् ॥ अधिकम् ॥ भवति ॥ =व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

...पराः ॥ स्थितिः ॥ ...पल्योपमम् ॥ ...अधिकम् ॥ ...

...च्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस उनतालीसवा सूत्र पर शब्दश हिंदी अनुवाद

=उत्कृष्ट या अकर्ष आयु

=व्यन्तरोंकी कुछ अधिक पल्य प्रमाण है। अब

=ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट आयु कहना चाहिये। ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

...राः ॥ उत्कृष्टा ॥ स्थितिः ॥ ...णाम् ॥ पल्योपमम् ॥ अधिकम् ॥ इदानीम् ॥ ...म् ॥ परा ॥ स्थितिः ॥ वक्तव्या ॥ इति ॥ अतस्मात्

...तिष्काणां च ॥ ४० ॥ = ज्योतिष्काणाम् च स्थिति (२८वा सूत्रसे) परा पल्योपममधिकम् (३९ वा सूत्रसे) भवति ॥ ४० ॥

=ज्योतिषी देवनिकी उत्कृष्ट स्थिति

=कुछ अधिक पल्य प्रमाण है अर्थात् चंद्रमाकी आयु एक पल्यसे एक लाखवरस अधिक है। सूर्य की आयु एक पल्यसे एक सहस्रवरस अधिकहै शुक्रकी एकपल्यसे सौ वरस अधिक है

सूत्राय -ज्योतिष्काणाम् ॥ च ॥ परा ॥ स्थितिः ॥ पल्योपमम् ॥ अधिकम् ॥ भवति ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चालीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिका शब्दश हिंदी अनुवाद

=(इस सूत्रमें) च शब्द प्रकरणके समुच्चयके लिये है अर्थात् यहां स्थितिका विषय चलरहा है सो प्रकार से ३८ वां सूत्रमें वर्णित आयुको यहां जोडागया है

...पराम् ॥ प्रकृत-समुच्चय अर्थ है ॥

(१) श्वेताम्बराम्नायमें पाठ "ज्योतिष्काणाम् ...कम्" ॥ ४८ वां सूत्र है। हमारे यहां अधिकम् की अनुवृत्ति ३९ वां सूत्रसे आती है अर्थ पल्य है।

तेनैवमभिसम्बन्ध।ज्योतिष्काणां परा स्थितिः पल्योपममधिकमिति॥ अथापरा कियतीत्यतआह—

॥ तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

तस्य पल्योपमस्याष्टभागो ज्योतिष्काणामपरा स्थितिरित्यर्थः ॥

अथ लौकान्तिकानां विशेषोक्तानां स्थितिविशेषो नोक्तः । स कियानित्यत्रोच्यते—

तेन॥एवम्॥अभिसम्बन्धः॥ज्योतिष्काणाम्॥परा॥ =तिस (च शब्द) करि ऐसे सम्बन्ध होता है कि ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट

स्थितिः॥पल्योपमम्॥अधिकम्॥इति॥अथ॥ =आयु कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण है। आगैं

अपरा॥कियती॥इति॥अत॥आह॥ =(ज्योतिषी देवोंकी) जघन्य (स्थिति) कितनी है ऐसे प्रश्नपर इसलिये कहतेहैंकि

(१)तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

= तदष्टभाग ज्योतिष्काणाम् (४० वा सूत्रसे) अपरा, स्थिति (२८ वा सूत्रसे) भवति ॥

सूत्रार्थः-तद् अष्टभागः॥ज्योतिष्काणाम्॥अपरा॥स्थितिः॥ =उस (पल्य प्रमाण) का आठवां भाग ज्योतिषियोंकी जघन्य आयु है।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस इकतालीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदीअनुवाद

तस्य॥पल्योपमस्य॥अष्टभाग॥ =तिस पल्यका आठवां भाग

ज्योतिष्काणाम्॥अपरा॥स्थितिः॥इति॥अर्थः॥ =ज्योतिषी देवोंकी जघन्य आयु है ऐसा अभिप्राय है।

अथ॥लौकान्तिकानाम्॥विशेषउक्तानाम्॥स्थिति-विशेषः॥ =अब विशेष कथित लौकान्तिक देवोंकी स्थितिका प्रभेद

न॥उक्तः॥सः॥कियान्॥इति॥अत्र॥उच्यते॥ =नहीं कहागयाहै। सो(=स्थिति विशेष)कितना है। ऐसे(प्रश्नपर)यहांकहाजाताहै कि

(१) इस सूत्रका हमारे यहां पाठ और अर्थ एक है। हमारे यहां सामान्यरूपसे वा अविशेष रूपसे (तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८ में) ज्योतिषियोंकी यह जघन्य स्थिति है और इस सूत्रमें ४० वां सूत्रसे 'ज्योतिष्काणाम्' की अनुवृत्ति आई है। श्वेताम्बर आम्नायमें 'जघन्या त्वष्टभाग' ऐसा ५० वां सूत्र सभाष्य० में है। उक्त सभाष्य० के अनुकूल परा पल्योपमम् ४७ वां सूत्र से ५२ वां सूत्रमें पल्य शब्द अनुवर्तता है और 'तारकाणाम्' शब्दकी अनुवृत्ति ५१ वां सूत्र 'तारकाणांचतुर्भाग:' से आई है इसलिये ५२ वां सूत्र 'तारकाणां तु जघन्या (स्थिति: २९ वां सूत्रसे) पल्योपमस्य अष्टभाग' ऐसा हुआ अर्थमें दोनों आम्नायोंमें भेद यह हुआ कि श्वेताम्बर आम्नायमें तारकाओंकी जघन्यस्थिति पल्यका आठवां भाग हुई हमारे यहां सब ज्योतिषियोंकी सामान्यरूपसे पल्यका आठवां भाग जघन्य स्थिति हुई। हमारे यहां तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८, १७९ में चन्द्र सूर्य,

पराउत्कृष्टा स्थितिर्व्यन्तराणा पल्योपममधिकम् ॥ इदानीं ज्योतिष्काणा परा स्थितिर्वक्तव्येत्यत आह

॥ ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

चशब्द प्रकृतसमुच्चयार्थ ॥

११६ सूत्रार्थ व्यन्तराणाम् । परा । स्थितिः । पल्योपमम् । अधिकम् । भवति । =व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस उनतालीसवा सूत्र पर शब्दश हिंदी अनुवाद

परा । उत्कृष्टा । स्थिति । =उत्कृष्ट या प्रकर्ष आयु

व्यन्तराणाम् । पल्योपमम् । अधिकम् । इदानीम् =व्यन्तरोंकी कुछ अधिक पल्य प्रमाण है । अब

ज्योतिष्काणाम् । परा । स्थितिः । वक्तव्या । इति अतः आह =ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट आयु कहना चाहिये । ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—ज्योतिष्काणा च ॥ ४० ॥ =ज्योतिष्काणाम् च स्थिति (२८वा सूत्रसे) परा पल्योपममधिकम् (३९ वां सूत्रसे) भवति ॥ ४० ॥

सूत्रार्थः-ज्योतिष्काणाम् । च । परा । स्थितिः । =ज्योतिषी देवनिकी उत्कृष्ट स्थिति

पल्योपमम् । अधिकम् । भवति । =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है अर्थात् चंद्रमाकी आयु एक पल्यसे एक लाखबरस अधिक है । सूर्य की आयु एक पल्यसे एक सहस्रबरस अधिक है शुक्रकी एकपल्यसे सौ बरस अधिक है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चालीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिका शब्दश हिंदी अनुवाद

चशब्दः । प्रकृत-समुच्चय-अर्थः । =(इस सूत्रमें) च शब्द प्रकरणके संग्रहके लिये है अर्थात् यहां स्थितिका विषय चलरहा है सो चकार से ३९ वां सूत्रमें वर्णित आयुको यहां जोडागया है

(१) श्वेताम्बराम्नायमें पाठ "ज्योतिष्काणामधिकम्" ॥ ४८ वां सूत्र है । हमारे यहां अधिकम् की अनुवृत्ति ३९ वां सूत्रसे आती है अर्थ एकही ॥

॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

(१) सूत्रम्—लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

= सर्वेषाम् लौकान्तिकानाम् परा(३९वा सूत्रसे)अपरा (३३वा सूत्रसे)स्थिति (२८वा सूत्रसे) भवति॥

() जघन्या त्वष्टमाणः (सूत्र ४१) =तारकाणांतु जघन्या स्थितिः पल्योपमाष्टमागः =और ताराओंकी जघन्य स्थिति पल्य के आठवां भाग प्रमाण है

() चतुर्भाग शेषाणाम्(सूत्र४२) =तारकान्मः शेषाणांज्योतिष्काणां चतुर्भागः पल्योपमस्यापरास्थिति
=ताराओंसे बचे हुए (सत्ताईस नक्षत्र सूर्य चन्द्र मंगल बुध, बृहस्पति शुक्र शनिश्चर राहु और केतु ये नौ ग्रह) ज्योतिषीदेवोंकी जघन्य आयु पल्यके चौथाई भाग प्रमाण है॥

() तदष्टभागो जघन्योभयेषाम् (वार्तिक ८) =तस्य पल्योपमस्याष्टभागः जघन्या स्थिति उभयेषां तारकाणां नक्षत्राणां च भवति(राजवार्तिकपृष्ठ१७६)
=तिस पल्यके आठवां भाग प्रमाण जघन्य आयु दोनों ताराओं और नक्षत्रों की होती है (दोनों आम्नायोंमें ताराओंकी निकृष्ट स्थिति एक है परन्तु नक्षत्रोंकी जघन्यस्थिति श्वेताम्बरसमाजके समाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके५१वां सूत्रके अनुकूल चौथाई पल्य है हमारे यहांसे चूकी हुई)

() शेषाणां चतुर्भाग (वार्तिक ६) शेषाणां सूर्यादीनां पल्यापम चतुर्भागा जघन्य स्थितिर्वेदव्या (राजवार्तिक पृष्ठ १७७)
=बचे हुए सूर्य चन्द्र, मंगल, बुध बृहस्पति शुक्र, शनिश्चर राहु केतु ये नवग्रहोंकी जघन्य स्थिति पल्यके चौथाई भाग प्रमाण जानो। इस सूत्रका पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है परन्तु हमारे यहां नक्षत्रोंकी जघन्य आयु पल्य के आठवां भाग है श्वेताम्बर समाज में पल्य का चौथाई भाग है

(१) इसके सम्बन्धमें पं० पन्नालाल बाकलीवालजीने यह लिखा है कि यह श्री पूज्यपाद स्वामीकृत सर्वार्थसिद्धिका वार्तिक है। क्योंकि श्री महाकलंकदेवने 'अष्टसागरोपमा सर्वेलौकान्तिका' कहा है। मेरी समझमें यह नहीं आया कि अष्टसागरोपमा सर्वेलौकान्तिकाः यह वाक्य कहांसे लिया है प० पन्नालालजी दूनी प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर पं०गजाधरलालजी अनुवादित राजवार्तिकका पाठ कई हस्तलिखित राजवार्तिकप्रतियोंका पाठ और बाकली वालजीका स्वयं मुद्रित कीहुई राजवार्तिककेभी पाठ देखेगये परन्तु हमको यह सूत्ररूपमें राजवार्तिकमें अर्थप्रकाशिकामें सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें श्रुतसागरी टीकामें मिला है। कई प्रतियें श्लोकवार्तिक पं० सदासुखजी कृत सुमापर लघुटीका सं० १९१० और श्वेताम्बर आम्नायक समाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र श्री सिद्धसेनसूरिरचित भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका जिसमें ८२ सहस्र श्लोकस अधिक हैं उपर्युक्त वाक्य न तो यह सूत्र रूपमेंही मिला और न वार्तिकरूपमेंही मिला॥ कोई भी प्रमाण नहीं है कि यह सूत्रपूज्यपाद स्वामी कृत वार्तिक है॥ बहुधा भाष्यकारों और टीकाकारोंकी उत्थानिकाओंसे स कि सूत्रमाह (देखो श्रुतसागरी टीका) 'इत्यत्रास्पत (देखो तत्त्वार्थ राजवार्तिक सर्वार्थसिद्धि) स्पष्ट है कि यह सूत्र है॥

... ग्रह २३ (अभिजित सहित) २८ नक्षत्र और तारकाओंकी पृथक् पृथक् विशेष रूपसे आयु स्थिति वार्तिकोंमें दीगई है उसकी तुलनात्मक सूची श्वेताम्बरसमाजके समाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके सूत्र४६ से ५१ तक नीचे दीजाती है कि विषय स्पष्ट होजावे। श्वेताम्बर आम्नायमें चतुर्भागः शेषाणाम् ५२' सूत्रमें यह चौथा अध्याय पूरा होता है। इनके यहां 'लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम्' सूत्र या वार्तिक नहीं है॥

श्वेताम्बर आम्नायके 'समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रसे उद्धृत	दिगम्बर आम्नायके तत्त्वार्थराजवार्तिकालंकारसे उद्धृत
() ग्रहाणामेकम् (सूत्र४६) =ग्रहाणामेकं पल्योपमं परा स्थितिर्भवति =सूर्य चन्द्र मंगल बुध, बृहस्पति शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु इन नव ग्रहोंकी (उत्कृष्ट स्थिति) एक पल्य प्रमाण होती है	(क) चंद्राणां वर्षशतसहस्राधिकम् (वार्तिक १) =चंद्राणां वर्षशतसहस्राधिकं पल्योपम परा स्थिति =चन्द्रमाओंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्यसे एक लाख बरस अधिक होती है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)
	() सूर्याणां वर्षसहस्राधिकम् (वार्तिक २) =वर्षसहस्राधिकं पल्योपम सूर्याणां परा स्थितिः =सूर्योंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्यसे एक हजार बरस अधिक है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)
	() शुक्राणां शताधिकम् (वार्तिक३) =शुक्राणां वर्षशताधिकं पल्योपम परा स्थितिः =शुक्रोंकी उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे एकसौ बरस अधिक है (राज० पृष्ठ१७८)
	() बृहस्पतीनां पूर्णम् (वार्तिक ४) बृहस्पतीनाम् पूर्णपल्योपमम् परा स्थिति =बृहस्पतियोंकी उत्कृष्ट आयु पूरी एक पल्य प्रमाण है (राज० पृष्ठ १७८)
	() शेषाणामर्धम्(वार्तिक ५) शेषाणां ग्रहाणांबुधादीनां पल्योपमस्यार्धपरास्थिति =बचे हुए अर्थात् चन्द्रमा सूर्य शुक्र बृहस्पतियोंके अतिरिक्त बुध मंगल शनिश्चर राहु और केतु ग्रहोंकी उत्कृष्ट आयु आधे पल्य प्रमाण होती है। तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८)
() नक्षत्राणामर्धम् (समाष्य० सूत्र ५०) =नक्षत्राणां देवानां पल्योपमार्धं परा स्थितिर्भवति =(२७ या २८) नक्षत्रदेवोंकी उत्कृष्ट आयु आधे पल्यकी होती है	() नक्षत्राणां च (वार्तिक ६) =नक्षत्राणाम् अर्धपल्योपम परा स्थिति भवति (राज० पृष्ठ १७८) =(सत्ताईस या अट्ठाईस) नक्षत्रोंकी उत्कृष्ट आयु आधेपल्य होती है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)
() तारकाणां चतुर्भागः (सूत्र ५१) =तारकाणां च पल्योपम चतुर्भागः परा स्थितिः =ताराओंकी उत्कृष्ट आयु पल्यका चौथाई भाग प्रमाण है॥	() तारकाणां चतुर्भागः (वार्तिक७) =पल्योपमस्यचतुर्भाग तारकाणांपरास्थितिः =ताराओंकी उत्कृष्ट स्थिति पल्यके चौथाईभाग प्रमाण है (राजवार्तिक पृष्ठ १७८)

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

इदानीं, सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपक्षिप्तेषु जीवादिषु जीवपदार्थो व्याख्यातार्थः । अथाजीवपदार्थो विचारप्राप्तस्तस्य सञ्ज्ञाभेदसंकीर्तनार्थमिदमुच्यते ।

॥ (१) अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

कायशब्दः शरीरे व्युत्पादितः । इहोपचारादध्यारोप्यते । कुत उपचारः ? । यथा शरीरं पुद्गलद्रव्य

अथ पञ्चमः ॥ अध्यायः ॥ इदानीं सम्यग्दर्शनस्य ॥ = पाँचवा अध्याय प्रारम्भ (= अथ) है । अब सम्यग्दर्शनके विषय-भावेन ॥ उपक्षिप्तेषु ॥ जीवादिषु ॥ जीव पदार्थः ॥ = विषयभावकरि गर्भित (= उपक्षिप्तेषु) जीवादिकोंमें जीव पदार्थ है व्याख्यात-अर्थः ॥ = (सो) कहा हुआ विषय (= अर्थ) है (अर्थात् जीवका वर्णन कर चुके हैं)

भावार्थ—सम्यक्त्वके विषय निरूपणमें जीवादिक सात तत्त्व (अ० १ सूत्र ४) गर्भित हैं उनमेंसे जीव द्रव्यका व्याख्यान कर चुके हैं ।

अथ अजीव-पदार्थः ॥ विचार-प्राप्तः ॥ तस्य ॥ सञ्ज्ञा = अब (= अथ) अजीवपदार्थ विचारमें प्राप्त हुआ तिस (अजीवपदार्थ) के नाम भेद-संकीर्तन-अर्थम् ॥ इदम् ॥ उच्यते । = और भेद कहनेके लिये यह कहा जाता है कि—

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गलाः ॥ अजीव-कायाः ॥ = धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुप्रदेशी (काय) हैं अर्थात् इन प्रत्येक प्रत्येक द्रव्यमें अचेतनपना और बहुप्रदेश वा बहुत अवयवोंका होना पाया जाता है ।

कायशब्दः ॥ शरीरे ॥ व्युत्पादितः ॥ = (इस सूत्र में) काय शब्द शरीर (अर्थ) में व्याकरण की रीतिसे उत्पन्न हुआ है इह उपचारात् ॥ अध्यारोप्यते । यहां व्यवहारसे अध्यारोपण कियागया है अथवा संस्थापन वा नियत किया गया है कुतः उपचारः ॥ यथा शरीरं ॥ पुद्गलद्रव्य— = (प्रश्न) कहांसे उपचार किया गया है । (उत्तर) जैसे शरीर पुद्गलद्रव्यके

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आचार्योंमें एकसा है । धर्माधर्मौ भी अजोवकायाम् इ वा' ... सूत्रसे ठीक है ।

अविशिष्टा सर्वे ते शुक्ललेश्या पञ्चहस्तोत्सेधशरीराः

॥ चतुर्णिकायदेवानां । स्थानं भेदाः सुखादिकम् ॥ परापरस्थितिर्लेश्या। तुर्याध्याये निरूपितम् ॥ १ ॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥

सूत्रार्थः सर्वेषाम् लौकान्तिकानाम् परा अपरा	=सब लौकान्तिक (देव) निकी (देखो सूत्र २४, २५) उत्कृष्ट और जघन्य
स्थितिः अष्टौ सागरोपमाणि ॥	=आयु आठ सागर प्रमाण है
पृथक्त्वाद् -अविशिष्टाः	=अवशेष या बचेहुये अर्थात् सर्व प्रकारके देवोंसे जिनकी स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य करी जो शेषरहे ऐसे लौकान्तिकदेव
सर्वे ते शुक्ल लेश्याः पञ्च हस्त उत्सेध शरीराः	=वे समस्त शुक्ललेश्याके धारक, पांच हाथकी ऊंचाईके शरीर सहित हैं अर्थात् सब लौकान्तिक देवोंके शुक्ल लेश्या है और पांच पांच हाथ ऊंचा शरीर है ॥
चतुर्णिकाय-देवानाम् स्थानम् ॥	=चार समूहायके देवोंके निवास स्थान (सूत्र १३, १४, १५, १८, १६, २३, २४)
भेदाः	=तथा भेद (सूत्र १, ३, ४, ५, ६, १०, ११, १२, १६, १७, ४४, शपार्थ २५, २६)
सुखादिकम् ॥	=और सुखादिक (सूत्र ७, ८, ६, २०, २१, २७)
पर अपरा-स्थितिः ॥	=उत्कृष्ट और जघन्य आयु (देखो सूत्र ३४, ३५, ४२,)
(परा स्थिति)	=पहुरि परास्थिति (सूत्र २८ से ३२ तक ३६, ४०)
(अपरा स्थितिः) लेश्याः ॥	=और अपरा स्थिति (सूत्र ३३, ३६, ३७, ३८, ४१) तथा लेश्या (सूत्र२,२२)
तुर्याध्याये निरूपितम् ॥	=चौथे अध्यायमें वर्णित हैं।
इति तत्त्वार्थ-वृत्तौ	=इसप्रकार तत्त्वार्थके विवरणमें (=वृत्तौ)
सर्वार्थसिद्धि-सञ्ज्ञिकायाम्	=सर्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थमें
चतुर्थः अध्यायः ॥	=चौथा अध्याय (समाप्त) हुआ ॥

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

इदानीं, सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपक्षिप्तेषु जीवादिषु जीवपदार्थो व्याख्यातः ।
अथाजीवपदार्थो विचारप्राप्तस्तस्य सञ्ज्ञाभेदसंकीर्तनार्थमिदमुच्यते ।

॥ (१) अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

कायशब्दः शरीरे व्युत्पादितः । इहोपचारादध्यारोप्यते । कुत उपचारः ? । यथा शरीरं पुद्गलद्रव्य

अथ॰पंचम ॥, अध्यायः ॥ इदानीं ॰सम्यग्दर्शनस्य ॥ =पांचवां अध्याय प्रारम्भ (=अथ) है । अब सम्यग्दर्शनके
विषय भावेन ॥ उपक्षिप्तेषु ॥ जीवादिषु ॥ जीव-पदार्थः ॥ =विषयभावकरि, गर्भित (=उपक्षिप्तेषु) जीवादिकोंमें जीव पदार्थ, है
व्याख्यात-अर्थः ॥ =(जो) कहा हुआ, विषय (=अर्थ) है (अर्थात जीवका वर्णन कर चुके हैं)
भावार्थ—सम्यक्त्वके विषय निरूपणमें जीवादिक सात तत्त्व (अ॰ १ सूत्र ४)
गर्भित हैं उनमेंसे जीव द्रव्यका व्याख्यान कर चुके हैं।

अथ॰अजीव-पदार्थः ॥ विचार-प्राप्तः ॥ तस्य ॥ संज्ञा =अब (=अथ) अजीवपदार्थ विचारमें प्राप्त हुआ तिस (अजीवपदार्थ) के नाम
भेद-संकीर्तन-अर्थम् ॥ इदम् ॥ उच्यते ॥ =और भेद कहनेके लिये यह कहा जाता है कि—

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गलाः ॥ अजीव-कायाः ॥ =धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुप्रदेशी
(काय) हैं अर्थात् इन प्रत्येक प्रत्येक द्रव्यमें अचेतनपना और बहुप्रदेश या बहुत अवयवोंका होना पाया जाता है ।

कायशब्दः ॥ शरीरे ॥ व्युत्पादितः ॥ =(इस ग्रंथ में) काय शब्द शरीर (अर्थ) में व्याकरण की रीतिसे उत्पन्न हुआ है
इह॰उपचारात् ॥ अध्यारोप्यते ॥ यहां व्यवहारसे अध्यारोपण कियागया है अथवा संस्थापन या नियत किया गया है
कुतः॰ उपचारः ॥ यथा॰शरीरं ॥ पुद्गलद्रव्य— =(प्रश्न) कहांसे उपचार किया गया है । (उत्तर) जैसे शरीर पुद्गलद्रव्यके

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आचार्योंमें मिलता है । धर्माधर्मा भी अजीवाभ्याम् या ...... सूत्रसे ठीक है ।

अविशिष्टा सर्वे ते शुक्ललेश्या पञ्चहस्तोत्सेधशरीरा

॥ चतुर्णिकायदेवानां । स्थानं भेदा सुखादिकम् ॥ परापरस्थितिर्लेश्या। तुर्याध्याये निरूपितम्॥१॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसाञ्ज्ञकायां चतुर्थोऽध्याय ॥

सूत्रार्थ सर्वेषाम् लौकान्तिकानाम् परा अपरा	=सब लौकान्तिक (देव) निकी (देखो सूत्र २४, २५) उत्कृष्ट और जघन्य
स्थितिः अष्टौ सागरप्रमाणानि	=आयु आठ सागर प्रमाण है
[illegible]	=अथवा या यथोक्त अर्थात् सर्व प्रकारके देवोंसे जिनकी स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य कही जो अपरसे पसे लौकान्तिकदेव
सर्वे ते शुक्ललेश्याः पञ्च-हस्त उत्सेध शरीराः	=वे समस्त शुक्ललेश्याके धारक, पांच हाथकी ऊंचाईके शरीर सहित हैं अर्थात् सब लौकान्तिक देवोंके शुक्ललेश्या है और पांच पांच हाथ ऊंचा शरीर है ॥
चतुर्णिकाय-देवानाम् स्थानम्	=चार समुदायके देवोंके निवासस्थान (सूत्र १३, १४, १५, १८, १९, २३, २४)
भेदाः	=तथा भेद (सूत्र १, २, ४, ५, ६, १०, ११, १२, १६, १७, २०, शामा २५, २६)
सुखादिकम्	=और सुखादिक (सूत्र ७, ८, ९, २०, २१, २७)
पर अपरा स्थिति	=उत्कृष्ट और जघन्य आयु (देखो सूत्र ३४, ३५, ४२,)
(परा स्थिति)	=यानि परास्थिति (सूत्र २८ से ३२ तक ३९, ४०)
(अपरा स्थिति) लेश्याः	=और अपरा स्थिति (सूत्र ३३, ३६, ३७, ३८, ४१) तथा लेश्या (सूत्र२,२२)
तुर्याध्याये निरूपितम्	=चौथे अध्यायमें वर्णित है।
इति तत्त्वार्थ-वृत्तौ	=इसप्रकार तत्त्वार्थके विवरणमें (=वृत्तौ)
सर्वार्थसिद्धि-साञ्ज्ञकायाम्	=सर्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थमें
चतुर्थः अध्यायः ॥	=चौथा अध्याय (समाप्त) हुआ ॥

नन्तु च नीलोत्पलादिषु व्यभिचारे सति विशेषणविशेष्ययोग । इहापि व्यभिचारयोगोऽस्ति । अजीव शब्दोऽकाये कालेऽपि वर्तते, कायोऽपि जीवे । किमर्थं कायशब्दः ? । प्रदेशबहुत्वज्ञापनार्थं । धर्मादीना प्रदेशा बहव इति ॥ नन्तु च असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानामित्यनेनैव प्रदेशबहुत्वं ज्ञापितम् । सत्यमिदम् । परं किन्त्वस्मिन्विधौ सति तदवधारण विज्ञायते असंख्येयाः प्रदेशा न संख्येया नाप्यनन्ता इति ॥

नन्तु * च * नील—उत्पल—आदिषु ; । = पुनि प्रश्न । नील-कमल आदिक (कर्मधारयसमास) विर्षे

व्यभिचारे ;। सति ।। विशेषण—विशेष्य—योगः ;। = यही गुण दूसरी वस्तुमें होनेपर (= सति) विशेषण और विशेष्यका मेल होता है

अर्थात् प्रश्न यह है कि विशेष्य में जो गुण होता है वह दूसरी वस्तुओं में भी पाया जाता है तब विशेषण विशेष्य मिलकर कर्मधारय समास होता है जैसे नीलकमलमें और रक्तकमलमें नीलापन और रक्तता अव्यारंस्य पाई जाती है इनके अतिरिक्त और भी अनेक वस्तुयें हैं जिनमें नीलता और रक्तता पाई जाती है तो यहां अजीव काय विषैं क्या व्यभिचार है ।

इह * अपि * व्यभिचार—योगः ;। अस्ति T = (उत्तर) यहां भी (इस 'अजीवकाय' कर्मधारय समास में) व्यभिचारका मेल या जोड़ है

अजीव—शब्द ;। अकाये ;। काले ;। अपि*वर्तते T = (क्योंकि) अजीवशब्द काय रहित या अप्रदेशी कालद्रव्यम भी वर्तता है

कायः ;। अपि * जीवे ;। किम् * अर्थः ;। = (और) बहुत प्रदेशोंका होना भी (अजीवत्व रहित) जीवद्रव्यमें वर्ते है । कौन अर्थ है

कायशब्दः ;। ! प्रदेश—बहुत्व—ज्ञापन—अर्थः ; = काय शब्द (उत्तर) प्रदेशोंका बहुतपना जनावनेके लिये है कि

धर्म—आदीनां '। प्रदेशाः ; बहवः ;। इति * = धर्म—अधर्म—आकाश—पुद्गल के प्रदेश बहुत हैं

ननु*च*असंख्येयाः ;। प्रदेशाः ;। धर्म—अधर्म— = पुनि प्रश्न असंख्यातअसंख्यात प्रदेश धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और

एक—जीवानाम् ;। इति*अनेन ;।।। एव* प्रदेश— = एक जीव के हैं इस (अगले आठवां सूत्र) करि ही प्रदेशोंकी

बहुत्वम् ;। ज्ञापितम् ;। सत्यम् ;।। इदम् ;।।। = बहुलता जताई जाती है (उत्तर) यह सत्य है

परं किन्तु अस्मिन् ;। विधौ ;। सति ;। तद् अवधारणं ;।।। = किन्तु केवल (= परं) इस विधि (आठवां सूत्र) के होनेपर उस (प्रदेश बहुत्व) का नियम

विज्ञायते T असंख्येयाः ;। प्रदेशाः ;। न*संख्येयाः ;। = जताया गया है कि असंख्यात प्रदेश हैं, संख्यात नहीं हैं

न*अपि*अनन्ताः ;। इति* ॥ = अनन्त भी नहीं है अर्थात् केवल असंख्यात ही हैं—भावार्थ इस सूत्र में कायशब्दसे

प्रचयात्मकं तथा धर्मादिष्वपि प्रदेशप्रचयापेक्षया काया इव काया इति । अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः ॥ विशेषण विशेष्येणेति वृत्तिः ॥

प्रचय-आत्मकं ।॥ तथा॰धर्मादिषु ;। अपि॰	= समूहरूप (= प्रचयात्मक) हैं तैसे धर्मादिकद्रव्योंमें भी
प्रदेश-प्रचय-अपेक्षया ॥ काया ,॥ इव॰इति॰	= प्रदेशोंके समूहरूप विवक्षासे कायासरीखा (व्यवहार) है इसप्रकार
कायाः। च॰ अजीवाः ;।	= (वे धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल) काया हैं । और (= च) अजीव
च॰काया ,। ते ॥ अजीवकाया ;।	= और (= च)काय हैं वे अजीव काया हैं अर्थात् ये चार धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुत प्रदेशी हैं इसलिये ये अजीवकाय (अचेतन और बहुप्रदेशी)हैं । ये बहु प्रदेशी हैं इससे ये द्रव्य काय कहलाते हैं और चेतना रहित हैं इससे अजीव कहलाते हैं
विशेषण ;॥ विशेष्येण ;। इति॰ वृत्तिः ;॥	= गुणवाचक(अजीव शब्द)विशेष्य(कायशब्द)से मिलकर ऐसें (कर्मधारय) समास हुआ

• पदार्थमिधानं वृत्तिः—एकरूपसे अर्थ प्रकाश करनेकी शक्तिको वृत्ति कहते हैं । उस वृत्तिके पांच भेद हैं जैसे कृत्, 'तद्धित' समास एकशेष और सनाद्यन्त धातु हैं । यहां पर वृत्ति शब्दका अर्थ केवल समास है । अनेक पदोंको एकमें मिला देनेको समास कहते हैं । वह पांच प्रकार का है (i) जिसका कोई विशेष नाम नहीं है वह केवल समास कहाता है (ii) बहुधा जिसमें पूर्व पदका अर्थ प्रधान होता है वह अव्ययी भाव समास है (iii) प्रायः जिसके उत्तर पदका अर्थ प्रधान हो वह तत्पुरुष समास है । तत्पुरुष समास का एक भेद कर्मधारय समास है । इसमें दोनों विभक्ति समान होती हैं और विशेषण विशेष्य भाव होता है । जैसे यहां अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः इसमें अजीवाः और कायाःदोनों समान विभक्ति (प्रथमाविभक्ति बहु वचन पुलिंग) हैं ॥ (प्रश्न) यहां पर ये काया कैसे गुण या विशेषण सहित हैं । (उत्तर) चेतना रहित इन कायाओंका गुण है ॥ ऐसे "अजीवाः" विशेषण हुआ और काया विशेष्य हुआ इसलिये विशेषण और विशेष्य भाव हुआ ॥ कर्मधारय का एक भेद द्विगु है । इसका प्रथम संख्या वाचक शब्द होता है (iv) जिसमें समासके पदोंको छोड़कर और ही पदका अर्थ प्रधान हो वह बहुव्रीहि समास है । (v) जिसमें दोनों पद या सभी समान ही ... द्वन्द्व समास है ।

ननु च नीलोत्पलादिषु व्यभिचारे सति विशेषणविशेष्ययोग । इहापि व्यभिचारयोगोऽस्ति । अजीव शब्दोऽकाये कालेऽपि वर्तते, कायोऽपि जीवे । किमर्थं कायशब्द ? । प्रदेशबहुत्वज्ञापनार्थं । धर्मादीना प्रदेशा बहव इति ॥ ननु च असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानामित्यनेनैव प्रदेशबहुत्वं ज्ञापितम् । सत्य-
२ मिदम् । परं किन्त्वस्मिन्विधौ सति तदवधारणं विज्ञायते असंख्येया प्रदेशा न संख्येया नाप्यनन्ता इति ॥

नतु * च * नील—उत्पल—आदिषु ॥ = पुनि प्रश्न । नील-कमल आदिक (कर्मधारयसमास) विर्षे
व्यभिचारे ॥ सति ॥ विशेषण—विशेष्य—योगः ॥ = जहाँ गुण दूसरी वस्तुमें होनेपर (= सति) विशेषण और विशेष्यका मेल होता है
अर्थात् प्रश्न यह है कि विशेष्य में जो गुण होता है वह दूसरी वस्तुओं में भी पाया जाता है तब विशेषण विशेष्य मिलकर कर्मधारय समास होता है जैसे नीलकमलमें और रक्तकमलमें नीलापन और रक्तता अध्यासित्व पाई जाती है इनके अतिरिक्त और भी अनेक वस्तुएँ हैं जिनमें नीलता और रक्तता पाई जाती है तो यहाँ अजीव काय विर्षे क्या व्यभिचार है ।
इह * अपि * व्यभिचार—योगः ॥ अस्ति T = (उत्तर) यहाँ भी (इस 'अजीवकाय' कर्मधारय समास में) व्यभिचारका मेल या जोड़ है
अजीव—शब्दः ॥ अकाये ॥ काले ॥ अपि*वर्तते T = (क्योंकि) अजीवशब्द काय रहित वा अप्रदेशी कालद्रव्यमें भी वर्तता है
कायः ॥ अपि * जीवे ॥ किम् * अर्थः ॥ = (और) बहुत प्रदेशोंका होना भी (अजीवत्व रहित) जीवद्रव्यमें वर्ते है । कौन अर्थ है
कायशब्दः ॥ प्रदेश—बहुत्व—ज्ञापन—अर्थं ॥ = काय शब्द (उत्तर) प्रदेशोंका बहुपना बतावनेके लिये है कि
३ धर्म—आदीनां ॥ प्रदेशाः ॥ बहव ॥ इति * = धर्म—अधर्म—आकाश—पुद्गल के प्रदेश बहुत हैं
ननु*च*असंख्येया ॥ प्रदेशाः ॥ धर्म—अधर्म— = पुनि प्रश्न असंख्यातअसंख्यात प्रदेश धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और
एक—जीवानाम् ॥ इति*अनेन ॥ एव* प्रदेश— = एक जीव के हैं इस (अगले आठवाँ सूत्र) करि ही प्रदेशोंकी
बहुत्वं ॥ ज्ञापितम् ॥ सत्यम् ॥ इदम् ॥ = प्रचुरता बताई जाती है (उत्तर) यह सत्य है
परं किन्तु अस्मिन् ॥ विधौ ॥ सति ॥ तद्—अवधारणं ॥ = किन्तु केवल (= पर) इस विधि (आठवाँ सूत्र) के होनेपर उस (प्रदेश बहुत्व) का नियम
विज्ञायते T असंख्येयाः ॥ प्रदेशा ॥ न*संख्येयाः ॥ = जतलाया गया है कि असंख्यात प्रदेश हैं, संख्यात नहीं हैं
न*अपि*अनन्ताः ॥ इति* ॥ = अनन्त भी नहीं है अर्थात् केवल असंख्यात ही हैं—भावार्थ इस सूत्र में कायशब्दसे

कालस्य प्रदेशप्रचयाभावज्ञापनार्थं च इह कायग्रहणम् । कालो वक्ष्यते । तस्य प्रदेशप्रतिषेधार्थमिह कायग्रहणम् ॥ यथाऽणोः प्रदेशमात्रत्वाद्द्वितीयादयोऽस्य न सन्तीत्यप्रदेशोऽणुः । तथा कालपरमाणुरप्येकप्रदेशत्वादप्रदेश इति ॥ तेषां धर्मादीनामजीव इति सामान्यसञ्ज्ञा जीवलक्षणाभावमुखेन प्रवृत्ता ॥ धर्माधर्माकाशपुद्गला इति विशेषसञ्ज्ञा सामयिक्य ॥

अत्राह सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्येत्येवमादिषु द्रव्याण्युक्तानि कानि तानीत्युच्यते—

पहले सामान्य अजीव बताया है और आदिके सूत्रमें प्रदेशोंकी संख्या बताई है

कालस्य ॥ प्रदेश–प्रचय–अभाव–ज्ञापन–अर्थं ॥ च = कालके प्रदेशसमूहका अभाव जतानेके लिये भी (= च)

इह कायग्रहणम् ॥ कालः ॥ वक्ष्यते ॥ तस्य ॥ प्रदेश– = यहां सूत्रमें कायका ग्रहण है काल द्रव्य (३९, ४० वां सूत्रों में) कहेंगे तिसके प्रदेशोंके

प्रतिषेध–अर्थम् ॥ इह काय–ग्रहणम् ॥ यथा अणोः ॥ = निषेधके लिये यहां कायका ग्रहण है जैसे पुद्गलके अणुके

प्रदेश–मात्रत्वात् ॥ द्वितीय–आदयः ॥ अस्य ॥ = केवल एक प्रदेश होनेसे या एक प्रदेशपनासे दूसरा (प्रदेश) आदिक जिस (पुद्गलाणु) के

न सन्ति इति अप्रदेशः ॥ अणुः ॥ तथा काल– = नहीं है ऐसा अप्रदेश अर्थात् दूसरा प्रदेश रहित अणु है तैसे कालका

परमाणुः ॥ अपि एक–प्रदेशत्वात् ॥ अप्रदेशः ॥ इति = परमाणु भी एकप्रदेशवत्त्वसे अथवा एक प्रदेश होनेसे अप्रदेश है

तेषां ॥ धर्म–आदीनाम् ॥ अजीवः ॥ इति सामान्यसंज्ञा ॥ = इन धर्म अधर्म–आकाश–पुद्गल की अजीव ऐसी सामान्य संज्ञा है अर्थात् ऐसा नाम है कि अचेतनपना इन चारोंमें साधारण या एकसा धर्म अथवा स्वभाव है

जीव–लक्षण–अभाव–मुखेन ॥ प्रवृत्ता ॥ = सो (यह सामान्य संज्ञा) चैतन्य स्वभावके अभावद्वारा करि प्रवर्ते है अर्थात् सामान्यसंज्ञा के अस्तित्व को इन चारोंमें जो अचेतनपना है सो जताये है

धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गलाः ॥ इति विशेषसंज्ञाः ॥ = धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल ऐसी भेद रूप संज्ञायें हैं

सामयिक्यः ॥ = और शास्त्र सम्बन्धी है (= सामायिक्य) अर्थात् सिद्धान्त और आगम पठित हैं भावार्थ सर्वज्ञ भाषित आगम (शास्त्र) में ये संज्ञायें रूढि हैं और प्रत्येक २ धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल अपने २ संकेत से प्रवर्तती हैं

अत्र आह ॥ सर्व–द्रव्य–पर्यायेषु ॥ केवलस्य ॥ = यहां शिष्य पूछता है कि समस्त द्रव्यों की समस्त पर्यायों में केवल ज्ञान के

इत्येवमादिषु ॥ द्रव्याणि उक्तानि कानि तानि उच्यते = इत्यादिक (सूत्रों) में (अ०१ के सूत्र २९) द्रव्य कैसे कहा है ऐसा जाना कि

॥ द्रव्याणि ॥ २ ॥

यथास्वं पर्यायैर्द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि द्रव्याणि ॥ द्रव्यत्वयोगाद्द्रव्यमिति चेन्न । उभयासिद्धेः ॥ यथा दण्डदण्डिनोर्योगो भवति पृथक्सिद्धयो न च तथाद्रव्यद्रव्यत्वे पृथक्सिद्धेस्त ॥ यद्यपृथक्सिद्धयोरपियोग स्यात्

सूत्रार्थः—धर्म—अधर्म-आकाश—पुद्गला ,। द्रव्याणि ॥ = धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल द्रव्य हैं। जीव, काल, (सूत्र २, ३६ में) कहेंगे ऐसे हैं (१) द्रव्य हैं
शब्दानुवाद (२) यथास्वं ॥ (३) पर्यायैः ,। द्रूयन्ते = स्वरूप (स्व) के अनुसार अथवा जैसा स्वरूप हो जिसकी पर्यायोंसे प्राप्त किये जाते हैं
द्रवन्ति वा तानि ॥ द्रव्याणि ॥ द्रव्यत्वयोगात् = अथवा (पर्यायोंको) प्राप्त होते हैं वे द्रव्य हैं। द्रव्यपनाके सम्बन्धसे
द्रव्यम् ॥ इति चेत् = द्रव्य है ऐसी शंका या प्रश्न (= चेत्) है ॥
न उभय—असिद्धेः ॥ = (उत्तर) (द्रव्यत्व के योग से द्रव्य) नहीं है (क्योंकि) (द्रव्यत्व तथा द्रव्य) दोनों असिद्ध हैं।
यथा पृथक्सिद्धयो ॥ दंडदण्डिनोः ॥ योगः ॥ भवति = जैसे (दंड और पुरुष) न्यारे सिद्ध होनेपर दंड और दंडी (पुरुष) में सम्बन्ध होता है
न च तथा द्रव्य—द्रव्यत्वे ॥ पृथक् सिद्धे ॥ स्तः = परन्तु (च) नहीं हैं तैसे द्रव्य और द्रव्यत्व न्यारे सिद्ध। तात्पर्य यह है कि शिष्य के प्रश्न करने पर कि द्रव्यपना के संयोगसे द्रव्य होता है। यदि उसमें द्रव्यत्वकी विद्यमानता न हो तो द्रव्यका अस्तित्व सम्भव नहीं है तिनके उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि जैसे दंड और पुरुष न्यारे न्यारे सिद्ध हैं और जब पुरुष दंड को धारण करे तब दंडी कहलावे, बिना दंडके सम्बन्धके उसको दंडी नहीं कह सक्ते। तैसे द्रव्य और द्रव्यत्व न्यारे न्यारे नहीं दीखते हैं और न सिद्ध हैं तिस कारणसे द्रव्यपनाके योगसे द्रव्य हो सक्ती है यह तुम्हारी शंका ठीक नहीं है (फेरिआचार्य कहते हैं--
यदि अपृथक् सिद्धयोः ॥ अपि योगः ॥ स्यात् = जो (द्रव्यत्व और द्रव्यमें) भिन्न भिन्न सिद्ध न होनेपर भी सम्बन्ध हो तो

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका सर्वत्र एक अर्थ और एक ही पाठ है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें "द्रव्याणि जीवाश्च" ऐसा दूसरा सूत्र है अर्थात् सभाष्य० में 'धर्म अधर्म आकाश, पुद्गल और सपूर्ण जीव ये पांच द्रव्य हैं 'ऐसा अर्थ है कालको द्रव्य नहीं माना है॥

(२) यथास्वं शब्द अव्ययीभावसमास है और अव्ययीभावसमास नपुंसक लिंग ही होता है।

(३) इस वाक्यके गुप्त शब्दोंको प्रकट करनेसे ऐसे वाक्य स्पष्ट होजाता है कि—पर्यायैः द्रूयन्ते तानि द्रव्याणि वा = पर्यायोंसे प्राप्त किये जाय वे द्रव्य हैं अथवा (= वा) पर्यायान् ॥ द्रवन्ति तानि ॥ द्रव्याणि ॥ = पर्यायों को (को) प्राप्त हों वे द्रव्य हैं।

आकाशकुसुमस्य प्रकृतिपुरुषस्य द्वितीयशिरसश्च योगः स्यादिति ॥ अथ पृथक्सिद्धिरभ्युपगम्यते, द्रव्यत्वकल्पना निरर्थिका । गुणसमुदायो द्रव्यमिति चेत्तत्रापि गुणानां समुदायस्य च भेदाभावे तद्द्रव्यव्यपदेशो नोपपद्यते । भेदाभ्युपगमे च पूर्वोक्त एव दोषः ॥ ननु गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्त इति ।

आकाश–कुसुमस्य ॥। (योगः स्यात्) प्रकृतिपुरुषस्य ॥ च॰ =(आकाशऔर) आकाश पुष्पके सम्बन्ध हो जाय और (=च) स्वाभाविक पुरुषके अर्थात् स्वभावसे एक मस्तकवाले पुरुषके

द्वितीय–शिरसः ॥ योगः ॥ स्यात् T इति ॰ —दूसरे मस्तकका सम्बन्ध हो जाय (इसी प्रकार द्रव्यतो द्रव्यत्वरूप है ही उसके फिर दूसरे द्रव्यत्वका योग ठहरै)

अथ ॰ पृथक् ॰ सिद्धिः ॥ अभ्युपगम्यते T —पक्षान्तरमें अथवा अब (द्रव्य और द्रव्यत्व) न्यारे सिद्ध मानेजावे हैं तो

द्रव्यत्व–कल्पना ॥। निरर्थिका ॥। =द्रव्यपनाकी कल्पना निष्प्रयोजन है अर्थात् हमको द्रव्य सिद्ध करना है और जब द्रव्यका अस्तित्व हमने भिन्न मान लिया पुनः यह कहना कि द्रव्यके द्रव्यत्वका योगसे तिस हेतुसे द्रव्य है निरर्थक है क्योंकि द्रव्यकी विद्यमानता तो हम मान ही बैठे हैं

गुण–समुदायः ॥ द्रव्यम् ॥। इति॰ चेत्॰ तत्र॰ अपि॰ =गुणोंका समूह है सो द्रव्य है ऐसा प्रश्न अथवा शंका है (उत्तर) वहां भी

गुणानां ॥ समुदायस्य ॥ च॰ भेद–अभावे ॥ तत्द्रव्य =गुणोंके और समुदायके (सर्वथा) भेद न माननेमें उस द्रव्यका (पृथक्)

व्यपदेशः ॥ न॰ उपपद्यते T =नाम प्राप्त नहीं होता है (क्योंकि गुणोंका समुदाय कहा तब द्रव्य कहां)

भेद–अभ्युपगमे ॥ च॰ पूर्व–उक्तः ॥ एव॰ दोषः ॥ =और (च) गुणनिके और समुदायके भेद माननेमें पहिले कहा हुआ ही दूषण आता है अर्थात् उस द्रव्य नामकी अप्राप्ति आती है (क्योंकि जब समुदाय गुणोंसे भिन्न ठहरा तब गुणोंका समुदाय क्यों कहना चाहिए उसको तो गुणोंसे पृथक ही मान लिया है

ननु॰ गुणान् ॥ द्रवन्ति T गुणैः ॥ वा द्रूयन्ते T इति॰ =(इसी सम्बन्धमें पुनि) प्रश्न गुणोंको प्राप्त होता है अथवा गुणोंकरि प्राप्त किया जाता है (सो तुम्हारे कथनानुसार द्रव्य है) ऐसे

विग्रहेऽपि स एव दोष इति चेन्न । कथञ्चिद्भेदाभेदोपपत्तेस्तद्व्यपदेशसिद्धिः व्यतिरेकेणानुपलब्धेरभेदः सञ्ज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदाद्भेद इति ॥ प्रकृता धर्मादयो बहवस्तत्सामानाधिकरण्याद्बहुत्वनिर्देशः ॥

विग्रहे । ॥ अपि ॥ सः ॥ एव ॥ दोषः ॥ इति ॥ चेत् ॥	=द्रव्य शब्दके अर्थ प्रकाश करनेवाले वाक्यमें भी वही दोष आता है। ऐसी शंका है अर्थात् द्रव्य व्यपदेशकी अप्राप्ति आती है ऐसा प्रश्न है।
न ॥	=(उत्तर)(द्रव्य व्यपदेशकी अप्राप्ति का दूषण)नहीं आता है
कथञ्चित् ॥ भेद अभेद-उपपत्तेः ॥	=(क्योंकि गुणोंकि और समुदायके या द्रव्यके) कथंचित् भेद और कथंचित् उनमें अभेद माननेसे
तत्-व्यपदेश-सिद्धिः ॥ व्यतिरेकेण ॥	=उस (द्रव्य) के नाम (=व्यपदेश) की सिद्धि होय है (गुण और द्रव्य में) भिन्नता सहित
अनुपलब्धेः ॥ अभेदः ॥ सञ्ज्ञा-लक्षण-प्रयोजनादि-	=न दीखने (के हेतु) से अभेद है (और) संज्ञा (संख्या) लक्षण और प्रयोजनादिक
भेदात् ॥ भेदः ॥ इति ॥ प्रकृताः ॥ धर्मादयः ॥ बहवः ॥	=भेद करि भेद है । प्रकरणरूप धर्मादिक (द्रव्य) बहुत हैं
तत्-समान-अधिकरणत्वात् ॥ बहुत्व-निर्देशः ॥	=सो समान आधार के योग से (इस सूत्र में) बहु वचनता का निरूपण है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश पुद्गल पूर्व सूत्रमें ये चार द्रव्य हैं और बहुवचन हैं इसलिये इस सूत्रमें ('द्रव्याणि' ऐसा शब्द बहुवचन में लाये हैं ।)

(१) कृत्, तद्धित, समास एकशेष, सनाद्यन्तधातु इन पांच प्रकारकी वृत्तियोंमेंसे किसी भेदके अर्थको बोधन करनेवाले वाक्यको विग्रह कहते हैं । विग्रह लौकिक और अलौकिक दो प्रकारका है जैसे राजपुरुषः का लौकिक विग्रह राज्ञः पुरुषः होगा और अलौकिक विग्रह राजन् अस्—पुरुष सु होगा ॥ इसलिये "गुणान् द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्ते" यह लौकिक विग्रह द्रव्य शब्दका (जो वृत्तिके पहिले भेदमें दुधातु से बना है ॥ इस हेतु से विग्रह वाक्य का अनुवाद स्पष्ट रूप से ये हुआ कि "द्रव्य शब्दके अर्थ प्रकाश करने वाले वाक्यमें भी" अर्थात् गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्ते में भी इत्यादि ॥

स्यादेतत्सङ्ख्यानुवृत्तिवत्पुंलिङ्गानुवृत्तिरपि प्राप्नोति। नैष दोष । आविष्टलिंगा शब्दा न कदाचिल्लिंग व्यभिचरन्ति । अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति ॥

अनन्तरत्वाच्चतुर्णामेव द्रव्यव्यपदेशप्रसंगेऽध्यारोपणार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीवशब्दो व्याख्यातार्थ ।

स्यात्-एतत् ॥ संख्या अनुवृत्ति-वत् = यह हो अर्थात् यह मानलो (परन्तु) (प्रश्न) संख्याके अनुवर्तनके सदृश

पुंलिङ्ग-अनुवृत्ति ॥ अपि प्राप्नोति । = पुंलिंगकी अनुवृत्ति भी (इस सूत्रमें) प्राप्त होती है अर्थात् प्रश्न यह है कि धर्म-अधर्म-आकाश पुद्गल द्रव्योंको प्रथम सूत्रमें बहुवचनमें लाये हैं

इसलिये "द्रव्याणि" शब्द भी यहां बहुवचनमें कहा तो धर्म अधर्म-आकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें जब पुंल्लिंगमें है फिर इस सूत्रमें द्रव्य शब्दको पुंल्लिंगमें द्रव्या ऐसा क्यों नहीं रक्खा नपुंसकलिंगमें 'द्रव्याणि' ऐसा क्यों लाये हैं

न एषः ॥ दोषः ॥ आविष्ट-लिंगाः ॥ शब्दाः ॥ = (उत्तर) यह दूषण नहीं है (क्योंकि) निवेशित लिंगी शब्द अर्थात् जिन २ शब्दों को जो जो लिंग प्राप्त है

न कदाचित् लिंगं ॥ व्यभिचरन्ति । = कभी अपना लिंग नहीं छोड़ते हैं (इसलिये क्योंकि द्रव्य शब्द नपुंसक लिंगी है इस सूत्रमें भी "द्रव्याणि" ऐसा द्रव्य शब्द नपुंसकलिंगमें लाये हैं)

अत धर्म-आदयः ॥ द्रव्याणि ॥ भवन्ति । इति = इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्य हैं ऐसा (सूत्र) है

चतुर्णाम् ॥ एव अनन्तरत्वात् ॥ = चारों (धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल) के ही अत्यन्त समीपतासे अथवा लगावसे

द्रव्य-व्यपदेश-प्रसंगे ॥ अध्यारोपण-अर्थम् ॥ = द्रव्योंके कथनके प्रकरणमें (अन्य द्रव्य के) संस्थापन या नियत करनेके लिये

इदम् ॥ उच्यते । = यह (अग्रिम सूत्र में) कहा जाता है कि

सूत्रम् जीवाश्च ॥३॥ = जीवाश्च (द्रव्याणि भवन्ति) = जीवा-च द्रव्याणि भवन्ति ।

पदार्थ— जीवाः ॥ च द्रव्याणि ॥ भवन्ति । = जीव भी द्रव्य हैं

शब्दानुवादः—जीव-शब्दः ॥ व्याख्यात-अर्थः ॥ = जीव शब्द है सो कहा हुआ विषय है

बहुत्वनिर्देशो व्याख्यातभेदप्रतिपत्त्यर्थः । चशब्दः सञ्ज्ञानुकर्षणार्थः जीवाश्च द्रव्याणीति ॥ एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह षड्द्रव्याणि भवन्ति॥ ननु द्रव्यस्य लक्षणं वक्ष्यते 'गुणपर्ययवद्द्रव्यमिति' तल्लक्षणयोगाद्धर्मादीनां द्रव्यत्वव्यपदेशो भवति, नार्थः परिगणनेन[१] ॥
१ परिगणनमवधारणार्थं, तेनान्यवादिपरिकल्पितानां पृथिव्यादीनां निवृत्तिः कृता भवति ॥ कथं? पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि पुद्गलद्रव्येऽन्तर्भवन्ति

बहुत्व-निर्देशः। व्याख्यात-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थः। =(इस सूत्रमें 'जीवा' ऐसा) बहुवचनका निरूपण या कथन वर्णित (जीवके) भेदोंके जनानेके लिये है
च-शब्दः। संज्ञा-अनुकर्षण-अर्थः। =(सूत्रमें) च शब्द (द्रव्य) संज्ञाके ग्रहण करनेके लिये वा अनुवृत्तिके लिये है
जीवाः। च द्रव्याणि। इति एवम् एतानि। =जीव भी द्रव्यें हैं ऐसा (अर्थ होता) है इसप्रकार ये
वक्ष्यमाणेन। कालेन। सह षड्द्रव्याणि। भवन्ति। =आगे कहे जानेवाले काल सहित छह द्रव्यें होती हैं
ननु गुण-पर्यय-वत्-द्रव्यम्। इति द्रव्यस्य। =प्रश्न, गुण पर्याय वाला द्रव्य होता है ऐसा द्रव्यका
लक्षणम्। वक्ष्यते। तत्-लक्षण-योगात्। धर्मादीनाम्। =लक्षण (सूत्र ३८ वा में) कहेंगे तिस लक्षणके सम्बन्धसे धर्मादिकोंके
द्रव्यत्व-व्यपदेशः। भवति, न अर्थः। परि-गणनेन। =द्रव्यत्वनाम होता है गणना (करने) से प्रयोजन नहीं (तो आपने छह द्रव्यें ऐसी गणना क्यों की?)
परिगणनम्। अवधारण-अर्थम्। तेन। अन्यवादिन् =(उत्तर) गिनती है सो नियम के लिये है तिस (गिनती) से[१] भिन्नवादीसे
परिकल्पितानाम्। पृथिवी-आदीनाम्। =माने गये पृथिवी-जल-तेज वायु आकाश-काल-दिशा-आत्मा, मन की अर्थात् पृथिवी आदिक इन नौ द्रव्योंकी (देखो 'तर्कसंग्रह' दूसरा सूत्र)
निवृत्तिः। कृता। भवति। कथम्। पृथिवी-अप् =निवृत्ति वा रोक पूरी- (=कृता) होती है (प्रश्न) कैसे पृथिवी, जल,
तेजो-वायु-मनांसि। पुद्गलद्रव्ये। अन्तर्भवन्ति। =अग्नि, वायु, मन, पुद्गल द्रव्यविषें गर्भित हैं ।

(१) इस प्रश्नकी व्याख्या इसप्रकार है कि अन्यवादियोंने तर्क संग्रहआदि न्यायके ग्रंथोंमें आत्मा काल आकाश दिशा पृथिवी जल तेज वायु व ए मन भी द्रव्य माने हैं हमारे यहां आत्मा काल आकाश पुद्गल धर्म और अधर्म ये छह द्रव्य माने हैं धर्म और अधर्म अन्यवादियों ने द्रव्य नहीं माने हैं ऊपर की गणनासे स्पष्ट है कि आत्मा काल और आकाश जिसमें दिशा भी गर्भित है (दिशा का आकाश में गर्भित होना इससूत्रकी वृत्ति के अन्तभागमें सिद्ध किया है) हमारे यहां और उनके यहां एक से हैं। अब अन्यवादियोंकेशेष पांच द्रव्यें पृथिवी जल तेज वायु, और मन रह गए सो हमारे यहां के पुद्गल द्रव्यमें सब के सब आजाते हैं इसलिये ग्रन्थकर्त्ताने उपर्युक्त तर्क संग्रह ग्रन्थमें वर्णित नौ द्रव्योंके कथन वा गणना को चित्त में धारण करके यह प्रश्न किया है कि पुद्गल द्रव्यमें ये पांचों कैसे गर्भित हैं ॥

स्यादेतदस्यानुवृत्तिवत्पुंलिङ्गानुवृत्तिरपि प्राप्नोति। नैष दोषः। आविष्टलिंगाः शब्दा न कदाचिल्लिंग व्यभिचरन्ति। अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति॥

अनन्तरस्याग्रतुर्णामेव द्रव्यव्यपदेशप्रसंगेऽध्यारोपणार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीवशब्दो व्याख्यातार्थः।

स्यात्-स्यात् ।।। एतस्या अनुवृत्ति-वत् = यह हो अर्थात् यह मानलो (परन्तु) (प्रश्न) संख्याके अनुवर्तनके सदृश

पुंलिङ्ग-अनुवृत्तिः।। अपि ॰ प्राप्नोति। = पुंलिंगकी अनुवृत्ति भी (इस सूत्रमें) प्राप्त होती है अर्थात् प्रश्न यह है कि धर्म अधर्म-आकाश पुद्गल द्रव्योंको प्रथम सूत्रमें बहुवचनमें लाये हैं

इसलिये "द्रव्याणि" शब्द भी यहां बहुवचनमें कहा तो धर्म अधर्म-आकाश पुद्गल एक सूत्रमें जब पुंलिंगमें है फिर इस सूत्रमें द्रव्य शब्दको पुंलिंगमें द्रव्याः ऐसा क्यों नहीं रक्खा नपुंसकलिंगमें "द्रव्याणि" ऐसा क्यों लाये हैं

न ॰ एषः ।। दोषः ।। आविष्ट-लिंगाः ।। शब्दाः।। = (उत्तर) यह दूषण नहीं है (क्योंकि) निवेशित लिंगी शब्द अर्थात् जिन २ शब्दोंको जो जो लिंग प्राप्त है

न॰ कदाचित्॰ लिंगं ।।। व्यभिचरन्ति। = कभी अपना लिंग नहीं छोड़ते हैं (इसलिये क्योंकि द्रव्य शब्द नपुंसक लिंगी है इस सूत्रमें भी "द्रव्याणि" ऐसा द्रव्य शब्द नपुंसकलिंगमें लाये हैं)

अतः॰ धर्म-आदयः ।। द्रव्याणि ।।। भवन्ति। इति॰ = इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश पुद्गल द्रव्य हैं ऐसा (सूत्र) है

चतुर्णाम् ।। एव ॰ अनन्तरस्यात् ।।। = चारों (धर्म अधर्म आकाश पुद्गल) के ही अत्यन्त समीपतासे अथवा लगावसे

द्रव्य-व्यपदेशे प्रसंगे ।। अध्यारोपण-अर्थम् ।।। = द्रव्योंके कथनके प्रकरणमें (अन्य द्रव्य के) संस्थापन या नियत करनेके लिये

इदम् ।।। उच्यते। = यह (अग्रिम सूत्र में) कहा जाता है कि

सूत्रम् जीवाश्च॥३॥ = जीवाश्च (द्रव्याणि भवन्ति) = जीवा च द्रव्याणि भवन्ति।

पदार्थः— जीवाः ।। च ॰ द्रव्याणि ।।। भवन्ति। = जीव भी द्रव्य हैं

सम्बन्धः—जीव शब्दः ।। व्याख्यात-अर्थः ।। = जीव शब्द है सो कहा हुआ विषय है

बहुत्वनिर्देशो व्याख्यातभेदप्रतिपत्त्यर्थं । चशब्दः सञ्ज्ञानुकर्षणार्थः जीवाश्च द्रव्याणीति ॥ एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह षड्द्रव्याणि भवन्ति॥ ननु द्रव्यस्य लक्षणं वक्ष्यते 'गुण-पर्ययवद्द्रव्यमिति' तल्लक्षणयोगाद्धर्मादीनां द्रव्यत्वव्यपदेशो भवति, नार्थः परिगणनेन? ॥ परिगणनमवधारणार्थं, तेनान्यवादिपरिकल्पितानां पृथिव्यादीनां निवृत्तिः कृता भवति ॥ कथं? पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि पुद्गलद्रव्येऽन्तर्भवन्ति

बहुत्व-निर्देशः। व्याख्यात-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थः। =(इस सूत्रमें 'जीवा' ऐसा) बहुवचनका निरूपण वा कथन वर्णित (जीवके) भेदोंके जनानेके लिये है
च-शब्दः। संज्ञा-अनुकर्षण-अर्थः। =(सूत्रमें) च शब्द (द्रव्य) संज्ञाके ग्रहण करनेके लिये वा अनुवृत्तिके लिये है
जीवाः। च। द्रव्याणि। इति। एवम्। एतानि। =जीव भी द्रव्यें हैं ऐसा (अर्थ होता) है इसप्रकार ये
वक्ष्यमाणेन। कालेन। सह। षट्-द्रव्याणि। भवन्ति। =आगेकहेजानेवाले काल सहित छह द्रव्यें होती हैं
ननु। गुण-पर्यय-वत्। द्रव्यम्। इति। द्रव्यस्य। =प्रश्न, गुण पर्याय वाला द्रव्य होता है ऐसा द्रव्यका
लक्षणम्। वक्ष्यते। तत्-लक्षण-योगात्। धर्मादीनाम्। =लक्षण (सूत्र ३८ वां में) कहेंगे जिस लक्षणके सम्बन्धसे धर्मादिकोंके
द्रव्यत्व-व्यपदेशः। भवति, न। अर्थः। परि-गणनेन। =द्रव्यत्वनाम होजावेगा गणना (करने) से प्रयोजन नहीं (तो आपने छह द्रव्यें ऐसी गणना क्यों की)
परिगणनम्। अवधारण-अर्थम्। तेन। अन्यवादिन्- =(उत्तर) गिनती है सो नियम के लिये है जिस (गिनती) से[1] भिन्नवादीसे
परिकल्पितानाम्। पृथिवी-आदीनाम्। -मानेगये पृथिवी-जल-तेज वायु आकाश काल-दिशा आत्मा, मन की अर्थात् पृथिवी आदिक इन नौ द्रव्योंकी (देखो 'तर्कसंग्रह' दूसरा सूत्र)
निवृत्तिः। कृता। भवति। कथम्। पृथिवी-अप् =निवृत्ति वा रोक पूरी-(=कृता) होती है (प्रश्न) कैसे पृथिवी, जल,
तेजो-वायु-मनांसि। पुद्गल-द्रव्ये। अन्तर्भवन्ति। =अग्नि, वायु, मन, पुद्गल द्रव्यविषैं गर्भित हैं ।

(१) इस प्रश्नकी योग्यता इसप्रकार है कि अन्यवादियाम तर्क संग्रहआदि न्यायके ग्रन्थोंमें आत्मा काल आकाश दिशा, पृथिवी जल तेज वायु व मन नौ द्रव्य माने हैं हमारे यहां आत्मा काल आकाश, पुद्गल धर्म और अधर्म ये छह द्रव्य माने हैं धर्म और अधर्म अन्यवादियों ने द्रव्य नहीं माने हैं ऊपर की गणनासे स्पष्ट है कि आत्मा काल और आकाश जिसमें दिशा भी गर्भित है (दिशा का आकाश में गर्भित होना इससूत्रकी वृत्ति के अन्तभागमें सिद्ध किया है) हमारे यहां और उनके यहां एक से हैं। अब अन्यवादियोंकीशेष पांच द्रव्यें पृथिवी, जल तेज वायु, और मन रह गए सो हमारे यहां के पुद्गल द्रव्यमें सब के सब आजातेहैं इसलिये प्रश्नकर्ताने उपर्युक्त तर्क संग्रह ग्रन्थमें वर्णित नौ द्रव्योंके कथन वा गणना को चित्त में धारण करके यह प्रश्न किया है कि पुद्गल द्रव्यमें ये पांचों कैसे गर्भित हैं ॥

स्यादेतत्संख्यानुवृत्तिवत्पुल्लिङ्गानुवृत्तिरपि प्राप्नोति। नैष दोषः। आविष्टलिंगाः शब्दा न कदाचिल्लिंग व्यभिचरन्ति। अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति॥

अनन्तरत्वाच्चतुर्णामेव द्रव्यव्यपदेशप्रसंगेऽध्यारोपणार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीवशब्दो व्याख्यातार्थः।

स्यात्—एतत् ॥ संख्या-अनुवृत्ति-वत्* = यह हो अर्थात् यह मानलो (परन्तु) (प्रश्न) संख्याके अनुवर्तनके सदृश

पुल्लिङ्ग-अनुवृत्तिः ॥ अपि * प्राप्नोति । = पुल्लिंगकी अनुवृत्ति भी (इस सूत्रमें) प्राप्त होती है अर्थात् प्रश्न यह है कि धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्योंको प्रथम सूत्रमें बहुवचनमें लाये हैं

इसलिये "द्रव्याणि" शब्द भी यहां बहुवचनमें कहा तो धर्म अधर्म-आकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें जब पुल्लिंगमें है फिर इस सूत्रमें द्रव्य शब्दको पुल्लिंगमें द्रव्याः ऐसा क्यों नहीं रक्खा नपुंसकलिंगमें "द्रव्याणि" ऐसा क्यों लाये हैं

न * एषः ॥ दोषः ॥ आविष्ट लिंगाः ॥ शब्दाः ॥ = (उत्तर) यह दूषण नहीं है (क्योंकि) निवेशित लिंगी शब्द अर्थात् जिन २ शब्दों को जो जो लिंग प्राप्त है

न * कदाचित् * लिंगं ॥ व्यभिचरन्ति । = कभी अपना लिंग नहीं छोड़ते हैं (इसलिये क्योंकि द्रव्य शब्द नपुंसक लिंगी है इस सूत्रमें भी "द्रव्याणि" ऐसा द्रव्य शब्द नपुंसकलिंगमें लाये हैं)

अतः धर्म—आदयः ॥ द्रव्याणि ॥ भवन्ति । इति* = इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्य हैं ऐसा (सूत्र) है

चतुर्णाम् ॥ एव * अनन्तरत्वात् ॥ = चारों (धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल) के ही अत्यन्त समीपतासे अथवा लगावसे

द्रव्य-व्यपदेश-प्रसंगे ॥ अध्यारोपण—अर्थम् ॥ = द्रव्योंके कथनके प्रकरणमें (अन्य द्रव्य के) संस्थापन या नियत करनेके लिये

इदम् ॥ उच्यते । = यह (अग्रिम सूत्र में) कहा जाता है कि

सूत्रम् जीवाश्च॥३॥ = जीवाश्च (द्रव्याणि भवन्ति) = जीवाः च द्रव्याणि भवन्ति ।

सूत्रार्थः— जीवाः ॥ च * द्रव्याणि ॥ भवन्ति । = जीव भी द्रव्य हैं

शब्दानुवादः—जीव-शब्दः ॥ व्याख्यात—अर्थः ॥ = जीव शब्द है सो कहा हुआ विषय है

वायुमनसो रूपादियोगाभाव इति चेन्न । वायुस्तावद्रूपादिमान्स्पर्शवत्त्वाद्घटादिवत् ॥

अर्थात् पृथिवी,जल,अग्नि, वायु और द्रव्यमन रूप या वर्ण,रस,गंध,और स्पर्श सहित हैं और पुद्गल भी रूप,रस,गन्ध,और स्पर्शवान् हैं जिससे ये पाँचों पुद्गल द्रव्यमें गर्भित हैं

वायु-मनसोः॥रूप-आदि-योग-अभावः॥इति॥चेत्॥=वायु और मनके रूपादिकका सम्बन्ध नहीं है ऐसा प्रश्न या शंका (=चेत्) है

अर्थात् अन्यवादियोंकी तर्कसंग्रहके सूत्र १८ के अनुसार मन परमाणु रूप है (अतः स्पर्शवान् तो हुआ) उसके रस,गन्ध,और वर्ण नहीं माने हैं और सूत्र २२ के अनुसार वायु में केवल स्पर्श माना है और वर्ण-रस-गन्ध नहीं माने हैं (देखो तर्कसंग्रह सूत्र १९,२०, २१)

न॥वायुः॥तावत्॥स्पर्शवत्त्वात्॥घटादिवत्॥रूप-=(उत्तर) (सो) नहीं है ॥ वायु है सो प्रथम तो स्पर्शवान् होनेसे घटादिके समान रूप

(१)आदिमान्॥ =रस गन्ध वाला है अर्थात् जहाँ स्पर्श है वहाँ रूप रस गंध होय ही हों यह नियम है

जलमें गंधरहित किया है अग्निमें रस और गंधरहित किये हैं और वायु में रूप-रस-गंध-रहित किये हैं और द्रव्यमनविषैं रस-रूप-गंध रहित किये हैं जिनको अन्यवादियों ने नहीं माना है (१) समस्त पुद्गल परमाणुओंके एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहती है। जैसे पथिवी से जल होता है जलसे पथिवी होती है अग्नि से पृथिवी होय है और पथिवी आदिक से अग्निहोती है इसप्रकार पथिवी आदि से उनके धूप और वायु तथा द्रव्यमनके न्यारे परमाणु नहीं हैं, ये समस्त ही पुद्गल के विकार हैं ॥

'(१)संज्ञावाचक पुलिङ्ग शब्द जिसके अन्त में'वत्'और'मत्'हो प्रथमा विभक्ति एक वचन द्विवचन बहुवचन और द्वितीया विभक्ति एक वचन और द्विवचन में अन्त के तकार के पहिले न् जोड़ते हैं फिर प्रत्यय लगाते हैं जैसे आदिमत्-और उसके पहिले प्रथमा विभक्ति एक वचनमें 'न्' के पहिलेस्वर को दीर्घ करदेते हैं जैसे-आदिमत् से आदि-मात् हुआ पश्चात् न्-त् से प्रथम जोड़ा तो आदिमान् त् हुआ फिर स् प्रथमा विभक्ति एक वचनका प्रत्यय जोड़ा तब आदिमान् त् स् ऐसा रूप बना अब पद के अन्त में एक व्यंजन से अधिक हो तो प्रथम रहजाता है शेषसब गिर जाते हैं(देखो-संयोगान्तस्यलोपःअष्टाध्यायी सूत्र ८-२-२३) ॥ शेषरूप आदिमन्तौ,आदिमन्तःऔर आदिमन्तम् और आदिमन्तौ(द्वितीया विभक्तिमें) होंगे ॥ इसलिये 'आदिमान्' यह रूप प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिङ्ग में बना ॥

'संयोगान्तस्य लोपः' =संयोगान्तस्य॥ लोपः॥ =संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ॥

संयोग-अन्तम्॥यत्पदम्॥ =जिस पदके अन्तमें संयोग (व्यंजन)हो और

तद्-अन्तस्य॥ लोपः॥ स्यात् T =वह संयोग जिस समुदायके अन्तमें होय तिसका लोप होजावे अर्थात् जब पदके अन्तमें एक व्यंजनसे अधिक हो तो पहिला रहजाता है शेष सब गिरजाते हैं

रूपरसगन्धस्पर्शवत्त्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ।

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शवत्त्वात्-५॥ चक्षुः इन्द्रिय-वत्-(उपर) रूप-रस-गंध-और स्पर्शवान् होनेसे नेत्र इन्द्रियके सदृश(पुद्गलद्रव्यमें गर्भित)है

(१) यहांसे आगे इस वृत्तिके अर्थको भले प्रकार समझने के लिये इस टिप्पणी को चित्त लगाकर समझलेना चाहिये अन्य वादियोंके माने हुये चार गुणों में कौन कौन किस किस में हैं?

जैनियों ने स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-वाले पुद्गल माने हैं
(तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ५ सूत्र २३ द्रव्यसंग्रह प्रथमी गाथा १५)

(१) रूप—पृथिवी जल और तेजमें रहताहै (तर्कसंग्रह १-१९) (१) रूप अर्थात् कृष्ण नील रक्त पीत, श्वेत ये पांच रूप वा वर्ण वा रंग हैं।
(२) रस—पृथिवी और जल में रहता है (तर्कसंग्रह १-२०) (२) रस अर्थात् खट्टा मीठा कडुआ (कटुक) कषायला चिरपरा (तिक्त) ये पांच हैं
(३) गंध—पृथिवी मात्रमें ही रहताहै (तर्कसंग्रह १-२१) (३) गन्ध अर्थात् सुगन्ध (सुरभि) दुर्गन्ध (असुरभि) भेदरूप हैं
(४) स्पर्श-पृथिवी,जल,तेज और वायुमें रहताहै(तर्कसंग्रह१-२२)(४)स्पर्श-कोमल(मृदु) कठोर,हलका भारी,शीत उष्ण,सचिक्कन(स्निग्ध) (रूक्ष) रूखा),
-ये आठभेद स्पर्शकेहैं।ऐसेसामान्यतासेचारगुणऔरविशेषरूपसे२०गुणवालेपुद्गलहैं
(५) नित्य औरपरमाणुरूपमनहै(अर्थात्पौद्गलिकअपुद्गलीकमनहै (तर्कसंग्रह।१८) (५) मन अर्थात् द्रव्यमन तो पुद्गलद्रव्यका विकारहै, भावमन ज्ञा ज्ञानहै आत्मामेंगर्भितहै

इन दानों बीजकों के पढ़ने से यह अन्तर निकलता है कि अन्य वादियोंने वायुको रूपवान् नहीं माना है जैनियों ने रूपवान् माना है, रस गुणको अग्नि और वायु में नहीं माना है उन्होंने माना है गन्ध को जल अग्नि वायु में नहीं माना है जैनियों ने माना है। स्पर्श अन्यवादियोंने पृथिवी जल तेज और वायु सब में माना है सो हम जैनियों ने भी माना है ॥ पूज्यपाद् स्वामीने 'कथं .. व्यवहारोपपत्तः' तक वृत्तिके पृष्ठ२०३और२०४की १५ पंक्तियोंमें तीन बातें सिद्ध की हैं (१) जो प्रतिवादी नौ द्रव्यें मानते हैं वे सर्व द्रव्य आत्मा-काल-आकाश और पुद्गलद्रव्य में अन्तर्भाव हैं इसलिये नौ द्रव्योंके माननेकी आवश्यकता नहीं है वरन् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य को मिलाकर केवल छह द्रव्य मानना चाहिये-(२)रूप रस-गन्ध-स्पर्श ये पृथिवी,जल अग्नि और वायु और द्रव्यमन में भी(जो पुद्गल द्रव्यका विकार है)विद्यमान हैं और पुद्गलोंके गुण हैं और इनमें पाये जाते हैं अर्थात् मिथ्यावादियों ने वायु में रूप(वर्ण)नहीं मानाहै उसका खण्डन होताहै। अग्नि और वायु में रस गुण नहीं माना है उसका भी खण्डन होता है और इसी प्रकार जल अग्नि-वायुमें गन्ध नहीं माना है उसकाभी खंडन होता है। मनको स्पर्शमात्रा है रूप-रस-गन्ध नहीं माने हैं इसलिये [illegible]

वायुमनसो रूपादियोगाभाव इति चेन्न । वायुस्तावद्रूपादिमान्स्पर्शवत्त्वाद्घटादिवत् ॥

अर्थात् पृथिवी,जल,अग्नि, वायु और द्रव्यमन रूप या वर्ण,रस,गंध,और स्पर्श सहित हैं और पुद्गल भी रूप,रस,गन्ध,और स्पर्शवान् हैं जिससे ये पांचों पुद्गल द्रव्यमें गर्भित हैं

वायु-मनसोः॥रूप आदि-योग-अभावः॥इति॰चेत्॰=वायु और मनके रूपादिकका सम्बन्ध नहीं है ऐसा प्रश्न या शंका (=चेत्) है

अर्थात् अन्यवादियोंकी तर्कसंग्रहके सूत्र १८ के अनुसार मन परमाणु रूप है (अत स्पर्शवान् तो हुआ) उसके रस,गन्ध,और वर्ण नहीं माने हैं और सूत्र २२ के अनुसार वायु में केवल स्पर्श माना है और वर्ण-रस-गन्ध नहीं माने हैं (देखो तर्कसंग्रह सूत्र १९,२०, २१)

न॰वायुः॥तावत्॰स्पर्शवत्त्वात्॥घटादिवत्॰रूप-=(उत्तर) (सो) नहीं है ॥ वायु है सो प्रथम तो स्पर्शवान् होनेसे घटादिके समान रूप

(१)आदिमान्॥ =रस गन्ध वाला है अर्थात् जहां स्पर्श है वहां रूप रस गंध होंय हीं हों यह नियम है

जलमें गंधसिद्ध किया है अग्निमें रस और गंधसिद्ध किये हैंऔर वायु में रूप-रस-गंध-सिद्ध किये हैं और द्रव्यमनविषैं रस-रूप-गंध सिद्ध किये हैं जिनको अन्यवादियों ने नहींमाना है (२) समस्त पुद्गल परमाणुओंके एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहती है। जैसे पृथिवी से जल होता है जलसे पृथिवी होती है अग्नि से पृथिवी होय है और पृथिवी आदिक से अग्निहोतीहै इसप्रकार पृथिवी आदि से उपजे हुए और वायु तथा द्रव्यमनके न्यारे परमाणु नहीं हैं, वे समस्त ही पुद्गल के विकार हैं ॥

(१)संज्ञावाचक पुल्लिंग शब्द जिनके अन्त में 'वत्' और 'मत्' हो प्रथमा विभक्ति एक वचन द्विवचन बहुवचन और द्वितीया विभक्ति एक वचन और द्विवचन में अन्त के तकार के पहिले न् जोड़ते हैं फिर प्रत्यय लगाते हैं जैसे आदिमत्-और सबसे पहिले प्रथमा विभक्ति एक वचनमें 'न्' के पहिलेस्वर को दीर्घ करदेते हैं जैसे आदिमत् से आदि-मात् हुआ पश्चात् न्-न् के प्रथम जोड़ा तो आदिमान् त् हुआ फिर स् प्रथमा विभक्ति एक वचनका प्रत्यय जोड़ा तब आदिमान् त् स् ऐसा रूप बना जब पद के अन्त में एक व्यंजन से अधिक हों तो प्रथम रहजाता है शेषसब गिर जाते हैं(देखो-संयोगान्तस्यलोपःअष्टाध्यायी सूत्र ८-२-२३) ॥ शेषरूप आदिमन्तौ आदिमन्तःऔर आदिमन्तम् और आदिमन्तौ(द्वितीया विभक्तिमें) होंगे ॥ इसलिये आदिमान् यह रूप प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग में बना ॥

संयोगान्तस्य लोप =संयोगान्तस्य॥ लोपः॥ =संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ॥

संयोग-अन्तम्,॥यत्पदम्॥ =जिस पदके अन्तमें संयोग (व्यंजन)हो और

तद् अन्तस्य॥ लोपः॥ स्यात् ॥ =वह संयोग जिस समुदायके अन्तमें होय तिसका लोप होजावे अर्थात् जब पदके अन्तमें एक व्यंजनसे अधिक हों तो पहिला रहजाता है शेष सब गिरजाते हैं

चक्षुरादिकरणग्राह्यत्वाभावाद्रूपाद्यभाव इति चेत्परमाण्वादिष्वतिप्रसङ्ग स्यात्॥आपो गन्धवत्य स्पर्शवत्वात्पृथिवीवत् ॥ तेजोऽपि रसगन्धवत् रूपवत्त्वात्॥तद्वदेव मनोऽपि द्विविध द्रव्यमनो भावमनश्चेति । तत्र भावमनो ज्ञानम्, तस्य जीवगुणत्वादात्मन्यन्तर्भाव । द्रव्यमनश्च रूपादियोगात्पुद्गलद्रव्यविकार ॥

चक्षुर्-आदि-करण-ग्राह्यत्व-अभावात् ॥	=नेत्रादिक इन्द्रियोंसे ग्रहणयोग्य न होनेसे वा न आकर्षित कियेजासकनेसे
रूप-आदि-अभाव ॥ इति॰ चेत्॰	=(वायुके) रूप,रस गंधआदिका अस्तित्व नहीं है। ऐसी शंका या प्रश्न है
परमाणु-आदिषु॥	=(उत्तर)तो परमाणु आदिक सूक्ष्ममें (जो नेत्रोंकरि नहीं दीखते हैं)
अतिप्रसंगः॥स्यात् ।,आपः॥स्पर्शवत्त्वात्॥पृथिवीवत्	=(स्पर्शादिक)लक्षणकोभी अतिप्रसंग होगा॥ जल स्पर्शवान् होनेसे पृथिवीके समान
गन्धवत्यः॥,	=गन्धवान् है (अन्यवादियोंनेमतमेंस्पर्शरसस्पर्शहीमानेहैंइसलियेयहांगंधत्वसिद्धकिया है)
तेजः॥ अपि॰रूपवत्त्वात्॥ रस-गन्धवत्॰	=अग्नि भी रूपवान् होनेसे रस और गन्धवानहै(क्योंकि अन्यवादियोंने अग्निमें रूप और स्पर्शमाने हैं इसलिये यहांपर रसत्व और गंधत्व सिद्ध किये हैं)।
तद्-वत्॰एव॰मनः॥ अपि॰द्विविधम्॥	=उस (जल)के सदृश ही है ॥ मन भी दो प्रकार है।
द्रव्यमनः॥ भावमनः॥च॰इति,तत्र॰भावमनः॥	=द्रव्यमन और भावमन । तहां भावमन है
ज्ञानम्॥तस्य॥जीवगुणत्वात्॥आत्मनि॥	=सो ज्ञान है। तिस (भावमन) के चेतनका गुणहोनेसे,आत्मा (द्रव्य) में
अन्तर्भाव॥, द्रव्यमनः॥ च॰रूप-	=गर्भित है। बहुरि द्रव्यमन अर्थात् सूक्ष्म पुद्गलका भवय रूप अष्ट पांखुरी के फूले कमलके आकार हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ है सो रूप
आदि-योगात्॥पुद्गलद्रव्य-विकारः॥,	=रस-गंध-स्पर्शके सयोगसे पुद्गलद्रव्य का परिणाम है ॥

अति प्रसङ्ग=अति प्रसक्ति, प्रसंग को छोड़ने वाला लक्षणमें जो लक्षणका सम्बन्ध होताहै उसको प्रसंग कहते हैं जो इसके विपरीत हो वह अति प्रसंग है अर्थात् लक्ष्यमें लक्षण के सम्बन्धका अभाव (२) वायु और मन इन दोनों सबब में रूपादिक के अभाव होने का प्रश्न किया गया था तो वायु को रूपादिक का होनासिद्ध करदिया वायु के समान ही जलमें गंध और अग्नि में रस और गंध सिद्धि करनेके पश्चात् शेष रह हुए मनके दो भेद करते हुये द्रव्यमनमें रूप रस गंध-स्पर्शकी सिद्ध करते भयेहैं ॥

रूपादिवन्मन ज्ञानोपयोगकारणत्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ॥ ननु अमूर्तेऽपि शब्दे ज्ञानोपयोगकारणत्वदर्शनाद्व्यभिचारी हेतुरिति चेन्न। तस्य पौद्गलिकत्वान्मूर्तिमत्वोपपत्ते ॥ ननु यथा परमाणूनां रूपादिमत्कार्यत्वदर्शनाद्रूपादिमत्त्वम्, न तथा वायुमनसो रूपादिमत्कार्यं दृश्यते इति चेन्न। तेषामपि तदुत्पत्ते । सर्वेषां परमाणूनां सर्वरूपादिमत्कार्यत्वप्राप्तियोग्यत्वाभ्युपगमात् ॥ न च केचित्पार्थिवादिजातिविशेषयुक्ता परमाणव सन्ति, जातिसङ्करेणारम्भदर्शनात् ॥

ज्ञानोपयोग-कारणत्वात्॥ चक्षुःइन्द्रियवत् =ज्ञानोपयोग का निमित्त होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान
रूप आदिवत् मन ॥ ननु अमूर्ते अपि =मन रूपरस-गंध-स्पर्शवान् (=रूपादि) है। प्रश्न। मूर्तिशून्य होनेपर भी
शब्दे ज्ञानोपयोग-कारणत्व-दर्शनात् व्यभिचारी हेतुः =शब्दविषैं ज्ञानोपयोग कारणभावदीखनसे व्यभिचारी हेतु है अर्थात् शब्द अमूर्तिक होनेपर भी ज्ञानोपयोगकी प्राप्तिका कारण देखे जानेसे हेतु पक्ष, सपक्ष, विपक्षमें रहनेवाला व्यभिचारी
इति चेत् =हुआ ऐसी शंका है(भावार्थ) मन रूपादि सहित ऐसा ज्ञानके प्राप्तिविषैं कारण कहा है और अमूर्तिक शब्द भी ज्ञान करानेमें कारण है तो ऐसे ज्ञानकी उपलब्धिमें मूर्तिक द्रव्यमन और अमूर्तिक शब्द दोनों ही कारण हुये इसलिये यह नियम नहीं होसकता किजो ज्ञान करानेमें कारण है वह रूप–रस–गन्ध–स्पर्शवाला (=मूर्तिक) ही होता है ॥
न ॥ तस्य॥ पौद्गलिकत्वात्॥ मूर्तिमत्व– =(उत्तर) नहीं, क्योंकि तिस (शब्द)के पुद्गल जन्य होनेसे मूर्तिपना
उपपत्ते ॥ ननु यथा परमाणूनाम्॥ रूपादिमत्– =सिद्धि (=उपपत्ति) है। प्रश्न। जैसे परमाणुओं के रूपादिवाला
कार्यत्व-दर्शनात्॥ रूपादि-मत्त्वम्॥ न तथा वायु =कार्यपना दीखनसे रूपादिकवान् पना है, नहीं तैसे वायु
मनसो॥ रूप आदिमत्-कार्यम्॥ दृश्यते =और मनके रूपादिकमान् कार्य देखा जाता है
इति चेत् न ॥ तेषाम्॥ अपि तद् ॥ =ऐसी शंका है (उत्तर) नहीं, क्योंकि तिन (वायु और मनके) भी वह
उत्पत्ते ॥ सर्वेषाम्॥ परमाणूनाम्॥ सर्व-रूप आदिमत् =(रूपादिवान् कार्य) उत्पन्न होता है क्योंकि सब परमाणुओंके समस्त रूपादिक
कार्यत्व प्राप्ति-योग्यत्व-अभ्युपगमात्॥ =कार्यपनाकी प्राप्ति होनेकी शक्ति, सामर्थ्य वा योग्यता मानी गई है
न च केचित् पार्थिव आदि-जाति-विशेष-युक्ता॥ =बहुरि नहीं कोई पृथिवी आदिक अन्य जाति विभेद सहित
परमाणवः॥ सन्ति। जाति-सङ्करेण॥ आरम्भ-दर्शनात्॥ =परमाणु हैं क्योंकि(समस्त पुद्गल परमाणुओं के)जातिके पलटन करि आरम्भदीखनैं

दिशोऽप्याकाशेऽन्तर्भाव । आदित्योदयाद्यपेक्षया आकाशप्रदेश पङ्क्तिषु इत इदमिति व्यवहारोपपत्ते ॥ उक्तानां द्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥

अर्थात् समस्त पुद्गल परमाणुओं के एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहती है जैसे पृथिवी परमाणुओं से जल होता है जल परमाणुओंसे पृथिवी होय है,अग्निसे पृथिवी होती है, और पृथिवी काष्ठादिकसे अग्नि होय है इस प्रकार पृथिवी आदिकसे उत्पन्न हुए वायु मनके न्यारे न्यारे परमाणु नहीं हैं ये समस्त ही पुद्गलके विकार हैं?

दिशा॥ अपि॥ आकाशे॥ अन्तर्भाव॥ आदित्य-उदय-आदि— =दिशाका भी आकाश (द्रव्य) में समावेश है। सूर्यके उदय आदिकी अपेक्षया॥ आकाश-प्रदेश-पङ्क्तिषु॥ इत॥ इदम्॥ =अपेक्षासे आकाशके प्रदेशोंकी पङ्क्तियोंमें यहांसे यह (इधर) है इति॥ व्यवहार उपपत्त॥ =इस प्रकार (पूर्वादिक दिशाओंके)व्यवहारकी सिद्धि है अर्थात् जहां सूर्य्य उगता है उसओरके आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तियोंको पूर्वदिशा कहते हैं जहां सूर्य अस्त होता है उस ओरके आकाशके प्रदेशकी पङ्क्तियोंको पश्चिम दिशा कहते हैं इस प्रकार शेष दिशाओं को जानना

उक्तानाम्॥ द्रव्याणाम्॥ विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ आह॥ =वर्णित द्रव्योंके विशेषज्ञानके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

=((२)धर्मादीनि,(३)काल ,(४) जीवाश्च,(५)द्रव्याणि)नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ—धर्म आदीनि॥ काल॥ जीवा॥ च॥ द्रव्याणि॥ नित्य— =धर्म—अधर्म—आकाश-पुद्गल—काल—और जीव द्रव्यें ध्रुव वा नित्य हैं अर्थात् द्रव्यत्वमें अनेक धर्म हैं वे(धर्म)द्रव्यपनाकी अपेक्षा (न कि पर्यायकी अपेक्षा) अविनाशी हैं अथवा सदा विद्यमान हैं ।

(१) नोमीं आचार्योंमें इस सूत्रका पाठ सर्वत्र है(२)'धर्म—अधर्म—आकाश—पुद्गल'पद प्रथम सूत्र से लिया है(३) 'काल' इस अध्यायके उनतालीसवां सूत्रका अध्याहार किया है(४) 'जीवाश्च' इस अध्यायके तीसरे सूत्रसे [illegible] (५) 'द्रव्याणि' इस अध्यायके दूसरे सूत्र से अनुवर्तित है।

नित्य ध्रुवमित्यर्थ । ने ध्रुवे त्य इति निष्पादितत्वात् ॥ धर्मादीनि द्रव्याणि गति हेतुत्वादिविशेषलक्षणद्रव्यार्थादेशादस्तित्वादिसामान्यलक्षणद्रव्यार्थादेशाच्च

अवस्थित—	=अवस्थित हैं अथवा ज्योंके त्यों रहते हैं अर्थात् द्रव्योंमें अपने अपने जो जो विशेष[१] लक्षण हैं उनको नहीं छोड़ते हैं जैसे जो द्रव्य चेतन है वह अचेतन नहीं हो सक्ती जो द्रव्य मूर्तिक है वह अमूर्तिक नहीं हो सक्ती और जो अमूर्तिक है वह मूर्तिक नहीं हो सक्ती इत्यादि जिससे द्रव्योंकी संख्याकी व्यवस्था है और वह द्रव्योंकी संख्या १,२,३,४,५,वा ७,इत्यादि नहीं हो सक्ती है
अरूपाणि ॥	=(पुद्गल द्रव्यके अतिरिक्त) अरूपी हैं अर्थात् अमूर्तिक हैं
इत्यनुवाद-नित्यम्॥ध्रुवम्॥ इति अर्थः॥नेः॥ ध्रुवे ॥	=नित्य है सो ध्रुव अथवा अविनाशी ऐसा अर्थ है(नि)धातु से स्थिर अर्थमें
त्यः॥ इति	=त्यप् अर्थात् (त्य) प्रत्ययलगाकर (नित्य) ऐसा(शब्द)
निष्पादितत्वात् ॥;धर्म–आदीनि ॥	=सिद्ध वा निष्पन्न होता है ॥ धर्म–अधर्म–आकाश-पुद्गल–जीव–काल
द्रव्याणि॥गति- हेतुत्व–आदि-विशेषलक्षण	=द्रव्य हैं गति-हेतुत्व आदिकसब द्रव्योंमें न व्यापने वाले गुणोंसे(=विशेष लक्षण)
द्रव्यार्थ[१]–आदेशात्॥च॥अस्तित्व–आदि–	–द्रव्यस्वरूपके आदेशकरि और (=च) अस्तित्वादिक (=सामान्य लक्षण)
सामान्य-लक्षण-द्रव्य अर्थ–आदेशात् ॥ च	=सब द्रव्योंमें व्यापनेवाले गुणोंसे द्रव्यार्थिक नयके नियमसे

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके प्रथम संस्करण में' द्रव्यत्व–आदेशात् पाठ है हमने 'द्वितीयावृत्ति' का पाठ 'द्रव्यार्थादेशात् लिया है क्योंकि यह पिछला पाठ तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी मिलता है। दोनों पाठों का अर्थ एक सम पड़ता है। (२) गुण अथवा लक्षण के दो भेद हैं (i)सामान्य और (ii) विशेष (i)जो सब द्रव्योंमें व्यापें वे सामान्य अथवा साधारण हैं वे गुण अनेक हैं परन्तु उनमें अस्तित्व–वस्तुत्व–द्रव्यत्व प्रमेयत्व–अगुरुलघुत्व प्रदेशत्व–ये मुख्य हैं(देखो अध्याय २ पृष्ठ २६)(ii)जो सब द्रव्योंमें न व्यापें उसको विशेष गुण कहते हैं जैसे जीवका विशेषगुण ज्ञान ॥ नित्य और अवस्थित शब्दोंमें क्या भेद अथवा अन्तर है। देखो पं० जयचंदरायजी वचनिका पृष्ठ ४११) द्रव्यार्थिक नयके आदेशकरि द्रव्योंका अपने गति हेतुत्व स्थितिहेतुत्व आदि विशेष गुण तथा अस्तित्व आदि सामान्य लक्षणका किसी समयमें न छोड़ना सो नित्य है। धर्मादिक षट् द्रव्योंकी कही गई संख्या तथा उनके प्रदेशोंकी कथित इयत्ता (संख्या) कभी भी न्यून वा बढ़ती नहीं होना उसे अवस्थित कहते हैं। भावार्थ अवस्थित विशेषणसे द्रव्यों तथा उनके प्रदेशोंकी संख्याका क्रम कभी घटेगा बढ़ेगा नहीं ज्योंका त्यों अथवा वैसाही क्रम रहेगा ॥

कदाचिदपि न व्ययन्तीति नित्यानि। वक्ष्यति हि तद्भावाव्ययं नित्यमिति इयत्ताऽव्यभिचारादवस्थितानि धर्मादीनि षडपि द्रव्याणि कदाचिदपि षडिति इयत्त्वं नातिवर्तन्ते। ततोऽवस्थितानीत्युच्यन्ते॥ न विद्यते रूपमेषामित्यरूपाणि, रूपप्रतिषेधेन तत्सहचारिणां रसादीनामपि प्रतिषेधः। तेन अरूपाण्यमूर्तानीत्यर्थः॥

यथा सर्वेषां द्रव्याणां नित्यावस्थितानीत्येतत्साधारणं लक्षणं तथा अरूपित्वं पुद्गलानामपि प्राप्तम्।

कदाचित्=अपि=न=व्ययन्ति। इति=नित्यानि॥	=कभी भी नाश वा नष्ट नहीं होती हैं इसप्रकार नित्य हैं वा अविनाशी हैं
वक्ष्यते। हि=तद्भाव-अव्ययम्॥	=क्योंकि(=हि) (इस अध्यायके इकतीसवें सूत्रमें) कहेंगे कि "तद्भावाव्ययं नित्यम्" अर्थात् जो (तद्भाव) रूपसे वा सत्स्वभावसे(=तद्भाव)अविनाशी (=अव्यय) है
नित्यम्॥ इति॥ इयत्ता-अव्यभिचारात्॥ अवस्थितानि॥	=सोनित्य है; इतनेका होना परिमाण वा गिनतीके न छोड़ने(के हेतु)से अवस्थित हैं
धर्मादीनि॥ षट्॥ अपि=द्रव्याणि॥ कदाचित्=अपि=षट्	=धर्मादिक छह ही(=अपि) द्रव्य हैं किसीकाल में भी(=अपि) छह हैं
इति=इयत्तम्॥ न=अतिवर्तन्ते।	=इस प्रकार परिमाण को वा संख्याको नहीं उलंघे हैं, नहीं त्यागे हैं
ततः=अवस्थितानि॥ इति=उच्यन्ते। न=विद्यते।	=तिसलिये(ये छहो द्रव्य) अवस्थित कही जाती हैं। नहीं है
रूपम्॥ एषाम्॥ इति=अरूपाणि॥ रूप-प्रतिषेधेन॥	=रूप वा वर्ण जिनके इस प्रकार(येद्रव्य)अरूपी हैं। रूपके निषेधसे
तत्-सहचारिणाम्॥ रसादीनाम्॥ अपि=	=उस(रूप=वर्ण=रंग)केसहचारी अर्थात्एकसाथरहनेवालेरस-स्पर्श गंधकीभी(=अपि)
प्रतिषेधः॥ तेन॥ अरूपाणि॥ अमूर्तानि॥	=निवृत्ति है। तिस(रूपके प्रतिषेध) से अरूपी हैं अमूर्त हैं
इति=अर्थः॥ यथा=सर्वेषाम्॥ द्रव्याणाम्॥ नित्य-	=ऐसा अभिप्राय है। जैसे समस्त द्रव्योंके नित्य
अवस्थितानि॥ इति=एतत्॥ साधारणम्॥	=अवस्थित ऐसा यह(=एतत्)सामान्य
लक्षणम्॥ तथा=अरूपित्वं॥ पुद्गलानाम्॥ अपि=प्राप्तम्॥	=लक्षण है। तैसे अरूपीपना पुद्गलोंके भी सिद्ध है।

(१) 'विद्यते'—यह रूप विद् धातुसे बना है। 'विद्' सत्ता और धातु तीनों अर्थोंमें आता है जब सत्ता होता है तब ज्ञान संदित, और कुमगाह ये तीन अर्थ देता है। ( ) विद् ज्ञाने है द्वितीय गणका धातु परस्मैपद सकर्मक जानना अर्थमें गुण संज्ञाहोकर वेद् रूपहुआ अन्यपुरुष एक वचन परस्मैपद, वर्तमान कालकी क्रिया का ति लगानेसे वेद्+ति=वेत्ति हुआ ( ) विद्=होना दिवादि चतुर्थगण आत्मनेपद अकर्मक धातु यहांपर है। चतुर्थगणका विकरण 'य और वर्तमान काल अन्यपुरुष एक वचन आत्मने पदका 'ते' जोड़नेसे विद्+य+ते=विद्यते हुआ ( ) विद्=पाना तुदादि उभय पदी सकर्मक धातु है विकरण 'अ लगानेसे प्रथम न् लगाया जाता है विन्द्+अ हुआ ति प्रत्यय लगानेसे विन्दति=पाता है विन्दते=अपने लिये पाता है दो रूप बने

अतस्तदपवादार्थमाह—

॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥

रूपं मूर्तिरित्यर्थः ॥ का मूर्तिः ? रूपादिसंस्थानपरिणामो मूर्तिः ॥ रूपमेषामस्तीति रूपिणः । मूर्तिमन्त इत्यर्थः ॥ अथवा रूपमिति गुणविशेषवचनशब्दस्तदेषामस्तीति रूपिणः ॥ रसाद्यग्रहणमिति चेत्

अतः अव्यद्—अपवाद—अर्थम् ॥ आह ।	=इसलिये उस (अरूपित्व) के विरोध या भिन्नताके लिये (अगले सूत्रमें) कहते हैं कि
रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥	=रूपिणः पुद्गलाः भवन्ति ॥ ५ ॥
सूत्रार्थः—रूपिणः पुद्गलाः भवन्ति ।	=(सूत्रार्थ) (छःद्रव्योंमेंसे कथन) पुद्गल रूपी हैं, पुद्गल मूर्तिमान हैं अर्थात् पुद्गलोंके रूप अथवा मूर्ति है और नत्रोंसे देखेजासकते हैं और स्पर्श जासकते हैं
वृत्त्यनुवाद रूपम् मूर्तिः इति अर्थः का मूर्तिः	=रूप है सो मूर्ति है ऐसा अर्थ है (प्रश्न) मूर्ति क्या है ? ।
रूप—आदि—संस्थान—	=(उत्तर) रूप—रस-गन्ध—स्पर्शका गोल, तिकोना, चौकोना लंबा आकार (=संस्थान) का
परिणामः मूर्तिः ; रूपम् एषाम् अस्ति इति	—परिणमन है सो मूर्ति है । रूप जिनके है ऐसे
रूपिणः ; मूर्तिमन्तः इति अर्थः अथवा रूपम् इति	=रूपी हैं आकारवान् ऐसा अर्थ है अथवा रूप ऐसा
गुण-विशेष-वचन शब्दः तत् एषाम् अस्ति इति रूपिणः	—गुणका भावि (=रस-गंध-स्पर्श का भी) वाची शब्द है । वह (रूपगुण) जिनके हैं ऐसे रूपी हैं
रस—आदि—अग्रहणम् इति चेत्	=(इससूत्रविषैं रूपमें) रस गंध-स्पर्शका ग्रहण नहीं होता है ऐसी शंका है ?

( ) विदु = विचारकरना रुधादि सातवांगणका आत्मनेपदी सकर्मक धातु है । इसका विकरण 'न' को धातुके स्वर और अन्तके व्यंजनके मध्य लगाते हैं अतः विदु = विनदु । यदि क्रियाका क्ति प्रत्यय लगाना हो तो इस विकरण का 'अ' गिरजाता है इसलिये विन्दु + ते 'ते' के कारण 'दु' तु में बदलगया (देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ११ में खरि भर्ता चरः स्युः सूत्रका अर्थ) इसलिये अब वित्त =वह विचार (अपने लिये) करता है रूप बनगया ॥ ( ) विदु चुरादिदशवेंगणका आत्मनेपदी अकर्मक और सकर्मक कहना प्रसिद्धकरना अनुभव करना रहना चार अर्थोंमें आता है ॥ इसके विकरण 'अय' के पहिले धातुके उपान्तिम ह्रस्व स्वरको प्रायःगुण सदा होजाती है जैसे विदु = वेदु + अय) उक्त तके जोड़नसे वेदयते रूप कहता है, प्रसिद्ध करता है अनुभवकरता है रहता है अर्थोंमें बनता है ॥ सहतुक सकर्मक रूप वदयति-वेदयते हैं ॥ (१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ और पाठ एकसा है ? रूपमेषामस्त्येषु वास्तीति रूपिणः = रूपम् एषाम् अस्ति वा एषु (रूपम्, अस्ति इति रूपिणः = जिनके रूप है वा जिनमें रूप है ऐसा 'रूपिणः' शब्दका विग्रह है

...ग्यान। अध्यते हि तद्भावाव्यय नित्यमिति इयत्ताऽन्यामचाराद्वास्य...

न। तदविनाभावात्तदन्तर्भाव ॥ पुद्गला इति बहुवचन भेदप्रतिपादनार्थम् ॥ भिन्ना हि पुद्गला। स्कन्धपरमाणुभेदात्तद्विकल्प उपरिष्टाद्वक्ष्यते॥ यदि प्रधानवदरूपत्वमेकत्वं चेष्ट स्यात् विश्वरूपकार्यदर्शनविरोध स्यात्॥आह किं पुद्गलवद्धर्मादीन्यपि द्रव्याणि प्रत्येकं भिन्नानीत्यत्रोच्यते-

न॰	=(उत्तर) सो नहीं है अर्थात् रूपमें रस–गन्ध–स्पर्शका ग्रहण है
तद्–अविनाभावात् ॥	=उस (रूप) के अविनाभावकरि अथवा उस (रूप) से व्याप्त होने (केकारण)से या उस (रूप) के बिना उनकी स्थिति न रहने से
तद्_ अन्तर्भाव ॥	=उस (रूप) में (रस-गन्ध-स्पर्श) गर्भित हैं।
पुद्गलाः॥ इति॰बहुवचनम् ॥। भेद प्रतिपादन अर्थम्॥।	(सूत्रमें) पुद्गलाः ऐसा बहुवचन है =सो (पुद्गलोंके) भेदोंके जनावनेके लिये है।
भिन्ना॥ हि॰पुद्गलाः॥	क्योंकि(=हि) पुद्गल भिन्न भिन्न हैं
स्कन्ध-परमाणु-भेदात्॥तद्–विकल्पः ॥	=स्कन्ध परमाणु के भेदसे उन (पुद्गलों) के भेद
उपरिष्टात्॰वक्ष्यते । यदि॰प्रधानवत् ॰	=आगे कहेंगे ।जो सांख्य मतकी सत्वरजस्तमोरूप तीनों गुणोंवाली प्रकृतिके सदृश
अरूपित्वम्॥।एकत्वम्॥।च॰इष्टम् ॥। स्यात् T	=अरूपता और (=च) एकता (पुद्गलोंके) मानीजाय (=इष्ट स्यात्) तो
विश्व-रूप कार्य-दर्शन-विरोध ॥ स्यात् T	=संसार में मूर्तिक कार्य के देखनमें विरोध होजाय अर्थात् यदि सांख्य मतके अनुसार प्रकृतिको अरूपी और एक माने तो जगतमें बहुतसे कार्य मूर्तिक दीखते हैंसो न दीखें भावार्थ प्रकृतिरूपा है,मूर्तिक है,उसके बहुत भेद हैं,और विशेष अवस्थाओंमें दीखतेभी हैं।
आह।किम्॰पुद्गलवत्॰धर्म–आदीनि ॥। अपि॰द्रव्याणि॥।प्रत्येकम्॰भिन्नानि॥।इति॰अत्र॰उच्यते	= (शिष्य) पूछता है कि क्या पुद्गल द्रव्यके समान धर्म अधर्म आकाश भी प्रत्येक द्रव्य भिन्न भिन्न(=भिन्नानि) हैं यहां (अग्रिमसूत्रमें)कहा जाता है कि

'रूप शब्दके अनेक अर्थ होते हैं जैसे गोरूपाणि गोद्रव्याणि अर्थात् गौ द्रव्य है। यहां रूप शब्दका अर्थ द्रव्य है। 'चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं स्वभाव इत्यर्थः अर्थात् चैतन्य पुरुषका स्वभाव है। यहां रूप शब्दका अर्थ स्वभाव है। एकरूपमध्ययनं कार्य–एकवाराभ्यासः कार्यः अर्थात् एक बार अभ्यास करना चाहिये। यहां रूप शब्दका अर्थ अभ्यास है। स्वरूप शब्दस्य इत्या भूतिरित्यर्थ शब्दका स्वरूप अर्थात् शब्दका अपना भवन है। यहां रूप शब्दका अर्थ भवन है। 'रूप–चत्वारि महाभूतानि उपादाय रूप चेति रूप अर्थात् चार महाभूतोंको ग्रहण कर, यहां रूप शब्दका अर्थ चार महाभूत है। 'चक्षुर्ग्रहणयोग्यो योऽर्थस्तद्रूपमिति' अर्थात् नेत्र इन्द्रियके ग्रहण करने योग्य जो पदार्थ हो वह रूप है, यहां रूप शब्दका अर्थ गुणविशेष है। कहीं कहीं पर रूप शब्दका मूर्ति भी अर्थ है जिस प्रकार रूपिद्रव्यं मूर्तिमद् द्रव्य अर्थात् यह द्रव्य मूर्तिमान है यहां रूप शब्दका अर्थ मूर्ति है। परन्तु उपयुक्त अनेक अर्थोंके रहते भी शास्त्रकी सामर्थ्यसे यहां पर रूप शब्दका ... यहां रूप शब्द ...

॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥

आङ् अयमभिविध्यर्थ । सौत्रीमानुपूर्वीमनुसृत्यैतदुक्तं, तेन धर्माऽधर्माकाशानि गृह्यन्ते । एकशब्द सख्यावचनस्तेन द्रव्य विशिष्यते,

(१)आ आकाशादेक(२)द्रव्याणि ॥६॥ = आ आकाशात्-एकद्रव्याणि भवन्ति ॥६॥

सूत्रार्थ —(१)आ (२)आकाशात् (३)एकद्रव्याणि (४)भवन्ति । =(प्रथम सूत्रके धर्म द्रव्यसे लेकर) आकाश पर्यंत एक एक द्रव्य हैं अर्थात् धर्मद्रव्य-अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य अखंड रूप हैं बहुत या अनेक नहीं हैं

हरपदानुवाद:—आङ् (१) अयम् (२) अभिविधि-अर्थः (३) =आङ् उपसर्ग अर्थात् आ शब्द है सो यह अभिविधि, अभिव्याप्ति या पर्यंत के अर्थ है

सौत्रीम् (१) आनुपूर्वीम् (२) =(इस अध्याय के प्रथम) सूत्र द्वारा पठित (=सौत्रीम्) क्रमके (=आनुपूर्वीम्)

अनुसृत्य — एतत् (१) उक्तम् (२), तेन (३) =अनुसार (=अनुसृत्य) यह कथन हुआ कि जिस (आङ् या पर्यंत) करि

धर्म-अधर्म-आकाशानि (१) गृह्यन्ते । =धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य लिये जाते हैं अथवा ग्रहण किये जावे हैं अर्थात् इस अध्याय का प्रथम सूत्र ऐसा है कि "धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गलाः अजीव-कायाः" आकाश द्रव्य पर्यंत सूत्रके आरम्भिक क्रमानुसारमें धर्म-अधर्म आकाश तक गर्भित होगये हैं शेष द्रव्य छूटगये)

एक शब्द (१) संख्या-वचन (२) तेन (३) द्रव्यम् (४) विशिष्यते । =(इस सूत्रमें) एक शब्द है सो संख्यावाची है जिस (एकशब्द) से द्रव्य विशेषित है —अर्थात् एक शब्द द्रव्यका विशेषण अथवा द्रव्यके गुणका वाचक है

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सवमएक है । श्वेताम्बर आम्नायके समाष्य०में "आ आकाशादेकद्रव्याणि' और 'आकाशादेक द्रव्याणि" ऐसे दोपाठ हैं पिछले पाठमें आङ् की (=अर्थात् आ की) आकाश शब्द के साथ संधि करदीगई है ऐसा समाष्य० की वरण टिप्पणीमें लिखा है

(२) जब ये तीनों एक एक द्रव्य हैं तो जीव पुद्गल और काल इन तीनों द्रव्योंमें बिना कहे भी अनेकता सिद्ध होजाती है सो आगमानुसार जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं पुद्गल परमाणु जीवों से अनन्त गुणे हैं और काल द्रव्य के अणु असंख्यात हैं ।

(३) आकाशादेकद्रव्याणि (=आ आकाशात्-एक-द्रव्याणि) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में उपर्युक्त पाठ है यहां प्रथम 'आ' शब्द अभिव्याप्ति (पर्यंत) रूप अर्थका बोधक है पूर्वोक्त पाठमें भी आकाश शब्दके पूर्व आ" पद है परन्तु दीर्घ रूप संधि होगई है ।

एक द्रव्य एकद्रव्यमिति ॥ यद्येवं बहुवचनमयुक्तं, धर्माद्यपेक्षया बहुत्वसिद्धिर्भवति ॥ ननु एकस्या नेकार्थप्रत्यायनशक्तियोगादेकैकमित्यस्तु लघुत्वाद् द्रव्यग्रहणमनर्थकं, तत्क्रियते[1] द्रव्यापेक्षया एकत्व ख्यापनार्थं द्रव्यग्रहणम् ॥ क्षेत्रभावापेक्षया असंख्येयत्वानन्तत्वविकल्पस्येष्टत्वात् न जीवपुद्गलवत्

एकम्¹॥द्रव्यम्²॥एकद्रव्यम्³॥इति॥ =‘एक द्रव्यं’ समासरूपमें “एकद्रव्य” ऐसा होता है अर्थात् टुकड़े रूप नहीं है न दो, तीन, चार पांच इत्यादि संख्या रूप हैं एक ही द्रव्य हैं बहुत नहीं हैं ऐसी-धर्म अधर्म आकाश तीन ही द्रव्य हैं

यदि॥एवम्॥ =(प्रश्न)जो ऐसा है अर्थात् धर्म-अधर्म आकाश एकएक द्रव्य हैं वा अभेदरूप द्रव्य है

बहुवचनम्¹॥अयुक्तम्²॥ =तो (सूत्रमें द्रव्याणि ऐसा) बहुवचन (का प्रयोग) ठीक नहीं है

धर्म आदि अपेक्षया¹॥बहुत्वसिद्धि²॥भवति। =(उत्तर) धर्म अधर्म-आकाशकी अपेक्षासे बहुवचनकी प्राप्ति होती है अर्थात् धर्म अधर्म-आकाश ये तीन द्रव्यें पृथक् पृथक् हैं परन्तु एक एक हैं टुकड़े रूपमें नहीं हैं तीन होनेके हेतुसे “द्रव्याणि” इस बहुवचन शब्दकी प्राप्ति है यदि एक द्रव्य होती तो सूत्रमें एक वचन ‘द्रव्य” ऐसा आता और दो द्रव्यें अभेद रूप वा एकएक होतीं तो “द्रव्ये” ऐसा द्विवचन सूत्रमें आते क्यों कि तीनद्रव्यें धर्म-अधर्म और आकाश पृथक् पृथक् टुकड़े रहित हैं इसलिये सूत्रमें “द्रव्याणि” ऐसा बहुवचन आये हैं

ननु॥एकस्य¹॥अनेक अर्थ प्रत्यायन-शक्ति-योगात्²॥ =प्रश्न एक (शब्द) के अनेक अर्थोंके उपजानेकी सामर्थ्यके प्रसंगसे

एक एकम्¹॥इति॥अस्तु। =(यदि सूत्रमें“एक द्रव्याणि”इस वाक्यके स्थानमें)एक एक(=एकैक)ऐसा होता

लघुत्वात्¹॥द्रव्य-ग्रहणम्²॥अनर्थकम्³॥ =तो(सूत्र)छोटा होजाकरि द्रव्य शब्दके ग्रहण की आवश्यकता (इससूत्रमें) न होती

तत्-क्रियते। द्रव्य-अपेक्षया¹॥ =(उत्तर अतः)ऐसा किया गया है कि द्रव्यकी अपेक्षासे(न कि क्षेत्र,भावकी अपेक्षासे)

एकत्वख्यापन अर्थम्¹॥द्रव्य-ग्रहणम्²॥ =एकपन (धर्म अधर्म-आकाश के) कहनेके लिये द्रव्य(शब्द)का(सूत्रमें) आदान है

क्षेत्र भाव अपेक्षया¹॥असंख्येयत्व अनन्तत्व विकल्पस्य²॥इष्टत्वात्³॥न॥जीव-पुद्गलवत्॥ =क्योंकि क्षेत्र,भावकी अपेक्षासे(धर्म अधर्म-आकाशके)असंख्यातपना अनन्तपनाके भेद माने हैं। न जीव और पुद्गल के समान

1 सवार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें ‘तत्क्रियते’ के स्थान में ‘तथापि’ पाठ है किसी किसी हस्तलिखित प्रतिमें ‘तत्क्रियते’ ऐसा पाठ है परन्तु बहुधा हस्तलिखित प्रतियोंमें ‘तत्क्रियते’ पाठ है इसलिये यह पाठ लिया गया है।

एषा बहुत्वमित्येतदनेन ख्याप्यते ॥ अधिकृतानामेव एकद्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते

॥ निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

एषाम्॥ बहुत्वम्॥ इति॰; एतद्॥	=इन (धर्म अधर्म आकाश) के (द्रव्यकी अपेक्षासे) बहुत्वपन है ॥ यह (=एतद्)
अनेन॥ ख्याप्यते ।; अधिकृतानाम्॥ एव॰	=इस (सूत्र) करि प्रसिद्ध है ॥ प्रकरणरूप कियेगये ही
एक-द्रव्याणाम्॥ विशेष प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ इदम्॥ उच्यते	=अभेदरूप(धर्म अधर्म आकाश)द्रव्योंके विशेष जाननेके लिये यह कहाजाताहैकि

सूत्रम् "निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥ =(आ आकाशात्) निष्क्रियाणि च (भवन्ति) ॥७॥

सूत्रार्थ-आ॰आकाशात्॥ निष्क्रियाणि॥ च॰ भवन्ति ।	=और(=च)आकाश पर्यंत(द्रव्यें)हलनचलनरूप क्रियासे रहित हैं । अथवा आकाश पर्यंत(द्रव्यें)हलन चलन रूप क्रियासे भी(=च रहित हैं अर्थात् धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य,

आकाशद्रव्य नित्य-अवस्थित-अरूपी-एकएक द्रव्य होनेके अतिरिक्त(= च)अपने अपने स्थानसे कदाचित् चलायमान नहीं होते हैं

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र का तथा हमारे यहां का शुद्ध पाठ 'निष्क्रियाणि च' एक है उनके यहां की भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकाके पृष्ठ ३५६ में नि क्रियाणि च अथवा यह पाठ है । हमारे यहां भी कितनीही पुस्तकोंमें जैसे तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६६ पर और ज्ञानचन्द्रजी लाहोर के मुद्रित 'तत्त्वार्थ सूत्राणि' के पृष्ठ १५ पर नि क्रियाणि च' पाठ है सो अशुद्ध है क्योंकि दुस्-दुर् वा अव्यय दुःख कठिनता अर्थमें एकार्थ वाची हैं और निस् निर ये दो अव्यय निषेध नहि, निश्चय रहित, अर्थमें समानार्थक शब्द हैं जिसके स' को 'ससजुषो रुः (८-२-६६ सूत्रसे) =पदान्त सकार और सजुष शब्दके षकार को रु हो रु हुआ 'रु' में उ इत्संज्ञक है इस उ' का लोप होगया फिर केवल निर् रहगया अब निस् और निर् दोनोंका निर् रूप रहा । "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" (८।३।१५ सूत्र से) खर् परे हो या अवसानमें पदान्तरेफको विसर्जनीय आदेशहो 'निर्' का निः हुआ । निः+क्रिया+जस (=जस प्रथमा बहुवचनका चिन्ह है) ॥

कुप्वोः ≍क ≍पौ च (८-३-३७ सूत्रसे) कवर्ग पवर्ग परे हो तो विसर्जनीयको यथासंख्य जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश हो और विसर्जनीय भी(=च)हो। इस सूत्रमें विसर्जनीय का स् नहीं होने दिया क्योंकि यह सूत्र'विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४(=खर् परे हो तो विसर्जनीयको सकार आदेश हो) सूत्र के प्रयोग को रोकता है ॥ इससे विसर्जनीय का विसर्जनीयही निरत रहता ॥ अब 'इदुदुपधस्य चा ऽप्रत्ययस्य ८।३।४१ सूत्र (कवर्ग पवर्ग परे हो तो इकार और उकार है उपधामें जिसके ऐसे प्रत्ययभिन्न के विसर्जनीयको षकारादेश हो ॥ इसलिये निष्+क्रिया+जस् रूप हुआ ॥ यदि यहांपर कोइ तर्क करे कि हम संधि नहीं करते हैं निर+क्रियाणि अथवा निः क्रियाणि ही रक्खाजाय तो क्या हानि है ॥ (उत्तर) एकपदमें अर्थात् अखंड पदमें जैसे राम+नाम्=रामाणाम्, धातुके साथ उपसर्गमें जैसे प्र+भवति=प्रभवति=अधिक मान करता है और समासमें जैसे यहां निः+क्रिया+जस=निष्क्रियाणि नित्य या आवश्यकतासे संधि होती है । यहां पर यदि संधि न की जाती तो 'क्रिया' शब्द तो स्त्रीलिंग है नपुंसकलिंग नहीं होसकताथा यहांपर निष्क्रियाणि प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसकलिंगीहै परन्तु अन्य प्रकारके वाक्योंमें वक्ताकी इच्छा है संधि करे या न करे इसलिये निःक्रियाणि' शब्द अशुद्ध है और बिना 'समास के क्रिया शब्द का कदापि क्रियाणि नहीं बनसकता है ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमान पर्यायो द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतु क्रिया, तस्या निष्क्रान्तानि निष्क्रियाणि॥ अत्र चोद्यते- धर्मादीनि द्रव्याणि यदि निष्क्रियाणि ततस्तेषामुत्पादो न भवेत्। क्रियापूर्वको हि घटादीनामुत्पादो दृष्ट। उत्पादाभावाच्च व्ययाभाव इति॥ अत सर्वद्रव्याणामुत्पादादित्रयकल्पनाव्याघात इति॥ तन्न॥ किं कारणम्?

(१)उभय-निमित्त-वशात्, द्रव्यस्य, देशान्तरप्राप्ति-हेतु = दोनों (बाह्य, अभ्यन्तर) निमित्तके वशसे द्रव्यके (एकक्षेत्र से) अन्य क्षेत्रमें गमन करनेका

उत्पद्यमानः, पर्याय, क्रिया = कारणरूप उपजी जो पर्याय अथवा विशेष अवस्था सो क्रिया है

अर्थात् पदार्थोंका क्षेत्रांतरमें गमन तथा प्रदेशोंका सकंपनारूप क्रिया होती है

तस्याः, निष्क्रान्तानि, निष्क्रियाणि, अत्र चोद्यते = तिस (क्रिया) से पृथक् होनेसे वे क्रिया रहित हैं। यहां तर्क की जाती है कि

धर्म (२)आदीनि, द्रव्याणि, यदि निष्क्रियाणि = धर्म अधर्म आकाश द्रव्यें यदि हलनचलनरूप क्रियासे रहित हैं

ततस् तेषाम्, उत्पाद, न भवेत् = तो (=तत) तिनके उत्पाद न होना चाहिये

क्रिया-पूर्वकः, हि घटादीनाम्, उत्पादः, दृष्टः = क्योंकि (=हि) क्रिया है कारण जिसको ऐसी उत्पत्ति घटादिकोंकी देखीजाती है

उत्पाद अभावात्, च व्यय अभाव, इति = और (=च) उत्पत्तिके न होनेसे नाशका अभाव है

अतस् सर्व-द्रव्याणाम्, उत्पाद आदि-त्रय-कल्पना- = इसलिये समस्त द्रव्योंके उत्पत्ति, विनाश, ध्रौव्य वा स्थिरपना तीनों कल्पनाओंमें

व्याघात, इति तत्, न, किं कारणम्? = बाधा अथवा विघ्न आता है। (उत्तर)सो (व्याघात) नहीं है।(प्रश्न)क्या कारण है

(१) क्या शब्द पुलिंग और नपुंसकलिंग दोनों है (२) क्रियापरिणामशक्तियुक्तं द्रव्यमभ्यन्तरनिमित्तं प्रेरणादिकं बाह्यनिमित्तं तद्वशादित्यर्थः॥

क्रिया परिणाम-शक्ति-युक्तं, द्रव्यम्, अभ्यन्तर-निमित्तम्, = क्रियारूप परिणमन शक्ति सहित द्रव्य है सो अभ्यन्तर निमित्त है अर्थात् द्रव्यमें क्रियारूप परिणमनकी सामर्थ्य है सो अभ्यन्तर निमित्त है।

प्रेरण आदिकम्, बाह्य निमित्तम्, = (और पर द्रव्यकी) प्रेरणा प्रेषण वा सन्मुख आदिक है सो बाह्य कारण है

तद्-वशात्, इति अर्थः, = तिन (दोनों निमित्तों) के आश्रयसे (द्रव्यके क्रियाउत्पन्न होती है) ऐसा तात्पर्य है

(३) आदीनि — अर्थात् उमास्वामीने कालका उपदेश यहां किया है उसमें अनन्तपदार्थोंमें आदि शब्दमें कालको नहीं लिया है यद्यपि कालभी निष्क्रियहै

अन्यथोपपत्ते ॥ क्रियानिमित्तोत्पादाभावेऽप्येषां धर्मादीनामन्यथोत्पाद कल्प्यते॥ तद्यथा-द्विविध उत्पाद स्वनिमित्त परप्रत्ययश्च ॥ स्वनिमित्तस्तावदनन्तानामगुरुलघुगुणानामागमप्रामाण्यादभ्युपगम्यमानानां षट्स्थानपतितया वृद्ध्या हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो व्ययश्च ॥ परप्रत्ययोऽपि अश्वादिगतिस्थित्यवगाहनहेतुत्वात्क्षणे क्षणे तेषां भेदात्तद्धेतुत्वमपि भिन्नमिति परप्रत्ययापेक्ष उत्पादो विनाशश्च व्यवह्रियते ॥ ननु यदि निष्क्रियाणि

अन्यथा॰उपपत्ते: क्रियानिमित्त-उत्पाद-अभावे =क्योंकि दूसरे प्रकारसे भी सिद्ध होती है। क्रियानिमित्तक उत्पादके न होनेपर
अपि एषां धर्म-आदीनाम् अन्यथा॰उत्पाद कल्प्यते =भी इन धर्म-अधर्म-आकाशके औरप्रकार उत्पाद माना जाता है
तद् यथा॰द्वि-विध: उत्पाद: स्वनिमित्त: च॰ =वह ऐसे है-उत्पाद दो प्रकार है स्वनिमित्त और (=च)
परप्रत्यय स्वनिमित्त: तावत्॰अनन्तानाम् अगुरुलघु =परनिमित्त। स्वनिमित्त ता (=तावत्) अनन्त अगुरुलघु
गुणानाम् आगम-प्रामाण्यात् अभ्युपगम्यमानानाम् =गुणोंके जो शास्त्र प्रमाणकरि माने हुये हैं
षट्-स्थानपतितया वृद्ध्या हान्या च॰ =छह स्थानोंमें रहने वाली वृद्धि और हानिकरि
प्रवर्तमानानाम् स्वभावात् एतेषाम् =प्रवर्तनशील (अगुरुलघुगुणोंके)स्वभावसे अर्थात् परिणमनसे इन(धर्म अधर्म आकाश)के
उत्पाद: व्यय: च॰ =उत्पाद होता है। और (=च) (इसी प्रकार) व्यय होता है
पर-प्रत्यय: अपि॰अश्वादि-गति-स्थिति =और (=अपि) पर निमित्त (उत्पाद व्यय) है सो अश्वादिकका गमन स्थिति
अवगाहन हेतुत्वात् क्षणे क्षणे =अवगाहनका कारण (धर्म अधर्म आकाशके यथासंख्य) होनेसे क्षण क्षणमें
तेषाम् भेदात् तद् हेतुत्वम् अपि॰भिन्नम् इति॰ =तिन(गति स्थिति-अवगाहन)के भेद होनेसे उन(गति आदिके) हेतुपना भी भिन्न है
अर्थात् मनुष्य,गाय, अश्वादिकको गमनका निमित्त धर्म द्रव्य है। स्थितिका कारण अधर्मद्रव्य है और अवकाशदान अथवा स्थान दानकाहेतु आकाश द्रव्य है और क्षण क्षणमें उन गति स्थिति अवगाहनके भेद हैं इसलिये उन गति-स्थिति-स्थान दानके कारणभी पृथक् पृथक् हैं
परप्रत्यय अपेक्ष: उत्पाद: विनाश: च॰ =परनिमित्त अपेक्षा उत्पाद, व्यय भी (=च)
व्यवह्रियते ॥ननु॰। यदि॰निष्क्रियाणि =माना जाता है। प्रश्न। यदि हलन चलन रूप क्रियासे रहित

धर्मादीनि, जीवपुद्गलानां गत्यादिहेतुत्वं नोपपद्यते। जलादीनि हि क्रियावन्ति मत्स्यादीनां गत्यादिनिमित्तानि दृष्टानीति॥ नैष दोषः॥ बलाधाननिमित्तत्वाच्चक्षुर्वत्। यथारूपोपलब्धौ चक्षुर्निमित्तमपि न व्याक्षिप्तमनस्कस्यापि भवति॥ अधिकृतानां धर्माधर्माकाशाना-

धर्म आदीनि॥ जीव पुद्गलानाम्॥ गति आदि	=धर्म अधर्म आकाश द्रव्य हैं वो जीव और पुद्गलोंके गति स्थिति अवगाहनाका
हेतुत्वम्॥ न उपपद्यते। जलादीनि॥ हि क्रियावन्ति॥	=निमित्तपना प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि (हि) क्रियावान् जलादिक
मत्स्य आदीनाम्॥ गत्यादि-निमित्तानि॥ दृष्टानि॥ इति॥	=मीन आदिकोंके गमनादिकके कारण इसप्रकार देखे जाते हैं
न एषः॥ दोष॥ बलाधान निमित्तत्वात्॥ चक्षुर्वत्	=(उत्तर)यह दूषण नहीं है। क्योंकि नत्रेन्द्रियके समान अप्रेरक निमित्त हैं अर्थात् धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य जीव तथा पुद्गलोंकी यथासंख्य गति, स्थिति, अवगाहनके लिये प्रेरणा नहीं करते हैं किन्तु यदि जीव और पुद्गल गमन करें तो धर्मद्रव्य गमन में अप्रेरक निमित्त होती है। अधर्मद्रव्य स्थितिमें उदासीनतासे कारणहोतीहै और इसी प्रकार आकाश द्रव्य अवगाहनमें बलाधान वा उदासीनतासे निमित्त होती है॥
यथा रूप-उपलब्धौ॥ चक्षुः॥ निमित्तम्॥ अपि	=जैसे-रूपके देखनमें (=उपलब्धौ) नेत्र निमित्त है तौभी (=अपि)
व्याक्षिप्त-मनस्कस्य॥ अपि	=न लगेहुये (मनुष्यके) मनके भी वा मनुष्यके अनाकर्षित चित्तकेभी
न भवति।	=(रूपकी उपलब्धि)नहीं होती हैअर्थात् यदि पुरुषका चित्त अन्य पदार्थमें लगाहो तब रूपका नहीं देखसकता है। जब नत्र और पुरुषका चित्त दोनों एकही कालमें किसी पदार्थकी ओर होवें तब पुरुषके नेत्र रूपके देखनमें निमित्त हैं नहीं तो निमित्त नहीं हैं
अधिकृतानाम्॥ धर्म अधर्म-आकाशानाम्॥	=प्रकरण प्राप्त जे धर्मद्रव्यके, अधर्मद्रव्यके,और आकाशद्रव्यके

(१) गत्यादि परिणतस्य बलाधानं कुर्वन्ति न तु स्वयं प्रेरयन्तीति भावः॥

गत्यादि-परिणतस्य॥ बलाधानम्॥ कुर्वन्ति। =(धर्मादिक द्रव्य) गमनादिक अवस्थाके अप्रेरक निमित्तको करती है
न तु स्वयम् प्रेरयन्ति। इति भावः। =किन्तु स्वयं (गति स्थिति—अवगाहनकी) प्रेरक नहीं हैं ऐसा तात्पर्य है

इसके पश्चात् अयमद्रव्यजीको वचनिकामें निम्न लिखित भाषाका वाक्य है"बहुरि सूत्रमें बहुवचन है सो पहले सूत्रमें कहे तिन तीनिही द्रव्यके मत्वर्थके अर्थि है। जीव पुद्गल क्रियावान हैं" ॥ देखो पंडित जयचन्दजी कृत वचनिका मुद्रित पृ० ५१५॥

निष्क्रियत्वेऽभ्युपगते जीवपुद्गलाना सक्रियत्वमर्थादापन्नम् ॥ कालस्यापि सक्रियत्वमितिचेन्न । अनधिकारात् अत एवासावेतैं सह नाधिक्रियते ॥ अजीवकाया इत्यत्र कायग्रहणेन प्रदेशास्तित्वमात्र निर्ज्ञातं नत्वियत्तावधारिता प्रदेशानामतस्तन्निर्धारणार्थमिदमुच्यते—

॥ असङ्ख्येय : प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥

निष्क्रियत्वे॥अभ्युपगते॥जीव	=निष्क्रियपना माननेमें जीव और
पुद्गलानाम्॥सक्रियत्वम्॥अर्थात्॥आपन्नम्॥	=पुद्गलोंके सक्रियपन अथवा क्रियावानपन अर्थसे या विषयसे प्राप्त होता है
कालस्य॥अपि॥सक्रियत्वम्॥इति॥चेत्॥न॥	=कालद्रव्यके भी क्रियावानपन (आता) है ऐसी शंका (=चेत्) है(उत्तर) सो नहीं है
अन्–अधिकारात्॥अत॥एव॥असौ॥	=क्योंकि कालद्रव्यका (यहां) विषय या प्रकरण नहीं है। इसलिये ही यह (कालद्रव्य)
एतैः॥सह॥न॥, अधिक्रियते॥	=इन (जीव, पुद्गल) के साथ (=एतै सह) प्रकरणरूप नहीं कियागया है
"अजीव काया:"॥इति॥अत्र॥कायग्रहणेन॥	='अजीव काया' ऐसे यहां (प्रथम सूत्रमें) कायके ग्रहण करनेसे
प्रदेश–अस्तित्वमात्रम्॥निर्ज्ञातम्॥न॥तु॥प्रदेशानाम्	=प्रदेशोंकी केवल (=मात्र) विद्यमानता जानीजाती है। परन्तु प्रदेशोंका
इयत्ता॥अवधारिता॥अतः॥	=परिमाण या संख्या (=इयत्ता) निश्चित नहीं की गईहै(=अवधारिता)। इसलिये
तद् निर्धारण-अर्थम्॥इदम्॥उच्यते॥	=उन(प्रदेशोंकी गिनती)का निश्चय करने केलिये यह(अग्रिम सूत्रमें)कहाजाताहै कि

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम्=धर्म-अधर्म-एकजीवानाम् असंख्येया प्रदेशा भवन्ति।८।

सूत्रार्थः–धर्म अधर्म एक जीवनाम्॥	=धर्मद्रव्यके, अधर्मद्रव्यके और एक जीवके

(१) निष्क्रियाणि च'सूत्रमें 'च' शब्दका अर्थ यहां पर और अथवा भी दोनों होसकतेहैं जैसाकि भिन्नभिन्न उपर्युक्त अनुवादसे प्रगटहीहै यदि 'च'शब्द 'और' के अर्थमें लवें तो तीन ही द्रव्य जो सूत्रमें कहीं हैं उनके सम्बन्धके अर्थ है अर्थात्धर्म अधर्म आकाश तीनको आकर्षण करता है प्रगट करता है वा ग्रहण करता है क्योंकि 'कालद्रव्य का अभी तक आचार्य ने उपदेश नहीं किया है। कालद्रव्य भी निष्क्रिय है। यदि 'च' शब्दका 'भी' अर्थ लेवे तो उसका सम्बन्ध द्रव्या के गुणोंसे होजाता है नकि उनकी संख्यासे अर्थात् ये तीन द्रव्य एक एक हैं दूसरा गुण उनमें यह है कि क्रिया रहित हैं तब दोनों सूत्रोंको अर्थ अत्यन्त सरलतासे यह होता है कि धर्म अधर्म आकाश एक एक द्रव्य हैं और क्रिया रहित भी हैं॥

(२) इयत्ता (स्त्री०) = 'इतनेका होना। सीमा। परिमाण। माप। संख्या। गिनती पथपद्मकोश पृष्ठ १७॥ अतः "इयत्ता" का अनुवाद 'संख्या' किया गया है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें इस सूत्रके स्थानमें नीचे लिखे हुये दो सूत्र हैं जिनसे विदित है कि दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका एकसा तात्पर्य है। असंख्येयाःप्रदेशाधर्माधर्मयोः ॥७॥ जीवस्य च ॥८॥ देखो उक्त सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १२२

संख्यामतीता असंख्येया ॥ असंख्येयस्त्रिविध । जघन्य उत्कृष्टोऽजघन्योत्कृष्टश्चेति ॥ तत्रेहाजघन्योत्कृष्टासंख्येय परिगृह्यते। प्रदिश्यन्त इति प्रदेशा ॥वक्ष्य माणलक्षण परमाणु स यावति क्षेत्रे व्यवतिष्ठते स प्रदेश इतिव्यवह्रियते॥ धर्माधर्मैकजीवास्तुल्यासंख्येयप्रदेशा तत्र धर्माधर्मौ निष्क्रियौ लोकाकाश व्याप्य स्थितौ ।

असंख्येया ॥ प्रदेशा ॥

शब्दानुवाद –संख्याम्॥ अतीता॥ असंख्येया॥ असंख्येय॥ त्रिविध॥ जघन्य॥ उत्कृष्ट॥ च॥ अजघन्य उत्कृष्ट॥ इति, तत्र इह॥ अजघन्योत्कृष्ट असंख्येय॥ परिगृह्यते। प्रदिश्यन्ते ॥ इति॥ प्रदेशा॥।

=(क्रमसे) असंख्यात, असंख्यात, और असंख्यात(प्रत्येकके)प्रदेश हैं अर्थात् धर्म द्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं, अधर्मद्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं और एक जीवके भी असंख्यातप्रदेश हैं

=संख्याको उलंघगये हैं वे असंख्येया है अर्थात् जो गणनामें न आसकें वे असंख्यात हैं

=असंख्येय तीन प्रकार है, जघन्य वा निकृष्ट, उत्कृष्ट वा प्रकर्ष और (–च)

=मध्यम ॥ यहां पर(=इह) मध्यम वा बीचका

=असंख्यात लियागया है ॥ (जिनकरि आकाशके) विभाग किये गये हैं ऐसे

=(आकाशके विभाग) प्रदेश हैं । अर्थात् परमाणुओंद्वारा पर्यायनयकी अपेक्षासे आकाशके विभाग किये जाते हैं उन विभागों को अथवा आकाशके प्रदेशोंका प्रदेश

कहते हैं भावार्थ यह है कि यद्यपि आकाश अखंड, निरंश,सर्वगत और एक द्रव्य है तौभी परमाणुओंकरि मापिये तो अनंत परमाणु होते हैं और इसप्रकार आकाशके अनंत अंश मानेजाते हैं, इसीलिये एक ही आकाशको अनंतप्रदेशी पर्यायनयकरि कहते हैं परन्तु द्रव्यार्थिकनय अथवा द्रव्य अपेक्षासे अखंड, निरंश,सर्वगत, एक, और भिन्नता रहित आकाश है

वक्ष्यमाणलक्षण ॥ परमाणु ॥ स॥ यावति॥ क्षेत्रे ॥ व्यवतिष्ठत ॥ स॥ प्रदेश ॥ इति॥ व्यवह्रियते ॥ धर्म-अधर्म एकजी ॥॥ तुल्य-असंख्येय प्रदेशा॥, तत्र॥ धर्म अधर्मौ॥ निष्क्रियौ॥ लोक-आकाशम्॥ व्याप्य—स्थितौ॥

=आगे कथन किये जान लक्षण रूप वा अग्रिम कहेजाने लक्षणवाला परमाणु है

=वह (परमाणु)जितने क्षेत्रमें निश्चल ठहरती है वा समाजाती है सो प्रदेश है

=ऐसा मानागया है ॥ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एकजीव समान

=असंख्यात (असंख्यात) प्रदेशी हैं। तहां धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य क्रिया रहित

=लोकाकाशको व्याप्त कर स्थित हैं अर्थात् समस्त लोकाकाशमें ऊपर तले मध्यमें और

जीवस्तावत्प्रदेशोऽपि सन् संहरणविसर्पण स्वभावत्वात्कर्मनिर्वर्तितं शरीरमणुमहद्वाऽधितिष्ठं स्तावदवगाह्य वर्तते यदा तु लोकपूरणं भवति मन्दरस्याधश्चित्र वज्रपटलमध्ये जीवस्याष्टौ मध्य प्रदेशा व्यवतिष्ठन्ते। इतरे प्रदेशा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् कृत्स्नं लोकाकाशं व्यश्नुवते ॥

अथाकाशस्य कति प्रदेशा इत्यत आह—

इधर उधर सर्वत्र पूर्णरूपसे धर्म और अधर्म द्रव्य का हलन चलन रूप क्रियासे वर्जित हैं भरी हुई हैं

जीवः तावत् प्रदेशः अपि सन्	=जीव इतने(=यावत्) अर्थात् असंख्यात प्रदेशी होते हुयेभी (=अपि सन्)
संहरण-विसर्पण-स्वभावत्वात् कर्मनिर्वर्तितम्	=संकोच और फैलावरूप स्वभावके होनेसे कर्मरचित (अथवा कर्मजनित)
शरीरम् अणु-महत्-वा (1) अधितिष्ठन् तावत्	=छोटा अथवा बड़ा शरीर पाते हुए(=अधितिष्ठन्) तिसमात्र (=तावत्)
(2) अवगाह्य—वर्तते, यदा तु लोकपूरणम् भवति	=विस्तरित होकर वर्तता है परन्तु जब(केवलि समुद्घात करि)लोक पूरण होताहै
मन्दरस्य अधस् चित्र—वज्र—पटल—मध्ये	=वा सुमेरु पर्वतके नीचे चित्रा पृथिवीके वज्रमयी पटलके मध्यमें
जीवस्य अष्टौ मध्यप्रदेशाः व्यवतिष्ठन्ते।	=जीवके आठ मध्यके प्रदेश निश्चल तिष्ठते हैं अर्थात् जिस अवसरमें केवली जो लोकपूरण समुद्घात करते हैं तब सुमेरु की जड़ जो चित्रापृथिवीकी मोटाईके बराबर एक सहस्रयोजन मोटी है। चित्रा और वज्रा पृथिवीके पटलोंके बीच केवली भगवान् केआत्माके आठमध्यके प्रदेश निश्चल ठहरते हैं
इतरे प्रदेशाः ऊर्ध्वम् अधस् तिर्यक्	=(और केवली भगवानके)अन्य प्रदेश ऊपर नीचे इधर उधर (=दायें बायें)
कृत्स्नम् लोकाकाशम् व्यश्नुवते।	=समस्त लोकाकाशको व्याप्त करलेते हैं। केवलिसमुद्घातका विस्तारसे कथन जाननेके लिये देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११ पसे १२१ तक
अथ आकाशस्य (4) कति प्रदेशाः इति अतः आह	=अब आकाशके कितने प्रदेश हैं इसलिये (अगर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) अधितिष्ठन् वर्तमान कृदन्त है॥ (२) अवगाह्य सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त है (३) कषाय वेदनादिक सातप्रकारोंसे जो जीवके प्रदेश मूल शरीर को न छोड़कर शरीरसे बाहर होते हैं उसको समुद्घात कहते हैं। वे समुद्घात सातप्रकारके हैं॥ मूल देह छूटे नाहिं इत्यादि कवित्तके लिये जिसमें सातप्रकारका समुद्घात वर्णित है देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११५ से १२१ तक॥ (४) कति सर्वनाम है केवल बहुवचनमें आता है॥

संख्यामतीता असंख्येया ॥ असंख्येयस्त्रिविध । जघन्य उत्कृष्टोऽजघन्योत्कृष्टश्चेति ॥ तत्रेहाजघन्योत्कृष्टासंख्येय परिगृह्यते। प्रदिश्यन्त इति प्रदेशा ॥वक्ष्य माणलक्षण परमाणु स यावति क्षेत्रे व्यवतिष्ठते स प्रदेश इतिव्यवह्रियते॥ धर्माधर्मैकजीवास्तुल्यासंख्येयप्रदेशा तत्र धर्माधर्मौ निष्क्रियौ लोकाकाश व्याप्य स्थितौ ।

असंख्येया॥ प्रदेशा॥ =(क्रमसे) असंख्यात, असंख्यात, और असंख्यात(प्रत्येकके)प्रदेश हैं अर्थात् धर्म द्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं,अधर्मद्रव्यके असंख्यात प्रदेश है और एक जीवके भी असंख्यातप्रदेश हैं

इत्यनुवाद —संख्याम्॥ अतीता॥ असंख्येया॥ =संख्याको उलंघगये हैं वे असंख्येया है अर्थात् जो गणनामें न आसकें वे असंख्यात हैं
असंख्येय॥ त्रिविध॥ जघन्य॥ उत्कृष्ट॥ च॥ —असंख्येय तीन प्रकार है, जघन्य या निकृष्ट, उत्कृष्ट या प्रकर्ष और (=च)
अजघन्य-उत्कृष्ट॥ इति,तत्र इह॥ अजघन्योत्कृष्ट =मध्यम ॥ तहां यह(=इह) मध्यम या बीचका
असंख्येय॥ परिगृह्यते॥ प्रदिश्यन्ते॥ इति॥ =असंख्यात लियागया है ॥ (जिनकरि आकाशके) विभाग किये गये हैं ऐसे
प्रदेशा॥ =(आकाशके विभाग) प्रदेश हैं । अर्थात परमाणुओंद्वारा पर्यायनयकी अपेक्षासे आकाशके विभाग किये जाते हैं उन विभागों को अथवा आकाशके प्रदेशोंका प्रदेश कहते हैं भावार्थ यह है कि यद्यपि आकाश अखंड निरंश,सर्वगत और एक द्रव्य है तोभी परमाणुओंकरि मापिये तो अनंत परमाणु होते हैं और इसप्रकार आकाशके अनंत अंश मानेजाते हैं, इसीलिये एक ही आकाशको अनंतप्रदेशी पर्यायनयकरि कहते हैं परन्तु द्रव्यार्थिकनय अथवा द्रव्य अपेक्षासे अखंड, निरंश,सर्वगत, एक, और भिन्नता रहित आकाश है

वक्ष्यमाणलक्षण॥ परमाणु॥ =आगे कथन किये जाने लक्षण रूप या अग्रिम कहेजाने लक्षणवाला परमाणु है
स॥ यावति॥ क्षेत्रे॥ व्यवतिष्ठते॥ स॥ प्रदेश॥ =वह (परमाणु)जितने क्षेत्रमें निश्चल ठहरता है या समाजाती है सो प्रदेश है
इति व्यवह्रियते॥ धर्म-अधर्म एकजीवा॥ तुल्य- =ऐसा मानागया है ॥ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एकजीव समान
असंख्येय प्रदेशा॥, तत्र धर्म-अधर्मौ॥ निष्क्रियौ॥ =असंख्यात (असंख्यात) प्रदेशी हैं। तहां धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य क्रिया रहित
लोक-आकाशम॥ व्याप्य—स्थितौ॥ =लोकाकाशको व्याप्त कर स्थित हैं अर्थात् समस्त लोकाकाशमें ऊपर तले मध्यमें और

॥ नाणोः ॥ ११ ॥

अणो प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेष ॥ कुतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात्। यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभावः॥किं च ततोऽल्पपरिमाणाभावान्न अणोरल्पीयानन्योऽस्ति। यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन् ॥एषामवधृत

सूत्रम्—नाणोः॥११॥ = नाणो (प्रदेशा भवन्ति)॥११॥

सूत्रार्थ—न॰अणो॰ प्रदेशा॰ भवन्ति = अणुके प्रदेश नहीं होते हैं, शुद्ध पुद्गल एक परमाणुके बहुत प्रदेशोंका अभावहै एक प्रदेशमात्रता ही कही है क्योंकि परमाणुके खंडका अभाव है

वृत्त्यनुवाद—अणोः॰ प्रदेशा॰ न॰सन्ति॰ इति॰ = अणुके प्रदेश नहीं है ऐसा

(१)वाक्यशेषः॰ = वाक्य शेष है अर्थात् 'न अणो' ये पदसम्पूर्ण है। उसका शेषवाक्य प्रदेशाः सन्ति है

कुतः॰ न॰ सन्ति॰ इति॰ चेत्॰ = क्योंकर (अणुके प्रदेश) नहीं है। ऐसी शंका है।

प्रदेश—मात्रत्वात्॰ = (उत्तर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेसे (अणुके बहुत प्रदेश नहीं है)

यथा॰आकाश—प्रदेशस्य॰ एकस्य॰प्रदेश—भेद— = जैसे आकाशके एक प्रदेशके प्रदेश भेद

अभावात्॰ अप्रदेशत्वम्॰॥एवम्॰अणो॰अपि॰ = न होनेस अप्रदेशपना है। ऐसे अणुके भी

प्रदेशमात्रत्वात्॰ प्रदेश—भेद—अभाव॰ = प्रदेशमात्रपनासे प्रदेशके भेदका अभाव है॥

किम्॰च॰ ततः॰ अल्प—परिमाण—अभावात्॰ = और क्योंकि (किस विशेष्किं)तिस (परमाणु) से लघु परिमाण न होन(के हेतु)से

नहि॰अणोः॰(१)अल्पीयान्॰अन्य॰अस्ति॰यतः॰ = अणुसे अन्य (वस्तु) लघुतर नहीं(= न हि) है। जिससे

अस्य॰ प्रदेशाः॰(२)भिद्येरन्॰ एषाम्॰ अवधृत = इस (परिमाणु)के प्रदेश भेदे जावें॥ इन निश्चय किये हुये वा निर्णीत किये हुये

(१)वाक्यशेष = वाक्य वा वचनका छूटा हुआ वा अवशेष भाग(॥)पद आकांक्षा वाक्य आकांक्षा समर्थपदलोप (२)भिद्येरन् यह आत्मनेपदी विधि लिंग (प्रत्यार्थ) (३)अल्पीयान् विशेषणों की जो अपने विशेष्योंके गुणों को प्रगट करते हैं तीन श्रेणी होती हैं(क)साधारण अवस्था अर्थात् अपने विशेष्य के साधारण गुण का प्रगट करे जैसे अच्छा मनुष्य बुरा मनुष्य(ख)आधिक्य बोधक अवस्था वह है जो दो विशेष्योंमें से एकके गुण वा दूषण कोदूसरे पर लघुता प्रभुता प्रगट करे जैसे देवदत्तसे यज्ञदत्त बुरा है मोहनसे सोहन अच्छा है।(ग)अतिशय्य बोधक अवस्था वह है जिससे केवलएक विशेष्यका

नानन्त्यमिति ॥ नैष दोषः । सूक्ष्मपरिणामावगाहनशक्तियोगात्परमाण्वादयो हि सूक्ष्मभावेन परिणता एकैकस्मिन्नप्याकाशप्रदेशेऽनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते, अवगाहनशक्तिश्चैषामव्याहताऽस्ति तस्मादेकस्मिन्नपि प्रदेशे अनन्तानन्तानामवस्थान न विरुध्यते ॥ पुद्गलानामित्यविशेषवचना-त्परमाणोरपि प्रदेशत्वप्रसगे तत्प्रतिषेधार्थमाह—

न-अनन्त्यम् ॥ इति = अन्तपन रहित अर्थात् असंख्यात प्रदेश हैं इसका भावार्थ यह है कि लोक तो असंख्यात प्रदेशी है उसमें पुद्गलके अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध किस प्रकार समासकते हैं

न-एषः दोषः ॥ सूक्ष्म-परिणाम- = (उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि (पुद्गल परमाणु ओंका) सूक्ष्म वा लघु परिणमन

अवगाहन-शक्ति-योगात् परमाणु-आदयः हि = (और आकाशके प्रदेशों का) स्थानदानदेनेकी सामर्थ्यके योगसे परमाणु आदि ही

सूक्ष्म-भावेन परिणताः ॥ एक एकस्मिन् अपि = लघुरूपहोकर परिणत हो रहे हैं (और) एक एक भी

आकाश प्रदेशे अनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते । च = आकाशके प्रदेशमें अनन्तानन्त (परमाणु) तिष्ठते हैं और (=च)

एषाम् अवगाहन-शक्तिः अव्याहता अस्ति । = इन (आकाशके प्रदेशों) में स्थानदानदेनेकी सामर्थ्य अरोक है (=अव्याहता अस्ति)

तस्मात् एकस्मिन् अपि प्रदेशे = तिससे एक भी (आकाशके) प्रदेशमें

अनन्तानन्तानाम् अवस्थानम् न विरुध्यते । = अनन्तानन्त (परमाणु ओं) का ठहरना नहीं विरोधा जाता है

पुद्गलानाम् इति अविशेष-वचनात् ॥ = (सूत्रमें) पुद्गलोंके (संख्यात-असंख्यात-अनन्त और अनन्तानन्त प्रदेश हैं) ऐसे सामान्य वाक्यसे

परमाणोः अपि प्रदेशत्व-प्रसङ्गे ॥ = (पुद्गल) परमाणु ओंके भी प्रदेशपनाका प्रसंग आने पर

तत् प्रतिषेध अर्थम् आह । = उस (परिमाणु) के (बहुप्रदेशपनाके) निषेधके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

---

(१) जैसे एक वपार्की बत्ती जिसे तिष्ठे हुवे सुगन्ध पुद्गल परमाणु सूक्ष्म रूप परिणमनसे सकोच रूप तिष्ठते हैं बहुरि वही सुगन्ध परमाणु जब फैले तब सर्व दिशाओंमें व्यापक हो जाते हैं तैसे सूक्ष्म परिणमनसे लोकाकाशके एक प्रदेशमें तिष्ठते हुए परमाणु बादर वा स्थूलरूप परिणमें तब बहुत प्रदेशोंमें तिष्ठते हैं ॥ इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है कि घड़े वा गाग कार्यमें प्रथम विशेषत इतना पाप का स्कन्ध हैं यदि अग्निसे बनाये जाते भी घन रूपमें होकर सब दृष्टान्तोंमें भटकाते हैं तिस प्रकार लोकाकाशमें अनन्तानन्त और अनन्तानन्त पुद्गल का असंख्यात विरुद्ध रहित पाया जाता है

॥ नाणोः ॥ ११ ॥

अणो प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेष ॥ कुतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात्। यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभावः॥किंच ततोऽल्पपरिमाणाभावान्न ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति। यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन् ॥एषामवधृत

सूत्रम्—नाणोः॥११॥ = नाणो (प्रदेशा भवन्ति)॥११॥

सूत्रार्थ —न॰अणो॰ प्रदेशाः॰ भवन्ति। = अणुके प्रदेश नहीं होते हैं, शुद्ध पुद्गल एक परमाणुके बहुत प्रदेशोंका अभाव है एक प्रदेशमात्रता ही कही है क्योंकि परमाणुके खंडका अभाव है

वृत्त्यनुवाद—अणोः॰ प्रदेशाः॰ न॰सन्ति। इति॰ = अणुके प्रदेश नहीं है ऐसा

(१)वाक्यशेषः॰ = वाक्य शेष है अर्थात् 'न अणो' वाक्य अपूर्ण है। उसका शेषवाक्य प्रदेशाः सन्ति है

कुतः॰ न॰ सन्ति। इति॰ चेत्॰ = क्योंकर (अणुके प्रदेश) नहीं है। ऐसी शंका है।

प्रदेश–मात्रत्वात्॰॥ = (उत्तर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेसे (अणुके बहुत प्रदेश नहीं है)

यथा॰आकाश–प्रदेशस्य॰ एकस्य॰प्रदेश–भेद– = जैसे आकाशके एक प्रदेशके प्रदेश भेद

अभावात्॰ अप्रदेशत्वम्॰॥एवम्॰अणो॰अपि॰ = न होनेसे अप्रदेशपना है। ऐसे अणुके भी

प्रदेशमात्रत्वात्॰॥ प्रदेश–भेद–अभावः॰ = प्रदेशमात्रपनासे प्रदेशके भेदका अभाव है॥

किम्॰च॰ ततः॰ अल्प–परिमाण–अभावात्॰ = और क्योंकि (किस लियेकि)तिस (परमाणु) से लघु परिणमन न होन(के हेतु)से

नहि॰अणो॰(१)अल्पीयान्॰अन्यः॰अस्ति।यतः॰ = अणुसे अन्य (वस्तु) लघुतर नहीं(=न हि) है। जिससे

अस्य॰प्रदेशाः॰(२)भिद्येरन्। एषाम्॰ अवधृत = इस (परमाणु)के प्रदेश भेदे जावें॥ इन निश्चय किये हुये वा निर्धारित किये हुये

(१)वाक्यशेष = वाक्य वा वचनका पूरा हुआ वा अवशेष भाग(॥)पद आकांक्षा वाक्य आकांक्षा समयपदलोप (२)भिद्येरन् यह आत्मनेपदी विधि लिङ् (इत्यादि) (१)अल्पीयान् विशेषणों की जो अपने विशेष्योंके गुणों को प्रगट करते हैंतीन श्रेणी होती हैं(क)साधारण अवस्था अर्थात् अपने विशेष्य के साधारण गुण का प्रगट करे जैसे अच्छा मनुष्य बुरा मनुष्य(ख)आधिक्य बोधक अवस्था यह है जो दो विशेष्योंमें से एकके गुण वा दूषण कोदूसरे पर लघुता प्रधानता प्रगट करे जैसे देवदत्तसे यज्ञदत्त बुरा है।मोहनसे सोहन अच्छा है।(ग)अतिशय्य बोधक अवस्था यह है जिससे केवलएक विशेष्यका

नानन्त्यमिति ॥ नैष दोषः । सूक्ष्मपरिणामावगाहनशक्तियोगात्परमाण्वादयो हि सूक्ष्मभावेन परिणता एकैकस्मिन्नप्याकाशप्रदेशेऽनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते, अवगाहनशक्तिश्चैषामव्याहताऽस्ति तस्मादेकस्मिन्नपि प्रदेशे अनन्तानन्तानामवस्थान न विरुध्यते ॥ पुद्गलानामित्यविशेषवचनात्परमाणोरपि प्रदेशत्वप्रसगे तत्प्रतिषेधार्थमाह—

न-अनन्त्यम् ॥ इति	=अन्त्यम रहित अर्थात् असंख्यात प्रदेश हैं प्रश्नका भावार्थ यह है कि लोक तो असंख्यात प्रदेशी है उसमें पुद्गलके अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध किस प्रकार समासकते हैं
न एष दोषः सूक्ष्म-परिणाम-	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि (पुद्गल परमाणु ओंका) सूक्ष्म वा लघु परिणमन
अवगाहन-शक्ति-योगात् परमाणु-आदय हि	=(और आकाशके प्रदेशों का) स्थानदानदेनेकी सामर्थ्यके योगसे परमाणु आदि ही
सूक्ष्म-भावेन परिणताः एक-एकस्मिन् अपि	=लघुरूपहाकर परिणत हो रहे हैं (और) एक एक भी
आकाश-प्रदेशे अनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते । च	=आकाशके प्रदेशमें अनन्तानन्त (परमाणु) तिष्ठते हैं और (=च)
एषाम् अवगाहन शक्तिः अव्याहता अस्ति ।	=इन (आकाशके प्रदेशों) के स्थानदानदेनेकी सामर्थ्य अरोक है (=अव्याहता अस्ति)
तस्मात् एकस्मिन् अपि प्रदेशे	=तिससे एक भी (आकाशके) प्रदेशमें
अनन्तानन्तानाम् अवस्थानम् न विरुध्यते ।	=अनन्तानन्त (परमाणु ओं) का ठहराव नहीं विरोधा जाता है
पुद्गलानाम् इति अविशेष-वचनात् ॥	= (सूत्रमें) पुद्गलोंके (संख्यात-असंख्यात-अनन्त और अनन्तानन्त प्रदेश हैं) ऐसे सामान्य वाक्यसे
परमाणोः अपि प्रदेशत्व प्रसंगे ॥	=(पुद्गल) परमाणु ओंके भी प्रदेशपनाका प्रसंग आने पर
तत् प्रतिषेध अर्थम् आह	=उस (परमाणु) के (बहुप्रदेशपनाके) निषेधके लिये (उपर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) जैसे एक चंपाकी कली खिले बिना रूके हुये सुगन्ध पुद्गल परमाणु सूक्ष्म रूप परिणमनसे सकोच रूप तिष्ठत हैं बहुरि वही सुगन्ध परमाणु जब फैले तब सर्व दिशाओंमें व्यापक हो जाते हैं जैसे सूक्ष्म परिणमनसे लोकाकाशके एक प्रदेशमें तिष्ठते हुए परमाणु बाहर वा स्थूलरूप परिणमें तब बहुत प्रदेशोंमें तिष्ठते हैं ॥ इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है कि बड़े वा गील काष्ठमें प्रबल विशेषसे रतन पद्गल स्कन्ध हैं यदि अग्निसे जलाये जावें ता धूम रूपमें होकर सब दिशाओंमें भरजाते हैं ऐसे प्रकार लोकाकाशमें अनन्तानन्त जीव अनन्तानन्त पुद्गल का अवस्थान विरोध रहित पाया जाता है॥

॥ नाणोः ॥ ११ ॥

अणो प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेष ॥ कुतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात्। यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभाव ॥किं च ततोऽल्पपरिमाणाभावान्न ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति। यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन् ॥एषामवधृत

सूत्रम्—नाणो ॥११॥ = नाणो (प्रदेशा भवन्ति)॥११॥

सूत्रार्थ —न॰अणो॰ प्रदेशा॰ भवन्ति। = अणुके प्रदेश नहीं होते हैं, शुद्ध पुद्गल एक परमाणुके बहुत प्रदेशोंका अभावसे एक प्रदेशमात्रता ही कही है क्योंकि परमाणुके खंडका अभाव है

इत्यनुवाद—अणो॰ प्रदेशाः॰ न॰सन्ति। इति॰ = अणुके प्रदेश नहीं है ऐसा

(१)वाक्यशेषः॰ = वाक्य शेष है अर्थात् 'न-अणो' यह पदपूर्ण है। उसका शेषवाक्य प्रदेशाः सन्ति है

कुतः॰ न॰ सन्ति। इति॰ चेत्॰ = क्योंकर (अणुके प्रदेश) नहीं है। ऐसी शंका है।

प्रदेश-मात्रत्वात्॰ = (उत्तर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेसे (अणुके बहुत प्रदेश नहीं है)

यथा॰आकाश-प्रदेशस्य॰ एकस्य॰प्रदेश-भेद- = जैसे आकाशके एक प्रदेशके प्रदेश भेद

अभावात्॰ अप्रदेशत्वम्॰ एवम्॰अणो॰अपि॰ = न होनेसे अप्रदेशपना है। ऐसे अणुके भी

प्रदेशमात्रत्वात्॰ प्रदेश-भेद-अभाव॰ = प्रदेशमात्रपनासे प्रदेशके भेदका अभाव है॥

किम्॰च॰ ततः॰ अल्प-परिमाण-अभावात्॰ = और क्योंकि (किस लियेकि) तिस (परमाणु) से लघु परिणमन न होने(के हेतु)से

नहि॰अणोः॰ (१)अल्पीयान्॰अन्य॰अस्ति। यतः॰ = अणुसे अन्य (वस्तु) लघुतर नहीं(=न हि) है। जिससे

अस्य॰ प्रदेशाः॰ (२)भिद्येरन्। एषाम्॰ अवधृत = इस (परिमाणु)के प्रदेश भेदे जावें॥ इन निश्चय किये हुये या निर्णीत किये हुये

(१)वाक्यशेष = वाक्य या वचनका छूटा हुआ या अवशेष भाग(।)पद आकांक्षा वाक्य आकांक्षा समयपदलोप (२)भिद्येरन् यह आत्मनेपदी विधि लिङ [क्रियाहै (२)अल्पीयान् विशेषणों की जो अपने विशेष्योंके गुणों को प्रगट करते हैंतीन श्रेणी होती हैं(क)साधारण अवस्था अर्थात् अपने विशेष्य के साधारण गुण कामगट करे जैसे अच्छा मनुष्य बुरा मनुष्य(ख)आधिक्य बोधक अवस्था वह है जो दो विशेष्योंमें से एकके गुण या दूषण कोदूसरे पर लघुता अधिकता प्रगट करे जैसे देवदत्तसे यज्ञदत्त बुरा है मोहनसे सोहन अच्छा है।(ग) अतिशय्य बोधक अवस्था वह है जिससे केवलएक विशेष्यका

प्रदेशाना धर्मादीनामाधारप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—

॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

उक्ताना धर्मादीना द्रव्याणा लोकाकाशेऽवगाहो न बहिरित्यर्थः ॥ यदि धर्मादीनां लोकाकाशमाधार । आकाशस्य क आधार इति ? ॥ आकाशस्य नास्त्यन्य आधार । स्वप्रतिष्ठमाकाशम् ॥

प्रदेशानां धर्मादीनां आधार-प्रतिपत्ति अर्थम् इदम् उच्यते = प्रदेशवाले धर्मादिक (द्रव्यों) के अधिकरण जाननेके लिये यह कहा जाता है कि

[1]सूत्रम्—लोकाकाशेऽवगाह ॥१२॥ = (धर्मादीनाम् द्रव्याणाम्[3]) लोकाकाशेअवगाह ॥१२॥

अन्वयार्थः [1]धर्मादीनां द्रव्याणां लोकाकाशे अवगाहः = धर्म, अधर्म, जीव और पुद्गल द्रव्योंकी लोकाकाशमें स्थिति है

टीकानुवाद : उक्तानाम् धर्मादीनाम् द्रव्याणाम्	='कथित धर्मादिक' द्रव्योंकी
लोकाकाशे अवगाहः न बहिः इति अर्थः	=लोकाकाश में स्थिति है न कि (लोकाकाशके) बाहिर ऐसा तात्पर्य है
यदि धर्मादीनाम् लोकाकाशम् आधारः	=(प्रश्न) जो धर्मादिकद्रव्योंका लोकाकाश आधार है तो
आकाशस्य क आधार इति आकाशस्य	=आकाशका क्या आधार है ॥ आकाशका
न अस्ति अन्य आधार स्वप्रतिष्ठम् आकाशम्	=और वा भिन्न (=अन्य) अधिकरण नहीं है । आकाश अपने आधार है

गुण अथवा अवगुण लघुता अथवा गुरुता वाले बोधक पर प्राप्य करें जैसे माहम सर्व छात्रों में क्याल है ॥

ईयस् प्रत्यय आधिक्यवाचक अवस्था के विशेषणका चिन्ह है और इष्ठ प्रत्यय आतिशय्य बोधक अवस्थाके विशेषणका चिन्ह है । इन प्रत्ययोंके लगाने के प्रथम शब्द अथवा प्रातिपदकके अन्तिम स्वर और यदि शब्दके अन्तमें व्यञ्जन होतो अन्तिम व्यञ्जन उसके समीपके स्वरसहित का गिराते हैं जैसे अल्प = अल्प + ईयस् = अल्पीयस्) महत् = मह + अत्, अत् गिराकर (अर्थात् महत्के अत स्वर और व्यंजन दोनों गिराकर) और ईयस जोड़कर महीयस् बना लिया ॥

शब्दके जिनके अन्तमें यस् और ईयस अथवा एयस् हो तो पुल्लिङ्गमें शब्दके अन्तिम स् के पूर्व न् प्रथम कारकके एक वचन द्विवचन बहुवचन और कर्म कारकके एक वचन और द्वि वचनमें आदेश हैं २ऊ स कार्योंका उपान्तिक अकार दीर्घ हो जाता है । प्रथमा एक वचनके अन्तमें 'वान् या वान्' आते हैं ॥ जैसे विद्वस् = विद्वन् स् + स् = विद्वान् स् म् (अब शब्दके अन्तमें दो अथवा दोसे अधिक व्यञ्जन हों तो केवल एक रह जाता है शेष गिर जाते हैं) अतः विद्वान्। अनगया शेषरूप विद्वांसौ। विद्वांसः। विद्वांसम्। विद्वांसौ। () अल्पीयस् = अल्पीयन् स् + स = अल्पीयान् स् स = अल्पीयान् ।

(१ इसे मूलका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायों में एकसा है ॥ (२) "धर्मादीनां द्रव्याणां" इस वाक्यका अध्याहार किया गया है (३) काल द्रव्यका आधार न यहाँ कथन न किया है क्योंकि उसका कथन उनतालीसवांसूत्रमें है इससे अनन्तरमें काल द्रव्यको गर्भित नहीं किया है यद्यपि काल द्रव्यकी भी स्थिति लोकाकाश में ही है ॥

यद्याकाशं स्वप्रतिष्ठं, धर्मादीन्यपि स्वप्रतिष्ठान्येव । अथ धर्मादीनामन्य आधार कल्प्यते, आकाशस्याप्यन्य आधार कल्प्य । तथा सत्यनवस्थाप्रसङ्ग इति चेन्नैष दोष ॥ नाकाशादन्यदधिकपरिमाणं द्रव्यमस्ति। यत्राकाशं स्थितमित्युच्यते । सर्वतोऽनन्तं हि तत् । ततो धर्मादीना पुनरधिकरणमाकाशमित्युच्यते व्यवहारनयवशात् । एवम्भूतनयापेक्षया तु सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठान्येव ॥ तथा चोक्त

यदि • आकाशम् स्वप्रतिष्ठम् धर्मादीनि अपि •	=(जब)जो आकाश अपने आधार है तो धर्मादिक(द्रव्यें)भी
स्वप्रतिष्ठानि एव • ; अथ • धर्मादीनाम् अन्य	=अपने आश्रय ही हैं। जो(=अथ)धर्मादिक(द्रव्यों)का और (=अन्य)
आधार कल्प्यते, आकाशस्य अपि • अन्य आधार	=आधार मानाजाता है। तो आकाशका भी अन्य आधार
कल्प्य तथा • सति	=मानना चाहिये। ऐसा(=तथा होनेपर अर्थात्)आकाशका अन्य आधार माननेमें
अनवस्था प्रसङ्ग इति • चेत् • न • एष दोष ॥	=व्यवस्थाके अभावका प्रसंग होता है, ऐसी शंका है। (उत्तर) यह दूषण नहीं है
न आकाशात् अन्य अधिक-परिमाणम्	=क्योंकि आकाशसे अन्य विशेष परिमाण वाली
द्रव्यम् अस्ति ।	=द्रव्य नहीं है अर्थात् आकाश से कोई दूसरी द्रव्य महान् बड़ी नहीं है।
यत्र • आकाशम् स्थितम् इति • उच्यते ।	=जिसमें(=यत्र)आकाश स्थित हो ऐसा कहा गया है।
सर्वतः • अनन्तम् हि • तत् ; ततः • धर्मादीनाम् पुनः	=सो(=तत्)सबओर(आकाश)ही अनन्त है। बहुरि तिससे धर्मादिकों का
अधिकरणम् आकाशम् व्यवहारनय-वशात्	=आधार(आकाश)है। व्यवहारनयके आश्रयसे
इति • उच्यते । एवम्भूतनय अपेक्षया तु [1] •	=ऐसा कहा जाता है, और(=च)एवम्भूतनयकी अपेक्षासे अर्थात् जिस स्वरूपकरिके पदार्थ हो,तिस स्वरूपकरिकैही निश्चयकरनेवाली नयकी अपेक्षासे
सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठानि एव • ॥ तथा च • उक्तम्	=सब द्रव्यें अपने (अपने)आधार ही हैं और (=च)जैसेही(तथा=,कहा जाता है

(१) 'तु' सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्ति में तु के स्थान में 'च' है कई हस्तलिखित प्रतियोंमें और द्वितीय संस्करणमें 'तु' शब्द है इसलिये हमने भी 'तु' पाठ लिया है ॥

प्रदेशाना धर्मादीनामाधारप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—

॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

क भावानास्ते ? आत्मनीति ॥ धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहिः सन्तीति एतावत् अत्राधाराधेयकल्पनासाध्यं फलम् ॥ ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्ट यथा कुण्डे वदरादीना न तथाऽऽकाश पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि

क=भवान्॥(१)आस्ते॥आत्मनि॥इति=,धर्मादीनि॥ लोकाकाशात्॥ न=बहिः=सन्ति॥इति=एतावत्= अत्र=(२)आधार आधेय-कल्पना-साध्यम्॥ फलम्॥ (३)ननु=च=लोके॥ पूर्व-उत्तर-काल-भाविनाम्॥ आधार-आधेयभावः॥ दृष्टः॥ यथा=कुण्डे॥ बदर आदीनाम्॥ न=तथा=आकाशम्॥ पूर्वम्॥,धर्मादीनि॥ उत्तर काल-भावीनि॥	=कि आप कहां बैठे हैं (उत्तर)आत्माविषैं (बैठा हूं) धर्मादिक (द्रव्यें) =लोकाकाशसे बाहिर नहीं हैं इतनाही =यहां आधार आधेयके माननेका साधनीय अथवा सिद्ध करने योग्य फल है =बहुरि प्रश्न, लोकमें पहिले पिछले(पश्चात्)कालमें होनेवाली वस्तुओंके =आधार आधेयभाव देखाजाता है अर्थात् आधार पहिले पश्चात् आधेय देखाजाताहै =जैसे गड्ढा(आधार)में बेरके वृक्ष आदिकें वा कपासके पौदा आदिकें(आधेयभाव) हैं =वैसे आकाश पहिले नहीं है और धर्मादिक (द्रव्यें) पश्चात् =कालवाली (नहीं) है अर्थात् प्रश्न यह है कि गड्ढा पहिले होता है उसमें बेर वा कपासादिका वृक्ष पीछे होता है। तब आधार आधेयभाव होता है वैसे आकाश पहिले हो पीछे तिसमें धर्मादिक द्रव्य धरे होंय, तब आधार आधेयभाव होना चाहिये सो इस प्रकार है नहीं। क्योंकि आकाश और धर्मादिक द्रव्योंके अनादि परिणामिक यौगपद्यकी सिद्धि है। पूर्वमें होना वा पीछेहोना ऐसा भेद नहीं है ॥

(१) आस =बैठना अदादि (दूसरे)गणका धातु है। आत्मनेपदी सकर्मक है इसलिये आस्+ते=आस्ते=वह बैठा है ॥

(२) जिसके आश्रय वा आसरेसे कोई वस्तु तिष्ठी हो उसे आधार कहते हैं। वह वस्तु जो किसीके आश्रित तिष्ठी हो उस वस्तुको आधेय कहतेहैं जैसे चौकी पर पुस्तक है यहां चौकी आधार है और पुस्तक आधेय है।

(३) पाठकोंको ध्यान रहे कि "ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावोदृष्ट । यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि । अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ ऐसा और इतना प्रश्न किया गया है ॥

अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ नैष दोषः ॥ युगपद्भाविनामपि आधाराधेयभावो दृश्यते । घटे रूपादयः शरीरे हस्तादय इति ॥ लोक इत्युच्यते । को लोकः ? । धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोक इति ॥ अधिकरणसाधने घञ् ॥ आकाशं द्विधा विभक्तं । लोकाकाशमलोकाकाशं चेति ॥ लोक उक्तः । स यत्र तल्लोकाकाशम् । ततो बहिः सर्वतोऽनन्तमलोकाकाशम् ॥ लोकालोकविभागश्च धर्माधर्मास्तिकायसद्भावात्,

अतः व्यवहारनय अपेक्षया अपि आधार-आधेय	=इसलिये व्यवहारनयकी अपेक्षासे भी आधार आधेयके
कल्पना अनुपपत्तिः इति ॥	=माननकी सिद्धि नहीं होती है (क्योंकि पूर्व में कथन कर चुके हैं कि एवम्भूतनय की अपेक्षासे सब द्रव्य अपने अपने आधार हैं और व्यवहारनयसे आश्रय आश्रयी (=आधेय) भाव है
न एषः दोषः युगपद् भाविनाम् अपि	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है (क्योंकि) एक कालमें होनेवालोंके भी
आधार आधेय-भावः दृश्यते । घटे रूपादयः	=आधार आधेय भाव देखा जाता है । (जैसे) घडा में रूपादिक हैं
शरीरे हस्त-आदयः इति । लोकः इति उच्यते ।	=शरीर में हस्तादिक हैं ॥ 'लोक' ऐसा कहा जाता है ॥
कः लोकः ? धर्म अधर्म-आदीनि द्रव्याणि यत्र	=(प्रश्न) लोक क्या है ? (उत्तर) धर्म, अधर्म आदिक द्रव्यें जहां
लोक्यन्ते सः लोकः इति अधिकरणसाधने	=देखी जाती हैं सो लोक है ऐसे (लोक शब्द के) अधिकरण या आधार सिद्ध करनेमें
(१) घञ् । आकाशं द्विधा विभक्तम् ॥	=घञ् (=अ) प्रत्यय लगाया है, जोड़ा है । आकाश दो प्रकारसे बंटा हुआ है
लोकाकाशम् अलोकाकाशम् च इति लोकः उक्तः,	=लोकाकाश और अलोकाकाश है । लोक (जहां धर्मादिक द्रव्यें देखी जाती हैं ऐसा) कहा गया है
सः यत्र तत् लोकाकाशम् । ततः बहिः	=वह (लोक) जहां (=यत्र) है सो (=तत्) लोकाकाश है, जिस (लोक) से बाहिर
सर्वतः अनन्तम् अलोकाकाशम् । च लोक-	=चारोंओर अन्तरहित अलोकाकाश है और लोक
अलोक-विभागः धर्म-अधर्म-अस्तिकाय-सद्भावात्	=अलोक का विभाग धर्मास्तिकायकी, अधर्मास्तिकाय की विद्यमानता से

(१) लोक् धातु का अर्थ देखना है घञ् प्रत्ययके घ ञ् इत् होनेसे लोक् होगया अ मात्र रहा, तब लोक्+अ ऐसा रूप हुआ अर्थात् 'लोक' शब्द बनगया ।

प्रदेशाना धर्मादीनामाधारप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—

लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

क्व भवानास्ते ? आत्मनीति ॥ धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहि सन्तीति एतावत् अत्राधाराधेयकल्पनासाध्यं फलम् ॥ ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्ट यथा कुण्डे बदरादीना न तथाऽऽकाश पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि

क=भवान्॥(१)आस्ते=आत्मनि॥इति=,धर्मादीनि॥	=कि आप कहां बैठे हैं (उत्तर)आत्माविषैं (बैठा हूं) धर्मादिक (द्रव्यें)
लोकाकाशात्॥न=बहिः=सन्ति॥इति=एतावत्=	=लोकाकाशसे बाहिर नहीं हैं इतनाही
अत्र=(२)आधार आधेय-कल्पना-साध्यम्॥ फलम्॥	=यहां आधार आधेयके माननेका साधनीय अथवा सिद्ध करने योग्य फल है
(३)ननु=च=लोके॥ पूर्व-उत्तर-काल-भाविनाम्॥	=बहुरि प्रश्न, लोकमें पहिले पिछले(पश्चात्)कालमें होनेवाली वस्तुओंके
आधार आधेयभाव॥ दृष्टः॥	=आधार आधेयभाव देखाजाता है अर्थात् आधार पहिले पश्चात् आधेय देखाजाताहै
यथा=कुण्डे॥ बदर आदीनाम्॥	=जैसे गड्ढा(आधार)में बेरके वृक्ष आदिकें वा कपासके पौदा आदिकें(आधेयभाव) हैं
न=तथा=आकाशम्॥पूर्वम्॥,धर्मादीनि॥ उत्तर	=तैसे आकाश पहिले नहीं है और धर्मादिक (द्रव्यें) पश्चात्
काल-भावीनि॥	=कालवाली (नहीं) है अर्थात् प्रश्न यह है कि गड्ढा पहिले होता है उसमें बेर वा कपासादिका वृक्ष पीछे होता है। तब आधार आधेयभाव होता है तैसे आकाश पहिले हो पीछे तिसमें धर्मादिक द्रव्य धरे होंय, तब आधार आधेयभाव होना चाहिये सो इस प्रकार है नहीं। क्योंकि आकाश और धर्मादिक द्रव्योंके अनादि परिणामिक यौगपद्यकी सिद्धि है। पूर्वमें होना वा पीछेहोना ऐसा भेद नहीं है ॥

(१) आस =बैठना अदादि (दूसरे)गणका धातु है। आत्मनेपदी सकर्मक है इसलिये आस्+ते=आस्ते=वह बैठा है ॥

(२) जिसके आश्रय वा आसरेसे कोई वस्तु तिष्ठी हो उसे आधार कहते हैं। वह वस्तु जो किसीके आश्रित तिष्ठी हो उस वस्तुको आधेय कहतेहैं जैसे चौकी पर पुस्तक है यहां चौकी आधार है और पुस्तक आधेय है।

(३) पाठकोंको ध्यान रहे कि "ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावोदृष्ट । यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम्। धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि। अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ ऐसा और इतना प्रश्न किया गया है ॥

अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ नैष दोष ॥ युगपद्भाविनामपि आधाराधेयभावो दृश्यते । घटे रूपादय शरीरे हस्तादय इति ॥ लोक इत्युच्यते । को लोक ? । धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोक इति ॥ अधिकरणसाधने घञ् ॥ आकाश द्विधा विभक्त । लोकाकाशमलोकाकाशं चेति ॥ लोक उक्त । स यत्र तल्लोकाकाशम् । ततो बहि सर्वतोऽनन्तमलोकाकाशम् ॥ लोकालोकविभागश्च धर्माधर्मास्तिकायसद्भावात्,

अतः॰ व्यवहारनय अपेक्षया॰ अपि॰ आधार-आधेय कल्पना अनुपपत्ति॰ इति॰ ॥	=इसलिये व्यवहारनयकी अपेक्षासे भी आधार आधेयके माननेकी सिद्धि नहीं(होती)है(क्योंकि पूर्व में कथन कर चुके हैं कि एवम्भूतनय की अपेक्षासे सर्व द्रव्य अपने अपने आधार हैं और व्यवहारनयसे आश्रय आश्रयी (=आधेय)भाव है
न॰ एषः॰ दोषः॰ युगपद्॰ भाविनाम्॰ अपि॰ आधार आधेय-भावः॰ दृश्यते । घटे॰ रूपादयः॰	=(उत्तर)यह दूषण नहीं है(क्योंकि)एक कालमें होनेवालोंमें भी आधार आधेय भाव देखा जाता है ।(जैसे)घड़ा में रूपादिक हैं
शरीरे॰ हस्त आदयः॰ इति॰ । लोकः॰ इति॰ उच्यते ।	=शरीर में हस्तादिक हैं ॥ 'लोक' ऐसा कहा जाता है ॥
कः॰ लोकः॰ ? धर्म अधर्म आदीनि॰ द्रव्याणि॰ यत्र॰	=(प्रश्न)लोक क्या है ? (उत्तर)धर्म, अधर्म आदिक द्रव्यें जहां
लोक्यन्ते॰ सः॰ लोकः॰ इति॰ अधिकरणसाधने॰	=देखी जाती हैं सो लोक है।ऐसे(लोक शब्द को)अधिकरण वा आधार सिद्ध करनेमें
(१)घञ्॰ । आकाशम्॰ द्विधा॰ विभक्तम्॰	=घञ् (=अ) प्रत्यय लगाया है, जोड़ा है । आकाश दो प्रकारसे बंटा हुआ है
लोकाकाशम्॰ अलोकाकाशम्॰ च॰ इति॰ लोकः॰ उक्तः॰,	=लोकाकाश और अलोकाकाश हैं । लोक (जहां धर्मादिक द्रव्यें देखी जाती हैं ऐसा) कहा गया है
सः॰ यत्र॰ तत्॰ लोकाकाशम्॰ । ततः॰ बहिः॰	=वह (लोक) जहां (=यत्र) है सो (=तत्) लोकाकाश है, तिस (लोक) से बाहिर
सर्वतः॰ अनन्तम्॰ अलोकाकाशम्॰ । च॰ लोक	=चारोंओर अन्तरहित अलोकाकाश है और लोक
अलोक-विभागः॰ धर्म-अधर्म अस्तिकाय-सद्भावात्॰	=अलोक का विभाग धर्मास्तिकायकी, अधर्मास्तिकाय की विद्यमानता से

(१) लोक् धातु का अर्थ देखना है घञ् प्रत्ययमें घ्, ञ् इत् होनेसे लोप होगये अ शेष रहा, तब लोक्+अ ऐसा रूप हुआ, अर्थात् 'लोक' शब्द बनगया ॥

विज्ञेय ॥ असति हि तस्मिन्धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलानां गतिनियमहेत्वभावाद्विभागो न स्यात् । असति चाधर्मास्तिकाये स्थितेराश्रयनिमित्ताभावात स्थितेरभाव । तस्या अभावे लोकालोकविभागाभावो वा स्यात् । तस्मादुभयसद्भावाल्लोकालोकविभागसिद्धि ॥

तत्रावध्रियमाणानामवस्थानभेदसम्भवाद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

ज्ञेयः ॥	=जाननायोग्य है(जहांतक,जहांपरधर्म,अधर्मद्रव्योंका अस्तित्व है वहांतक लोकाकाश है)
असति हि तस्मिन् धर्मास्तिकाये	=क्योंकि (=हि) तिस धर्मास्तिकायके न होनेपर
जीव-पुद्गलानाम् गति-नियम-हेतु-अभावात् विभागः	=जीव पुद्गलोंके गमनके नियमके कारणके अभावसे लोक और लोकका विभाग
न स्यात्, च असति अधर्मास्तिकाये स्थितेः	=नहीं होसकता है और (=च) अधर्मास्तिकाय न होनेपर स्थितिके
आश्रय-निमित्त अभावात् स्थितेः अभावः, तस्याः	=आश्रयके हेतुके अभावसे स्थितिका अभाव होता है । तिस (स्थिति)के
अभावे लोक-अलोक-विभाग-अभावः वा स्यात् ।	=न होनेपर लोक अलोकका विभाग निश्चयसे(=वा) नहीं होगा(अभावः स्यात्)
तस्मात् उभय-सद्भावात् लोक-अलोक-विभाग-सिद्धिः ॥	=तिससे दोनों(धर्म,अधर्म द्रव्यों)के अस्तित्वसे लोक अलोकके विभागकी सिद्धि है
तत्र अवध्रियमाणानाम् अवस्थान	=वहां निर्णयक्रियेगये अथवा अवधारणक्रियेगयेके अवस्थानके
भेद-सम्भवात् विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह	=भेद सम्भव होनेसे विशेष ज्ञानके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
[1]सूत्रम् धर्माधर्मयो कृत्स्ने ॥ १३ ॥	= धर्माधर्मयो कृत्स्ने(लोकाकाशे अवगाह भवति)।१३।
सूत्रार्थ—धर्म-अधर्मयोः कृत्स्ने लोकाकाशे अवगाहः भवति ।	=धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्यकी समस्त लोकाकाशमें =स्थिति है अर्थात् जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है उसी प्रकार लोकाकाशके समस्त प्रदेशों में धर्म अधर्म द्रव्योंके प्रदेश पूर्णरूपसे व्याप्त हैं ।

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है । कहींपर "धर्माधर्मयोः कृत्स्ने" पाठ है दोनों पाठ "कथा रत्नाकर दे(वा)" भद्रबाहुकी ... सूत्रकी टीका है ।

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रदर्शनार्थम् ।

अगारेऽवस्थितो घट इति यथा, तथा धर्माधर्मयोर्लोकाकाशेऽवगाहो न भवति किं तर्हि ?। कृत्स्ने, तिलेषु तैलवदिति ॥ अन्योऽन्यप्रदेशप्रवेशव्याघाताभावोऽवगाहनशक्तियोगाद्वेदितव्य ॥

अतो विपरीतानां मूर्तिमतामेकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां पुद्गलानामवगाहविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

कृत्स्नवचनम्¹ ॥ अशेष-व्याप्ति-प्रदर्शन अर्थं	=(इस सूत्रमें) कृत्स्न शब्द सर्व(लोकमें) व्याप्ति अथवा फैलावटके दिखानेके लिये है,
अगारे¹ ॥ अवस्थितः¹ घटः¹ इति॰ यथा॰, तथा॰	=जैसे घरमें घड़ा अवस्थित या रक्खा हुआ है वैसे
धर्म-अधर्मयोः¹ लोकाकाशे¹ ॥ अवगाहः¹ न॰ भवति।	=धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनोंका लोकाकाशमें अवगाह नहीं होता है
किं॰ तर्हि॰ ।	=(प्रश्न) तो कैसे है ! प्रश्नका भावार्थ ऐसा है कि आचार्यकी यह बात सुनकर कि घरमें रक्खे हुये घटके समान धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोकाकाशमें रक्खेहुये नहीं है शिष्यने अचम्भित, उत्सुक और अधीर होकर तत्काल्ही प्रश्न करदियाकि तो कैसे है
कृत्स्ने¹ ॥ तिलेषु¹ तैलवत्॰ इति॰ ॥	(=उत्तर) सम्पूर्णमें अर्थात् तिलोंमें तेलके सदृश भावार्थ जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है वैसे लोकाकाशके समस्त प्रदेशोंमें सर्वत्र धर्म अधर्मद्रव्योंकेप्रदेश पूर्णतया व्याप्त है
अन्योऽन्य प्रदेश-प्रवेश-व्याघात-अभावः¹	=(धर्म-अधर्मद्रव्योंके) परस्पर प्रदेशोंके प्रवेशमें व्याघात या रुकावट नहीं है
अवगाहन शक्ति-योगात्¹	=(सो रुकावटका अभाव धर्म अधर्मद्रव्योंकी) अवगाहनकी सामर्थ्यके योगसे
वेदितव्यः¹	=जानना चाहिये अर्थात् धर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश अधर्मद्रव्यके एकर प्रदेशमें व्याघात रहित प्रवेश है और अधर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश धर्मद्रव्यके पृथक् पृथक प्रदेशमें बिना रोकटोक प्रवेशहै सो यह परस्पर प्रवेशता धर्म अधर्मके अवगाहनशक्तिके निमित्तसेहै
अतः॰ विपरीतानाम्¹ मूर्तिमताम्¹ एकप्रदेश-संख्येय	=इसलिये,इन अमूर्तीक धर्म-अधर्मद्रव्योंके) विरुद्ध मूर्तिमान् एकप्रदेशी, सख्यातप्रदेशी
असंख्येय अनन्त-प्रदेशानाम्¹ पुद्गलानाम्¹	=असंख्यात प्रदेशी अनन्त प्रदेशी (अनन्तानन्त प्रदेशी) पुद्गलोंकी
अवगाह-विशेष-प्रतिपत्ति- अर्थम्¹ ॥ आह॰	=अवगाहको विशेष जाननेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

विज्ञेय ॥ असति हि तस्मिन्धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलाना गतिनियमहेत्वभावाद्विभागो न स्यात्। असति चाधर्मास्तिकाये स्थितेराश्रयनिमित्ताभावात् स्थितेरभाव । तस्या अभावे लोकालोकविभागाभावो वा स्यात्। तस्मादुभयसद्भावाल्लोकालोकविभागसिद्धि ॥

तत्रावध्रियमाणानामवस्थानभेदसम्भवाद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

विज्ञेयम् ॥
असति हि तस्मिन् धर्मास्तिकाये
जीव-पुद्गलानाम् गति-नियम-हेतु-अभावात् विभागः
न स्यात्, च असति अधर्मास्तिकाये स्थितेः
आश्रय-निमित्त-अभावात् स्थितेः अभावः, तस्याः
अभावे लोक-अलोक-विभाग अभावः वा स्यात्।
तस्मात् उभय-सद्भावात् लोक-अलोक-विभाग-सिद्धिः॥
तत्र अवध्रियमाणानाम् अवस्थान
भेद-सम्भवात् विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह

(१)सूत्रम् धर्माधर्मयो कृत्स्ने ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ —धर्म-अधर्मयोः कृत्स्ने लोकाकाशे अवगाहः भवति।

=जानना योग्य है (जहां तक, जहां पर धर्म, अधर्म द्रव्योंका अस्तित्व है वहां तक लोकाकाश है)
=क्योंकि (=हि) तिस धर्मास्तिकायके न होनेपर
=जीव पुद्गलोंके गमनके नियमके कारणके अभावसे लोक और (अलोकका) विभाग
=नहीं होसकता है और (=च) अधर्मास्तिकाय न होनेपर स्थितिके
=आश्रयके हेतुके अभावसे स्थितिका अभाव होता है। तिस (स्थिति)के
=न होनेपर लोक अलोकका विभाग निश्चयसे (=वा) नहीं होगा (अभावः स्यात्)
=तिससे दोनों (धर्म, अधर्म द्रव्यों)के अस्तित्वसे लोक अलोकके विभागकी सिद्धि है
=वहां निर्णय किये गये अथवा अवधारण किये गयेके अवस्थानके
=भेद सम्भव होनेसे विशेष ज्ञानके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

= धर्माधर्मयो कृत्स्ने (लोकाकाशे अवगाह भवति)।१३।

=धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्यकी समस्त लोकाकाशमें
=स्थिति है अर्थात् जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है उसी प्रकार लोकाकाशके समस्त प्रदेशों में धर्म अधर्म द्रव्योंके प्रदेश पूर्णरूपसे व्याप्त हैं।

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है। कहींपर "धर्माधर्मयोः कृत्स्ने" पाठ है दोनों पाठ "अथो रहाम्लो है(वा)" अधाध्यायी ... सूत्रके ठीक है।

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रदर्शनार्थम् ।

अगारेऽवस्थितो घट इति यथा, तथा धर्माधर्मयोर्लोकाकाशेऽवगाहो न भवति किं तर्हि ?। कृत्स्ने, तिलेषु तैलवदिति ॥ अन्योऽन्यप्रदेशप्रवेशव्याघाताभावोऽवगाहनशक्तियोगाद्वेदितव्य ॥

अतो विपरीताना मूर्तिमतामेकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशाना पुद्गलानामवगाहविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

वृत्त्यनुवाद—कृत्स्न-वचनम् ॥ अशेष-व्याप्ति प्रदर्शन-अर्थं =(इस सूत्रमें)कृत्स्न शब्द सर्व(लोकमें)व्याप्ति अथवा फैलावटके दिखानेके लिये है,

अगारे ॥ अवस्थितः ॥ घटः ॥ इति॰ यथा॰, तथा॰ =जैसे घरमें घड़ा अवस्थित या रक्खा हुआ है तैसे

धर्म-अधर्मयोः ॥ लोकाकाशे ॥ अवगाहः ॥ न॰ भवति =धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनोंका लोकाकाशमें अवगाह नहीं होता है

किं॰ तर्हि॰ । = प्रश्न) तो कैसे हैं ? प्रश्नका भावार्थ ऐसा है कि आचार्यकी यह बात सुनकर कि घरमें रक्खे हुये घटके समान धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोकाकाशमें रक्खेहुये नहीं हैं शिष्यने अचम्भित,उत्सुक और अधीर होकर तत्कालही प्रश्न करदियाकि तो कैसे हैं

कृत्स्ने ॥ तिलेषु ॥ तैलवत्॰ इति॰ ॥ (=उत्तर)सम्पूर्णमें अर्थात् तिलोंमें तेलके सदृश भावार्थ जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है तैसे लोकाकाशके समस्त प्रदेशोंमें सर्वत्र धर्म अधर्मद्रव्योंकेप्रदेश पूर्णतया व्याप्त हैं

अन्योऽन्य प्रदेश-प्रवेश-व्याघात-अभावः ॥ =(धर्म-अधर्मद्रव्योंके) परस्पर प्रदेशोंके प्रवेशमें व्याघात या रुकावट नहीं है

अवगाहन शक्ति-योगात् ॥ =(सो रुकावटका अभाव धर्म अधर्मद्रव्योंकी)अवगाहनकी सामर्थ्यके योगसे

वेदितव्यः ॥ =मानना चाहिये अर्थात् धर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश अधर्मद्रव्यके एक२ प्रदेशमें व्याघात रहित प्रवेश है और अधर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश धर्मद्रव्यके पृथक् पृथक् प्रदेशमें बिना रोकटोक प्रवेशहै सो यह परस्पर प्रवेशता धर्म अधर्मके अवगाहनशक्तिके निमित्तसेहै

अतः॰ विपरीतानाम् ॥ मूर्तिमताम् ॥ एकप्रदेश-संख्येय =इसलिये(इन अमूर्तीक धर्म-अधर्मद्रव्योंके)विरुद्ध मूर्तिमान् एकप्रदेशी, सख्यातप्रदेशी

असंख्येय अनन्त-प्रदेशानाम् ॥ पुद्गलानाम् ॥ =असंख्यात प्रदेशी अनन्त प्रदेशी (अनन्तानन्त प्रदेशी) पुद्गलोंकी

अवगाह-विशेष-प्रतिपत्ति- अर्थम् ॥ आह ॥ =अवगाहको विशेष जाननेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

(१)सूत्रम्—एकप्रदेशादिषु (५)भाज्य पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

= (२लोकाकाशे)एकप्रदेशादिषु (४)भाज्य (एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां) पुद्गलाना (३)अवगाह)

सूत्रार्थ—लोकाकाशे।।एकप्रदेश' आदिषु।' =लोकाकाशके एक प्रदेशादिकनिमें

एकप्रदेश-संख्येय असंख्येय अनन्त-अनन्तान तप्रदेशानां।पुद्गलानां।अवगाह।भवति =एक प्रदेशी, दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी आदि संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी और अनन्तप्रदेशी, अनन्तानन्तप्रदेशी पुद्गलोंका अवगाह-स्थिति-अवस्थान-ठहराव-टिकाव

भाज्य'। =विभाग करने योग्य है, विकल्पनीय है या बांटेजाने योग्य है अर्थात् लोकाकाशके एक दो-तीन-चार-पांच इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेशों तकमें पुद्गलद्रव्य के एकपरमाणु, दोपरमाणु, तीनपरमाणु, चारपरमाणु, पांचपरमाणु, छहपरमाणु इत्यादिक संख्यात परमाणु, असंख्यात परमाणु, अनन्त परमाणु, और अनन्तानन्त परमाणुओंका अवगाह विभाग करने योग्य है, बांटेजाने योग्य है भावार्थ कि लोकाकाशके एकप्रदेशमें पुद्गलद्रव्यके एकपरमाणु, दोपरमाणुके(जो सूक्ष्मपरिणये) स्कंधका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ सभी सर्वप्रतियोंमें एकसा है ॥ पुद्गलानाम् के स्थानमें कहीं कहीं 'पुद्गलानां' ऐसा पाठ है वह कातन्त्ररूपमाला व्याकरणको छोड़कर अशुद्ध है ॥ (२) 'लोकाकाश' और 'अवगाह' की बारहवां सूत्रसे अनुवृत्ति है॥ 'एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्त प्रदेशानां पुद्गलानाम्' यह समस्त यदि इस दृष्टिसे रक्खाजावे तो दशवां सूत्रकी अनुवृत्ति है क्योंकि उक्त सूत्रमें प्रदेशशब्दकी अनुवृत्ति आठवां सूत्रसे लीगई है अतः यहांभी प्रदेश शब्द आठवां सूत्रसे अनुवर्तता है ॥ दशवां सूत्रके संख्येय' शब्दमें एक प्रदेश और संख्यात प्रदेशआजाते हैं ॥ दशवां सूत्रके अनन्त शब्दमें 'अनन्तानन्त भी गर्भित है जैसाकि उक्त सूत्रकी वृत्तिके निम्न वाक्योंसे प्रगट है अनन्त सामान्यात् ॥ अनन्त प्रमाणं त्रिविधमुक्त परीतानन्त युक्तानन्तमनन्तानन्तं चेति । तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते ॥ इन वाक्योंके अर्थके लिये देखो पृष्ठ २६ ॥ (३) यह अनुवाद दशवां सूत्रके आधारपर है । (४) "भाज्य" विभजनीय विभाग करने योग्य विभाज्य विकल्प करने योग्य विकल्पनीय बांटने योग्य अंशनीय ये सर्व एकार्थवाची हैं ॥(५) पुद्गल द्रव्यका अवगाह लोकाकाशके एक प्रदेश में आदि असंख्यात प्रदेश तांई अनेक प्रकार हैं ॥ पं० जयचन्दजीकृत सर्वार्थसिद्धि ॥

तीन परमाणुके(जो सूक्ष्मरूपमें पलट गये हैं)स्कंधका चार परमाणुके(जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका इत्यादि संख्यात परमाणुके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणमें हैं) स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंध का, तथा सूक्ष्मरूप परिणमें अनन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिणत अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुके स्कंधका भी अवगाह या अवस्थान (लोकाकाशके एक प्रदेशमें) है ;

लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके दोपरमाणु खुलेहुओंका अथवा दो परमाणु बन्धे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये हैं स्थिति है, तीन परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूप विकारको प्राप्त हुई है) स्कंधका, चार परमाणुओं के (जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित है) स्कंधका और ऐसाही परिवर्तित पांच परमाणुके स्कंधका तथा ऐसेही परिणत छह परमाणुओंके स्कंधका, इत्यादिक ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित संख्यात पुद्गल परमाणुके स्कंधका, ऐसाही स्कंध असंख्यात परमाणुओंकेका, ऐसाही स्कंध अनन्त परमाणुओंकेका और पुद्गलके अनन्तानंत परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणये हैं) स्कंधकाभी अवगाह या ठहराव या स्थिति (लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें) है ;

लोकाकाशके तीन प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके तीन परमाणु खुले हुओंका अथवा तीन परमाणु बंधे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये हैं, चार परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूप परिणमें हैं) स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिणत पांच परमाणुके स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिवर्तित छह परमाणुओंके स्कंधका अवगाह, इत्यादिक सात, आठ, नौ, दश संख्यात सूक्ष्मरूप परिणत परमाणुओंके स्कंधकी स्थिति, ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंधका अवस्थान अनन्त परमाणुके ऐसेही स्कंधकी स्थिति, और ऐसेही सूक्ष्म परिणत अनन्तानंत परमाणुओंकी स्थिति तीन प्रदेशोंमें है ।

इसही प्रकार लोकाकाशके चार पांच-छह-सात-आठ-नौ-दश इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेश पर्यंतोंमें चार पांच-छह-सात-आठ नौ-दश-इत्यादिक संख्यात और असंख्यात पुद्गल परमाणुओंके स्कंध का जो लोकाकाशके प्रदेशोंकी यथायोग्य गणनानुसार खुले हुये होसकते है या बंधे हुये (सूक्ष्मरूपमें नहीं) अथवा उक्त नियमकी गणनानुसार सूक्ष्मरूपमें परिणतभी होसकते हैं, अवस्थान आवश्यक जानो, परन्तु अनन्त और अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका लोकाकाशके एक,दो,तीन, चारसे असंख्यात प्रदेशों तकमें उसी समय, अवस्थान या अवगाह होसक्ता है जब वे अनन्त परमाणु या अनन्तानन्त परमाणु सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं क्योंकि लोकाकाशके तो असंख्यात ही प्रदेश हैं । स्मरण रहे कि जितनी खुली हुई परमाणु हैं

॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

(१)सूत्रम्—एकप्रदेशादिषु (४)भाज्य पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

= (२लोकाकाशे) एकप्रदेशादिषु (४)भाज्य (एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां) पुद्गलाना (५अवगाह)

सूत्रार्थ—लोकाकाशे। एकप्रदेश आदिषु। =लोकाकाशके एक प्रदेशादिकनिमें

एकप्रदेश-संख्येय असंख्येय =एक प्रदेशी, दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी आदि संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी और

अनन्त-अनन्तान प्रदेशानां। पुद्गलानां। अवगाहः। भवति =अनन्तप्रदेशी, अनन्तानन्तप्रदेशी पुद्गलोंका अवगाह-स्थिति अवस्थान-ठहराव-टिकाव

भाज्यः। =विभाग करने योग्य है, विकल्पनीय है या बांटेजाने योग्य है अर्थात् लोकाकाशके एक दो-तीन-चार-पांच इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेशों तकमें पुद्गलद्रव्य के एकपरमाणु, दोपरमाणु, तीनपरमाणु, चारपरमाणु, पांचपरमाणु, छहपरमाणु इत्यादिक संख्यात परमाणु, असंख्यात परमाणु, अनन्त परमाणु, और अनन्तानन्त परमाणुओंका अवगाह विभाग करने योग्य है, बांटेजाने योग्य है भावार्थ कि लोकाकाशके एकप्रदेशमें पुद्गलद्रव्यके एकपरमाणु, दोपरमाणुके (जो सूक्ष्मपरिणये) स्कंधका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ सभी प्रतियोंमें एकसा है। पुद्गलानाम् के स्थानमें कहीं कहीं 'पुद्गलानां' ऐसा पाठ है वह [illegible] व्याकरणसे शुद्ध है। (२) 'लोकाकाश' और 'अवगाह' की बारहवें सूत्रसे अनुवृत्ति है। 'एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्त प्रदेशानां पुद्गलानाम्' यह समस्त यदि [illegible] [illegible] तो [illegible] सूत्रकी अनुवृत्ति है क्योंकि उक्त सूत्रमें प्रदेशशब्दकी अनुवृत्ति आठवें सूत्रसे ली गई है [illegible] आठवें सूत्रसे अनुवर्तना है। [illegible] सूत्रके संख्येय शब्दमें एक प्रदेश और संख्यात प्रदेश आजाते हैं। [illegible] सूत्रके अनन्त शब्दमें 'अनन्तानन्त' भी गर्भित है जैसाकि उक्त सूत्रकी [illegible] निम्न वाक्योंसे प्रगट है अनन्त सामान्यात् । अनन्त प्रमाण त्रिविधमुक्तं परीतानन्त युक्तानन्तमनन्तानन्तं चेति । तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते । इन वाक्योंके अर्थके लिये देखो पृष्ठ २८ । (३) यह अनुवाद [illegible] सूत्रके आधारपर है। (४) "भाज्य" विभजनीय विभाग करने योग्य विभाज्य विकल्प करने योग्य विकल्पनीय [illegible] [illegible] के सर्व एकार्थवाची हैं ।(५) पुद्गल द्रव्यका अवगाह लोकाकाशके एक प्रदेश में [illegible] प्रदेश तोई अनेक प्रकार है । पं० [illegible] अर्थप्रकाशिका ।

तीन परमाणुके(जो सूक्ष्मरूपमें पलटगये हैं)स्कंधका चार परमाणुके(जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं)स्कंधका इत्यादि संख्यात परमाणुके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणमें हैं) स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंध का, तथा सूक्ष्मरूप परिणमें अनन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिणत अनन्तानंत पुद्गल परमाणुके स्कंधका भी अवगाह या अवस्थान (लोकाकाशके एक प्रदेशमें) है;

लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके दोपरमाणु खुलेहुओंका अथवा दो परमाणु बन्धे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये हैं स्थिति है, तीन परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूप विकारको प्राप्त हुई है) स्कंधका, चार परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका और ऐसाही परिवर्तित पांच परमाणुके स्कंधका तथा ऐसही परिणत छह परमाणुओंके स्कंधका, इत्यादिक ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित संख्यात पुद्गल परमाणुके स्कंधका, ऐसाही स्कंध असंख्यात परमाणुओंकेका, ऐसाही स्कंध अनन्त परमाणुओंकेका और पुद्गलके अनन्तानंत परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणये हैं) स्कंधकाभी अवगाह या ठहराव या स्थिति (लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें) है;

लोकाकाशके तीन प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके तीन परमाणु खुले हुओंका अथवा तीन परमाणु बंधे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये हैं, चार परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूप परिणमें हैं) स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिणत पांच परमाणुके स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिवर्तित छह परमाणुओंके स्कंधका अवगाह, इत्यादिक सात, आठ, नौ, दश संख्यात सूक्ष्मरूप परिणत परमाणुओंके स्कंधकी स्थिति, ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंधका अवस्थान अनन्त परमाणुके ऐसेही स्कंधकी स्थिति, और ऐसेही सूक्ष्म परिणत अनन्तानंत परमाणुओंकी स्थिति तीन प्रदेशोंमें है।

इसही प्रकार लोकाकाशके चार-पांच-छह-सात-आठ-नौ-दश इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेश पर्यंतोंमें चार पांच-छह-सात आठ नौ-दश-इत्यादिक संख्यात और असंख्यात पुद्गल परमाणुओंके स्कंध का जो लोकाकाशके प्रदेशोंकी यथायोग्य गणनानुसार खुले हुये होसकते हैं या बंधे हुये (सूक्ष्मरूपमें नहीं) अथवा उक्त नियमकी गणनानुसार सूक्ष्मरूपमें परिणतभी होसकते हैं, अवस्थान आप्यरूप जानो, परन्तु अनन्त और अनन्तानंत पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका लोकाकाशके एक,दो,तीन, चारसे असंख्यात प्रदेशों तकमें उसी समय, अवस्थान या अवगाह होसकता है जब वे अनन्त परमाणु या अनन्तानन्त परमाणु सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं क्योंकि लोकाकाशके तो असंख्यात ही प्रदेश हैं । स्मरण रहे कि जितनी खुली हुई परमाणु हैं

एक एव प्रदेश: एकप्रदेश । एकप्रदेश आदिर्येषा त इमे एकप्रदेशादय । तेषु पुद्गलानामवगाहो भाज्यो विकल्प्य ॥ अवयवेन विग्रह

उतने लोकाकाशके प्रदेशोंसे अधिकमें अवगाहनीय नहीं होसकती हैं। अधिकसे अधिक उतने ही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह या टिकाव होसकता है जितनी उनकी सूक्ष्मे रूपमें संख्या है ॥

वृत्त्यनुवाद:—एकः एव प्रदेशः एकप्रदेशः । =एकही प्रदेश है सो (द्विगु समासरूपमें) एकप्रदेश है

एकप्रदेशः आदिः येषाम् ते इमे एकप्रदेशादयः । =एक प्रदेश है आदिमें अर्थात् प्रथममें जिनके वे इतने "एक प्रदेशादय" हैं

तेषु =तिन (एक प्रदेशादिक अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच-छह-इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे, असंख्यात प्रदेशोंतक)में

पुद्गलानाम् =पुद्गलों (की एकपरमाणु, दो परमाणु, तीन परमाणु, चार परमाणु, पांच परमाणु, छह परमाणु, सात परमाणु, आठ परमाणु इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त परमाणुओं)की

अवगाहः भाज्यः विकल्प्यः =स्थिति विभाग करनेयोग्य (=भाज्य) है। विकल्पनीय है भजनीय है ॥

अवयवेन =(एकप्रदेशादिषु इस षष्ठ्यन्तसमासका) टुकडेटुकडेरूपसे वा अंशअंशकरि

विग्रहः =व्याकरणानुसार व्यवच्छेद (=विग्रह) सार (विग्रह) वा विस्तार कियागया है सो

(१) "एकप्रदेशादिषु" समासके अवयव इसप्रकार होसकते हैं कि — लोकाकाशे एकप्रदेशे पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः) ऐसे एकप्रदेशमें भी कियागया है॥ () लोकाकाशे द्विप्रदेशयोः पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे त्रिप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे चतुःप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे पञ्चप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः। () लोकाकाशे षट् प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः। () () लोकाकाशे सप्तप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः। () लोकाकाशे अष्टप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः। () लोकाकाशे नवप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः। () लोकाकाशे दशप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () एवमेव लोकाकाशे संख्यातप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे असंख्यातप्रदेशेषु अपि पुद्गलानां अवगाहः भाज्यश्च ।

(२) दोनों बातकी पुष्टिहेतु सर्वार्थसिद्धिमें विग्रहसमुदाय समासार्थ ऐसा पाठ है अर्थात् विग्रह और समुदाय शब्दोंको मिलादिया है जो बहुत बड़ी ओरके पश्चात्

समुदायः समासार्थ इति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते ॥

समास-अर्थः	=सो(उक्त 'एकप्रदेशादिषु') समासका भाव, अभिप्राय, वा तात्पर्य (=अर्थ।)
समुदायः।	=संचयरूपमें ग्रहण करनेका है (=समुदाय),अथवा एकदेशरूपमें लियजानेका है(=समुदाय) कि
इति=एक-प्रदेशः'अपि=गृह्यते।	=इस प्रकारसे(=इति)एकप्रदेश भी लेलियागया है भावार्थ ऐसा है कि 'एकप्रदेशादिषु'

निम्नलिखित हेतुओंसे ज्ञात होताहै कि उक्त पाठ अशुद्ध है (अ) सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंके पत्रों १११ ६२ ५१ परक्रमसे अवयवेन विग्रहस्समुदायः समासार्थ इति' पाठ है ॥ यदि विसर्गके पश्चात् श-ष-स- आवें तो विसर्गका विसर्ग क्या रहसेकी कहें क्रमसे श-ष-स- में पलटतो इसलिये विग्रहस्समुदाय =विग्रहः समुदाय (वाक्य)के ॥

(आ)तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २०७ पर कलकत्तेकी संस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिकका मुद्रित समयाद्के अध्याय ५ पृष्ठ १५६ पर और पं० पन्नालालजी दूनी अनुवादित राजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ० १७ पर और पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ०५४ पर प्रथमवार्तिक यह है"एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः ॥१॥यहांपर'वृत्ति'शब्दकाअर्थ समास है। तत्त्वार्थ राजवार्तिकके सूत्र'असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥ पर प्रथमवार्तिक यह है कि 'अवयवेन विग्रह समुदायो वृत्त्यर्थ' इति"

(ग) श्रुतसागर सूरि कृता 'श्रुतसागरटीका' हस्तलिखितप्रतिके पत्र १५१ पर 'यथा व्याकरणेऽवयवेन विग्रहो भवति समुदायः समासार्थो भवति तथा एकप्रदेशोपि गृह्यते बहवश्च प्रदेशा गृह्यते=अब व्याकरणमें अवयव सहित विग्रह होता है समासका अर्थ समुदाय होता है तब एक प्रदेश भी ग्रहण कियागया है और बहुत प्रदेश भी लियेगये हैं अथवा ग्रहण किये गये हैं। इस सम्बन्धमें इमको तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक तथा श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उसकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें कुछभी नहीं प्राप्त हुआ है ॥

(घ) पं० जयचन्द्ररायजीने इसी सूत्रकेनीचे ऐसा अनुवाद किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिषु समास अवयवकरि कियाहै तातैं समुदाय जानना" ॥

(ङ)पं० पन्नालालजी दूनीका अनुवाद इस प्रकार है तिन एकप्रदेशादिकनिविर्षे ऐसो समास जोहै ता समुदायरूपवृत्तिके अर्थ सर्वार्थके समानहै उक्त दूनीजीने राजवार्तिक १५वां सूत्रको प्रथमवार्तिक 'अवयवेन विग्रह समुदायो वृत्त्यर्थ इति' का यह अनुवाद किया है कि'अवयवकरिविग्रहहोयहै अरवृत्तिका अर्थ समुदाय है यहापरभी वृत्तिका अर्थ समास है ॥

(च) पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवाद करते हैं 'एक प्रदेशादिकके विर्षे समुदायवृत्तिरूप जो अर्थ है सो सर्वार्थसिद्धिके समान है। ताकरि एकप्रदेशभी ग्रहण होय है ऐसा जानना" ॥ यह अनुवाद 'एकप्रदेशादिषु इति विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः सर्वार्थवत् । तेनेकप्रदेशोऽपि भवतीवर्ति' वृत्तिका है ॥ प्रथम वार्तिक 'एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः' का अनुवाद ऐसे किया है कि यहां एकप्रदेशादिषु या बहुवचनांत वाक्यका विग्रह अवयवकरि है तातैं समुदाय वृत्ति जानना' ॥ 'असंख्येयभागादिषु जीवानाम्'॥ १५वां सूत्रकी प्रथम वार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थ इति' का अनुवाद ऐसा किया है कि "अवयवकरि विग्रह है सो समासमें समुदायरूप अर्थकू कहै है"

यदि हम छपीहुई सर्वार्थ सिद्धिवृत्तिवोका पाठ मानलेंतो अवयवेन विग्रहसमुदाय समासार्थइति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते वाक्यका अनुवाद इसप्रकार होगा

अवयवेन॥ विग्रह-समुदाय ॥	=टुकड़े २ रूपसे वा अंश २ रूपसे विग्रह (अर्थात् समासार्थबोधक वाक्यों)का(यहां) संग्रह व समुच्चय है
समास-अर्थः॥ इति=एकप्रदेशः॥अपि=गृह्यते।	=जो (एकप्रदेशादिषु) समासके अर्थ के (स्पष्ट करनेके लिये) है ऐसे (आकाशका) एक प्रदेशभी
	=ग्रहण किया गया है भावार्थ यह है कि (एकप्रदेशादिषु)यह समास है इस समासके अंश वा अवयवका भाग 'एकप्रदेशे और एक प्रदेशादिषु हैं वे अवयवरूपसे

एक एव प्रदेशः एकप्रदेशः । एकप्रदेश आदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः । तेषु पुद्गलानामवगाहो भाज्यो विकल्प्यः ॥ अवयवेन विग्रहः

उतने लोकाकाशके प्रदेशोंसे अधिकमें अवगाहनीय नहीं होसकती हैं । अधिकसे अधिक उतने ही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह या टिकाव होसकता है जितनी उनकी सूक्ष्म रूपमें संख्या है ॥

पृथग्नुवादः—एकः। एव। प्रदेशः। एकप्रदेशः। । =एकही प्रदेश है सो (द्विगु समासरूपमें) एकप्रदेश है

एकप्रदेशः। आदिः। येषाम्। ते। इमे। एकप्रदेशादयः। । =एक प्रदेश है आदिमें अर्थात् प्रथममें जिनके वे इतने "एक प्रदेशादय" हैं

तेषु। =तिन (एक प्रदेशादिक अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच-छह-इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे, असंख्यात प्रदेशोंतक)में

पुद्गलानाम्। =पुद्गलों (की एकपरमाणु, दो परमाणु, तीन परमाणु, चार परमाणु, पांच परमाणु, छह परमाणु, सात परमाणु, आठ परमाणु इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त परमाणुओं)की

अवगाहः। भाज्यः। विकल्प्यः। =स्थिति विभाग करनेयोग्य(=भाज्य)है । विकल्पनीय है अंशनीय है ॥

अवयवेन। =(एकप्रदेशादिषु इस बहुवचनांतसमासका) टुकड़े टुकड़े रूपसे या अंशअंशकरि

विग्रहः। =व्याकरणानुसार व्यवच्छेद(=विग्रह)सार (विग्रह)या विस्तार किया गया है सो

(१) "एकप्रदेशादिषु" समासके अवयव इसप्रकार हासकते हैं कि = लोकाकाशे एकप्रदेशे पुद्गलानां अवगाह भाज्यः ऐसे एकप्रदेशमें कियागया है।
() लोकाकाशे द्विप्रदेशयोः पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे त्रिप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः ।
() लोकाकाशे चतुःप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे पंचप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः।
() लोकाकाशे षट्प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । ()
() लोकाकाशे सप्तप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे अष्टप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः ।
() लोकाकाशे नवप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे दशप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः ।
() इत्येवम् लोकाकाशे संख्यातप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे असंख्यातप्रदेशेषु अपि पुद्गलानां अवगाहः भाज्यस्तु ।
(२) यहांसे आगेकी छपीहुई संस्कृत सर्वार्थसिद्धिमें विग्रहसमुदायः समासार्थः ऐसा पाठ है अर्थात् विग्रह और समुदाय शब्दोंको मिलादिया है सो बहुत पहली आवृत्तिके पश्चात्

समुदाय समासार्थं इति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते ॥

समास अर्थः	=सो(उक्त 'एकप्रदेशादिषु') समासका भाव, अभिप्राय, या तात्पर्य (=अर्थ।)
समुदायः।	=संघयरूपमें ग्रहण करनेका है (=समुदाय), अथवा इकट्ठेरूपमें लियजानेका है(=समुदाय) कि
इति=एक प्रदेशः। अपि=गृह्यते।	=इस प्रकारसे(=इति)एकप्रदेश भी लेलियागया है भावार्थ ऐसा है कि 'एकप्रदेशादिषु'

निम्नलिखित हेतुओंसे ज्ञात होता है कि उक्त पाठ अशुद्ध है (क) सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंके पत्रे १११ ६२ ५१ पर क्रमसे अवयवेन विग्रहस्समुदायः समासार्थं इति' पाठ है ॥ यदि विसर्गके पश्चात् श_ष_स_ आवें तो विसर्गका विसर्ग बना रहनेको चाहैं क्रमसे श_ष_स_ में पलटदो इसलिये विग्रहस्समुदाय =विग्रह समुदाय (वाक्य)के ॥

(ख) तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २०७ पर कलकत्तेकी संस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिकका मुद्रित अनुवादके अध्याय ५ पृष्ठ १५६ पर और पं० पन्नालालजी दूनी अनुवादित राजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ० ३७ पर और पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ०५५ पर प्रथमवार्तिक यह है"एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः"॥(यहांपर'वृत्ति'शब्दका अर्थ समास है। तत्त्वार्थ राजवार्तिकके सूत्र'असंख्येयभागादिषु जीवानाम्" ॥ १५ ॥ पर प्रथमवार्तिक यह है कि 'अवयवेन विग्रह समुदाया वृत्त्यर्थ' इति"

(ग) श्रुतसागरि सूरि कृता 'श्रुतसागरटीका' हस्तलिखितप्रतिके पत्रे १५३ पर 'यथा व्याकरणेऽवयवेन विग्रहो भवति समुदायः समासार्थो भवति तथा एकप्रदेशोपि गृह्यते बहवश्च प्रदेशा गृह्यते=जब व्याकरणमें अवयव सहित विग्रह होता है समासका अर्थ समुदाय होता है तब एक प्रदेश भी ग्रहण कियागया है और बहुत प्रदेश भी लियेगये हैं अथवा ग्रहण किये गये हैं ॥ इस सम्बन्धमें हमको तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक तथा श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें कुछभी नहीं प्राप्त हुआ है ॥

(घ) पं० जयचन्द्ररायजीने इसी सूत्रकेनीचे ऐसा अनुवाद किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिषु समास अवयवकरि कियाहै तातैं समुदाय जानना" ॥

(ङ)पं० पन्नालालजी दूनीका अनुवाद इस प्रकार है जिन एकप्रदेशादिकनिविषैं ऐसो समास होहै सो समुदायरूपवृत्तिके अर्थ सर्वादिकके समानहैं उक्त दूनीजीने राजवार्तिक १५वां सूत्रको प्रथमावार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थ इति' का यह अनुवाद किया है कि'अवयवकरि विग्रहहोयकै अरवृत्तिका अर्थ समुदाय है' यहांपरभी वृत्तिका अर्थ समास है ॥

(च) पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवाद करते हैं 'एक प्रदेशादिकके विषैं समुदायवृत्तिरूप जो अर्थ है सो सर्वादिगणके समान है। तातैं एकप्रदेशभी ग्रहण होय है ऐसा जानना" ॥ यह अनुवाद 'एकप्रदेशादिषु इति विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः सर्वादिवत् । तेनैकप्रदेशोऽपि अंतर्भवति' वृत्तिका है ॥ प्रथम वार्तिक 'एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः' का अनुवाद ऐसे किया है कि यहां एकप्रदेशादिषु या बहुवचनांत वाक्यका विग्रह अवयवकरि है तातैं समुदाय वृत्ति जानना' ॥ 'असंख्येयभागादिषु जीवानाम्'॥ १५वां सूत्रकी प्रथम वार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थ इति' का अनुवाद ऐसा किया है कि "अवयवकरि विग्रह है सो समासमें समुदायरूप अर्थ कूं कहै है"

यदि हम उपरोक्त सर्वार्थ सिद्धिवृत्तिवोंका पाठ मानलेंतो अवयवेन विग्रहस्समुदाय समासार्थइति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते वाक्यका अनुवाद इसप्रकार होगा

अवयवेन।। विग्रह-समुदाय ।।	=टुकड़े २ रूपसे या अंश २ रूपसे विग्रह (अर्थात् समासका बोधक वाक्यों)का(यहां) संग्रह व समुच्चय है
समास-अर्थः।। इति=एकप्रदेशः।।अपि=	=जो (एकप्रदेशादिषु) समासके अर्थ के (स्पष्ट करनेके लिये) है ऐसे (आकाशका) एक प्रदेशभी
गृह्यते	=ग्रहण किया गया है भावार्थ यह है कि (एकप्रदेशादिषु)यह समास है इस समासके अंश या अवयवका भाव 'एकप्रदेश और एक प्रदेशादिक हैं ये अवयवरूपसे

एक एव प्रदेशः एकप्रदेशः । एकप्रदेश आदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः । तेषु पुद्गलानामवगाहो भाज्यो विकल्प्य ॥ अवयवेन विग्रह

उतने लोकाकाशके प्रदेशोंसे अधिकमें अवगाहनीय नहीं होसकती हैं । अधिकसे अधिक उतने ही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह या टिकाव होसकता है जितनी उनकी खुले रूपमें संख्या है ॥

४० शब्दार्थ—एकः एव प्रदेशः एकप्रदेशः । =एकही प्रदेश है सो (द्विगु समासरूपमें) एकप्रदेश है
एकप्रदेशः आदिः येषाम् ते इमे एकप्रदेशादयः । =एक प्रदेश है आदिमें अर्थात् प्रथममें जिनके ये इतने "एक प्रदेशादयः" हैं
तेषु =तिन (एक प्रदेशादिक अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच-छह-इत्यादि सख्यात प्रदेशोंसे, असंख्यात प्रदेशोंतक)में
पुद्गलानाम् =पुद्गलों (की एकपरमाणु,दो परमाणु,तीन परमाणु, चार परमाणु, पांच परमाणु, छह परमाणु, सात परमाणु, आठ परमाणु इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त परमाणुओं)की
अवगाहः भाज्यः विकल्प्यः =स्थिति विभाग करनेयोग्य(=भाज्य)है । विकल्पनीय है अंशनीय है ॥
अवयवेन =(एकप्रदेशादिषु इस बहुवचनांतसमासका) टुकड़ेटुकड़ेरूपसे या अंशअंशकरि
विग्रहः =व्याकरणानुसार व्यवच्छेद(=विग्रह अनुसार (विग्रह)वा विस्तार किया गया है सो

(१) "एकप्रदेशादिषु समासके अवयव इसप्रकार होसकते हैं कि — लोकाकाशे एकप्रदेशे पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः)ऐसे एकप्रदेशभी लियागया है॥
() लोकाकाशे द्विप्रदेशयो पुद्गलानाम् अवगाह भाज्य । () लोकाकाशे त्रिप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्य ।
() लोकाकाशे चतुःप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्य । () लोकाकाशे पंचप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्य॥
() लोकाकाशे षट् प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । ()
() लोकाकाशे सप्तप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशेषु अष्टप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः ।
() लोकाकाशे नवप्रदेशेषु, पुद्गलानां अवगाहः भाज्य । () लोकाकाशे दशप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाह भाज्य ।
() एवमेव लोकाकाश संख्यातप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाह भाज्य । () लोकाकाशे असंख्यातप्रदेशेषु अपि पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः ॥
(२) यहांसे आगेकी छपीहुई संस्कृत सर्वार्थसिद्धिमें विग्रहसमुदायः समासार्थः ऐसा पाठ है अर्थात् विग्रह और समुदाय शब्दोंको मिलादिया है सो बहुत सही ओरके अनुसार

तद्यथा—एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे परमाणोरवगाह द्वयोरेकत्रोभयत्र च बद्धयोरबद्धयोश्च त्रयाणामेकत्र द्वयोस्त्रिषु च बद्धानामबद्धाना च ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशाना स्कन्धानामेकसंख्येयासंख्येयप्रदेशेषु लोकाकाशेऽवस्थानं प्रत्येतव्यम् ॥

तद्यथा=एकस्मिन् आकाशप्रदेशे परमाणोः	=जैसे एक आकाशके प्रदेशमें (एक) परमाणुका
अवगाहः। द्वयोः एकत्र=उभयत्र=च=	=अवस्थान है। दो(परमाणु)का एकप्रदेशमें (=एकत्र) तथा दो प्रदेशोंमें (=उभयत्र)
बद्धयोः अबद्धयोः च=	=बंधी हुई का तथा (=च)खुलीहुई का (अवगाह) है अर्थात् दो परमाणु बंधीहुईकी जो सूक्ष्मरूपमें परिणमी हैं लोकाकाशके एकप्रदेशमें अवगाह है और दो परमाणु खुली हुईका जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणमी हैं तथा दो परमाणु बंधीका भी जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणमी हैं लोकाकाशके दो प्रदेशमें अवगाह है।
च=त्रयाणाम् एकत्र=बद्धानाम्	=और (=च)तीन(परमाणुओं)का एकप्रदेशमें(=एकत्र)बंधेहुओंका(सूक्ष्मरूपपरवर्तितका)
(त्रयाणाम्) द्वयोः बद्धानाम् च=अबद्धानाम्	=(तीन परमाणुओंका) दो प्रदेशोंमें (=द्वयोः)बंधेहुए और(=च) खुलेहुओंका अर्थात् दो परमाणु(सूक्ष्मरूप परिणत)और एक खुलीहुईका या तीनों सूक्ष्मरूप परिणतका(अवगाह)है।
(त्रयाणाम्) त्रिषु अबद्धानाम्	=(तीन परमाणुका) तीन प्रदेशोंमें खुले हुओंका (अवस्थान या अवगाह) है
एवं=संख्येय असंख्येय-अनन्तप्रदेशानाम् स्कन्धानाम्	=इस प्रकार संख्यात-असंख्यात अनन्त और अनंतानन्त प्रदेशोंके स्कन्धोंका (क्योंकियहां अनन्तमें अनन्त और अनन्तानन्त दोनो जैसा पूर्व कहाहै आजावेहैं)
एक-संख्येय-असंख्येय-प्रदेशेषु लोकाकाशे	=एक ,दो,तीन,चार,पांच,छह इत्यादि संख्यात और असंख्यात लोकाकाशप्रदेशोंमें
अवस्थानम् प्रत्येतव्यम्	=अवगाह अथवा स्थिति प्रतीति करनी चाहिये अर्थात् पुद्गलकी दो तीन चार पांच

आदिक संख्यात,असंख्यात,अनन्त तथा अनन्तानन्त परमाणुओंके जो (सूक्ष्मरूपमें परणामी हैं)स्कन्धका अवगाह लोकाकाशके एकप्रदेशमेंभी है। संख्यात असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके संख्यात प्रदेशोंमेंभी है और असंख्यात अनन्त तथाअनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें भी है। यहांपर स्मरण रहे कि जितनी खुलीहुई परमाणुएं उतनेआकाशके

प्रदेश नहीं। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी जो बहुव्रीहि समास माना है वह तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि है इसलिये यहांपर एकप्रदेशसहित अन्य प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन माना है। यदि यहांपर अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि यह समास माना जाता तो एकप्रदेशका ग्रहण नहीं होता,फिर एकप्रदेशमें भी किन्हीं किन्हीं पुद्गलोंका अवगाह है यह अर्थ नहीं होसकता।

यह बहुव्रीहि समास है, इस समासके भाग अथवा अवयव 'एकप्रदेशे' 'एकप्रदेश-आदिषु' हैं अर्थात् एकप्रदेशमें, दोप्रदेशोंमें, तीन प्रदेशोंमें, चारप्रदेशोंमें इत्यादिक, संख्यात प्रदेशोंमें और असंख्यात प्रदेशोंमें इसप्रकार उक्त समासका अवयव सहित अथवा टुकड़े २ रूपमें, अंश २ रूपमें विग्रह वा व्याकरणानुसार व्यवच्छेद, प्रसार, वा विस्तार हुआ सो यह विग्रह इस बातका द्योतक है कि उक्त (एकप्रदेशादिषु) समासका अर्थ तात्पर्य वा भाव समुदाय है। यदि इस समासका अर्थ यहांपर समुदाय न माना जाता तो यहांपर अन्य पदार्थकी प्रधानता रहनेसे एकप्रदेशसे भिन्नही प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन सिद्ध होता और एकप्रदेश छूट जाता, समासका समुदाय अर्थ माननेमें ग्रहण करनेमें लोकाकाशका एक प्रदेशभी पुद्गलके अवगाहके लिये ग्रहणमें आगया है

विग्रहका समूह है सो (यह अवयवरूपसे विग्रहका समुदाय) 'एक प्रदेशादिषु' समासके (स्पष्ट करनेके) अर्थ है ऐसे लोकाकाशका एकप्रदेशभी (पुद्गलके) अवगाहके लिये लिया है। पं० गजाधरलालजीने तत्त्वार्थराजवार्तिककी 'एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रह समुदायो समासार्थः' का भावार्थ ऐसा किया है कि

'एकस्मात् प्रदेशात् एकप्रदेश आदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः तेषु एकप्रदेशादिषु' यह यहांपर अवयवके साथ समास है। 'एकप्रदेश आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यह यहांपर 'एकप्रदेशादिषु' पदका अर्थ है। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर बहुव्रीहिसमास रहनेसे अन्य पदार्थ प्रदेश लिया गया है और वह विशेष्य और एक प्रदेशादि पदार्थको विशेषण माना गया है। यदि यहांपर यह तर्क किया जाय कि अन्यपदार्थ प्रदेश ही क्यों लिया गया और कोई पदार्थ क्यों नहीं लिया गया? तो इसका समाधान यह है कि जहांपर उपलक्षण और उपलक्ष्यभाव रहता है वहांपर समान जातीयपदार्थका ही ग्रहण होता है जिसतरह ब्राह्मणोंको निमन्त्रण आदिके समय कहा जाता है—सोमशर्मा आदिका निमन्त्रण है यहांपर आदिशब्दसे सोमशर्माके समानजातीय अन्य ब्राह्मणोंका ही ग्रहण होता है। यहांपर सोमशर्मा उपलक्षण है क्योंकि जो अपना और अपने समानजातीयका ग्राहक होता है वह उपलक्षण माना जाता है। यहांपर सोमशर्मा अपना और अपने सजातीय ब्राह्मणोंका ग्रहण करनेवाला है इसलिये वह उपलक्षण है और जो ग्रहण किये जांय वे उपलक्ष्य कहे जाते हैं यहांपर सोमशर्मासे भिन्न अन्य ब्राह्मण उपलक्ष्य हैं इसलिये उपलक्ष्य उपलक्षण भावके होनेसे जिसप्रकार यहांपर समानजातीय अन्य ब्राह्मणोंका ग्रहण है उसीप्रकार 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी उपलक्ष्य उपलक्षण भाव है क्योंकि बहुव्रीहि समासांत एकप्रदेशादि शब्द अन्य पदार्थका ग्राहक है इसलिये यहांपर भी समानजातीय पदार्थका ही ग्रहण होसकता है विजातीय पदार्थका नहीं। प्रदेशका समानजातीय पदार्थ प्रदेशही है इस लिये यहांपर अन्य पदार्थ प्रदेशही ग्रहण किया जासकता है अन्य नहीं। इस रीतिसे 'एक प्रदेशको आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यही 'एकप्रदेशादिषु' शब्दका अर्थ ठीक है। अथवा ऊपर से प्रदेश शब्दकी अनुवृत्ति आ रही है इसलिये भी 'एकप्रदेशको आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यही 'एकप्रदेशादिषु' शब्दका अर्थ न्याय्य है।

'एकप्रदेशादिषु' यहांपर जो समास मानागया है उसका अर्थ समुदाय है इसलिये 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर यद्यपि एकप्रदेश शब्द उपलक्षणस्वरूप है ना भी उसका ग्रहण है। यदि समासका अर्थ यहांपर समुदाय न माना जाता, तो यहांपर अन्य पदार्थकी प्रधानता रहनेसे एकप्रदेशसे भिन्नही प्रदेशोंमें द्रव्यका अवगाहन सिद्ध होता, तथा होनेसे एक प्रदेशमें अवगाहन न सिद्ध होता। खुलासा तात्पर्य यह है—

बहुव्रीहि समास तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि और अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिके भेदसे दो प्रकारका मानागया है। जहांपर विशेषणविशिष्ट पदार्थका ग्रहण हो वह तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है जिस प्रकार "लंबकर्णमानय" अर्थात् जिसके लंबे कान हों उस पुरुषको लेआओ यहांपर लंबे कान सहित पुरुषके लानेसे विशेषणविशिष्ट पदार्थका ग्रहण है तथा जहांपर विशेषणयुक्त पदार्थ का ग्रहण न हो वह अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है जिस प्रकार '[illegible]मानय' अर्थात् जिस पुरुषने सागरको देख लिया है उसे लेआओ, यहांपर सागरसहित ... न होनेसे विशेषणविशिष्ट पदार्थ का

तद्यथा—एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे परमाणोरवगाह द्वयोरेकत्रोभयत्र च बद्धयोरबद्धयोश्च त्रयाणामेकत्र द्वयोस्त्रिषु च बद्धानामबद्धानां च ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशाना स्कन्धानामेकसंख्येया-संख्येयप्रदेशेषु लोकाकाशेऽवस्थानं प्रत्येतव्यम् ॥

तद्यथा=एकस्मिन् आकाशप्रदेशे परमाणोः — =जैसे एक आकाशके प्रदेशमें (एक) परमाणुका

अवगाह: द्वयोः एकत्र=उभयत्र=च= — =अवस्थान है। दो (परमाणु) का एकप्रदेशमें (=एकत्र) तथा दो प्रदेशोंमें (=उभयत्र)

बद्धयोः अबद्धयोः च= — =बंधी हुई का तथा (=च) खुलीहुई का (अवगाह) है अर्थात् दो परमाणु बंधीहुईकी जो सूक्ष्मरूपमें परिणामी हैं लोकाकाशके एकप्रदेशमें अवगाह है और दो परमाणु खुली हुईका जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणामी हैं तथा दो परमाणु बंधीका भी जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणामी हैं लोकाकाशके दो प्रदेशमें अवगाह है।

च=त्रयाणाम् एकत्र=बद्धानाम् — =और (=च) तीन (परमाणुओं) का एकप्रदेशमें (=एकत्र) बंधेहुओंका (सूक्ष्मरूपपरवर्तितका)

(त्रयाणाम्) द्वयोः बद्धानाम् च=अबद्धानाम् — =(तीन परमाणुओंका) दो प्रदेशोंमें (=द्वयो) बंधेहुए और (=च) खुलेहुओंका अर्थात् दो परमाणु (सूक्ष्मरूप परिणत) और एक खुलीहुईका वा तीनों सूक्ष्मरूप परिणतका (अवगाह) है।

(त्रयाणाम्) त्रिषु अबद्धानाम् — =(तीन परमाणुका) तीन प्रदेशोंमें खुले हुओंका (अवस्थान वा अवगाह) है

एवं=संख्येय-असंख्येय-अनन्तप्रदेशानाम् स्कन्धानाम् — =इस प्रकार संख्यात-असंख्यात अनन्त और अनन्तानन्त प्रदेशोंके स्कन्धोंका (क्योंकियहां अनन्तमें अनन्त और अनन्तानन्त दोनो जैसा प्रथम कहाहै आजावेंहैं)

एक-संख्येय असंख्येय-प्रदेशेषु लोकाकाशे — =एक, दो, तीन, चार, पांच, छह इत्यादि संख्यात और असंख्यात लोकाकाशप्रदेशोंमें

अवस्थानम् प्रत्येतव्यम् — =अवगाह अथवा स्थिति प्रतीति करनी चाहिये अर्थात् पुद्गलकी दो तीन चार पांच आदिक संख्यात, असंख्यात, अनन्त तथा अनन्तानन्त परमाणुओंके जो (सूक्ष्मरूपमें परणामी हैं) स्कन्धका अवगाह लोकाकाशके एकप्रदेशमेंभी है। संख्यात-असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके संख्यात प्रदेशोंमेंभी है और असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें भी है। यहांपर स्मरण रहे कि जितनी खुलीहुई परमाणुएं उतने आकाशके

प्रदेश नहीं। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी जो बहुव्रीहि समास माना है वह तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि है इसलिये यहांपर एकप्रदेशसहित अन्य प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन माना है। यदि यहांपर अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि यह समास माना जाता तो एकप्रदेशका ग्रहण नहीं होता फिर एकप्रदेशमें भी किन्हीं किन्हीं पुद्गलोंका अवगाह है यह अर्थ नहीं होसकता।

ननु युक्त तावदमूर्त्तयाधर्माधर्मयोरेकत्राविरोधेनावरोध इति।मूर्त्तिमतां पुद्गलानां कथमित्यत्रोच्यते— अवगाहनस्वभावत्वात्सूक्ष्मपरिणामाच्च मूर्तिमतामप्यवगाहो न विरुध्यते । एकापवरके अनेकदीपप्रकाशावस्थानवत् ॥ आगमप्रामाण्याच्च तथाऽध्यवसेयम् ॥ तदुक्तम्—ओगाढगाढणि चिओ

प्रदेशोंसे अधिक प्रदेशोंमें अवगाहनीय नहीं हो सकती हैं। अधिकसे अधिक उतनेही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह वा स्थिति हो सकती है जितनी उनकी सुक्षेत्रमें संख्या है। जैसे पचास सुलीहुई परमाणु हैं तो ये परमाणु पचास ही आकाशके प्रदेशोंको अवगाहवेंगी नकि अधिक प्रदेशोंको

ननु॰युक्तम्॥तावत्॰अमूर्तयोः॥धर्म अधर्मयोः॥ =अब इतना (=तावत्) ठीक (=युक्त) है कि अमूर्तीक धर्मद्रव्यका और अधर्मद्रव्यका

एकत्र॰अविरोधेन॥अवरोधः॥इति॰मूर्तिमताम्॥ =एकक्षेत्रमें विरोधकरि रहित अवगाह वा अवस्थान(=अवरोध) है। रूपी अथवा मूर्तीक

पुद्गलानाम्॥कथम्॰इति॰अत्र॰उच्यते। =पुद्गलोंके कैसे इस प्रकार (परस्पर अविरोधरूप एकक्षेत्रमें अवगाह) यहां कहागया है

अवगाहन-स्वभावत्वात्॥च॰सूक्ष्मपरिणामात्॥ =(उत्तर) अवगाहनके स्वभावपणासे तथा(=च)सूक्ष्म परिणमनसे

मूर्तिमताम्॥अपि॰अवगाहः॥न॰विरुध्यते। =रूपी(पुद्गल)निकेंभी अवगाह नहीं विरोधमाना है अर्थात् मूर्तीकपदार्थोंकी अवगाहन स्वभाव वा शक्तिकरि(=अवकाशदान अथवा स्थानदान देनकी शक्तिसे)और सूक्ष्म रूप विकारकोमाप्त होनेसे एक क्षेत्रविर्षे अवस्थान वा स्थिति अविरोधरूप है॥ भावार्थ द्रव्योंके स्वभाव प्रति नियत हैं और वे भिन्नभिन्न हैं इसलिये उनके स्वभावके विषयमें यह आक्षेपही नहीं होसकता कि ऐसा होना चाहिये वा ऐसा न होना चाहिये जैसे अग्नि आदि पदार्थोंका स्वभाव जलानेआदिकाहै वहां पर यह आक्षेप नहीं किया जा सकता है कि इनका स्वभाव जलाने आदिका क्यों है जलने आदिका क्यों नहीं तथा तृण काष्ठादि पदार्थोंका स्वभाव जलनेआदिका क्यों है जलानेआदिका क्यों नहीं? क्योंकि जैसा जिसका स्वभाव होगा उसका वैसा ही स्वभाव रहेगा वह पलट नहीं जासकता वैसेही यद्यपि पुद्गलमूर्तिमान पदार्थ हैं तथापि अपनेसमानजातीय पदार्थोंको अवगाहन दान देना उनका स्वभाव है अतः एक आकाशके प्रदेशमेंभी अनन्त रह सकते हैं॥

एकअपवरके॥ अनेकदीपप्रकाश-अवस्थान-वत्॰ =एक घरविर्षे (=अपवरके) अनेक दीपकोंके प्रकाशोंकी स्थितिके समान(मूर्तीक द्रव्योंके भी एकक्षेत्रविर्षे परस्पर अवगाह अविरोधरूपसे होता है)

च॰आगम प्रामाण्यात्॥ तथा अध्यवसेयम्॥तदुक्तम्॥ =बहुरि(=च)आगमके प्रमाणपनेसे ऐसी प्रकार जानना चाहिये। कहाभीहै कि

ओगाढ-गाढ-णिचिओ॥ (अवगाढ-गाढ-निचयः) ———— त्ता हुआ है॥ ('णिचिओ' भी पाठ है)॥

अथ जीवाना कथमवगाहनमित्यत्रोच्यते—

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

लोकाकाशे इत्यनुवर्तते। तस्यासंख्येयभागीकृतस्यैको भागोऽसंख्येयभाग इत्युच्यते। स आदिर्येषां ते

पुद्गलकायैः। सव्वदो-लोगो। (पुद्गलकायैः सर्वतः लोकः) =चारोंओर यह लोक पुद्गलकायोंसे

सुहुमेहिं बादरेहिं (सूक्ष्मैः बादरैः) = जो (पुद्गलकाय) सूक्ष्मबादर (बादरेहिं बादरेहिं प्राकृतमें तृतीयाके दोनोंरूप हैं

अणंताणंतेहिं विविहेहिं (अनन्तानन्तैः विविधैः) = अनन्तानन्त नानाप्रकारसे हैं अर्थात् सबओर यह लोक सूक्ष्म और बादरअनंतानंत नाना प्रकार पुद्गलकायोंकरि गाढागाढ ठसाठस, वा खचाखच भराहुआहै

अथ जीवानाम् कथम् अवगाहनम् इति अत्र उच्यते =आगें जीवोंका कैसे अवस्थान वा अवगाह है ऐसे यहां(अग्रिमसूत्रमें)कहाजाता है कि

सूत्रम्—[1]असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

= (लोकाकाशे) असंख्येयभागादिषु जीवानाम् (अवगाह) भवति ॥ १५ ॥

सभाष्य—लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु =लोकाकाशके असंख्येयभागादिकोंमें

जीवानाम् अवगाह भवति ॥ १५ ॥ =जीवोंका अवस्थान है। अर्थात् लोकाकाशके असंख्यातवांभाग और असंख्यातवें भागोंको आदिलेकर लोकपर्यन्त जीवों की स्थिति है। भावार्थ यह है कि लोकाकाशके एक असंख्यातवां भागमें एक जीव तिष्ठता है, दो असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवका अवस्थान है, तीन असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवका अवस्थान है चार असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवकी स्थिति वा अवगाह है औरऐसेही एक जीव का अवगाह पांच आदि संख्यातभागोंमे और असंख्यात भागोंमें समस्त लोकपर्यन्त है; जब केवली समुद्घात करते हैं तब लोकपूर्ण समुद्घातमें सबलोक एक जीवका अवगाह होता है। नाना जीवका अवगाह तो सर्वलोकमें है ही। कोई प्रदेश लोकाकाशका जीवविना नहींहै। दोनोंआम्नायोंमें इससूत्रकापाठ और अर्थ एकसाहै।

सूत्रानुवादः—लोकाकाशे इति अनुवर्तते। तस्य =(इस सूत्रमें) लोकाकाशमें ऐसी अनुवृत्ति (चालूमें सूत्रसे) है। तिस(लोकाकाश)के

असंख्येयभागीकृतस्य एकः भागः असंख्येयभागः =असंख्यातभाग करके एक भाग है सो असंख्यातवांभाग है।

इति उच्यते। सः आदिः येषाम् ते =ऐसा कहाजाता है। सो(असंख्यातवां भाग आदिमें वा प्रथममेंजिनके है ते

ननु युक्त तावदमूर्त्तयाधर्माधर्मयोरेकत्राविरोधनावरोध इति।मूर्त्तिमता पुद्गलाना कथमित्यत्रोच्यते–अवगाहनस्वभावत्वात्सूक्ष्मपरिणामाच्च मूर्तिमतामप्यवगाहो न विरुध्यते । एकापवरके अनेकदीपप्रकाशावस्थानवत् ॥ आगमप्रामाण्याच्च तथाऽध्यवसेयम् ॥तदुक्तम्–ओगाढगाढणि चिओ

प्रदेशोंसे अधिक प्रदेशोंमें अवगाहनीय नहीं हो सकती है। अधिकसे अधिक उतनेही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह वा स्थिति हो सकती है जितनी उनकी सूक्ष्मरूपमें संख्या है। जैसे पचास सखीहुई परमाणु हैं तो ये परमाणु पचास ही आकाशके प्रदेशोंको अवगाहवेंगी नकि अधिक प्रदेशोंको

ननु॰युक्तम् ॥ तावत्॰अमूर्त्तयो॰धर्म अधर्मयो ॥ =प्रश्न इतना (=तावत्) ठीक (=युक्त) है कि अमूर्तीक धर्मद्रव्यका और अधर्मद्रव्यका
एकत्र॰अविरोधेन॥ अवरोधः॥ इति॰मूर्तिमताम्॥ =एकक्षेत्रमें विरोधकरि रहित अवगाह वा अवस्थान(=अवरोध) है। रूपी अथवा मूर्तीक
पुद्गलानाम् ॥ कथम्॰इति॰अत्र॰उच्यते =पुद्गलोंके कैसे इस प्रकार (परस्पर अविरोधरूप एकक्षेत्रमें अवगाह) यहां कहागया है
अवगाहन-स्वभावत्वात्॥ च॰सूक्ष्मपरिणामात्॥ =(उत्तर) अवगाहनके स्वभावपणासे तथा(=च)सूक्ष्म परिणामनसे
मूर्तिमताम्॥ अपि॰अवगाह ॥न॰विरुध्यते =रूपी(पुद्गल)निकेंभी अवगाह नहीं विरोधभावहै अर्थात् मूर्तीकपदार्थोंकी अवगाहन

स्वभाव वा शक्तिकरि(=अवकाशदान अथवा स्थानदान देनेकी शक्तिसे)और सूक्ष्मरूप विकारकोप्राप्त होनेसे एक क्षेत्रविषैं अवस्थान वा स्थिति अविरोधरूप है ॥ भावार्थ द्रव्योंके स्वभाव प्रति नियत हैं और ये भिन्नभिन्न हैं इसलिये उनके स्वभावके विषयमें यह आक्षेपही नहीं होसकता कि ऐसा होना चाहिये वा ऐसा न होना चाहिये जैसे अग्नि आदि पदार्थोंका स्वभाव जलानेआदिकाहै वहां पर यह आक्षेप नहीं किया जा सकता है कि इनका स्वभाव जलाने आदिका क्यों है जलने आदिका क्यों नहीं तथा तृण काष्ठादि पदार्थोंका स्वभाव जलनेआदिका क्यों है जलानेआदिका क्यों नहीं? क्योंकि जैसा जिसका स्वभाव होगा उसका वैसा ही स्वभाव रहेगा वह पलट नहीं जासकता वैसेही यद्यपि पुद्गलमूर्तिमान पदार्थ हैं तथापि अपनेसमानजातीय पदार्थोंको अवगाहन दान देना उनका स्वभाव है अत एक आकाशके प्रदेशमेंभी अनन्त रह सकते हैं ॥

एकअपवरके॥ अनेकदीपप्रकाश-अवस्थान
वत्॰ =एक घरविषैं (=अपवरके) अनेक दीपकोंके प्रकाशोंकी स्थितिके
च॰आगम प्रामाण्यात् ॥ तथा अध्यवसेयम्॥ तदुक्तं॥ =समान(मूर्तीक द्रव्योंके भी एकक्षेत्रविषैं परस्पर अवगाह अविरोधरूपसे होता है)
ओगाढ-गाढ-णिचिओ॥ (अवगाढ-गाढ-निचयः॥) =तथा(=च)आगमके प्रमाणपनेसे उसी प्रकार जानना चाहिये। कहाभीहै कि
[illegible] ॥ ([illegible]) ॥

अनन्तानन्ता वसन्ति ॥ न ते परस्परेण बादरैश्च व्याहन्यन्त इति नास्त्यवगाहविरोध ॥ अत्राह लोकाकाशतुल्यप्रदेशो एकजीव इत्युक्तं, तस्य कथं लोकस्यासंख्येयभागादिषु वृत्ति । ननु सर्वलोकव्याप्त्यैव भवितव्यमित्यत्रोच्यते—

॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अनन्तानन्ताः वसन्ति । न ते परस्परेण	=अनन्तानन्त रहते हैं । न वे (सूक्ष्म सशरीर जीव) परस्परकरि
च बादरैः व्याहन्यन्ते इति न अस्ति अवगाह	=तथा बादर(जीवों)से व्याघातेजाते हैं । ऐसे नहीं है अवगाहनामें
विरोधः	=विरोध अर्थात् एकही स्थानमें बहुत जीवोंका अवगाह, बिना परस्पर रोकटोकके होवाहै
अत्र आह लोकाकाश-तुल्यप्रदेशः एकजीवे	=यहां पूछता है कि लोकाकाशके बराबर प्रदेश एक जीवमें है
इति उक्तम् । तस्य कथम् लोकस्य असंख्येय	=ऐसा कहागया है । तिस (जीव)का कैसे लोकके असंख्यातवां
भागादिषु वृत्तिः । ननु सर्वलोक	=भागादिकोंमें स्थिति है (=वृत्ति) ॥ सचमुच (=ननु) (वह तो) सब लोक
व्याप्त्या एव भवितव्यम् इति अत्र उच्यते	=व्याप्तिकरि ही होना चाहिये । ऐसे यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम् प्रदेशसंहारविसर्पाभ्या प्रदीपवत् = प्रदेशसंहारविसर्पाभ्या प्रदीपवत् (लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु जीवानाम् अवगाह भवति) ॥ १६

सूत्रार्थः—प्रदेश-संहारविसर्पाभ्याम् प्रदीपवत्	=प्रदेशोंके संकोच और विस्तार होनेसे दीपकके प्रकाशके सदृश
लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु जीवानाम् अवगाहः	=लोकाकाशके असंख्यातवां भागादिकमें जीवोंका अवगाह वा स्थिति है अर्थात्

(१) परस्पर—यह शब्द त्रिलिंगी है । (२) लोक—यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग है । (३) आकाश—यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंगमें आता है । (४) श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्र"में विसर्पाभ्यां' शब्दके स्थानमें 'विसर्गाभ्यां' पाठ है और विसर्ग शब्दका अर्थ विस्तार किया है (देखो पृष्ठ १२१) अब पाठ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है अर्थ भी एक है ॥ हमारे यहां किसी किसी पुस्तकमें विसर्पाभ्यां शब्दके स्थानमें विसर्प्पाभ्यां पाठ है ॥ दोनोंही पाठ "प्रकोरहाभ्यां वे (बा)" ८-४ ५४वां सूत्रसे शुद्ध हैं ॥ पन्द्रहवां सूत्र अनुवृत्तियों सहित सब का सब इस (सूत्र)में अध्याहार कियागया है ॥

ऽसख्येयभागादय ।तेषु जीवानामवगाहो वेदितव्य ॥ तद्यथा-एकस्मिन्नसख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते। एवद्वित्रिचतुरादिष्वपि असख्येयभागेषु आ सर्वलोकादवगाह प्रत्येतव्य ॥ नानाजीवाना तु सर्वलोक एव ॥ यद्येकस्मिन्नसंख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते, कथं द्रव्यप्रमाणेनानन्तानन्तो जीवराशि सशरीरोऽवतिष्ठते ? । लोकाकाशे सूद्मवादरभेदादवस्थानं प्रत्येतव्यम् । वादरास्तावत्सप्रतिघातशरीरा । सूद्मास्तु सशरीरा अपि सूक्ष्मभावादेवैकनिगोदजीवावगाह्येऽपि प्रदेशे साधारणशरीरा

असंख्यय-भागभादय ॥ =असख्येयभागभादयः (तद्गुसंविज्ञानरूप बहुव्रीहिसमासरूपमें) हैं अर्थात् असख्यातवां भाग सेलेकर लोकपर्यन्त समस्त भाग हैं वे असंख्येयभागआदि हैं ॥

तेषु ॥ जीवानाम् ॥ अवगाह ॥ =तिन(असंख्यय भाग आदि लोक पर्यन्त) में जीवोंका अवस्थान

वेदितव्य ॥ तद्यथा-एकस्मिन् ॥ असंख्येयभागे ॥ एक ॥ =जानना चाहिये । जैसे एक असंख्यातवेंभागमें एक

जीव ॥ अवतिष्ठते ॥ एवम्-द्वि-त्रि-चतुर आदिषु ॥ =जीव तिष्ठता है । इस प्रकार दो-तीन चार आदिक

असंख्ययभागेषु ॥ अपि-आ-सर्वलोकात् ॥ अवगाह ॥ =असंख्यात भागोंमें भी समस्त लोक पर्यन्त (एक जीव)का अवगाह

प्रत्येतव्य ॥ ॥ =प्रतीति करना चाहिये अथवा मानना चाहिये। (असंख्यात के असंख्यात भेद हैं) जिससे लोकाकाशके असख्यातवां भागके भी प्रदेश असंख्यातही जानना ।

नानाजीवानाम ॥ तु-सर्वलोक ॥ एव-यदि-एकस्मिन् ॥ =नानाजीवों का तो(अवगाह) सर्वलोकमें ही है (प्रश्न) जो एक

असंख्येयभागे ॥ एक ॥ जीव ॥ अवतिष्ठते ॥ =असख्यातवांभाग में एक जीव तिष्ठता है तो

कथम्-द्रव्यप्रमाणेन ॥ अनन्तानन्त ॥ जीवराशि ॥ =कैसे द्रव्यमर्यादासे अनन्तानन्त जीवराशि है

सशरीर ॥ अवतिष्ठते ॥ लोकाकाशे ॥ सूक्ष्मबादर =सो शरीर सहित (लोकमें) तिष्ठती है (उत्तर) लोकाकाशमें सूक्ष्मबादरके

भेदात् ॥ अवस्थानम् ॥ प्रत्येतव्यम् ॥ बादरा ॥ तावत् =भेदसे (जीवोंका अवस्थान या अवगाह) जानना चाहिये । बादर(जीव)तो (=तावत्)

सप्रतिघात-शरीरा ॥ =सप्रतिघात शरीर हैं अर्थात् बादर शरीर परस्पर एक दूसरेसे रुके हैं और रोकें भी हैं

तु-सूक्ष्मा ॥ सशरीरा ॥ अपि-सूक्ष्मभावात् ॥ एव- =परन्तु सूक्ष्मजीव शरीर सहित हैं तो भी सूक्ष्मपना से ही (=एव)

एक-निगोदजीव-अवगाह्ये ॥ अपि-प्रदेशे ॥ =एक निगोद जीवकरि अवगाहने योग्य क्षेत्रमें (नकि परमाणु से रोके हुये प्रदेशमें)

साधारणशरीरा २ =साधारण शरीर वाले हैं और जिनके आहार श्वासोच्छ्वास आयु और काय ये

[illegible]

अनवधृतप्रकाशपरिमाणस्य प्रदीपस्य शरावमानिकापवरकाद्यावरणवशात्तत्परिमाणतेति ॥ अत्राह धर्मादीनामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशात्सङ्करे सति, एकत्वं प्राप्नोतीति ॥ तन्न । परस्परमत्यन्तसंश्लेषे सत्यपि स्वभाव न जहति ॥ उक्तं च । अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स ॥

अनवधृत प्रकाश-परिमाणस्य॥प्रदीपस्य॥शराव-मानिका-=अमर्यादित प्रकाश परिमाणवाले दीपकका सकोरा(=शराव)माणिका या पतीली
अपवरक-आदि आवरण-वशात्॥ तत्- =घरादिकमें (=अपवरक)आवरणके वशसे उन(शराव-मानिका-अपवरकादि)के
परिमाणता॥ इति • =बराबरि(=परिमाण)होता है अर्थात् दीपक जब खुले स्थानमें रक्खा जाता है तब उसका प्रकाश मर्यादारहित फैलता है और वही दीपक किसी भाजन या घर आदिकमें धराजाता है तब उसका प्रकाशभी उस भाजनादिकके बराबरही परिमित या सीमामें होजाता है
अत्र • आह॥धर्मादीनाम्॥अन्योन्य प्रदेश- =यहां पूछता है कि धर्मादि द्रव्योंके परस्पर प्रदेशोंके
अनुप्रवेशात्॥सङ्करे॥सति॥,एकत्वम्॥प्राप्नोति॥ इति • =मिलरहनेसे एकमेक (=संकर) होजानेपर (दोनोंकी)एकता प्राप्त होती है
तत्॥न • । परस्परम्॥अत्यन्तसंश्लेषे॥सति॥ =(उत्तर)वह(एकता)नहीं(होती) है । परस्पर अत्यन्त मिलाव होनेपर
अपि • स्वभावम्॥न • । (१)जहति॥,उक्तम्॥च • =भी (द्रव्यें अपने अपने)स्वभावको नहीं छोड़ती हैं । कहागया भी है कि
अण्णोण्णं॥पविसंता॥(अन्योन्यम्॥प्रविशन्तः॥) =(ये छः द्रव्य) परस्पर प्रवेश करते हुये
(२ दिंता॥ओगासं॥अण्णमण्णस्स॥ ददन्ति॥(वा ददति॥)अवकाशम्॥अन्यमन्यस्य॥ =आपसका (=आपसमें)अवकाश देते हैं

(१) हा—तीसरे जुहोत्यादिगणका धातु है जिसका अर्थ परस्मैपदमें त्यागना या छोड़ना है और आत्मनेपदमें जानेके अर्थ में आता है । यहांपर छोड़नेके अर्थ परस्मैपदमें आये हैं । तीसरे गणका धातु जिसमें एक स्वर हो तो उसको दुहरादेते हैं अर्थात् यदि स्वर आदिमें हो तो स्वरको दुहरादेते हैं जैसे इण् धातुसे इयण् होगया यदि आदिमें व्यंजन हो (जैसाकि यहां है) तो आदिके व्यंजनको उसके पश्चात्के स्वरके साथ दुहराते हैं जैसे हा धातुका 'हाहा' रूप होगया, दुहरे रूप किये हुये स्वरको लघु करदेते हैं (देखो अष्टाध्यायी ७-४-५९) और 'ह' को 'ज' से पलटदेते हैं (देखो अष्टाध्यायी ७ ४-६२ सूत्र) तब 'जहा' ऐसा रूप हुआ ॥ इस 'जहा' के दीर्घ 'आ' को वर्तमानकाल (लट्)के अनद्यतन भूतकाल (=लङ्)के, लोट कालके और विधिलिङ् कालके उन ङित् पंचक प्रत्ययोंके साथ गिरा देते हैं जिनके आदिमें स्वर होता है 'जहा' से 'जह्' रूप बना और अति (बहुवचनका प्रत्यय जोड़कर 'जहति' रूप बना जिसका अर्थ 'छोड़ते हैं त्यागते हैं' हुआ । और पित् सार्वधातुक प्रत्यय जैसे मि-सि-ति इत्यादिके साथ 'जहा' रूप रहता है जैसे जहामि-मैं छोड़ता हूं जहासि तू छोड़ता है जहाति=वह छोड़ता है ॥ (२) 'ददत्' नपुंसकलिंग, प्रथमा और द्वितीया विभक्ति बहुवचनके 'ददन्ति' और ददति दो रूप हैं और पुल्लिंगमें दोनों विभक्तियोंका 'ददतः' है यहां प्रथमा विभक्ति नपुंसकलिंगमें मेरी समझमें प्रयोग किया गया है ॥

अमूर्तस्वभावस्यात्मनोऽनादिबन्धंप्रत्येकत्वात् कथञ्चिन्मूर्तता बिभ्रत कार्मणशरीरवशान्महदणु च शरीरमधितिष्ठतस्तद्वशात्प्रदेशसंहरणविसर्पणस्वभावस्य तावत्प्रमाणतायां सत्या असंख्येय-भागादिषु वृत्तिरुपपद्यते, प्रदीपवत् ॥ यथा निरावरणव्योमप्रदेशे

यद्यपि एक जीवके प्रदेश लोकाकाशके समान हैं सो यह जीव सर्व लोकाकाशमें व्याप्त होना चाहिये तथापि वे प्रदेश दीपकके प्रकाश के समान संकोच विस्ताररूप होजाते हैं और जैसा आधार(आश्रय-शरीर) जीव पाता है वैसाही उस (जीव)के प्रदेश संकोच विस्ताररूप होकर लोकाकाशके असंख्यात भागादिकमें उस जीव)का अवगाह होताहै। परन्तु केवलि समुद्घातकी अवस्थामें आत्माके मध्यके आठप्रदेश मेरु मंदिरके नीचे चित्रा पृथ्वीका वज्रमयी पटलके मध्यके आठप्रदेशोंमें निश्चल तिष्ठते हैं और केवलि भगवान्के अन्यप्रदेश ऊर्ध्व अधः तिर्यक्(दायें बायें-इधर-उधर)सर्वत्र सर्वलोकमें पूर्णतया व्याप्त होजाते हैं॥

वृत्त्यनुवादः—अमूर्त-स्वभावस्य।आत्मनः।अनादिबन्धम्। =मूर्ति शून्य स्वभाववाले आत्माके(कर्मके) अनादिबंध

प्रति एकत्वात्।कथञ्चित् मूर्तताम्। =प्रति एकता रूप होनेसे या एक क्षेत्ररूप अवगाह होनेसे कथञ्चित् मूर्तिपनाको

बिभ्रत।कार्मणशरीर वशात्।महत्।च अणु। =धारण करनेवाले(=बिभ्रतः)कार्मण शरीरके वशसे बड़ा और छोटा

शरीरं।अधितिष्ठतः।तद्-वशात्। प्रदेश- =शरीरको ग्रहण करनेवाले और उस(महत् या अणु शरीर)के वशसे प्रदेशोंके

संहरण-विसर्पण-स्वभावस्य। तावत् =संकोचन और फैलाव स्वरूपवाले (ऐसी आत्माके)उतने(देहके)

प्रमाणतायाम्।सत्याम्।असंख्येयभागादिषु। =प्रमाण होते(=प्रमाणतायां)सते(=सत्यां)(लोकाकाशके)असंख्यातवां भागादिकमें

प्रदीपवत् वृत्तिः।उपपद्यते। =दीपकके प्रकाश सदृश अवगाह (=वृत्ति) होता है अर्थात् यद्यपि स्वभावसे आत्मा अमूर्तीक है तौभी कर्मके अनादि सम्बन्धसे एक क्षेत्ररूप अवगाह होने से कथंचित् मूर्तिमान होजाता है और कार्माण शरीरके वशसे छोटा अथवा बड़ा शरीर पाता है उस प्राप्त कियेहुये शरीरके अनुसार प्रदेशोंको संकोच अथवा विस्ताररूपसे दीपकके प्रकाशवत् लोकाकाशके असंख्यातवां भागादिकमें उस जीवका अवगाह होता है ॥

यथा निरावरण-व्योम-प्रदेशे =जैसे खुले हुये आकाश क्षेत्रमें

इसी प्रकारसे धर्मद्रव्य बाह्य और अप्रेरकनिमित्त है जैसे जलपानक्य और उदासीनतासे मछलीके गमनकरनेमें सहकारी या सहायक है और स्थितिमें परिवर्तन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको अधर्मद्रव्य उसी प्रकार बाह्य और बलाधान(अविनाभावी) कारण है जैसे छाया पथिक जनोंके ठहरानेमें सहायक या सहकारी है,न तो जल मछलीको प्रेरणा करता है कि वह गमन करे और न छाया पथिक जनको स्वयम् ठहरनेकी प्रेरणा करती है यदि वे गमनस्थिति करें तो उनको उदासीनतासे सहायता प्रदान करती हैं,परन्तु स्मरण रहे कि उक्त बाह्य और अप्रेरक कारण गमन और स्थितिके लिये अविनाभावी हैं कि जिसके बिना गमन और स्थिति नहीं होसकते हैं ॥

अर्थ भलाई वा सहायताका है जैसे उपकुर्वन्ति=उपकार अथवा सहायता करते हैं (देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १२०) इसलिये उपकार शब्दका अर्थ जहां भलाई सहायता कीजाय ऐसा है। इस अर्थ का समर्थन सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति पृष्ठ २७७के 'उपक्रियत इत्युपकारः=उपक्रियते इति उपकारः=उपकार किया जाता है वा सहायता कीजाती है इस वाक्यसे होता है ॥ उपग्रह शब्दका अर्थ भलाई अथवा सहायता ग्रही(ग्रहण की)जाती है ऐसा है जैसे 'उपगृह्यत इत्युपग्रहः' =उपगृह्यते इति उपग्रह अर्थात् भलाई वा सहायता ग्रहण कीजाती है (देखो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २७७) ॥ दोनों उपग्रह और उपकार शब्दोंके ये व्युत्पत्त्यर्थ हैं, अर्थात् ये अर्थ व्याकरणकी रीतिसे निकलते हैं ॥

उपकार =फैलाये हुये पुष्पादि()नौकरी सेवा()साजसमाज()अलङ्कार, भूषण (देखो शब्दकल्पद्रुम पृष्ठ ७६ और वैद्य संस्कृत आङ्ग्लकोष पृष्ठ १३५) उपग्रह =राहु धूम केतु आदि ग्रह()कारावन्धन()कारावन्धनमेंडालना()बंधुआ-कारावरोध्य()ओड़ना-अपनाना-संयोग(उक्तकोषपृ०७६ १३५में क्रमस है)इत्यादि और भी अर्थोंमें आते हैं इन समस्तको छोड़कर अब शास्त्रानुकूल तीन बात सिद्ध करती हैं(क)यह कि उपकार तो सामान्यवचन है और उपग्रह विशेष वचन है अर्थात् उपग्रहोंका समुदाय उपकार है जैसे कोई व्यक्ति किसीको पढ़ावे, पोषण करे,उसका विवाह करे-उसे व्यापारके लिये धन दे तो अवसर आने पर कहसकता है कि मैंने तुम्हारे साथ पाठ्य उपग्रह, पोषणकरणउपगृह, विवाहकरणउपगृह, धान्यउपगृह, धनउपग्रह, इतना उपकार किया जिसपर भी तुम मेरे प्रति कृतघ्नता प्रगट करते हो। उपगृहका अर्थ अनुगृहभी है। (ख)यह कि उपगृह और उपकार शब्द()सहायता-सहारा()अनुगृह अनुकूलता भलाई()कारण निमित्त हेतु प्रत्यय अर्थों में आये जाते हैं ॥ (ग) यह कि अब यहकी बातके सम्बन्धमें उपगृह किया जाय तब और अन्य अवसरोंपर भी उपकार और उपग्रह शब्द अभेदरूपसे एक दूसरेके अर्थ में जहां जैसी आवश्यकता हो काममें आयेजाते हैं ॥

(क) (१) जो इस प्रकार है अर्थात् गतिका उपगृह है और स्थितिका भी उपगृह है तो दो(वचन)का निरूपण वा कथन उपकार शब्दके प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें आना योग्य था तब सूत्रका अन्तिम भाग ऐसा होता "धर्माधर्मयोरुपकारौ" (उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि सामान्यकरि कहा हुआ गृहीत संख्यावाला (उपकार शब्द)अन्य शब्द (उपगृही)के साथ संबन्ध होनेपर भी प्रथम गृहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है (देखो संस्कृतसर्वार्थ सिद्धिवृत्ति पृ० २७७) ॥(२) "न चैवमुपकारशब्दस्य द्विवचनप्रसंगः सामान्योपक्रमादेकवचनोपपत्तेः"=न एवम् उपकार शब्दस्य द्विवचनप्रसङ्गः न सामान्यउपक्रमात् एक वचन उपपत्तेः और इस प्रकार उपकार शब्दभी दो वचनमें स्थिति होवे (स्थिति होना चाहिये) ॥ (उत्तर)नहीं(होना चाहिये) क्योंकि सामान्यमें आरम्भ करनेसे वा सामान्य वाचसे [illegible] वचन की प्राप्ति है ॥(३)"तत्किमिदानीमुपगृहवचनं। न कर्तव्यं। कर्तव्यमेवोपकारशब्देन कार्यसामान्यस्याभिधानात् गतिस्थित्युपगृहाविति कार्यविशेषकथनात्"। श्लोकवार्तिकपृ०४१०=तो अब(=इदानीं)उपगृहवचन (सूत्रमें) क्यों है, नहीं लाना चाहिये (उत्तर) (उपगृह शब्द सूत्रमें)लानाही चाहिये क्योंकि उपकार शब्दकरि सामान्य कार्यनिरूपण कियागया है(और) गति उपगृह,स्थिति उपग्रहसे विशेष कार्यका कथन होता है अर्थात् उपकार सामान्यवचन है और उपगृह विशेष वचन है ॥(४) (श्लोक) 'सुखादुप गृहश्चोप-ग्रहो जीवविपाकिनाम्' =सुखादि उपगृहः च उपकारः जीवविपाकिनाम् ॥ श्लोकवार्तिक पृ० ४१२ और सुख दुःख,जीवित, मरण उपगृह है

मेलता विय णिच्च सग सम्भावं ण जहंति ॥ १ ॥ यद्येवं धर्मादीनां स्वभावभेद उच्यतामित्यत आह—

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

सर्वार्थ सिद्धि

अध्याय ५ सूत्र १७

मेलंता[१] वि ० य ० णिच्चं ०(मिलन्त:[१] अपि ० च ० नित्यम् ०) =और(=च)नित्य =णिच्चं=सदा)मिलते हुये होनेपर भी(=वि=अपि)

सग ० सम्भावं[१] ण ० जहंति(स्व ० स्वभावं[१] न ० जहति ।)॥१॥ =अपने (अपने) स्वभावको नहीं छोड़ते हैं(=जहति–देखो टिप्पणी(१) पृष्ठ ४६)

यदि ० एवम् ० =जो ऐसे हैं अर्थात् यदि ये छहों द्रव्यें अपने अपने स्वभावको नहीं छोड़ते हैं तो

५० धर्मादीनाम्[१]॥स्वभावभेद:[१] उच्यताम् । इति ० अत: ० आह । =धर्मादिक (द्रव्यों)के स्वभावका भेद कहाजाना चाहिये इसलिये(उपर सूत्रमें)कहते हैंकि

[१]सूत्रम्—गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

= ([२]जीवानाम् पुद्गलानाम् च)[३]गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकार भवति ॥ १७ ॥

सूत्रार्थ—जीवानाम्[१] पुद्गलानाम्[१] च ० गति-स्थिति-उपग्रहौ[१] =जीवोंके और पुद्गलोंके गमन और स्थितिका कारण अथवा कार्य(=उपग्रह) (वाह्य)प्रेरक पराधीन वा उदासीनरूपसे परन्तु अविनाभावी अर्थात् जिस विना गमन और स्थिति न होसके ऐसा

धर्म-अधर्मयो:[१]॥उपकार:[१] भवति[१] =(क्रमसे)धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी सहायता सहकारता वा उपकार होता है अर्थात् गमनमें परिणमन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको

(१) श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "उपग्रहौ" के स्थानमें "उपग्रहो" ऐसा पाठ है और उपग्रहो तीन स्थानमें आनेसे प्रगट है कि उनके यहांका पाठ यही है इससे अशुद्धि नहीं है अर्थ और शेषपाठ दोनोंसम्प्रदायोंमें एक है "धर्माधर्मयो" भी अधोदहाभ्यां हैया" सूत्रसे ग्रहण है।

(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति पंद्रहवां सूत्रसे और पुद्गलानां शब्द की चौदहवां सूत्रसे (अनुवृत्ति) लीगई है ।

(३) उपग्रह और उपकार दानों शब्द कर्मसाधन कर्मप्रधान अथवा कर्मोंकि प्रयोग में हैं (देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकमें वार्तिक १० ११ १२, १३ पं० जयचन्द्रजी की वचनिका पृष्ठ४४६) । कर्मसाधन वह है जिसकी क्रियाका कर्ता ज्ञात नहीं पड़ता हो तात्पर्य यह है कि अपनी अवस्थामें विद्यमान नहीं है और जो दामी ना करवाकी अवस्थामें हो और जिसमें कर्मके जानलिखेजानेकी आवश्यकता प्रधानहो और यही कर्मकर्ताप्रसिद्धि गिनाजावे जैसे फल खाया जाता है वहां कर्ता अपनी स्थितिमें विद्यमान नहीं है और जैसे लड़केसे रोटी खाईजाती है यहां कर्मकर्ताके स्थानमें है और लड़का कर्ता की अवस्थामें न होकर करणकी अवस्थामें है इसीप्रकार गमन (गति)का उपकार कियाजाता है धर्मद्रव्यसे और स्थितिका उपकार किया जाता है अधर्मद्रव्यसे । उपकारका अर्थ उपकारसे विरुद्ध है अपकार शब्दमें 'अप' उपसर्गका अर्थ बुराईका है और उपकार तथा उपग्रह शब्दोंमें 'उप' उपसर्गका

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गति । तद्विपरीता स्थिति । उपगृह्यत इत्युपग्रह । गतिश्च स्थितिश्च गति-स्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ (१)धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देश ॥

पृथ्यनुवाद:—देशान्तर-प्राप्ति हेतु: गति ॥	=(द्रव्यका एक क्षेत्रसे)दूसरे स्थानमें प्राप्तिका कारण है सो गति अथवा गमन है
तद्-विपरीता॥ स्थिति ॥	=उस(गति)से उलटा (अर्थात् गमन क्रियासे रुकना या थमना)सो स्थिति है
उपगृह्यत। इति॥ उपग्रह ॥, गति ॥ च॥ स्थिति:॥ च॥	=सहायता ग्रहण कीजाती है ऐसा उपग्रह है और(=च)गति तथा(=च)स्थिति है
गति-स्थिती॥, गति-स्थिती॥ एव॥ उपग्रहौ॥	=सो गतिस्थिती(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है । गति ही उपग्रह और ठहराव ही उपग्रह
गतिस्थित्युपग्रहौ॥	=ये गति-स्थिति-उपग्रहौ(इस द्वंद्वसमासरूपमें)हैं अर्थात् गति और स्थितिही उपग्रह हैं।
(१)धर्म-अधर्मयो ॥इति॥ कर्तृ निर्देश ॥	=(इस सूत्रमें)धर्म-अधर्मयो ऐसा (वाक्य)कर्ताके अर्थ है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य उपकारके करनेवाले हैं भावार्थ इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नहीं है वरन् जीव पुद्गलोंका गमनका उपकार करनेवाली प्रेरकरूपसे धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गलोंको स्थितिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है ।

() यस्य अर्थस्य लिंगं वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व उपकारा स काल इति अनुमीयते(राजवार्तिक १७) = जिस द्रव्यका (अथ स्य) लक्षण (=लिंग) कहेहुये वर्तना परिणाम क्रिया, परत्व अपरत्व हैं सो काल है ऐसा अनुमान कियाजाता है ॥ यहांपर सूत्रमें 'कालस्य' शब्दके पश्चात् 'उपकारा' अनुवर्तता है और उस कालका जीव पुद्गलोंके साथ वर्तना उपग्रह परिणाम उपग्रह क्रिया उपग्रह परत्वउपग्रह अपरत्व उपग्रह इतना उपकार है वार्तिककार इन पांचों उपग्रहोंके लिये "उपकारा"ऐसा शब्द बहुवचनमें लाये हैं ॥

() जीवपुद्गलानां गतिउपग्रहे कर्तव्ये साधारण आश्रय धर्मास्तिकाय = गमन करते जो जीव पुद्गलद्रव्य तिनके गमनका उपकार विषें साधारण आश्रय धर्मद्रव्य है" अध० वा० ४२६ 'उपग्रह का अनुवाद उपकार विषें ऐसा किया है

(१) इस सूत्रमें 'धर्माधर्मयो' वाक्यसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कर्ता माना है । (प्रश्न) धर्म अधर्मको कर्ता माननेमें यहां प्रथमा विभक्ति होना चाहिये (उत्तर) कर्ता कारकमें षष्ठी विभक्तिका भी विधान मानागया है अत:'धर्माधर्मयो' षष्ठी विभक्ति द्विवचन पदके रहते भी धर्म अधर्मका कर्ता होना निर्बाध है (प्रश्न) किसी न किसी क्रियाके सम्बन्धसे कर्ताका व्यवहार होता है धर्म अधर्मके साथ कौनसी क्रिया है जो इन (धर्म अधर्म)को कर्ता मान लिया जावै ॥ (उत्तर) सूत्रमें उपकार शब्दका ग्रहण है इसलिये 'उपकरोति'अर्थात् उपकार स्वरूप क्रियाके संबन्धसे धर्म और अधर्मको कर्ता माना गया है ॥ सूत्रमें'उपकार' शब्द भाव साधन है 'उपकरण उपकार' यह भावसाधन उपकार शब्दका विग्रह(=समासके अर्थ का प्रगट करनेवाला वाक्य) अथवा व्युत्पत्ति(=व्याकरणकी रीतिसे शब्दकीसिद्धि) है (प्रश्न)यदि'उपकरण उपकार:' ऐसे उपकारशब्दको भावसाधन माना जायगा तो गति और स्थिति स्वरूप उपग्रह धर्म और अधर्म द्रव्योंका उपकार है । इस रूपसे जो 'गतिस्थित्युपग्रहौ' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है वह न बन सकेगा क्योंकि क्रिया तो कर्ता में रहती है इसलिये यहां उपकाररूप क्रिया तो धर्म और अधर्मरूप कर्ताओंमें रहेगी तथा उपगृह्यमाण अर्थात्

क) जीव विपाकी प्रकृतियोंका उपकार है" अर्थात् सुख उपग्रह दुःख उपग्रह जीवित उपग्रह मरण उपग्रह यहां उपग्रह विशेष वचन है) पुद्गलोंका आत्माके उपकार है (यहां उपकार सामान्य वचन है)॥ (५) कालस्योपग्रहाः प्रोक्ता येपूनवर्तनादयः। स्यात्त एवोपकारो तस् तथानुमितिरिष्यते ॥

=पुनि ये वर्तनादय कालस्य उपग्रहाः प्रोक्ताः स्यात् ते एव उपकार अतः तस्य अनुमिति इष्यते (२८वां श्लोकतत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ४१४)

=पुनि जे वर्तना-परिणाम क्रिया-परत्व अपरत्व कालद्रव्यकेउपग्रह कहेगयेहैं। वेही उपकारहैं इसलियेउस(कालद्रव्य)के अस्तित्व)का निर्णय होजाताहै

(ख)(१) सहायता-सहाराके अर्थमें -जैसे आकाशस्य उपकारःअवगाह =आकाशद्रव्यकी सहायता वा सहारा स्थानदान देनाहै सर्वार्थसिद्धिवचनिकापृ०२०६

भक्तानाम् उपकारे वर्तते =सेवकोंकी(धनादिसे स्वामी)सहायता(करने)में वा सहारा देनेमें प्रवर्तताहै पृ०२८१

बाह्य उपग्रहात् विना =बाहिरकी सहायता अथवा सहारा विना ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २८७

स्व उपग्रह प्रदर्शनार्थम् इदम्-पुद्गलानाम् पुद्गलकृत उपकार इति=अपने लिये सहायता दिखानेकेलियेकि पुद्गलोंका पुद्गलकृत उपकारहै उपग्रहबतायेहैं

परस्परस्य उपग्रहः =आपसकी सहायता वा आपसमें एकदूसरेका सहारा [(२१वां सूत्रमें)कहतेहैं

(२) अनुग्रह अनुकूलता-भलाईकेअर्थमें जैसे जीवकृत उपकारप्रदर्शनार्थम्प्राह =जीवका किया हुआ(परस्पर)अनुग्रह भलाईवाअनुकूलता दिखानेकेलिये

किम् एतावान् एव पुद्गलकृत उपकारः =क्या इतनाही पुद्गलका किया हुआ अनुग्रह है(सर्वार्थ० पृ० २८४)

परस्परस्य-उपग्रह =आपसकीभलाई वा अनुग्रह (सर्वार्थ० पृ० २८६)

उपग्रहः =अनुग्रहहै(देखो तत्वार्थराजवार्तिकपृ०२१० वार्तिक१ श्लो०वा०पृ०४१०)

(३) कारण निमित्त-हेतु प्रत्ययके अर्थ में-जैसे जीवानां सुख दुःख-जीवित-मरण-उपग्रहाश्च पुद्गलानां उपकारः (सूत्र २०)

=जीवोंके (ऊपर)सुखका कारण दुखका निमित्त जीवनका हेतु मरणका प्रत्ययभी पुद्गलकृत सहायता है (सरलसर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० २८४)

(ग) उपग्रह और उपकार एकही अर्थमें जैसे शिष्याणाम् अनुग्रहे वर्तते=शिष्योंके उपकारमें(=अनुग्रहमें आचार्य) प्रवर्तता है(सर्वार्थसिद्धि पृ०२८६)

आचार्याणाम् उपकारे वर्तते=(शिष्य)आचार्योंके उपकारमें प्रवर्तता है (सर्वार्थ सिद्धि पृ० २८६)

() "उपग्रह कहिये उपकार वर्ते हैं अर्थ०प्र०पृ०११६ ()"शरीर वाक् मन तथा प्राण अपान ये पुद्गलोंकाजीवोंके ऊपर उपग्रह है

"()विष शस्त्र अग्नि आदानि मरणस्य अपवर्तन आयुष्कस्य" उपकार =तथा विष,शस्त्र,और अग्नि आदि मरणके अर्थात् आयुके अपवर्तन होनेके उपग्रह

है"यहां उपकार शब्दका अनुवाद उपग्रह किया है। देखो सभाष्य०पृ०१२६)

()उपग्रहो निमित्त अपेक्षा कारणं-हेतुरित्यनर्थान्तरम्।" =उपग्रह निमित्त अपेक्षा कारण ये सब समानार्थकहैं (देखो सभाष्य० पृ०१२५)

और उपकारका अर्थ भी निमित्त कारण वचनिका और अर्थप्रकाशिकामें

लिखा है— "कि सूत्रार्थमु निमित्त होय ताहू उपकार कहिये है" वचनिका पृष्ठ ४३७ (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३०१ सूत्र १६)

()हमारे पास एक कोष बहुत प्राचीन और जीर्ण है जिसके ऊपरकेपृष्ठ और नाम संस्करण भी नहीं है जिसके पृष्ठ२६में पंद्रहवां शब्द उपकारका अर्थ"

कृपा सहायता लिखा है और इसीसके शब्द उपग्रहका अर्थ कृपा सहायता (अंकुश भी लिखा है जिसको छोड़देते हैं) लिखा है।

() तेन शरीरादि परिणामैरात्मनां पुद्गलाः उपग्रहीतारः इत्युक्तं भवति=तेन शरीरादि परिणामैः आत्मनां पुद्गलाः उपगृहीतारःइति उक्त भवति

(अर्थ)याकारणकरि शरीरादि परिणामकरि आत्माका उपकार करने वारे पुद्गल हैं ऐसे कह्यौ होयहै" उपगृहीतृ शब्द है जिसका प्रथमा विभक्ति

बहुवचन उपगृहीतारः बनता है जिसका अर्थ अनुग्रह करनेवाले होता है पं० पन्नालालजी दूनीवालोंने इस तत्वार्थ राजवार्तिककी टब्बाटीकावार्तिकमें

मायेहुए इस शब्दका अनुवाद "उपकार करनेवाले" ऐसा किया है अर्थात् उपगृहीतृ=उपकर्तृ

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः । तद्विपरीता स्थितिः । उपगृह्यत इत्युपग्रहः । गतिश्च स्थितिश्च गति-स्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ (१)धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देशः ॥

वृत्त्यनुवाद—देशान्तर-प्राप्ति हेतुः गतिः॥	=(द्रव्यका एक क्षेत्रसे)दूसरे स्थानमें प्राप्तिका कारण है सो गति अथवा गमन है
तद् विपरीता॥ स्थिति ॥	=उस(गति)से उलटा (अर्थात् गमन क्रियासे रुकना या थमना)सो स्थिति है
उपगृह्यते। इति॥उपग्रह ॥ ; गति ॥च॥ स्थितिः॥च॥	=सहायता ग्रहण कीजाती है ऐसा उपग्रह है और(=च)गति तथा(=च)स्थिति है
गति-स्थिती॥ ; गति-स्थिती एव॥उपग्रहौ॥	=सो गतिस्थिती(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है। गति ही उपग्रह और ठहराव ही उपग्रह
गतिस्थिति-उपग्रहौ ॥	=ये गति-स्थिति-उपग्रहौ(इस द्वंद्वसमासरूपमें)हैं अर्थात् गति और स्थितिही उपग्रह हैं।
(१)धर्म-अधर्मयो इति॥कर्तृ निर्देश ॥	=(इस सूत्रमें)धर्म-अधर्मयोः ऐसा (वाक्य)कर्ताके अर्थ है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य उपकारके करनेवाले हैं भावार्थ इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नहीं है वरन् जीव पुद्गलोंका गमनका उपकार करनेवाली प्रेरकरूपसे धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गलोंको स्थितिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है।

() यस्य प्रत्ययस्य लिंगा[न्य]स्यां वर्तनादयः उपकाराः सः कालः इति अनुमीयते(राजवार्तिक २९७) = जिस द्रव्यका (अथ स्य) लक्षण (=लिंग) कहेहुये वर्तना परिणाम क्रिया, परत्व अपरत्व उपकार है सो काल है ऐसा अनुमान कियाजाता है। यहांपर सूत्रमें 'कालस्य' शब्दके पश्चात् 'उपकारः' अनुवर्तता है और उस कालका जीव पुद्गलोंके साथ वर्तना उपग्रह परिणाम उपग्रह क्रिया उपग्रह परत्वउपग्रह, अपरत्व उपग्रह इतना उपकार है वार्तिककार इन पांचों उपग्रहोंके लिये उपकाराः ऐसा शब्द बहुवचनमें लाये हैं।

() जीवपुद्गलानां गत्युपग्रहे कर्तव्ये साधारण-आश्रय धर्मास्तिकाय = गमन करते जो जीव पुद्गलद्रव्य तिनके गमनका उपकार विषैं साधारण आश्रय धर्मद्रव्य है" अध० वच० ४१६ 'उपग्रहे'का अनुवाद 'उपकार विषैं' ऐसा किया है

(१) इस सूत्रमें 'धर्माधर्मयोः' वाक्यमें धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कर्ता माना है। (प्रश्न) धर्म अधर्मको कर्ता माननेमें यहां प्रथमा विभक्ति होना चाहिये (उत्तर) कर्ता कारकमें षष्ठी विभक्तिका भी विधान मानागया है अतः'धर्माधर्मयोः' षष्ठी विभक्ति द्विवचन पदके रहते भी धर्म अधर्मका कर्ता होना निर्बाध है (प्रश्न) किसी न किसी क्रियाके सम्बन्धसे कर्ताका व्यवहार होता है धर्म अधर्मके साथ कौनसी क्रिया है जो इन (धर्म अधर्म)को कर्ता मान लिया जावै। (उत्तर) सूत्रमें उपकार शब्दका ग्रहण है इसलिये 'उपकरोति'अर्थात् उपकार स्वरूप क्रियाके संबन्धसे धर्म और अधर्मको कर्ता माना गया है। सूत्रमें'उपकार'शब्द भाव साधन है 'उपकरण' उपकारः यह भावसाधन उपकार शब्दका विग्रह(=समासके अर्थ को प्रगट करनेवाला वाक्य) अथवा व्युत्पत्ति(=व्याकरणकी रीतिसे शब्दकीसिद्धि) है (प्रश्न)यदि'उपकरणं उपकारः ऐसे उपकारशब्दको भावसाधन माना जायगा तो गति और स्थिति स्वरूप उपग्रह धर्म और अधर्म द्रव्योंका उपकार है। इस रूपसे जो 'गतिस्थित्युपग्रहौ' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है वह न बन सकेगा क्योंकि क्रिया तो कर्ता में रहती है इसलिये यहां उपकाररूप क्रिया तो धर्म और अधर्मरूप कर्ताओंमें रहेगी तथा उपगृह्यमाण अर्थात्

सो आप जिनकी प्रकृतियोंका उपकार है" अर्थात् सुख उपग्रह दुःख उपग्रह जीवित उपग्रह मरण उपग्रह यहां उपग्रह विशेष वचन है) पुद्गलोंका आत्माके उपकार है (यहां उपकार सामान्य वचन है)॥ (४) कालस्योपग्रहः प्रोक्तो येपृवर्तनादयः। स्यात्त पर्योपकारो तस्य तस्यानुमितिरिष्यते ॥

=पुनि ये वर्तनादय कालस्य उपग्रहाः प्रोक्ता स्यात् ते एव उपकार. तत्र तस्य अनुमिति इष्यते (२८वां श्लोकतत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ४१४)

=पुनि जे वर्तना-परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व कालद्रव्यकेउपग्रह कहेगयेहैं। वेही उपकारहैं इसलियेइस(कालद्रव्य)के अस्तित्व)कानिर्णय होजाताहै

(ख)(१) सहायता-सहाराके अर्थमें -जैसे आकाशस्य उपकारःअवगाह =आकाशद्रव्यकी सहायता वा सहारा स्थानदान देनाहै सर्वार्थसिद्धिवृत्तिपृ०२०६

भृत्यानाम् उपकारे वर्तते =सेवकोंकी(धनादिसे स्वामी)सहायता(करने)में वा सहारा देनेमें प्रवर्तताहै पृ०२८१

बाह्य उपग्रहात् विना =बाहिरकी सहायता अथवा सहारा विना ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २८७

स्व उपग्रह प्रदर्शनार्थम् इदम्-मनुष्यानाम् पुद्गलकृत उपकार इति=अपने लिये सहायता दिखानेकेलियेहि पुद्गलोंकापुद्गलकृत उपकारहै उपग्रहकहायेहैं

परस्परस्य-उपग्रहः =आपसकी सहायता वा आपसमें एकदूसरेका सहारा [(२१वां सूत्रमें)कहतहैं

(२) अनुग्रह अनुकूलता-भलाईकेअर्थमेंः-जैसे जीवकृत-उपकारप्रदर्शनार्थम्आह =जीवकाकियाहुआ(परस्पर)अनुग्रह भलाईयाअनुकूलता दिखानेकेलिये

किम् एतावान् एव पुद्गलकृत उपकारः=क्या इतनाही पुद्गलका कियाहुआ अनुग्रह है(सर्वार्थ० पृ० २८४)

परस्परस्य-उपग्रह =आपसकीभलाई वा अनुग्रह

उपग्रहः (सर्वार्थ० पृ० २८६)

=अनुग्रहहै(देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकपृ०२१० वार्तिक१,स्ला०वा०पृ०४१०)

(३) कारण निमित्त हेतु मददके अर्थ में-जैसे जीवानां सुख दुःख-जीवित-मरण-उपग्रहाश्च पुद्गलानां उपकारः (सूत्र २०)

=जीवोंके (ऊपर)सुखका कारण दुःखका निमित्त जीवनका [redacted] मरणका प्रत्ययभी पुद्गलकृत सहायता है (संस्कृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० २८४)

(ग) उपग्रह और उपकार एकही अर्थमें जैसे शिष्याणाम् अनुग्रहे वर्तते=शिष्योंके उपकारमें(=अनुग्रहमें आचार्य) प्रवर्तता है(सर्वार्थसिद्धि पृ०२८६)

आचार्याणाम् उपकारे वर्तते=(शिष्य)आचार्योंके उपकारमें प्रवर्तते हैं (सर्वार्थ सिद्धि प० २८६)

() "उपग्रह कहिये उपकार वर्तें हैं" अप०अ०पृ०४१८ () 'शरीर वाक् मन तथा प्राण अपान ये पुद्गलोंकाजीवोंके ऊपर उपग्रह है

"()विष शस्त्र अग्नि आदानि मरणस्य अपवर्तनं चायुष्कस्य" उपकार =तथा विष शस्त्र और अग्नि आदि मरणके अर्थात् आयुके अपवर्तन होनेके उपग्रह

()उपग्रहो निमित्त अपेक्षा-कारण हेतुरित्यनर्थान्तरम् है'यहां उपकार शब्दका अनुवाद उपग्रह किया है। देखो सभाष्य०पृ०१२६)

=उपग्रह निमित्त अपेक्षा कारण ये सब समानार्थक हैं (देखो सभाष्य० पृ०१२५)

और उपकारका अर्थ भी निमित्त कारण वचनिका और अर्थ प्रकाशिकामें

लिखा है—'कि सूत्रार्थपू निमित्त होय ताकू उपकार कहिये है वचनिका पृष्ठ ४१४ (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ १०१ सूत्र १९)

()हमारे पास एक अन्य बहुत प्राचीन और जीर्ण है जिसके ऊपरकेपृष्ठ और अन्य लेखनामा भी नहीं है जिसके पत्र५१में पंद्रहवां शब्द उपकारका अर्थ

इस सहायता लिखा है और इक्कीसवें शब्द उपग्रहका अर्थ तथा सहायता (बंधुआ भी लिखा है जिसको छोड़देते हैं। लिखा है।

() तब शरीरादि परिणामैरात्मनां पुद्गलाः उपग्रहीतारः इत्युक्तं भवति=तेन शरीरादि परिणामैः आत्मनां पुद्गला' उपगृहीतारःइति उक्तं भवति

(अर्थ)आकाशकरि शरीरादि परिणामकरि आत्माको उपकार करन वारे पुद्गल हैं ऐसैं कह्यौ होयहै" उपगृहीतृ शब्द है जिसका प्रथमा विभक्ति

बहुवचन उपगृहीतारः बनता है जिसका अर्थ उपग्रह करनेवाले होता है पं पन्नालालजी दूनीवालोंने इस तत्त्वार्थ राजवार्तिककी इक्कावीसवार्तिकमें

आयेहुए इस शब्दका अनुवाद "उपकार करनेवाले" ऐसा किया है अर्थात् उपगृहीतृ=उपकर्तृ

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गति । तद्विपरीता स्थिति । उपगृह्यत इत्युपग्रह । गतिश्च स्थितिश्च गति-स्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ [1]धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देश ॥

शब्दानुवाद—देशान्तर-प्राप्ति हेतु है गति है॥	=(द्रव्यका एक क्षेत्रसे)दूसरे स्थानमें प्राप्तिका कारण है सो गति अथवा गमन है
तद्-विपरीता है स्थिति है॥	=उस(गति)से उलटा (अर्थात् गमन क्रियासे रुकना या थमना)सो स्थिति है
उपगृह्यते । इति॰उपग्रह है , गति है च स्थिति है च॰	=सहायता ग्रहण कीजाती है ऐसा उपग्रह है और(=च)गति तथा(=च)स्थिति है
गति-स्थिती है , गति-स्थिती है एव॰उपग्रहौ है	=सो गतिस्थिती(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है । गति ही उपग्रह और ठहराव ही उपग्रह
गतिस्थिति-उपग्रहौ है ॥	=वे गति-स्थिति-उपग्रहौ(इस द्वंद्वसमासरूपमें)हैं अर्थात् गति और स्थितिही उपग्रह हैं।
( )धर्म-अधर्मयो है इति॰कर्तृ-निर्देश है	=(इस सूत्रमें)धर्म-अधर्मयो ऐसा (वाक्य)इसलिए अर्थ है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य उपकारके करनेवाले हैं भावार्थ इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नहीं है वरन् जीव पुद्गलोंका गमनका उपकार करनेवाली अमेरकरूपसे धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गलोंको स्थितिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है ।

() यस्य अर्थस्य क्रियात्मका परत्वापरत्व उपकारः स काल इति अनमीयते(राजवार्तिक २७०) = जिस द्रव्यका (अन्य द्रव्य) अवस्थ (=क्रिय) करतेहुवे वर्तना परिणाम क्रिया, परत्व अपरत्व उपकार है सो काल है ऐसा अनुमान कियाजाता है । यहांपर सूत्रमें 'कालस्य' शब्दके पश्चात् 'उपकारः' अनुवर्तता है और उस कालका जीव पुद्गलोंके साथ वर्तना उपग्रह परिणाम उपग्रह क्रिया उपग्रह परत्वउपग्रह, अपरत्व उपग्रह इतना उपकार है वार्तिककार इन पांचों उपग्रहोंके लिये 'उपकाराः' ऐसा शब्द बहुवचनमें लाये है ।

() जीवपुद्गलानां गतिउपग्रहे कर्तव्ये साधारण-आश्रय धर्मास्तिकाय = गमन करते जो जीव पुद्गलद्रव्य तिनके गमनका उपकार विषैं साधारण आश्रय धर्मद्रव्य है" अध॰ वच॰ ४९६ 'उपग्रहे'का अनुवाद 'उपकार विषैं' ऐसा किया है

(१) इस सूत्रमें 'धर्माधर्मयो' वाक्यसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कर्ता माना है । (प्रश्न) धर्म अधर्मको कर्ता माननेमें यहां प्रथमा विभक्ति होना चाहिये (उत्तर) कर्ता कारकमें षष्ठी विभक्तिका भी विधान मानागया है अतः'धर्माधर्मयोः' षष्ठी विभक्ति द्विवचन पदके रहते भी धर्म अधर्मका कर्ता होना निर्बाध है (प्रश्न) किसी न किसी क्रियाके सम्बन्धसे कर्ताका व्यवहार होता है धर्म अधर्मके साथ कौनसी क्रिया है जो इन (धर्म अधर्म)को कर्ता मान लिया जावें । (उत्तर) सूत्रमें उपकार शब्दका ग्रहण है इसलिये 'उपकरोति'अर्थात् उपकार स्वरूप क्रियाके संबन्धसे धर्म और अधर्मको कर्ता माना गया है । सूत्रमें'उपकार शब्द भाव साधन है 'उपकरण उपकारः' यह भावसाधन उपकार शब्दका विग्रह(=समासके अर्थ को प्रगट करनेवाला वाक्य) अथवा व्युत्पत्ति(=व्याकरणकी रीतिसे शब्दकीसिद्धि) है (प्रश्न)यदि'उपकरण उपकारः' ऐसे उपकारशब्दको भावसाधन माना जायगा तो गति और स्थिति स्वरूप उपग्रह धर्म और अधर्म द्रव्योंका उपकार है । इस रूपसे जो 'गतिस्थित्युपग्रहौ' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है वह न बन सकेगा क्योंकि क्रिया तो कर्ता में रहती है इसलिये यहां उपकाररूप क्रिया तो धर्म और अधर्मरूप कर्ताओंमें रहेगी तथा उपगृह्यमाण अर्थात्

६) शेष विपाकी प्रकृतियोंका उपकार है" अर्थात् सुख उपग्रह दुःख उपग्रह जीवित उपग्रह मरण उपग्रह यहां उपग्रह विशेष वचन है) पुद्गलोंका आत्माके उपकार है (यहां उपकार सामान्य वचन है)॥ (४) कालस्यापग्रहा प्रोक्ता वेपुनर्वर्तनादयः । स्यात्त यथोपकारो तस् तस्यानुमितिरिष्यते ॥
=पुनि ये वर्तनादय कालस्य उपग्रहा प्रोक्ता स्यात् ते एव उपकार. अतः तस्य अनुमिति इष्यते (१८वां श्लोकतत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ४१४)
=पुनि जे वर्तना-परिणाम क्रिया-परत्व अपरत्व कालद्रव्यकेउपग्रह कहेगयेहैं । वेही उपकारहैं इसलियेउस(कालद्रव्य)के अस्तित्व)कानिर्णय होजाताहै
(ख)(१) सहायता-सहाराके अर्थमें -जैसे आकाशस्य उपकारःअवगाह =आकाशद्रव्यकी सहायता वा सहारा स्थानदान देनाहै सर्वार्थसिद्धिसिपृ०२०६
भृत्यानाम् उपकारे वर्तते =सेवकोंकी(धनादिसे स्वामी)सहायता(करने)में वा सहारा देनेमें प्रवर्तताहै पृ०२८६
बाह्य उपग्रहात् विना =बाहिरकी सहायता अथवा सहारा विना ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २८७
एव उपग्रह-प्रदर्शनार्थम् इदम्-पुद्गलानाम् पुद्गलकृत उपकार इति=अपने लिये सहायता दिखानेकेलियेकि पुद्गलोंकापुद्गलकृत उपकारहै उपग्रहकायेहैं
परस्परस्य उपग्रहः =आपसकी सहायता वा आपसमें एकदूसरेका सहारा [(२१वां सूत्रमें)कहतेहैं
(२) अनुग्रह अनुकूलता भलाईकेअर्थमें-जैसे जीवकृत उपकारप्रदर्शनार्थम्-आह=जीवकाकियाहुआ(परस्पर)अनुग्रह भलाईवाअनुकूलता दिखानेकेलिये
किम् एतावान् एव पुद्गलकृत उपकारः=क्या इतनाही पुद्गलका कियाहुआ अनुग्रह है(सर्वार्थ० पृ० २८४)
परस्परस्य-उपग्रह =आपसकीभलाई वा अनुग्रह (सर्वार्थ० पृ० २८६)
उपग्रहः =अनुग्रहहै(देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकपृ०२१० वार्तिक१,श्लो०वा०पृ०४१०)
(४) कारण निमित्त हेतु प्रत्ययके अर्थ में-जैसे जीवानां सुख दु-ख-जीवित-मरण-उपग्रहाःच पुद्गलानां उपकारः (सूत्र २०)
=जीवोंके (ऊपर)सुखका कारण दुखका निमित्त जीवनका हेतु-मरणका प्रत्ययभी पुद्गलकृत सहायता है (संस्कृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति प० २८४)
(ग) उपग्रह और उपकार एकही अर्थमें जैसे शिष्याणाम् अनुग्रहे वर्तते=शिष्योंके उपकारमें(=अनुग्रहमें आचार्य) प्रवर्तता है(सर्वार्थसिद्धि पृ०२८६)
आचार्याणाम् उपकारे वर्तते=(शिष्य)आचार्योंके उपकारमें प्रवर्तते हैं (सर्वार्थ सिद्धि प० २८६)
() "उपग्रह कहिये उपकार वर्ते हैं" अर्थ०प्र०पृ०४१८ () 'शरीर वाक् मन तथा प्राण अपान ये पुद्गलोंकाजीवोंके ऊपर उपग्रह है
"()विष शस्त्र अग्नि आदयनि मरणस्य अपवर्तन कायुष्कस्य" उपकार =तथा विष,शस्त्र और अग्नि आदि मरणके अर्थात् आयुके अपवर्तन होनेके उपग्रह
है"यहां उपकार शब्दका अनुवाद उपग्रह किया है। देखो सभाष्य०पृ०१२१)
()उपग्रहो निमित्त अपेक्षा-कारणं हेतुरित्यनर्थान्तरम्." =उपग्रह निमित्त अपेक्षा कारण ये सब समानार्थक हैं (देखो सभाष्य० पृ०१२५)
और उपकारका अर्थभी निमित्त कारण वचनिका और अर्थ प्रकाशिकामें
लिखा है—"कि सूत्रार्थकू निमित्त होय ताकूं उपकार कहिये है वचनिका पृष्ठ ४३७ (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३०९ सूत्र १६)
()हमारे पास एक अर्थ बहुत प्राचीन और जीर्ण है जिसके ऊपरकेपृष्ठ और अन्य सेरनामा भी नहीं है जिसके पत्र२९में पंद्रहवां शब्द उपकारका अर्थ
इस सहायता लिखा है और इसीसके शब्द उपग्रहका अर्थ यथा सहायता (अंकुश भी लिखा है जिसको छोड़देते हैं। लिखा है।
() तव शरीरादि परिणामैरात्मनां पुद्गलाः उपग्रहीतार इत्युक्तं भवति=तेन शरीरादि परिणामैः आत्मनां पुद्गला उपग्रहीतारःइति उक्तं भवति
(अर्थ)आत्माकमरि शरीरादि परिणामकरि आत्माको उपकार करने वारे पुद्गल हैं ऐसैं कहनी होयहै" उपग्रहीतृ शब्द है जिसका प्रथमा विभक्ति
बहुवचन उपग्रहीतारः बनता है जिसका अर्थ उपग्रह करनेवाले होता है पं०पन्नालालजी दूनीवालोंने इस तत्त्वार्थ राजवार्तिककी हस्त्यलिखितवार्तिकमें
मानेहुए इस शब्दका अनुवाद "उपकार करनेवाले" ऐसा किया है अर्थात् उपग्रहीतृ=उपकर्ता.

उपक्रियत इत्युपकार । क पुनरसौ? गत्युपग्रह स्थित्युपग्रहश्च ॥ यद्येवं द्वित्वनिर्देश प्राप्नोति? नैष दोष । सामान्येन व्युत्पादित उपात्तसंख्य शब्दान्तरसम्बधे सत्यपि न पूर्वोपात्ता संख्या जहाति ॥ यथा-साधो कार्यं तप श्रुते इति ॥

उपक्रियते। इति॥ उपकार॥ पुन॥ असौ॥ क॥ =उपकार कियाजाता है वा सहायताकी जाती है ऐसा उपकार है। और यह(उपकार)क्या है

गति उपग्रह॥ च॥ स्थिति-उपग्रह॥ यदि॥ एवम्॥ =गमनका उपग्रह तथा स्थितिका उपग्रह है। (प्रश्न)जो ऐसे है अर्थात् गतिकाभी उपग्रह है और स्थितिकाभी उपग्रह है तो (इस सूत्रमें)

द्वित्व-निर्देश॥ प्राप्नोति॥ =दो वचनका निरूपण वा कथन(उपकार शब्दको)प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें लाना था तब 'धर्माधर्मयोरुपकारौ' सूत्रके अन्तमें होता ॥

न॥ एष॥ दोष॥ सामान्येन॥ व्युत्पादित॥ =(उत्तर)यह दूषण नहीं है। (क्योंकि) सामान्यकरि कहाहुआ

उपात्तसंख्य॥ शब्दान्तर-सम्बन्धे॥ सति॥ अपि॥ =गृहीत संख्यावाला(उपकार शब्द)अन्य शब्द उपग्रहो के साथ सम्बन्ध होनेपर भी

न॥ पूर्व-उपात्ताम्॥ संख्याम्॥ जहाति॥ =पहिले ग्रहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको सामान्यरूपसे ग्रहणकरि एकवचनमें निर्देश कियाहै यद्यपि इस उपकार शब्दका उपग्रह' शब्दसे ऐसे सम्बंध है कि गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार और स्थितिका उपग्रह अधर्म द्रव्यका उपकार है तौ भी प्रथम ग्रहण कियेहुये एकवचन संख्याको उपकार शब्द नहीं त्यागता है और उपग्रहो शब्द दोवचनान्तके साथ उपकारौ (दोवचनान्त)ऐसा नहीं होजाता है वरन उपकार ऐसाही रहता है ॥ ('दा' धातु पर देखो टिपणी पृष्ठ ४६)

यथा॥ साधोः॥ कार्यम्॥ तपःश्रुते॥ इति॥ =जैसे साधु पुरुषका काम तप करना और शास्त्र पढना ऐसा है अर्थात् वाक्यमें तपःश्रुते द्विवचन है और इसके अनुसार'कार्यम् शब्दके स्थानपर कार्ये द्विवचन होनाचाहियेपरन्तु यहांपर कार्य शब्द सामान्य है और'तपो'कार्यम् श्रुतेकार्यम् ऐसे दो स्थानोंके लिये आयाहै। जैसे सामान्य होनेके हेतुसे (कार्य शब्द) द्विवचन नहीं हुआ तैसेही सूत्रमें 'उपकार' शब्द सामान्य है और वह गतिउपकार और स्थितिउपकार इन दो बातोंका द्योतक है इसलिये सूत्रमेंभी'उपकार'शब्दको सामान्यवचन होनेसे एकवचनमें लाये हैं द्विवचन नहीं किया है॥

धर्म और अधर्मके द्वारा जिनका उपकार कियाजाता है ऐसी गति और स्थिति जीव और पुद्गलोंमें रहेगी अर्थात् उपकारशब्दको भावसाधन माननेपर उसका आधार तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य पड़ेगा और कर्म साधन उपग्रहका आधार जीव और पुद्गल पड़ेंगे इसलिये उपकार और उपग्रह दोनोंकी भिन्न भिन्न पदार्थोंमें वृत्तिरहनेसे उन दोनोंका सामानाधिकरण्य नहीं होसकता इसलिये उपकार शब्दकी भावसाधन व्युत्पत्ति तो बन नहीं सकती। यदि कहा जायगा कि 'उपक्रियते इत्युपकार' इस प्रकार उपकार शब्द कर्म साधन है इसलिये उपर्युक्त दोष नहीं होसकता? सो भी ठीक नहीं क्योंकि उपकार शब्द और उपग्रह शब्द दोनोंकी कर्म साधन व्युत्पत्तिके मानने पर दोनोंका सामानाधिकरण्य अर्थात् एक अधिकरण तो हो सकता है परन्तु यह नियम है कि जिनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध रहता है उनके एकवचन द्विवचन आदि वचन भी समान रहते हैं। यदि उपग्रह उपकार दोनोंका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध मानाजायगा तो जिस प्रकार द्विवचनांत उपग्रह पदका ग्रहण कियागया है उसी प्रकार द्विवचनांत उपकार शब्दका भी उल्लेख करना चाहिये परन्तु सूत्रमें एकवचनांत उपकार शब्दकाही उल्लेख कियागया है इसलिये उपकार शब्दको कर्मसाधनभी नहीं मानाजासकता इस रीतिसे उपकार शब्दकी भावसाधन और कर्म साधन दोनों प्रकारकी व्युत्पत्तियें बाधित हैं? (उत्तर) यहांपर उपकार शब्दका सामान्यरूपसे ग्रहण कियागया है इसलिये उसके एकवचनांत ग्रहण करनेपर भी कोई दोष नहीं आता है अर्थात् 'साधोः कार्यं तपःश्रुते' वाक्यमें तप करना शास्त्र अध्ययन करना ये दो कार्य साधुके हैं। यहां तप और शास्त्रोंको कार्य माना है इसलिये आपसमें उनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है क्योंकि तपश्रुतरूप कार्य का आधार एक है परन्तु कार्य शब्दका एकवचनमें उल्लेख किया गया है और तप श्रुते शब्दका द्विवचनमें ग्रहण है इसलिये यहांपर भी यह शंका रहती है कि जब आपसमें यहांपर सामानाधिकरण्य संबन्ध है तब जिस प्रकार 'तप श्रुत' शब्द द्विवचनांत रूपसे कहागया है उसी प्रकार कार्य शब्दभी द्विवचनांतरूपसेही कहना चाहिये, एक वचनांत कार्यका उल्लेख यहां असंगतहित है। उसका समाधान यहां यह दियागया है कि कार्य शब्दका प्रयोग उपर्युक्त वाक्यमें सामान्यरूपसे किया गया है और यह नियम है कि जिस पदका प्रयोग सामान्यरूपसे किया जाता है और उसका उस समय जो एक वचन, द्विवचन आदि रहता है वही तदवस्थ रहता है पश्चात् यदि उस पदके विशेषण स्वरूपही तीन आदि पद हों और उनके सम्बन्धसे सामान्य रूपसे कहनेवाले पदके वचनके बदलनेकी आवश्यकता पड़े तो भी वहांपर विशेषणके अनुसार वचनका परिवर्तन नहीं होता 'कार्यं तप श्रुते' यहांपर एक वचनान्त कार्य शब्दका सामान्यरूपसे उपादान कियागया है यद्यपि पीछेसे तप श्रुत शब्द उसका विशेषणहोनेसे विशेषणके अनुसार कार्य शब्दमें वचनका परिवर्तन होना चाहिये अर्थात् एकवचनके स्थानमें द्विवचन होना चाहिये परन्तु सामान्यरूपसे ग्रहण होनेके कारण वहां पर एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीहोता उसीप्रकार उपकार शब्दकाभीसामान्यरूपसे एकवचनमें उल्लेखकियागयाहै इसलिये पीछेसेउसकाउपग्रहविशेषण होनेपर भी उसके अनुसार उपकार शब्दके एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीं होसकता अतःसूत्रमें जो एकवचनरूपमें उपकारशब्द आया यथाहैवह ठीकहै। अथवा जिस प्रकार 'उपकरणं उपकारः' इस प्रकार उपकारशब्द भाव साधन मानागया है उसी प्रकार उपग्रहणं उपग्रहः इस प्रकार उपग्रहशब्द भी भाव साधन है इसलिये गतिस्थित्योरुपग्रहो गतिस्थित्युपग्रहाविति जो ऊपर षष्ठी तत्पुरुष समास कर आये हैं उसके माननेमें भी कोई शब्दकी तथा उपग्रह और उपकार शब्दका भावसाधन मानने पर गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार है और स्थितिका उपग्रहअधर्मद्रव्यकाउपकार है यह शास्त्रानुकूल अर्थ भी निरापद होजाता है इसलिये उपग्रह और उपकार शब्दको कर्मसाधन मानने पर कर्मधारय समास और भावसाधन माननेपर षष्ठी तत्पुरुष समास दोनों ही समासोंका मानना निर्दोष है॥ (प्रश्न पर प्रश्न) यदि 'उपग्रह' शब्द भावसाधन है तो चूंकि भाव पदार्थ एक माना है इसलिये उपग्रहो के स्थानमें उपग्रह एकवचन होना चाहिये (उत्तर) धर्म और अधर्म द्रव्यें भिन्न भिन्न हैं गतिमें उपग्रह करना और स्थितिमें उपग्रह करना भी भिन्नभिन्न हैं। गमनमें उपग्रह करना धर्मद्रव्यका उपकारहै और स्थितिमेंउपग्रहकरना अधर्मद्रव्यका उपकारहै इसकारणसेउपग्रहो द्विवचन हैदोनों जैसे पृथिवी जल वैश्वयादिके गमनस्थितिमें उपकारी है वैसेही धर्म वा अधर्मद्रव्य दोनोंही जीवपुद्गलके गमन और स्थितिमें उपकारी कहाते॥

उपक्रियत इत्युपकार । क पुनरसौ? गत्युपग्रह स्थित्युपग्रहश्च ॥ यद्येव द्वित्वनिर्देश प्राप्नोति? नैष दोष । सामान्येन व्युत्पादित उपात्तसंख्य शब्दान्तरसम्बधे सत्यपि न पूर्वोपात्ता सख्या जहाति ॥ यथा-साधो कार्यं तप श्रुते इति ॥

उपक्रियते।इति॥उपकार।१।पुन॥असौ।१।क।१। =उपकार कियाजाता है या सहायताकी जाती है ऐसा उपकार है। और यह(उपकार)क्याहै

गति-उपग्रह।१।च॥स्थिति-उपग्रह।१।यदि॥एवम्॥ =गमनका उपग्रह तथा स्थितिका उपग्रह है। (प्रश्न)जो ऐसे है अर्थात् गतिकाभी उपग्रह है और स्थितिकाभी उपग्रह है तो (इस सूत्रमें)

द्वित्व-निर्देश।१। प्राप्नोति। =दो वचनका निरूपण या कथन(उपकार शब्दके)प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको वचनमें जाना था यथा'धर्माधर्मयोरुपकारौ' सूत्रके अन्तमें होवा ॥

न॥एष।१।दोष।१।सामान्येन।३।व्युत्पादित।१। =(उत्तर)यह दूषण नहीं है। (क्योंकि) सामान्यकरि कहाहुआ

उपात्तसंख्य।१।शब्दान्तर-सम्बंधे।७।सति।७।अपि॥ =गृहीत संख्यावाला(उपकार शब्द)अन्य शब्द उपग्रहौ के साथ सम्बन्ध होनेपर भी

न॥पूर्व-उपात्ताम्।२।संख्याम्।२।जहाति। =पहिले ग्रहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको सामान्यरूपसे ग्रहणकरि एकवचनमें निर्देश कियाहै यद्यपि इस उपकार शब्दका उपग्रह' शब्दसे ऐसे सम्बंध है कि गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार और स्थितिका उपग्रह अधर्म द्रव्यका उपकार है तो भी प्रथम ग्रहण कियेहुये एकवचन संख्याको उपकार शब्द नहीं त्यागता है और उपग्रहौ शब्द दोवचनान्तके साथ उपकारौ (दोवचनान्त)ऐसा नहीं होजाता है वरन उपकार ऐसाही रहता है ॥ ('दा' धातु पर देखो टिप्पणी पृष्ठ ४६)

यथा॥साधो।६।कार्यम्।१।तप।श्रुते।६।इति॥ =जैसे साधु पुरुषका काम तप करना और शास्त्र पढ़ना ऐसा है अर्थात् वाक्यमें तपःश्रुते द्विवचन है और इसके अनुसार'कार्यम् शब्दके स्थानपर कार्ये द्विवचन होनाचाहियेपरन्तु यहांपर कार्य शब्द सामान्य है और'तपो'कार्यम् श्रुतेकार्यम् ऐसे दो स्थानोंके लिये आयाहै। जैसे सामान्य होनेके हेतुसे (कार्य शब्द) द्विवचन नहीं हुआ तैसेही सूत्रमें 'उपकार' शब्द सामान्य है और यह गतिउपकार और स्थितिउपकार इन दो भावोंका बोधक है इसलिये सूत्रमेंभी'उपकार'शब्दको सामान्यवचन होनेसे एकवचनमें लाये हैं द्विवचन नहीं किया है॥

धर्म और अधर्मके द्वारा जिसका उपकार कियाजाता है ऐसी गति और स्थिति जीव और पुद्गलोंमें रहेगी अर्थात् उपकारशब्दको भावसाधन माननेपर उसका आधार तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य पड़ेगा और कर्म साधन उपग्रहका आधार जीव और पुद्गल पड़ेंगे इसलिये उपकार और उपग्रह दोनोंकी भिन्न भिन्न पदार्थोंमें वृत्तिहोनेसे उन दोनोंका सामानाधिकरण्य नहीं होसकता इसलिये उपकार शब्दकी भावसाधन व्युत्पत्ति तो बन नहीं सकती। यदि कहा जावगा कि 'उपक्रियते इत्युपकारः' इस प्रकार उपकार शब्द कर्म साधन है इसलिये उपर्युक्त दोष नहीं होसकता ? सो भी ठीक नहीं क्योंकि उपकार शब्द और उपग्रह शब्द दोनोंकी कर्म साधन व्युत्पत्तिके मानने पर दोनोंका सामानाधिकरण्य अर्थात् एक अधिकरण तो हो सकता है परन्तु यह नियम है कि जिनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध रहता है उनके एकवचन द्विवचन आदि वचन भी समान रहते हैं। यदि उपग्रह उपकार दोनोंका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध माना जायगा तो जिस प्रकार द्विवचनांत उपग्रह पदका उल्लेख कियागया है उसी प्रकार द्विवचनांत उपकार शब्दका भी उल्लेख करना चाहिये परन्तु सूत्रमें एकवचनांत उपकार शब्दकाही उल्लेख कियागया है इसलिये उपकार शब्दको कर्मसाधनभी नहीं मानाजासका इस रीतिसे उपकार शब्दकी भावसाधन और कर्म साधन दोनों प्रकारकी व्युत्पत्तियें बाधित हैं ? (उत्तर) यहांपर उपकार शब्दका सामान्यरूपसे ग्रहण कियागया है इसलिये उसके एकवचनांत ग्रहण करलेनेपर भी कोई दोष नहीं आता है अर्थात् 'साधोः कार्यं तपःश्रुते' वाक्यमें तप करना शास्त्र अध्ययन करना ये दो कार्य साधुके हैं। यहां तप और श्रुतदोनो कार्य माना है इसलिये आपसमें उनका सामानाधिकरण्य सबन्ध है क्योंकि तपश्रुतरूप कार्य का आधार एक है परन्तु कार्य शब्दका एकवचनमें उल्लेख किया गया है और 'तपःश्रुते' शब्दका द्विवचनमें ग्रहण है इसलिये यहांपर भी यह शंका उठती है कि जब आपसमें यहांपर सामानाधिकरण्य संबन्ध है तब जिस प्रकार 'तपःश्रुत' शब्द द्विवचनांत रूपसे कहागया है उसी प्रकार कार्य शब्दभी द्विवचनांतरूपसेही कहना चाहिये, एक वचनांत कार्यका उल्लेख यहां असंगत है। उसका समाधान यहां यह दियागया है कि कार्य शब्दका प्रयोग उपर्युक्त वाक्यमें सामान्यरूपसे किया गया है और यह नियम है कि जिस पदका प्रयोग सामान्यरूपसे किया जाता है और उसका उस समय जो एक वचन, द्विवचन आदि रहता है वही तदवस्थ रहता है पश्चात् यदि उस पदके विशेषण स्वरूपही दोन आदि पद हों और उनके सम्बन्धसे सामान्य रूपसे कहनेवाले पदके वचनके बदलनेकी आवश्यकता पड़े तो भी यहांपर विशेषणके अनुसार वचनका परिवर्तन नहीं होता 'कार्यं तपःश्रुते' यहांपर एक वचनान्त कार्य शब्दका सामान्यरूपसे उपादान कियागया है यद्यपि पीछेसे तप श्रुत शब्द उसका विशेषणहोनेसे विशेषणके अनुसार कार्य शब्दमें वचनका परिवर्तन होना चाहिये अर्थात् एकवचनके स्थानमें द्विवचन होना चाहिये परन्तु सामान्यरूपसे उल्लेख होनेके कारण यहां पर एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीहोता उसीप्रकार उपकार शब्दकाभीसामान्यरूपसे एकवचनमें उल्लेखकियागयाहै इसलिये पीछेसेउसकाउपग्रहविशेषण होनेपर भी उसके अनुसार उपकार शब्दके एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीं होसकता अतःसूत्रमें जो एकवचनरूपमें उपकारशब्द आया यथार्थ होगई। अथवा जिस प्रकार 'उपकरणं उपकारः' इस प्रकार उपकारशब्द भाव साधन मानागया है उसी प्रकार उपग्रहणं उपग्रहः इस प्रकार उपग्रहशब्द भी भाव साधन है इसलिये गतिस्थित्योरुपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहाविति' जो ऊपर षष्ठी तत्पुरुष समास कर आये हैं उसके माननेमें भी कोई बाधा नहीं तथा उपग्रह और उपकार शब्दका भावसाधन मानने पर गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार है और स्थितिका उपग्रहअधर्मद्रव्यकाउपकार है यह शास्त्रानुकूल अर्थ भी निरापद होजाता है इसलिये उपग्रह और उपकार शब्दको कर्मसाधन मानने पर कर्मधारय समास और भावसाधन माननेपर षष्ठी तत्पुरुष समास दोनों ही समासोंका मानना निर्दोष है॥ (प्रश्न पर प्रश्न) यदि 'उपग्रह' शब्द भावसाधन है तो चूंकि भाव पदार्थ एक माना है इसलिये उपग्रहौ के स्थानमें उपग्रह एकवचन होना चाहिये (उत्तर) धर्म और अधर्म द्रव्य भिन्न भिन्न हैं गतिमें उपग्रह करना और स्थितिमें उपग्रह करना भी भिन्नभिन्न हैं। गमनमें उपग्रह करना धर्मद्रव्यका उपकार है और स्थितिमेंउपग्रहकरना अधर्मद्रव्यका उपकारहैइसकेजनानेकोउपग्रहौद्विवचन दिया है जैसे पृथिवी अपने वैशेषिक गमनस्थितिमें सहकारी है वैसेही धर्म अधर्मद्रव्य दोनोंके जीवपुद्गलके गमन और स्थितिमें उपकारी कहलते॥

उपक्रियत इत्युपकार । क पुनरसौ? गत्युपग्रह स्थित्युपग्रहश्च ॥ यद्येवं द्वित्वनिर्देश प्राप्नोति? नैष दोष । सामान्येन व्युत्पादित उपात्तसंख्य शब्दान्तरसम्बधे सत्यपि न पूर्वोपात्तां संख्यां जहाति ॥ यथा-साधो कार्यं तप श्रुते इति ॥

उपक्रियते।इति॥उपकार॥पुनः॥असौ॥कः॥ =उपकार कियाजाता है वा सहायताकी जाती है ऐसा उपकार है । और यह(उपकार)क्या है

गति-उपग्रह॥च॥स्थिति-उपग्रह॥यदि॥एवम्॥ =गमनका उपग्रह तथा स्थितिका उपग्रह है । (प्रश्न)जो ऐसे है अर्थात् गतिकाभी उपग्रह है और स्थितिकाभी उपग्रह है तो (इस सूत्रमें)

द्वित्व-निर्देश॥प्राप्नोति? =दो वचनका निरूपण वा कथन(उपकार शब्दके)प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें जाना था तब'धर्माधर्मयोरुपकारौ' सूत्रके अन्तमें होता ॥

न॥एष॥दोष॥सामान्येन॥व्युत्पादित॥ =(उत्तर)यह दूषण नहीं है । (क्योंकि) सामान्यकरि कहाहुआ

उपात्तसंख्य॥शब्दान्तर-सम्बन्धे॥सति॥अपि॥ =गृहीत संख्यावाला(उपकार शब्द)अन्य शब्द उपग्रहों के साथ सम्बन्ध होनेपर भी

न॥पूर्व-उपात्ताम्॥संख्याम्॥जहाति॥ =पहिले ग्रहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको सामान्यरूपसे ग्रहणकरि एकवचनमें निर्देश कियाहै यद्यपि इस उपकार शब्दका उपग्रह' शब्दसे ऐसे सम्बंध है कि गतिका उपग्रह धर्म,द्रव्यका उपकार और स्थितिका उपग्रह अधर्म द्रव्यका उपकार है तो भी प्रथम ग्रहण कियेहुये एकवचन संख्याको उपकार शब्द नहीं त्यागता है और उपग्रहौ शब्द दोवचनान्तके साथ उपकारौ (दोवचनान्त)ऐसा नहीं होजाता है वरन् उपकार ऐसाही रहता है ॥ ('हा' धातु पर देखो टिप्पणी पृष्ठ ४६)

यथा॥साधो॥कार्यम्॥तप॥श्रुते॥इति॥ =जैसे साधु पुरुषका काम तप करना और शास्त्र पढना ऐसा है अर्थात् वाक्यमें तपःश्रुते द्विवचन है और इसके अनुसार'कार्यम् शब्दके स्थानपर कार्ये द्विवचन होनाचाहियेपरन्तु यहांपर कार्य शब्द सामान्य है और'तपो'कार्यम् श्रुतेकार्यम् ऐसे दो स्थानोंके लिये आयाहै । जैसे सामान्य होनेके हेतुसे (कार्य शब्द) द्विवचन नहीं हुआ वैसेही सूत्रमें 'उपकार' शब्द सामान्य है और यह गतिउपकार और स्थितिउपकार इन दो बातोंका द्योतक है इसलिये सूत्रमेंभी'उपकार'शब्दको सामान्यवचन होनेसे एकवचनमें लाये हैं द्विवचन नहीं किया है॥

धर्म और अधर्मके द्वारा जिनका उपकार कियाजाता है ऐसी गति और स्थिति जीव और पुद्गलोंमें रहैगी अर्थात् उपकारशब्दको भावसाधन माननेपर उसका आधार तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य पड़ेगा और कर्म साधन उपग्रहका आधार जीव और पुद्गल पड़ेंगे इसलिये उपकार और उपग्रह दोनोंकी भिन्न भिन्न पदार्थोंमें प्रवृत्ति होनेसे उन दोनोंका सामानाधिकरण्य नहीं होसकता इसलिये उपकार शब्दकी भावसाधन व्युत्पत्ति तो बन नहीं सकती। यदि कहा जायगा कि 'उपक्रियते इत्युपकारः' इस प्रकार उपकार शब्द कर्म साधन है इसलिये उपयुक्त दोष नहीं होसकता? सो भी ठीक नहीं क्योंकि उपकार शब्द और उपग्रह शब्द दोनोंकी कर्म साधन व्युत्पत्तिके मानने पर दोनोंका सामानाधिकरण्य अर्थात् एक अधिकरण तो हो सकता है परन्तु यह नियम है कि जिनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध रहता है उनके एकवचन द्विवचन आदि वचन भी समान रहते हैं। यदि उपग्रह उपकार दोनोंका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध माना जायगा तो जिस प्रकार द्विवचनांत उपग्रह पदका उल्लेख कियागया है उसी प्रकार द्विवचनांत उपकार शब्दका भी उल्लेख करना चाहिये परन्तु सूत्रमें एकवचनांत उपकार शब्दका ही उल्लेख कियागया है इसलिये उपकार शब्दको कर्मसाधन भी नहीं माना जासकता इस रीतिसे उपकार शब्दकी भावसाधन और कर्म साधन दोनों प्रकारकी व्युत्पत्तियें बाधित हैं? (उत्तर) यहांपर उपकार शब्दका सामान्यरूपसे ग्रहण कियागया है इसलिये उसके एकवचनांत ग्रहण करनेपर भी कोई दोष नहीं आता है अर्थात् 'साधोः कार्यं तपःश्रुते' वाक्यमें तप करना शास्त्र अध्ययन करना ये दो कार्य साधुके हैं। यहां तप और शास्त्रोंको कार्य माना है इसलिये आपसमें उनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है क्योंकि तपश्रुतरूप कार्य का आधार एक है परन्तु कार्य शब्दका एकवचनमें उल्लेख किया गया है और 'तपःश्रुते' शब्दका द्विवचनमें ग्रहण है इसलिये यहांपर भी यह शंका उठती है कि जब आपसमें यहांपर सामानाधिकरण्य संबन्ध है तब जिस प्रकार 'तपःश्रुत' शब्द द्विवचनांत रूपसे कहागया है उसी प्रकार कार्य शब्दको द्विवचनांतरूपसेही कहना चाहिये, एक वचनांत कार्यका उल्लेख यहां असंगत है। उसका समाधान यहां यह दियागया है कि कार्य शब्दका ग्रहण उपर्युक्त वाक्यमें सामान्यरूपसे किया गया है और यह नियम है कि जिस पदका प्रयोग सामान्यरूपसे किया जाता है और उसका उस समय जो एक वचन, द्विवचन आदि रहता है वही तदवस्थ रहता है पश्चात् यदि उस पदके विशेषण स्वरूपही दोय आदि पद हों और उनके सम्बन्धसे सामान्य रूपसे कहेगये पदके वचनके पलटनेकी आवश्यकता पड़े तो भी वहांपर विशेषणके अनुसार वचनका परिवर्तन नहीं होता 'कार्यं तपःश्रुते' यहांपर एक वचनान्त कार्य शब्दका सामान्यरूपसे उपादान कियागया है यद्यपि पीछेसे तप श्रुत शब्द उसका विशेषण होनेसे विशेषणके अनुसार कार्य शब्दमें वचनका परिवर्तन होना चाहिये अर्थात् एकवचनके स्थानमें द्विवचन होना चाहिये परन्तु सामान्यरूपसे ग्रहण होनेके कारण यहां पर एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीं होता उसीप्रकार उपकार शब्दका भी सामान्यरूपसे एकवचनमें ग्रहण कियागया है इसलिये पीछेसे उसका उपग्रह विशेषण होनेपर भी उसके अनुसार उपकार शब्दमें एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीं होसकता अतः सूत्रमें जो एकवचनरूपमें उपकारशब्द आया सर्वथा ठीक है। अथवा जिस प्रकार 'उपकरणं उपकारः' इस प्रकार उपकारशब्द भाव साधन मानागया है उसी प्रकार 'उपग्रहणं उपग्रहः' इस प्रकार उपग्रहशब्द भी भाव साधन है इसलिये 'गतिस्थित्योरुपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहाविति' जो ऊपर षष्ठी तत्पुरुष समास कह आये हैं उसके माननेमें भी कोई बाधा नहीं तथा उपग्रह और उपकार शब्दका भावसाधन मानने पर गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार है और स्थितिका उपग्रह अधर्मद्रव्यका उपकार है यह शास्त्रानुकूल अर्थ भी निरापद होजाता है इसलिये उपग्रह और उपकार शब्दको कर्मसाधन मानने पर कर्मधारय समास और भावसाधन माननेपर षष्ठी तत्पुरुष समास दोनों ही समासोंका मानना निर्दोष है॥ (प्रश्न पर प्रश्न) यदि 'उपग्रह' शब्द भावसाधन है तो चूंकि भाव पदार्थ एक माना है इसलिये उपग्रहौ के स्थानमें उपग्रह एकवचन होना चाहिये (उत्तर) धर्म और अधर्म द्रव्यें भिन्न भिन्न हैं गतिमें उपग्रह करना और स्थितिमें उपग्रह करना भी भिन्नभिन्न हैं। गमनमें उपग्रह करना धर्मद्रव्यका उपकार है और स्थितिमें उपग्रह करना अधर्मद्रव्यका उपकार है इस कैलानेको उपग्रहौ द्विवचन है। नो जैसे पृथिवी, जल वैजनादिके गमनस्थितिमें उपकारी हैं वैसेही धर्मका अधर्मद्रव्य दोनोंमें कोई एक गमन और स्थितिमें उपकारी नहीं॥

निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनम् । धर्माधर्मयोर्गतिस्थित्योश्च यथासंख्यं भवति, एवं जीवपुद्गलाना यथासंख्यं प्राप्नोति धर्मस्योपकारो जीवानां गति अधर्मस्योपकार पुद्गलानां स्थितिरिति । तन्निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनं क्रियते ॥ आह धर्माधर्मयोर्य उपकार स आकाशस्य युक्त सर्वगतत्वादिति चेत्—तदयुक्त, तस्यान्योपकारसद्भावात् सर्वेषा धर्मादीना द्रव्याणामवगाहन यत्प्रयोजनम् । एकस्यानेकप्रयोजनकल्पनाया लोकालोकविभागाभाव ॥

निवृत्ति-अर्थम् उपग्रह-वचनम् धर्म	=निषेधके लिये उपग्रहका कथन (इस सूत्रमें) है धर्मद्रव्य
अधर्मयोः गति-स्थित्योः च यथासंख्यम् भवति	=अधर्मद्रव्यमें और गतिस्थितिमें यथासंख्य सम्बन्ध होजाता है अर्थात् धर्मद्रव्य का गमनसे सम्बन्ध होजाता है और अधर्मद्रव्यका स्थितिसे सम्बन्ध होजाता है
एवम् जीव-पुद्गलानाम् यथासंख्यम् प्राप्नोति	=इस प्रकार जीवों और पुद्गलोंका(भी) यथासंख्य(क्रम)प्राप्त होता है
धर्मस्य उपकारः जीवानाम् गतिः अधर्मस्य	=(तब)धर्मद्रव्यका उपकार जीवोंका गमन अधर्मद्रव्यका
उपकारः पुद्गलानाम् स्थितिः इति तत् निवृत्ति-अर्थम्	=उपकार पुद्गलोंकी स्थिति ऐसा अर्थ होजाता है, उसके निषेधके लिये (इस सूत्रमें)
उपग्रह-वचनम् क्रियते आह धर्म अधर्मयोः यः	=उपग्रह वचन किया है (शिष्य) कहता है कि धर्म अधर्म द्रव्योंका जो
उपकारः सः आकाशस्य युक्तः सर्व-गतत्वात्	=उपकार है सो(उपकार)आकाशके युक्त है क्योंकि (आकाश) सर्वत्र व्यापी है
इति चेत् तत् अयुक्तम् तस्य अन्य-उपकार	ऐसी शंका है(उत्तर)सो ठीक नहीं है क्योंकि तिस (आकाशके) दूसरे उपकारकी
सद्भावात्, सर्वेषाम् धर्मादीनाम् द्रव्याणाम्	=विद्यमानता है (अर्थात्) समस्त धर्मादिक द्रव्योंको
अवगाहनम् तत् प्रयोजनम्	=स्थान दान देना या अवकाश दान देना उस(आकाश)का प्रयोजन है
एकस्य अनेक प्रयोजन-कल्पनायाम्	=एक (आकाश)के अनेक प्रयोजन माननेमें
लोक-अलोक विभाग अभावः	=लोक अलोकके विभागका अभाव होता है। भावार्थ—यह है कि इस प्रश्नके होनेपर कि गमन और ठहरावका उपकार धर्म अधर्म द्रव्योंका न होना चाहिये

किन्तु आकाश जो सर्वत्र व्यापक है गतिस्थितिका उपकारी है उत्तर में आचार्य्य कहते हैं कि आकाशका असाधारण गुण द्रव्योंको स्थान दान देनेका है यदि उसका कोई दूसरा उपकार कल्पना करते हैं तो लोक अलोक का विभाग

एतदुक्तं भवति—गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गत्युपग्रहे कर्तव्ये धर्मास्तिकायः साधारणाश्रयो जलवन्मत्स्यगमने ॥ तथा स्थितिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां स्थित्युपग्रहे कर्तव्ये अधर्मास्तिकायः साधारणाश्रयः पृथिवीधातुरिवाश्वादिस्थिताविति ॥ ननु च उपग्रहवचनमनर्थकमुपकार इत्येव सिद्धत्वात् । गतिस्थिती धर्माधर्मयोरुपकार इति ॥ नैष दोषः याथासंख्य-

एतत्। उक्तम्। भवति। गतिपरिणामिनाम्।	=यह कथन या अर्थ होता है कि गमनमें परिणमन होनेवाले, गमनकरनेवाले
जीवपुद्गलानाम्। गति उपग्रहे। कर्तव्ये। धर्म	=जीव पुद्गलोंके गमनके उपकार करनेमें धर्म
	(जो जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-पांच अस्तिकायोंमेंसे एक है)
अस्तिकायः। साधारण-आश्रयः।	=बहुत प्रदेशवाली या बहु प्रदेशीद्रव्य(=अस्तिकाय)है साधारण आधार है
जलवत् मत्स्य-गमने। तथा स्थिति-परिणामिनाम्।	=जैसे जल मछलीके चलनेमें है वैसेही =तथा)ठहरनेमें परिणमन होनेवाले
जीव-पुद्गलानाम्। स्थिति-उपग्रहे। कर्तव्ये। (१ अधर्म	=जीव पुद्गलोंके स्थितिके कारण कर्तव्यमें अधर्मद्रव्य
	(जो जीव-पुद्गल-धर्म अधर्म-आकाश पांच अस्तिकायोंमें से एक है)
अस्तिकायः। साधारण आश्रयः।	=अस्तिकाय अर्थात् बहुप्रदेशी द्रव्य है साधारण या सामान्य आश्रय है
पृथिवी (२) धातुः इव अश्वादिस्थितौ इति ॥	=जैसा(=इव)पृथिवी आधार घोड़ा आदिकके ठहरनेमें है ॥
ननु च उपग्रह-वचनम्। अनर्थकम्।	=पुनि प्रश्न (इस सूत्रमें)उपग्रह शब्द)का कहना(=वचन)निष्प्रयोजन है
उपकारः एवम् सिद्धत्वात्।	=क्योंकि (धर्म-अधर्मका) उपकार या सहायता सूत्रकी रचनासे सिद्ध होजाती है कि
गतिस्थिती। धर्म अधर्मयोः। उपकारः। इति।	=गति-स्थिति धर्म-अधर्मका उपकार है। ऐसा(अर्थ) हुआ ॥
न एषः। दोषः। याथासंख्य-	=(उत्तर)यह दोष नहीं है(क्योंकि)यथासंख्यपनाके (=पहिलेको पहला दूसरेको दूसरा)

(१) (अश्वादि स्थिती, इमि आधारत्वम् इति अर्थे =घोड़ा आदिकके ठहरनेमें पृथिवीके आधारके समान है ऐसा तात्पर्य है (२.धत्ते इति धातुः २।= जो (अपने ऊपर) रखता है या धारण करता है ऐसा धातु है आधार ऐसा अभिप्राय (धातु शब्दका) है। अर्थात् जो धारण करता है या धारण करने वाला यह अर्थ "पृथिवीधातुरिवाश्वादि" इसमें जो 'धातु' शब्द आया है उसका है। (३) [illegible]

अनुपलब्धेर्न तौ स्त खरविषाणवदिति चेन्न—सर्वप्रवाद्यविप्रतिपत्ते। सर्वे हि प्रवादिन प्रत्यक्षाप्रत्यक्षानर्थानभिगाच्छन्ति ॥ अस्मान्प्रतिहेतोरसिद्धेश्च।

अनुपलब्धेः॥ तौ॥ स्तः खरविषाणवत्॥ न॥ स्त॥ इति॥ चेत्॥	=क्या आंखकरि न दीखनेसे धर्म-अधर्म)ये दोनों(द्रव्यें)गधाके सींगके सदृश नहीं है =ऐसी शंका है अर्थात् जैसे संसारमें गधा(वा शश खरहा)के सींगोंकी कल्पना है विद्यमानता नहीं है क्योंकि किसीने अपनी आंखोंसे नहीं देखे हैं वैसही धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य केवल कल्पनामात्रमें वास्तविक वा यथार्थमें उनका कोई अस्तित्व नहीं है ऐसी शंका है ॥
न॥	=(उत्तर) (ऐसा संदेह कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य नेत्रोंसे न दीखनेसे गधाके सींगके तुल्य कल्पित द्रव्य हैं) नहीं (होना चाहिये)
सर्व (२)प्रवादि अविप्रतिपत्ते ॥	=क्योंकि(इसके अस्तित्वमें)सब प्रतिवादियोंको (हमारे साथ) अविरोध (=विवाद नहीं) है
सर्वे॥ हि॥ (२)प्रवादिनः॥ प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षान्॥	=समस्त ही (=हि) अन्य मतावलम्बी प्रत्यक्ष और परोक्ष
अर्थान्॥ अभिगाच्छन्ति॥ अस्मान्॥ प्रति॥	=पदार्थोंको मानते हैं हम प्रति अर्थात् हमारे ऊपर
हेतोः॥ असिद्धेः॥ च॥	=(तुम्हारे इस) साधनकी (कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य अनुपलब्ध हैं) सिद्ध भी नहीं है ॥ भावार्थ यह है कि हम स्याद्वादीनके ऊपर तुम्हारा यह साधन कि धर्म, अधर्मद्रव्यें अनुपलब्ध हैं उनका अस्तित्व गधेके सींग सदृश है निम्नलिखित कारणसे लागू नहीं हैं

(१) संसारमें चार वस्तुयें (क) खर अथवा शशविषाण (ख) बांझ स्त्रीका पुत्र (ग) मृगतृष्णा (घ) आकाशका फूल ये विद्यमान नहीं हैं। जब किसी वस्तुके अभावको प्रगट करना होता है तब इन चार पदार्थोंसे प्राय एकका दोका नाम लेते हैं। ये चारों वस्तुयें निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट हैं

एष वन्ध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखरः। मृगतृष्णाम्भसि स्नातः शशशृङ्गधनुर्धरः ॥ १ ॥

एष ॥ वन्ध्यासुतः ॥ याति ॥ (एक)) ख पुष्प-कृत शेखरः ॥ =यह बांझ स्त्रीका पुत्र जाता है। यह आकाशके फूलोंकी बनाई हुई शिखा वा चोटी है (एक) मृगतृष्णा अम्भसि, ॥ स्नातः ॥ (एक) शशशृङ्ग धनुर्धरः ॥ =यह मृगतृष्णाके नीर(धूपमें जलभ्रान्ति)में नहाया हुआ है यह खरके सींगका धनुषकाधारी है

(२) प्रथम बारकी छपी हुई सर्वार्थसिद्धिमें 'प्रतिवादिन्' शब्द इन दो स्थानोंपर है परन्तु द्वितीय संस्करणमें और तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें 'प्रवादिन' शब्दका दोनों स्थानोंमें प्रयोग किया गया है। दोनों शब्दोंका लगभग एकही अर्थ है हमने प्रवादिन्का प्रयोग किया है क्योंकि ये पाठ बहुतसी प्रतियोंमें पाये जाते हैं ॥

भूमिजलादीन्येव तत्प्रयोजनसमर्थानि नार्थो धर्माधर्माभ्यामिति चेन्न—साधारणाश्रय इति विशिष्योक्तत्वात् । अनेककारणसाध्यत्वाच्चैकस्य कार्यस्य ॥ तुल्यबलवत्त्वात्तयोर्गतिस्थितिप्रतिबन्ध इति चेन्न—अप्रेरकत्वात् ॥

नहीं होसकता है क्योंकि ठहराने और गमन करने में सहायक होना यदि ये कार्य आकाशके माने जावेंगे तो आकाश तो अलोकाकाशमें भी है तो वहांपरभी जीवपुद्गल गति और स्थिति करसकेंगे अतः लोक अलोकके विभागका लोप होजावेगा ॥

१८

भूमि जलादीनि ॥ एव तत् प्रयोजन समर्थानि ॥	= भूमि जलादिक ही उस (गति स्थिति) के प्रयोजनके लिये समर्थ हैं तो
न अर्थः ॥ धर्म-अधर्माभ्याम् ॥ इति चेत् न	= धर्म, अधर्म द्रव्योंसे प्रयोजन नहीं ऐसी शंका है । यह शंका नहीं होनी चाहिये
साधारण	= (धर्म अधर्म द्रव्यें सब जीव पुद्गलोंको एक कालमें गतिस्थितिका) साधारण
आश्रयः ॥ इति	= आश्रय हैं (क्योंकि किसी किसी द्रव्यके एक एक प्रयोजनके सम्बन्धमें जल पृथिवी आदि गमन स्थिति आदि उपकार करनेमें)
विशिष्य उक्तत्वात् ॥ च एकस्य ॥ कार्यस्य ॥ अनेक	= विशेष आश्रयरूप कहे जाते हैं । और (=च) एक कार्यको अनेक
कारण-साध्यत्वात् ॥ ,	= कारण सिद्धि करने योग्य या साधनीय हैं अर्थात् एक कार्यको अनेक कारण साधते हैं सो यहां स्थितिमें पृथिवी भी कारण है और अधर्मद्रव्य भी कारण है
तुल्य-बलवत्त्वात् ॥ तयोः ॥ गति-स्थिति प्रतिबन्धः ॥	= (धर्म अधर्मद्रव्यें) समान बलवान होनेसे तिन दोनोंमें गतिस्थितिका विरोध होगा
इति चेत्	= ऐसी शंका है अर्थात् जब धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनों समान बलवाले हैं सो जिस काल धर्मद्रव्य जीव पुद्गलोंको गमन कराती होगी उसीसमय अधर्मद्रव्य स्थिति कराती होगी तब गमन स्थिति दोनोंकी रोक होती होगी ॥
न	= सो नहीं ।(धर्मद्रव्य जीवपुद्गलोंके गतिके निमित्त व अधर्मद्रव्य उनकी स्थितिके हैं सो)
अप्रेरकत्वात् ॥	= अप्रेरक या बलाधान मात्रसे है अर्थात् यदि जीव पुद्गल चलें तो धर्मद्रव्य उदासीनतासे चलानेमें निमित्त होती है और यदि ठहरें तो ऐसेही अधर्म द्रव्य स्थितिमें पर्ची प्रेरणा न करें कि अमुक जीव पुद्गल चलें अमुक ठहर रहें ॥

अनुपलब्धेर्न तौ स्तः खरविषाणवदिति चेन्न—सर्वप्रवाद्यविप्रतिपत्तेः । सर्वे हि प्रवादिनः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षानर्थानभिवाञ्छन्ति ॥ अस्मान्प्रतिहेतोरसिद्धेश्च ।

अनुपलब्धेः॥ तौ॥ खरविषाणवत्॥ न॥ स्तः॥ =क्या आंखसे न दीखनेसे धर्म-अधर्म) ये दोनों (द्रव्य) गधाके सींगके सदृश नहीं हैं

इति॥ चेत्॥ =एसी शंका है अर्थात् जैसे संसारमें गधा (वा शशा-खरहा)के सींगोंकी कल्पना है विद्यमानता नहीं है क्योंकि किसीने अपनी आंखोंसे नहीं देखे हैं वैसेही धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य केवल कल्पनामात्र हैं वास्तविक वा यथार्थमें उनका कोई अस्तित्व नहीं है एसी शंका है ॥

न॥ =(उत्तर) (एसा संदेह कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य नेत्रोंसे न दीखनेसे गधाके सींगके तुल्य कल्पित द्रव्य हैं) नहीं (होना चाहिये)

सर्व[2] प्रवादि अविप्रतिपत्तेः॥ =क्योंकि (ऐसे अस्तित्वमें) सब प्रतिवादियोंको (हमारे साथ) अविरोध (=विवाद नहीं) है

सर्वे॥ हि॥ प्रवादिनः॥ प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षान्॥ =समस्त ही (=हि) अन्य मतावलम्बी प्रत्यक्ष और परोक्ष

अर्थान्॥ अभिवाञ्छन्ति॥ अस्मान्॥ प्रति॥ =पदार्थोंको मानते हैं हम प्रति अर्थात् हमारे ऊपर

हेतोः॥ असिद्धेः॥ च॥ =(तुम्हारे इस) साधनकी (कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य अनुपलब्ध हैं) सिद्ध भी नहीं है ॥ भावार्थ यह है कि हम स्याद्वादीनके ऊपर तुम्हारा यह साधन कि धर्म, अधर्मद्रव्य अनुपलब्ध हैं उनका अस्तित्व गधेके सींग सदृश है निम्नलिखित कारणसे लागू नहीं हैं

(१) संसारमें चार वस्तुयें (क) खर अथवा शशविषाण (ख) बांझ स्त्रीका पुत्र (ग) मृगतृष्णा (घ) आकाशका फूल ये विद्यमान नहीं हैं । जब किसी वस्तुके अभावको प्रगट करना होता है तब इन चार पदार्थोंसे प्रायः एक वा दोका नाम लेते हैं । ये चारों वस्तुयें निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट हैं

"एष वन्ध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखरः । मृगतृष्णाम्भसि स्नातः शशशृङ्गधनुर्धरः ॥ १ ॥

एष ॥ वन्ध्यासुत ॥ याति ॥ (एषः) ॥ ख पुष्प-कृत शेखर ॥ =यह बांझ स्त्रीका पुत्र जाता है । यह आकाशके फूलोंकी बनाई हुई शिखा वा चोटी है (एष) मृगतृष्णा अम्भसि ॥ स्नातः ॥ (एषः) शशशृङ्ग धनुर्धरः ॥ =यह मृगतृष्णाके नीर (धूपमें जलभ्रान्ति) में न्हाया हुआ है यह खरके सींगका धनुषधारी है

(२) प्रथम बारकी छपी हुई सर्वार्थसिद्धिमें 'प्रतिवादिन्' शब्द इन दो स्थानोंपर है परन्तु द्वितीय संस्करणमें और तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें 'प्रवादिन्' शब्दका दोनों स्थानोंमें प्रयोग किया गया है । दोनों शब्दोंका लगभग एकही अर्थ है हमने प्रवादिन्का प्रयोग किया है क्योंकि ये पाठ बहुतसी प्रतियोंमें पाये जाते हैं ॥

सर्वज्ञेन निरतिशयप्रत्यक्षज्ञानचक्षुषा धर्मादय सर्वे उपलभ्यन्ते। तदुपदेशाच्च श्रुतज्ञानिभिरपि॥ अत्राह यद्यतीन्द्रिययोर्धर्माधर्मयोरुपकारसम्बन्धेनास्तित्वमवधियते, तदनन्तरमुद्दिष्टस्य नमसोऽतीन्द्रियस्याधिगमे क उपकार इत्युच्यते—

॥ आकाशस्यवगाह ॥ १८ ॥

सर्वज्ञेन॥ निरतिशय प्रत्यक्षज्ञान-चक्षुषा॥	=सर्वज्ञके परमोत्कृष्ट (=निरतिशय) प्रत्यक्ष(केवल)ज्ञानरूपी नेत्रेन्द्रियकरि
धर्म आदय॥ सर्वे॥ उपलभ्यन्ते। च॰ तद्	=धर्मादिक समस्त (द्रव्यें) जानी गई हैं और उस (सर्वज्ञ) के
उपदेशात्॥ श्रुतज्ञानिभिः॥ अपि॰, अत्र॰आह।	=उपदेशसे श्रुतज्ञानियोंकरिभी (जानी गई) हैं। यहां पूछता है कि
यदि॰अतीन्द्रिययोः॥ धर्म-अधर्मयोः॥ उपकार	=यदि धर्म अधर्मद्रव्योंकी (जो इन्द्रियोंसे नहीं जानेजासकते हैं) उपकारके
सम्बन्धेन॥ अस्तित्वम्॥ अवधियते। तदनन्तरम्॥	=संयोगसे विद्यमानता निश्चय कीजाती है तो उन(धर्म अधर्म)के अत्यन्त समीप
उद्दिष्टस्य॥ नभसः॥ अतीन्द्रियस्य॥ अधिगमे॥	=कथित इन्द्रिय अगोचर आकाशके जानने में
कः॥ उपकार॥ इति॰ उच्यते।	=क्या उपकार वा सहायता है इस हेतुसे(=इति)(उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

सूत्रम्—[1] [2] आकाशस्यावगाह ॥१८॥ = (जीवानाम्-अजीवानाम् च)आकाशस्य(उपकार)अवगाह

सूत्रा —जीवानाम्॥ च अजीवानाम्॥ आकाशस्य॥	=जीवोंको और अजीवोंको आकाश द्रव्यका
उपकार॥ अवगाह॥	=उपकार, सहारा, अथवा सहायता, अवकाशदान देना वा स्थानदान देना है अर्थात् समस्त जीव और अचेतन द्रव्योंको स्थानदान देना आकाशका उपकार है

(१) "अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः" इस प्रथम सूत्रमें धर्मअधर्मके समीपही आकाश द्रव्यका कथन है इसलिये अग्रिम सूत्रमें आकाशका उपकार कहते हैं।

(२) "इति हेतु प्रकरण प्रकाशादि-समाप्तिषु" अमरकोश नानार्थ वर्ग श्लोक २४५ 'इति' यह शब्द नाम हेतु प्रकरण-प्रकाश निदर्शन समाप्ति इन्हों का है यहां पर हेतु अथवा कारणके अर्थमें लिया है इससे 'इति'का अनुवाद 'इस हेतुसे' ऐसा किया गया है।

(३)इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। "अजीवानाम्" शब्दका अध्याहार कियागया है। 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पहले सूत्रसे लीगई है और 'च' शब्दकी अगले सूत्रसे लीगई है। उपकार शब्दकी सूत्रसे अनुवृत्ति है।

उपकार इत्यनुवर्तते ॥ जीवपुद्गलादीनामवगाहिनामवकाशदानमवगाह आकाशस्योपकारो वेदितव्य ॥ आह जीवपुद्गलाना क्रियावतामवगाहिनामवकाशदानं युक्तम् । धर्मास्तिकायादय पुनर्निष्क्रिया नित्यसम्बन्धास्तेषां कथमवगाह इति चेन्न–उपचारतस्तत्सिद्धे । यथा गमनाभावेऽपि सर्वगतमाकाशमित्युच्यते सर्वत्र सद्भावात् एवं धर्माधर्मावपि अवगाहक्रियाभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदर्शनादवगाहिनावित्युपचर्येते ॥ आह यद्यवकाशदानमस्य स्वभाव वज्रादिभिर्लोष्टादीनां-

उपकार: इति अनुवर्तते। अवगाहिनाम्। =(इस सूत्रमें) उपकार (शब्द सत्रहवां सूत्रसे) आता है रहनेवाले या अवगाही
जीव-पुद्गलादीनाम्। अवकाशदानम्। अवगाह: =जीव पुद्गलों, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य कालद्रव्यको स्थानदान देना है सो अवगाह
आकाशस्य। उपकार: वेदितव्य:। आह। जीव-पुद्गलानां =आकाशद्रव्यका उपकार जानना चाहिये। पूछता है कि जीव पुद्गल
क्रियावतां। अवगाहिनां। अवकाशदानम्। युक्तम्। =क्रियावाले और अवगाह करनेवालोंके अवकाशदान देना (तो) ठीक है
पुन: धर्मास्तिकाय आदय:। निष्क्रिया:। नित्यसम्बन्धा:। =किन्तु(=पुन:)धर्मास्तिकायआदिक अर्थात् धर्म अधर्म और आकाश जो क्रियारहित और आपसमें नित्य सम्बन्धवाले हैं अथवा जो क्रियारहित तथा नित्य सम्बन्धरूप है
तेषाम्। कथम् अवगाह:। इति चेत् न =तिनको कैसे आकाशका स्थानदान है ऐसी शंका है। यह शंका नहीं होनी चाहिये
उपचारत: तत्-सिद्धे:। यथा गमन-अभावे। अपि =क्योंकि उपचारसे या कल्पनासे(अवकाशदानकी)सिद्धि है जैसे गतिके अभाव होनेपर भी
सर्वगतम्। आकाशम्। इति-उच्यते। सर्वत्र सद्भावात्। =सर्वगत आकाश है ऐसा कहा गया है क्योंकि आकाशका सर्व स्थानमें अस्तित्व है अर्थात् आकाश है सो सदा गमनरहित है और कहींभी उसका हलनचलन आना जाना नहीं होसकता है निष्क्रिय है तौभी उसको सर्वगत कल्पनासे कहते हैं।
एवम् धर्म अधर्मौ। अपि अवगाह-क्रिया अभावे। =इसी प्रकार धर्म अधर्म दोनोंभी अवगाहरूप क्रियाके न होनेपर
अपि सर्वत्र-व्याप्ति-दर्शनात्। अवगाहिनौ। इति =भी(लोकाकाशके) सर्वस्थानमें व्यापकताके उपलम्भसे अवगाह करनेवाली
उपचर्यते। आह। यदि अवकाशदानम्। =कल्पी जाती है या मानी जाती है। पूछता है कि जो स्थान दान देना
अस्य। स्वभाव:। वज्रादिभि:। लोष्ट-आदीनाम्। =इस(आकाश)का गुण और लक्षण होता तो वज्रादिसे ढेला या गोलादिका

(१) उपचर्यते = उपचर्य + इत = चर धातुसे [illegible] उपसर्ग लगाकर कर्मविप्रधान अन्यपुरुष द्विवचन वर्तमान क्रियाका 'यत' प्रत्यय लगाकर बनाया है
( ) आदय 'यह शब्द दोसे अधिक संख्याका बोधक है और कुछ ग्रन्थोंमें इस अध्यायके सातवाँ सूत्रके अनुकूल धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाश [illegible]

भित्यादिभिर्गवादीनां च व्याघातो न प्राप्नोति । दृश्यते च व्याघात । तस्मादस्यावकाशदानं हीयते इति ॥ नैष दोष । वज्रलोष्टादीनां स्थूलानां परस्परव्याघात इति नास्यावकाशदानसामर्थ्यं हीयते- तत्रावगाहिनामेव व्याघातात् । वज्रादय पुन स्थूलत्वात्परस्पर प्रत्यवकाशदान न कुर्वन्तीति नासावाकाशदोष । ये खलु पुद्गला सूक्ष्मास्ते परस्पर प्रत्यवकाशदान कुर्वन्ति ॥ यद्येवं नेदमा- काशस्यासाधारण लक्षणमितरेषामपि तत्सद्भावादिति ॥ तन्न । सर्वपदार्थानां साधारणावगाहनहेतु- त्वमस्यासाधारण लक्षणमिति नास्ति दोष ॥

भित्ति आदिभि गो-आदीनां च व्याघात न प्राप्नोति	=और(=च)भीत आदिकरि गऊ आदिका रुकाव नहीं प्राप्त होता है
दृश्यते च व्याघात तस्मात् अस्य	=और(इत्यादिकतथागऊआदिका)रोकानानादेखाजाताहैतिसकारणसेइसआकाशक
अवकाशदानं हीयते न एष दोष	=स्थानदान देना चलाजाता है अथवा बाधा जाता है । यह दूषण नहीं है
वज्र-लोष्ट आदीनाम् स्थूलानां परस्पर-व्याघात	=वज्र ढेलादिक स्थूल अथवा मोटे (पदार्थ) तिनका आपसमें रुकाव है
इति न अस्य अवकाशदान सामर्थ्यम् हीयते	=इस (आकाश)की अवकाशदानकी शक्ति नहीं बाधी जाती है
तत्र अवगाहिनाम् एव व्याघातात् पुन वज्र	=क्योंकितहाँ(आकाशमें अवगाह करनेवालोंकेही(परस्पर)व्याघात है और वज्र
आदय स्थूलत्वात् परस्पर प्रति अवकाश-	=आदिक स्थूल होनेसे एक दूसरेको (=प्रति) स्थान
दानम् न कुर्वन्ति इति न असौ	=दान नहीं करते हैं । न यह(अर्थात् स्थूल पदार्थोंका एक दूसरेसे रुकना)
आकाश-दोष ये खलु पुद्गला सूक्ष्मा ते	=आकाशका दूषण है । निश्चयसे जे सूक्ष्म पुद्गल हैं । ते
परस्पर प्रति अवकाशदानं कुर्वन्ति, यदि एवम्	=एक दूसरको (=प्रति) अवकाशदान करते हैं । (प्रश्न) जो इस प्रकार है (अर्थात् जो सूक्ष्म पुद्गल आपसमें अवकाशदान करते हैं । तो)
न इदम् आकाशस्य असाधारणम् लक्षणम्	=यह (अवकाशदान) आकाशका असाधारण स्वभाव नहीं है
इतरेषाम् अपि तत्-सद्भावात् इति	=क्योंकि दूसरोंकेभी उस(अवकाशदानकी) विद्यमानता अथवा अस्तित्व है
तत् न सर्वपदार्थानाम् साधारण-अवगाहन	=(उत्तर)सो =तन्) नहीं है क्योंकि सब पदार्थोंके साधारण(युगपत्)अवकाशदानका
हेतुत्वम् अस्य असाधारणम् लक्षणम्	=कारण होना इस आकाशका अनूठा या अपूर्व स्वभाव है —
	—(और ऐसा) उपयुक्त दूषण नहीं है आशय यह है कि शिष्यके इसप्रश्न पर कि

मर्यादि सिद्धि

१२

अलोकाकाशे तद्भावादभाव इति चेन्न-स्वभावापरित्यागात् ॥

उक्त आकाशस्योपकार । अथ तदन्तरोद्दिष्टाना पुद्गलाना क उपकार इत्यतोच्यते—

॥ शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

जो सूक्ष्म पदार्थ आपसमें अवकाशदान देते हैं तो आकाशका अवकाशदान देना कोई असाधारण लक्षण(यह स्वभाव या गुण जो किसी दूसरेमें न हो) न ठहरा इसके उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि आकाश सर्व पदार्थोंको एकही कालमें अवकाशदान देता है कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिसको आकाश स्थान दान न देता हो इससे आकाशका यह अवकाशदान देना असाधारण लक्षण है और सूक्ष्म पदार्थमें अवकाशदान देनेका अपूर्व अथवा असाधारण लक्षण इस हेतुसे नहीं है कि व(सूक्ष्मपदार्थ)आपसमें एक दूसरेको अवकाशदान देते हैं सर्व पदार्थोंको एकही कालमें स्थानदान नहीं देसकते हैं

अलोकाकाशे॰। तद् अभावात्॰।	=अलोकाकाशमें उन (अवगाह करनेवालों)के विद्यमान न होनेसे
अभावः॰। इति॰चेत्॰ ; न॰	=(अवकाशदानका) अभाव है ऐसी शंका है। (उत्तर) (ऐसी शंका) नहीं होनी चाहिये
स्वभाव अपरित्यागात्॰ ;	=क्योंकि (कोईभी पदार्थ) स्वभाव नहीं छोड़ता है अर्थात् आकाशमें अवगाहन (=अवकाशदान देनेका) की शक्ति और स्वभाव है सो चाहे अवगाह करने वाले उसमें हों या न हों। (जैसे अलोकाकाशमें अवगाह करनेवाले नहीं हैं)तोभी वह पदार्थ(अलोकाकाश) अपना स्वभाव नहीं त्यागता है
उक्तः॰। आकाशस्य॰। उपकारः॰। अथ॰तदन्तर	=आकाशका उपकार कहागया अब उस (आकाश)के अत्यन्त समीप वा लगताही
उद्दिष्टानाम्॰। पुद्गलानाम्॰।	=वर्णित पुद्गलोंका (देखो प्रथम सूत्रमें आकाश शब्दके पश्चात् "पुद्गलानां" शब्द)
कः॰। उपकारः॰। इति॰अतः॰उच्यते।	=क्या उपकार है इस कारण (=इति) यहां (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

[१]सूत्रम्— शरीरवाङ्मन प्राणापाना पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

= शरीर-वाङ्-मनस्-प्राण-अपाना (जीवानाम्)पुद्गलानाम् (उपकार)

(१)दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है। हमारे यहां कहीं २ पर 'पुद्गलानाम्के स्थानमें पुद्गलानां'पाठहै वह बहुमतमें अशुद्ध है इस सूत्रमें 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति पहलेसे सूत्रमें होगई है। अथवा यों समझना कि "जीवानाम्" शब्दका अध्याहार किया गया है।

भित्यादिभिर्गवादीनां च व्याघातो न प्राप्नोति । दृश्यते च व्याघात । तस्मादस्यावकाशदानं हीयते इति ॥ नैष दोष । वज्रलोष्टादीनां स्थूलानां परस्परव्याघात इति नास्यावकाशदानसामर्थ्यं हीयते- तत्रावगाहिनामेव व्याघातात् । वज्रादय पुन स्थूलत्वात्परस्पर प्रत्यवकाशदानं न कुर्वन्तीति नासावाकाशदोष । ये खलु पुद्गला सूक्ष्मास्ते परस्पर प्रत्यवकाशदानं कुर्वन्ति ॥ यद्येवं नेदमाकाशस्यासाधारणं लक्षणमितरेषामपि तत्सद्भावादिति ॥ तन्न । सर्वपदार्थानां साधारणावगाहनहेतुत्वमस्यासाधारणं लक्षणमिति नास्ति दोष ॥

भित्ति आदिभिः गो आदीनां न व्याघात न प्राप्नोति	=और(=च) भीत आदिकरि गऊ आदिका रुकाव नहीं प्राप्त होता है
दृश्यते च व्याघातः तस्मात् अस्य	=और(उल्लङ्घितपणा गऊ आदिका) रोकाजाना देखा जाता है तिसकारणसे इस आकाशके
अवकाशदानं हीयते इति न एष दोष	=स्थानदान देना चलाजाता है अथवा बाधा जाता है । यह दूषण नहीं है
वज्र-लोष्ट-आदीनाम् स्थूलानां परस्पर-व्याघातः	=वज्र ढेलादिक स्थूल अथवा मोटे (पदार्थ) तिनका आपसमें रुकाव है
इति न अस्य अवकाशदान सामर्थ्यम् हीयते ।	=इस (आकाश)की अवकाशदानकी शक्ति नहीं बाधी जाती है
तत्र अवगाहिनाम् एव व्याघातात् पुन वज्र	=क्योंकि वहां(आकाशमें अवगाह करनवालोंकेही(परस्पर) व्याघात है और वज्र
आदय स्थूलत्वात् परस्परं प्रति अवकाश-	=आदिक स्थूल होनेसे एक दूसरको (=प्रति) स्थान
दानम् न कुर्वन्ति प्रति नभसा	=दान नहीं करते हैं । न यह(अर्थात् स्थूल पदार्थोंका एक दूसरेसे रुकना)
आकाशदोष ये खलु पुद्गला सूक्ष्मा ते	=आकाशका दूषण है । निश्चयसे जे सूक्ष्म पुद्गल हैं । ते
परस्पर प्रति अवकाशदानं कुर्वन्ति, यदि एवम्	=एक दूसरको (=प्रति) अवकाशदान करते हैं । (प्रश्न) जो इस प्रकार है
	(अर्थात् जो सूक्ष्म पुद्गल आपसमें अवकाशदान करते हैं । तो)
न इदम् आकाशस्य असाधारणम् लक्षणं	=यह (अवकाशदान) आकाशका असाधारण स्वभाव नहीं है
इतरेषाम् अपि तत्-सद्भावात् इति	=क्योंकि दूसरोंकेभी उस(अवकाशदानकी) विद्यमानता अथवा अस्तित्व है
तत् न सर्वपदार्थानाम् साधारण अवगाहन	=(उत्तर) सो (=तत्) नहीं है क्योंकि सब पदार्थोंके साधारण(युगपत्) अवकाशदानका
हेतुत्वम् अस्य असाधारणम् लक्षणम्	=कारण होना इस आकाशका असाधारण या अपूर्व स्वभाव है
[illegible]	=(और [illegible]) [illegible] है कि [illegible] पर कि

तदभावे तद्वृत्त्यभावात् ॥ तत्सामर्थ्योपेतेन क्रियावताऽऽत्मना प्रेर्यमाणा पुद्गला वाक्त्वेन विपरिणमन्त इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकी । श्रोत्रेन्द्रियविषयत्वात् ॥ इतरेन्द्रियविषया कस्मान्न भवति? तद्ग्रहणायोग्यत्वात् ॥ घ्राणग्राह्ये गन्धद्रव्ये रसाद्यनुपलब्धिवत् ॥ अमूर्ता वागिति चेन्न- मूर्तिमद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनान्मूर्तिमत्त्वसिद्धेः ॥ मनो द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति भावमनस्तावल्लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलावलम्बनत्वात् पौद्गलिकम् ॥

१७

तद् अभावे = उस(भाववाक्)के अभाव होनेपर, उस (भाववाक्)की चेष्टा(व्यवसाय का

तद्-वृत्ति-अभावात् = अभाव होजाता है अर्थात् भाववचनके न होनेपर आत्मा बोल नहीं सकता है ॥

तत्-सामर्थ्य-उपेतेन क्रियावता आत्मना = जिस (भाववाक्)की शक्तिको प्राप्त हुआ (=उपेतेन क्रियावान् आत्माकरि

प्रेर्यमाणाः पुद्गलाः वाक्त्वेन विपरिणमन्ते = प्रेरे हुये पुद्गल वचनरूप होकर परिणमते हैं (यह द्रव्य वचन है)

इति द्रव्यवाक् अपि पौद्गलिकी, श्रोत्र-इन्द्रिय- = ऐसे द्रव्य वाणीभी पुद्गलसे उपजी है, क्योंकि(द्रव्यवचन) कान इन्द्रियका

विषयत्वात्, इतरेन्द्रिय-विषया कस्मात् न भवति = विषय है । किस कारणसे(=कस्मात्)कि(द्रव्यवाक्)दूसरी इन्द्रियका विषय नहीं है?

तद्-ग्रहण अयोग्यत्वात्, घ्राण-ग्राह्ये = क्योंकि उस(दूसरी इन्द्रिय)के ग्रहण योग्य नहीं है। नाक इन्द्रियके ग्रहणयोग्य(=ग्राह्य)

गन्ध-द्रव्ये रसादि-अनुपलब्धिवत्, = गंध द्रव्य है । (वह घ्राण इन्द्रिय) रसादिक ग्रहण करने योग्य नहीं है

अमूर्ता वाक् इति चेत् न = वचन अमूर्तीक है ऐसी शंका है । (उत्तर)(वाणी अमूर्तीक) नहीं है

मूर्तिमत्-ग्रहण-अवरोध-व्याघात- = क्योंकि मूर्तीकके ग्रहणसे,(मूर्तीककरि) रुकजानेसे(मूर्तीकसे) प्रहारको प्राप्त होनेसे

अभिभवादि-दर्शनात् मूर्तिमत्त्वसिद्धेः = (मूर्तीक द्वारा) तिरस्कारादिक देखनेसे मूर्तिपना सिद्ध है अर्थात् वाणीका मूर्तीक द्वारा एक दिशासे दूसरी दिशाको चलेजाना आदि देखनेसे मूर्तिपना सिद्ध है

(१)मनः द्विविधम् द्रव्यमनः च भावमनः इति = मन दोप्रकारका है । द्रव्यमन और(=च)भावमन । (दोनोंप्रकारका मन पुद्गल स्वरूप है)

भावमनः तावत् लब्धि-उपयोग-लक्षणम् = भावमन तो (तावत्) लब्धि तथा उपयोग स्वरूप है

पुद्गल-अवलम्बनत्वात् पौद्गलिकम् = और पुद्गलके आश्रयपानेसे पुद्गलजन्य है अर्थात्

(१)(क)मनस्(ख)वचस् = मन,वच (ग)पयस् = दूध(?) इत्यादि सकारान्त नपुंसकलिंगी हैं जिनके प्रथमा एकवचन नपुंसकलिंग मन, वचः पयः हैं

तद्विपाकस्य मूर्तिमत्सम्बन्धनिमित्तत्वात् ॥ दृश्यतेहि व्रीह्यादीनामुदकादिद्रव्यसम्बन्धप्रापितपरिपाकाना पौद्गलिकत्वम् । तथा कार्मणमपि गुडकपटकादिमूर्तिमद्द्रव्योपनिपाते सति विपच्यमानत्वात्पौद्गलिकमित्यवसेयम् ॥ वाक् द्विविधा । द्रव्यवाग्भाववागिति ॥ तत्र भाववाक् तावद्वीर्यान्तरायमतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी ।

तद्-विपाकस्य॥ मूर्तिमत्-सम्बन्ध निमित्तत्वात्॥ =क्योंकि उस (कार्मण शरीर)के उदयका कारण मूर्तिवान्के संयोगसे है अर्थात् मूर्तिमान वस्तुका सम्बन्ध उस कार्मणके उदयका कारण है

दृश्यते। हि॰व्रीहि-आदीनाम्॥ उदक-आदि-द्रव्य =जैसे (=हि) देखागया है कि चांवल आदिकोंके जल आदिक द्रव्योंके

सम्बन्ध प्रापित-परिपाकानाम्॥ =संयोग प्राप्त कर भले प्रकारसे पकनेरूप वा उत्तम पाकरूप होना है उनके

पौद्गलिकत्वम्॥ तथा॰कार्मणम्॥ अपि॰गुड =वेदोनों व्रीहि उदक पुद्गलमयी वा पुद्गलमय हैं। पुद्गल)। तैसे कार्मण(शरीर)भी गुड

कपटकादि-मूर्तिमत्-द्रव्य उपनिपाते॰ सति॥ =कांटे आदि मूर्तिक द्रव्योंके संयोग होनेपर

विपच्यमानत्वात्॥ पौद्गलिकम्॥ इति॰अवसेयम्॥ =भले प्रकार पकनेसे पुद्गलमयी है ऐसे जानना चाहिये भावार्थ गुड-धौर-जड़ी आदिकसे मदिरा बनती है जिस मदिराके पीनेसे चित्त विभ्रमरूप होजाता है उस समय ज्ञानावरण दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तरायकर्मका उदय जानना चाहिये। कांटा अथवा चोट लगनेसे जो दुःख होता है तहां असाता वेदनीयकर्मका उदय जानो इत्यादि भावमूर्तीक द्रव्योंके सम्बन्धसे पचकरि कार्मण उदय आवाहै जिससे कार्मण पुद्गलमयीहै॥

वाक्॥ द्वि-विधा॥ द्रव्यवाक्॥ भाववाक्॥ इति॰॥ =वचन दो प्रकार द्रव्य वचन भाव वचन ऐसे हैं

तत्र॰भाववाक्॥ तावत्॰वीर्यान्तराय-मति =वहां भाव वचन तो (=तावत्) वीर्यान्तराय, मति

श्रुत-ज्ञानावरण-क्षयोपशम आंगोपांग =श्रुत ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे और अंगोपांग नामक (आंगोपांगनामा)

नाम-लाभनिमित्तत्वात्॥ (आत्मना॥ वाक्सामर्थ्यम्) =नाम कर्मके लाभ (=उदय)का निमित्त होनेसे (आत्माके बोलनेकी शक्ति)

पौद्गलिकी॥ =पुद्गलमयी है अर्थात् उपरोक्त कर्मोंके कारणसे आत्माके बोलनेकी शक्ति अथवा सामर्थ्य है सो भाव वचन है

तदभावे तद्वृत्त्यभावात् ॥ तत्सामर्थ्योपेतेन क्रियावताऽऽत्मना प्रेर्यमाणा पुद्गला वाक्त्वेन विपरिणमन्त इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकी । श्रोत्रेन्द्रियविषयत्वात् ॥ इतरेन्द्रियविषया कस्मान्न भवति? तद्ग्रहणायोग्यत्वात् ॥ घ्राणग्राह्ये गन्धद्रव्ये रसाद्यनुपलब्धिवत् ॥ अमूर्ता वागिति चेन्न- मूर्तिमद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनान्मूर्तिमत्त्वसिद्धेः ॥ मनो द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति भावमनस्तावल्लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलावलम्बनत्वात् पौद्गलिकम् ॥

तद् अभावे॰ तद्-वृत्ति अभावात्॰ =उस (भाववाक्)के अभाव होनेपर, उस (भाववाक्)की चेष्टा(व्यवसाय का =अभाव होजाता है अर्थात् भाव वचनके न होनेपर आत्मा बोल नहीं सकता है ॥

तत्-सामर्थ्य-उपेतेन॰ क्रियावता॰ आत्मना॰ प्रेर्यमाणाः॰ पुद्गलाः॰ वाक्त्वेन॰ विपरिणमन्ते॰ =तिस (भाववाक्)की शक्तिको प्राप्त हुआ (=उपेतेन) क्रियावान् आत्माकरि =प्रेरे हुये पुद्गल वचनरूप होकर परिणमते हैं (यह द्रव्य वचन है)

इति॰द्रव्यवाक्॰ अपि॰पौद्गलिकी॰ ; श्रोत्र-इन्द्रिय-विषयत्वात्॰ =ऐसे द्रव्य वाणीभी पुद्गलसे उपजी है, क्योंकि द्रव्यवचन) कान इन्द्रियका =विषय है ।

इतरेन्द्रिय-विषया॰ कस्मात्॰न॰भवति॰ किस कारणसे(=कस्मात्)कि(द्रव्यवाक्)दूसरी इन्द्रियका विषय नहीं है?

तद्-ग्रहण अयोग्यत्वात्॰ ; घ्राण-ग्राह्ये॰ गन्ध-द्रव्ये॰ रसादि-अनुपलब्धिवत्॰ =क्योंकि उस(दूसरी इन्द्रिय)के ग्रहण योग्य नहीं है। नाक इन्द्रियके ग्रहणयोग्य(=ग्राह्य) =गंध द्रव्य है । (वह घ्राण इन्द्रिय) रसादिक ग्रहण करने योग्य नहीं है

अमूर्ता॰ वाक्॰ इति॰चेत्॰न॰ =वचन अमूर्तीक है ऐसी शंका है । (उत्तर)(वाणी अमूर्तीक) नहीं है

मूर्तिमत्-ग्रहण-अवरोध-व्याघात-अभिभवादि-दर्शनात्॰ मूर्तिमत्त्वसिद्धेः॰ =क्योंकि मूर्तीकके ग्रहणसे,(मूर्तीककरि) रुकजानेसे(मूर्तीकसे) प्रहारको प्राप्त होनेसे =(मूर्तीक द्वारा) तिरस्कारादिक देखनेसे मूर्तिपना सिद्ध है अर्थात् वाणीका मूर्तीक द्वारा एक दिशासे दूसरी दिशाको चलेजाना आदि देखनेसे मूर्तिपना सिद्ध है

(१)मनः॰ द्विविधम्॰ द्रव्यमनः॰ च॰भावमनः॰ इति॰ =मन दोप्रकारका है । द्रव्यमन और(=च)भावमन। (दोनोंप्रकारका मन पुद्गल स्वरूप है)

भावमनः॰ तावत्॰लब्धि-उपयोग-लक्षणम्॰ =भावमन तो (तावत्) लब्धि तथा उपयोग स्वरूप है

पुद्गल अवलम्बनत्वात्॰ पौद्गलिकम्॰ =और पुद्गलके आश्रयभावसे पुद्गलजन्य है अर्थात्

(१)(क)मनस्(ख)वचस् = मन,वच (ग)महस् = पुरुषोंकी प्रवरता, तीनोंशब्द सकारान्त नपुंसकलिंगी है जिनके प्रथमा एकवचन नपुंसकलिंग मनः, वचः महः है

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहका पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति। यदयुक्तम् ॥ कथम्? उच्यते-तदिन्द्रियेणात्मना च सम्बद्धं वा स्यात्

पुद्गल कर्मके क्षयोपशमसे हुआ है तिस हेतुसे पुद्गलमयी है ॥

द्रव्यमनः॥ च॥ ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय क्षयोपशम-मांगोपांगनाम-लाभ-प्रत्ययाः॥ गुण दोष-विचार स्मरणादि प्रणिधान-अभिमुखस्य॥ आत्मनः॥ अनुग्राहकाः॥ पुद्गलाः॥ मनस्त्वेन॥ परिणताः॥

=और(च)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशमका
=तथा आंगोपांग नामा नामकर्मका उदय है कारण जिसको और गुण-दोष विचार
=स्मरणादिके प्रयत्न(=प्रणिधान)के सन्मुख है जो आत्मा तिसकें
=उपकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे वा मनरूपकरि
=परिणये हैं (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मोंके क्षयोपशम तथा उदयसे 'गुण-दोष-विचार-स्मरणादिकके उपकारी' हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ सूक्ष्म पुद्गलोंका प्रचयरूप अष्टपांखुरीके फूले हुये कमलके आकार =मनपनाकरि परिणये पुद्गल) हैं सो द्रव्य मन है

इति॥ पौद्गलिकम्॥

=इस प्रकार (यह द्रव्य मन) पुद्गलजन्य है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके संयोगसे पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप-रस-गंध-स्पर्शवान् है ॥

कश्चित्॥ आह॥ मनः॥ द्रव्यान्तरम्॥ रूपादि परिणाम-रहितम्॥ अणु-मात्रम्॥ तस्य॥ पौद्गलिकत्वम्॥ अयुक्तम्॥ इति॥ तत्॥ अयुक्तम्॥ कथम्॥ उच्यते॥ तत्॥ इन्द्रियेण॥ आत्मना॥ च॥ असम्बद्धम्॥ वा॥ स्यात्॥

=कोई प्रश्न करता है कि मन न्यारा द्रव्य है। रूपादि
=परिणाम वा विकार वर्जित है, अणुमात्र है, तिस (मन)के पुद्गलजन्यपना
=ठीकनहीं है(उत्तर)सो(मनको रूपादिपरिणामवर्जित और अणुमात्र कहना) अयुक्त है। कैसे?
=(उत्तरमें)कहाजाता है कि वस तुम्हारे मतमें मन न्यारा द्रव्य और अणुमात्र) का
=इन्द्रियसे और आत्मासे सम्बन्ध न रखता होगा अथवा

असम्बद्धं वा ? । यद्यसम्बद्धं, तन्नात्मन उपकारक भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिव्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदणु इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिभ्रमणमिति चेन्न—तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रियस्यादृष्टो गुण, स निष्क्रिय सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावा-

=स्पर्शवान्प्राप्तवनस्पतौ

६६ असम्बद्धम् ॥ वा ? यदि असम्बद्धम् तत् आत्मनः	=असंबन्ध होगा । जो संबंध नहीं है तो वह (मन) आत्माका
उपकारकम् भवितुम् न अर्हति, च इन्द्रियस्य	=सहायक अथवा सहकारी होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका
साचिव्यम् न करोति । अथ	=संधीपना नहीं करता है । पक्षान्तरमें(=अथ)अर्थात् इन्द्रियसे और आत्मासे मनका
सम्बद्धम् सत् तत् अणु एकस्मिन् प्रदेशे	=संबंध है तो वह (मन)अणु होतेसंते इन्द्रिय तथा आत्माके एकप्रदेशमें
सम्बद्धम् इतरेषु प्रदेशेषु उपकारम्	=संयोग होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको
न कुर्यात् । अदृष्ट-वशात्	=नहीं कर सकता है ॥ (आत्माके)न दीखनेवालेके वशसे वा अदृष्टगुणहोनेसे
अस्य अलात-चक्रवत्	=इस (मनका) अर्द्धदग्धकाष्ठ अथवा अंगारके चक्रके सदृश
परिभ्रमणम् ॥	=(आत्माके सर्वप्रदेशोंमें) परिभ्रमण होता है
इति चेत् न	=ऐसा अन्यमती)आग्रह करता है(=इतिचेत्)(उत्तर सोनहीं है)
तत्-सामर्थ्य अभावात्	=क्योंकि उस आत्माके (अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी) शक्तिका अभाव है
अमूर्तस्य आत्मनः निष्क्रियस्य अदृष्टः गुणः	=अमूर्तीक और क्रियारहित आत्माका अदृष्ट गुण है
सः निष्क्रियः सन् अन्यत्र क्रिया-आरम्भे	=सो निष्क्रय होकर अन्यवस्तुविषैं क्रियाके आरम्भमें
न समर्थः ।	=सामर्थ्यरहित है अर्थात् आत्माका अदृष्टगुण आत्माके तुल्य अमूर्तीक है क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिसे रहित है
दृष्टः हि वायुद्रव्य विशेषः क्रियावान्	=जैसे(=हि)देखाजाता है कि वायुद्रव्य वा गुण क्रियावान् और
स्पर्शवान् प्राप्त-वनस्पतौ ॥	स्पर्शवान् है सो प्राप्तकीहुई(अर्थात् पवन जिनमें छूमाती है उन)वनस्पतियोंमें

६६

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपागनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहका पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति। यदयुक्तम् ॥ कथम्? उच्यते-तदिन्द्रियेणात्मना च सम्बद्धं वा स्यात्

द्रव्यमनः॥ च॥ ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय क्षयोपशम आंगोपांगनाम-लाभ-प्रत्ययाः॥ गुण-दोष-विचार स्मरणादि प्रणिधान अभिमुखस्य॥ आत्मनः॥ अनुग्राहकाः॥ पुद्गलाः॥ मनस्त्वेन॥ परिणताः॥

इति॥ पौद्गलिकम्॥

कश्चित्॥ आह॥ मनः॥ द्रव्यान्तरम्॥ रूपादि-परिणाम-रहितम्॥ अणु-मात्रम्॥ तस्य॥ पौद्गलिकत्वम्॥ अयुक्तम्॥ इति॥ यत्॥ अयुक्तम्॥ कथम्॥ उच्यते॥ तत्॥ इन्द्रियेण॥ आत्मना॥ च॥ सम्बद्धम्॥ वा॥ स्यात्॥

पुद्गल कर्मके क्षयोपशमसे हुआ है तिस हेतुसे पुद्गलमयी है ॥

=और(=च)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशमका =तथा आंगोपांग नामा नामकर्मका उदय है कारण जिसको और गुण-दोष विचार =स्मरणादिके प्रयत्न(=प्रणिधान)के सन्मुख है जो आत्मा तिसके =उपकारी या अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे या मनरूपकरि =परिणये हैं (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मोंके क्षयोपशम तथा उदयसे 'गुण-दोष-विचार-स्मरणादिकके उपकारी' हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ सूक्ष्म पुद्गलोंका प्रचयरूप अष्टपांखुरीके फूले हुये कमलके आकार =मनपनाकरि परिणये पुद्गल) हैं सो द्रव्य मन है

=इस प्रकार (यह द्रव्य मन) पुद्गलजन्य है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके संयोगसे पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप-रस-गंध-स्पर्शवान् है ॥

=कोई प्रश्न करता है कि मन न्यारा द्रव्य है। रूपादि =परिणाम या विकार वर्जित है, अणुमात्र है, तिस(मन)के पुद्गलजन्यपना =ठीक नहीं है(उत्तर)सो(मनको रूपादिपरिणामवर्जित और अणुमात्र कहना)अयुक्त है।कैसे =(उत्तरमें)कहा जाता है कि वह तुम्हारे मतमें मन न्यारा द्रव्य और अणुमात्र) का =इन्द्रियसे और आत्मासे सम्बन्ध रखता होगा अथवा

असम्बद्धं वा ? । यद्यसम्बद्धं, तन्नात्मन उपकारक भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिव्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदणु इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिभ्रमणमिति चेन्न—तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रिय-स्यादृष्टो गुण, स निष्क्रिय सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावा-न्स्पर्शवान्प्राप्तवनस्पतौ

असम्बद्धम् वा यदि असम्बद्धम् तत् आत्मनः	=असंबन्ध होगा । जो संबंध नहीं है तो वह (मन) आत्माका
उपकारकम् भवितुम् न अर्हति, च इन्द्रियस्य	=सहायक अथवा सहकारी होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका
साचिव्यम् न करोति । अथ	=समीपना नहीं करता है । पश्चान्तरमें(=अथ)अर्थात् इन्द्रियसे और आत्मासे मनका
सम्बद्धम् सत् तत् अणु एकस्मिन् प्रदेशे	=संबंध है तो वह (मन) अणु होनेसे इन्द्रिय तथा आत्माके एकप्रदेशमें
सम्बद्धम् इतरेषु प्रदेशेषु उपकारम्	=संयोग होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको
न कुर्यात् । अदृष्ट-वशात्	=नहीं कर सकता है ॥ (आत्माके)न दीखनेवाले वशसे या अदृष्टगुणहोनेसे
अस्य अलात-चक्रवत्	=इस (मनका) अर्द्धदग्धकाष्ठ अथवा अंगारके चक्रके सदृश
परिभ्रमणम्	=(आत्माके सर्वप्रदेशोंमें) परिभ्रमण होता है
इति चेत् न	=ऐसा अन्यमती)आग्रह करता है(=इतिचेत्)(उत्तर सो नहीं है)
तत्-सामर्थ्य अभावात्	=क्योंकि उस आत्माके (अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी) शक्तिका अभाव है
अमूर्तस्य आत्मनः निष्क्रियस्य अदृष्टः गुणः	=अमूर्तीक और क्रियारहित आत्माका अदृष्ट गुण है
सः निष्क्रियः सन् अन्यत्र क्रिया-आरम्भे	=सो निष्क्रय होकर अन्यवस्तुविषै क्रियाके आरम्भमें
न समर्थः ।	=सामर्थ्यरहित है अर्थात आत्माका अदृष्टगुण आत्माके तुल्य अमूर्तीक है क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिसे रहितहै
दृष्टः हि वायुद्रव्य विशेषः क्रियावान्	=जैसे(=हि)देखाजाता है कि वायुद्रव्य या गुण क्रियावान् और
स्पर्शवान् प्राप्त-वनस्पतौ	स्पर्शवान् है सो प्राप्तकीहुई(अर्थात् पवन जिनमें छूजाती है उन)वनस्पितियोंमें

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहका पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति। यदयुक्तम् ॥ कथम्? उच्यते-तदिन्द्रियेणात्मना च सम्बद्धं वा स्यात्

द्रव्यमनः॥ च॥ ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय-क्षयोपशम आंगोपांगनाम-लाभ-प्रत्ययाः॥ गुण-दोष-विचार स्मरणादि-प्रणिधान-अभिमुखस्य॥ आत्मनः॥ अनुग्राहकाः॥ पुद्गलाः॥ मनस्त्वेन॥ परिणताः॥

इति॥ पौद्गलिकम्॥

कश्चित्॥ आह॥ मनः॥ द्रव्यान्तरम्॥ रूपादि परिणाम-रहितम्॥ अणु-मात्रम्॥ तस्य॥ पौद्गलिकत्वम्॥ अयुक्तम्॥ इति॥ तत्॥ अयुक्तम्॥ कथम्॥ उच्यते॥ तत् इन्द्रियेण॥ आत्मना॥ च॥ सम्बद्धम्॥ वा॥ स्यात्॥

पुद्गल कर्मके क्षयोपशमसे हुआ है तिस हेतुसे पुद्गलमयी है ॥
=और(च)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशमका
=तथा आंगोपांग नामा नामकर्मका उदय है कारण जिसको और गुण-दोष विचार
=स्मरणादिके प्रयत्न(=प्रणिधान)के सन्मुख है जो आत्मा तिसके
=उपकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे वा मनरूपकरि
=परिणये हैं (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मोंके क्षयोपशम तथा उदयसे
'गुण-दोष-विचार-स्मरणादिकके उपकारी' हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ सूक्ष्म
पुद्गलोंका प्रचयरूप अष्टपांखुरीके फूले हुये कमलके आकार =मनपनाकरि
परिणये पुद्गल) हैं सो द्रव्य मन है
=इस प्रकार (यह द्रव्य मन) पुद्गलजन्य है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके संयोगसे
पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त
होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप-रस-गंध-स्पर्शवान् है ॥
=कोई प्रश्न करता है कि मन न्यारा द्रव्य है। रूपादि
=परिणाम वा विकार वर्जित है, अणुमात्र है, तिस (मन)के पुद्गलजन्यपना
=ठीक नहीं है(उत्तर)सो(मनकोरूपादिपरिणामवर्जितऔरअणुमात्रकहना)अयुक्त है। कैसे?
=(उत्तरमें)कहा जाता है कि जस तुम्हारे मतमें मन न्यारा द्रव्य और अणुमात्र) का
=इन्द्रियसे और आत्मासे सम्बन्ध रखता होगा अथवा

असम्बद्ध वा ? । यद्यसम्बद्धं, तन्नात्मन उपकारक भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिव्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदणु इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिभ्रमणमिति चेन्न—तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रियस्यादृष्टो गुण, स निष्क्रिय सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावान्स्पर्शवान्प्राप्तवनस्पतौ

असम्बद्धम् । वा । यदि असम्बद्धम् तत् आत्मनः = असंबन्ध होगा । जो संबंध नहीं है तो वह (मन) आत्माका

उपकारकम् भवितुम् न अर्हति, च इन्द्रियस्य = सहायक अथवा सहकारी होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका

साचिव्यम् न करोति । अथ = संचीपना नहीं करता है । पक्षान्तरमें (=अथ) अर्थात् इन्द्रियसे और आत्मासे मनका

सम्बद्धम् सत् तत् अणु एकस्मिन् प्रदेशे = संबंध है तो वह (मन) अणु होतेसंते इन्द्रिय तथा आत्माके एकप्रदेशमें

सम्बद्धम् इतरेषु प्रदेशेषु उपकारम् = संयोग होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको

न कुर्यात् । अदृष्ट-वशात् = नहीं कर सकता है ॥ (आत्माके) न दीखनेजानेके वशसे वा अदृष्ट गुणहोनेसे

अस्य अलात-चक्रवत् = इस (मनका) अर्धदग्धकाष्ठ अथवा अंगारके चक्रके साथ

परिभ्रमणम् = (आत्माके सर्वप्रदेशोंमें) परिभ्रमण होता है

इति चेत् न = ऐसा अन्यमती आग्रह करता है (=इतिचेत्) (उत्तर सो नहीं है)

तत्-सामर्थ्य अभावात् = क्योंकि उस आत्माके (अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी) शक्तिका अभाव है

अमूर्तस्य आत्मनः निष्क्रियस्य अदृष्टः गुणः = अमूर्तीक और क्रियारहित आत्माका अदृष्ट गुण है

सः निष्क्रिय सन् अन्यत्र क्रिया-आरम्भे = सो निष्क्रिय होकर अन्यवस्तुविषैं क्रियाके आरम्भमें

न समर्थः = सामर्थ्यरहित है अर्थात् आत्माका अदृष्टगुण आत्माके तुल्य अमूर्तीक है क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिसे रहित है

दृष्टः हि वायुद्रव्य-विशेषः क्रियावान् = जैसे (=हि) देखाजाता है कि वायुद्रव्य का गुण क्रियावान् और

स्पर्शवान् प्राप्त-वनस्पतौ = स्पर्शवान् है सो प्राप्त कीहुई (अर्थात् पवन जिनमें छूजाती है उन) वनस्पतियोंमें

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहकाः पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति। यदयुक्तम् ॥ कथम्? उच्यते-तदिन्द्रियेणात्मना च सम्बद्धं वा स्यात्

द्रव्यमनः॥ च॥ ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय-क्षयोपशम-अंगोपांगनाम-लाभ-प्रत्ययाः॥ गुण-दोष विचार स्मरणादि प्रणिधान-अभिमुखस्य॥ आत्मनः॥ अनुग्राहकाः॥ पुद्गलाः॥ मनस्त्वेन॥ परिणताः॥

इति॥ पौद्गलिकम्॥

कश्चित्॥ आह॥ मनः॥ द्रव्यान्तरम्॥ रूपादि परिणाम-रहितम्॥ अणु-मात्रम्॥ तस्य॥ पौद्गलिकत्वम्॥ अयुक्तम्॥ इति॥ यत्॥ अयुक्तम्॥ कथम्॥ उच्यते॥ तत् इन्द्रियेण॥ आत्मना॥ च॥ सम्बद्धम्॥ वा॥ स्यात्॥

पुद्गल कर्मके क्षयोपशमसे हुआ है तिस हेतुसे पुद्गलमयी है ॥
=और(=च)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशमका
=तथा अंगोपांग नामा नामकर्मका उदय है कारण जिसको और गुण-दोष विचार
=स्मरणादिके प्रयत्न(=प्रणिधान)के सन्मुख है जो आत्मा तिसकें
=उपकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे वा मनरूपकरि
=परिणये हैं (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मोंके क्षयोपशम तथा उदयसे 'गुण-दोष-विचार-स्मरणादिकके उपकारी' हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ सूक्ष्म पुद्गलोंका प्रचयरूप अष्टपांखुरीके फूले हुये कमलके आकार =मनपनाकरि परिणये पुद्गल) हैं सो द्रव्य मन है
=इस प्रकार (यह द्रव्य मन) पुद्गलजन्य है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके संयोगसे पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप-रस-गन्ध-स्पर्शवान् है ॥
=कोई प्रश्न करता है कि मन न्यारा द्रव्य है। रूपादि
=परिणाम वा विकार वर्जित है, अणुमात्र है, तिस (मन)के पुद्गलजन्यपना
=ठीक नहीं है(उत्तर)सो(मनको रूपादिपरिणामवर्जित और अणुमात्र कहना) अयुक्त है कैसे?
=(उत्तरमें) कहा जाता है कि वस तुम्हारे मतमें मन न्यारा द्रव्य और अणुमात्र) का
=इन्द्रियसे और आत्मासे सम्बन्ध रखता होगा अथवा

असम्बद्धं वा ? । यद्यसम्बद्धं, तन्नात्मन उपकारक भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिव्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदणु इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिभ्रमणमिति चेन्न—तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रियस्यादृष्टो गुण, स निष्क्रिय सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावान्स्पर्शवान्प्राप्तवनस्पतौ

असम्बद्धम् ॥ वा ?॥ यदि॥ असम्बद्धम्॥ तत्॥ आत्मनः॥
उपकारकम्॥ भवितुम्॥ न॥ अर्हति॥, च॥ इन्द्रियस्य॥
साचिव्यम्॥ न॥ करोति॥ अथ॥
सम्बद्धम्॥ सत्॥ तत्॥ अणु॥ एकस्मिन्॥ प्रदेशे॥
सम्बद्धम्॥ इतरेषु॥ प्रदेशेषु॥ उपकारम्॥
न॥ कुर्यात्। अदृष्ट-वशात्॥
अस्य॥ अलात-चक्रवत्॥
परिभ्रमणम्॥
इति॥ चेत्॥ न॥
तत्-सामर्थ्य अभावात्॥
अमूर्तस्य॥ आत्मनः॥ निष्क्रियस्य॥ अदृष्टः॥ गुणः॥
सः॥ निष्क्रिय॥ सत्॥ अन्यत्र॥ क्रिया-आरम्भे॥
न॥ समर्थ॥

दृष्टः॥ हि॥ वायुद्रव्य-विशेषः॥ क्रियावान्॥
स्पर्शवान्॥ प्राप्त-वनस्पतौ॥

=असंबंध होगा। जो संबंध नहीं है तो वह (मन) आत्माका
=सहायक अथवा सहकारी होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका
=मंत्रीपना नहीं करता है। पक्षान्तरमें(=अथ)अर्थात्इन्द्रियसे और आत्मासे मनका
=संबंध है तो वह (मन)अणु होतेसंते इन्द्रिय तथा आत्माके एकप्रदेशमें
=संयोग होगा। अन्य प्रदेशोंमें उपकारको
=नहीं कर सकता है॥ (आत्माके)न दीखनेआनेके वशसे वा अदृष्टगुणहोनेसे
=इस (मनका) अर्धदग्धकाष्ठ अथवा अंगारके चक्रके सदृश
=(आत्माके सर्वप्रदेशोंमें) परिभ्रमण होता है
=ऐसा अन्यमती)आग्रह करता है(=इतिचेत्)(उत्तर सो नहीं है)
=क्योंकि उस आत्माके (अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी) शक्तिका अभाव है
=अमूर्तीक और क्रियारहित आत्माका अदृष्ट गुण है
=सो निष्क्रय होकर अन्यवस्तुविषैं क्रियाके आरम्भमें
=सामर्थ्यरहित है अर्थात् आत्माका अदृष्टगुण आत्माके तुल्य अमूर्तीक है
क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिसे रहित है
=जैसे(=हि)देखाजाता है कि वायुद्रव्य का गुण क्रियावान् और
स्पर्शवान् है सो प्राप्त कीहुई(अर्थात् पवन जिनमें छूजाती है उन)वनस्पतियोंमें

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्द कर्मव्यतिहारे वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः । परस्परस्योपग्रह परस्परोपग्रह । जीवानामुपकार ॥ कः पुनरसौ ? । स्वामी भृत्य, आचार्य शिष्य, इत्येवमादि भावेन वृत्ति परस्परोपग्रह ॥

(1)सूत्रम्–परस्परोपग्रहो जीवनाम्(२१) = परस्परोपग्रहो(जीवानाम्)जीवानाम्(उपकार)भवति॥२१॥

सूत्रार्थः—परस्पर-उपग्रह-(2)जीवानाम्	=परस्पर उपकार जीवोंको
जीवानाम् (3)उपकार भवति ।	=जीवोंका उपकार है अर्थात् जीवकारणवशात् एक दूसरेका सुख दुःख जीवन मरण तथा सेवा शुश्रूसा आदिसे उपकार करते हैं भावार्थ एक जीव दूसरेको आपसमें सुख का निमित्त, दुःखका निमित्त, जीवनका हेतु मरणका निमित्त और सेवा शुश्रूसा आदिका हेतुभी होते हैं
वृत्त्यनुवादः—परस्परशब्द कर्म-व्यतिहारे वर्तते ।	=(इस सूत्रमें)परस्परशब्द क्रिया(=कर्म)के अलटन पलटन(=व्यतिहार)केअर्थविषै वर्तता है
कर्मव्यतिहार च=क्रियाव्यतिहार	=और(=च) कर्मव्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह वह करता है और उसको उपग्रह वह करता है
परस्परस्य उपग्रह परस्पर-उपग्रह	=आपसका उपग्रह या अनुग्रह है सो परस्पर उपग्रह है
जीवानाम् उपकार	=(वह परस्परउपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंके एक दूसरेकेलिये उपकार प्रवर्तता है
कः पुन असौ स्वामी भृत्य	= प्रश्न)फुरि(=पुनः)वह(=असौ)(परस्पर उपग्रह) क्या है (उत्तर) स्वामी, चाकर
आचार्य शिष्य इत्येवम् आदि भावेन	=आचार्य शिष्य इत्यादिककी हृदयकी अवस्थासे(=भावेन)
वृत्ति परस्पर-उपग्रह	=जो पेशा-उद्योग-उपाय व्यवसायरूप =वृत्ति) है सो परस्पर उपग्रह है

(1) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ समान है । हमारे यहां किसी २ पुस्तकमें जीवानाम् के स्थान पर 'जीवानां' पाठ है वह [illegible] व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो [illegible] टिप्पणी पृष्ठ ५ ६, और पृष्ठ १३६, १४०)
(2) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति [illegible] सूत्रमें जोतनी है (3) 'उपकार' इस शब्दकी अनुवृत्ति [illegible] सूत्रसे जोतनी है ।

स्वामी तानहित्तत्यागादिना भृत्यानामुपकारे वर्तते । भृत्याश्च हितप्रतिपादनेनाहितप्रतिषेधेन च ॥ आचार्य उभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनेन तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठापनेन च शिष्याणामनुग्रहे वर्तते । शिष्या अपि तदानुकूल्यवृत्या आचार्याणामुपकाराधिकारे ॥ पुनरुपग्रहवचनं किमर्थम् ? पूर्वोक्तसुखादिचतुष्टयप्रदर्शनार्थं पुनरुपग्रहवचनं क्रियते ॥सुखादीन्यपि जीवाना जीवकृत उपकार इति ॥ आह यद्यवश्यं सतोपकारिणा भवितव्यं सश्च कालोऽभिमतस्तस्य क उपकार

स्वामी, तावत्, वित्तत्याग आदिना, भृत्यानाम्,	=स्वामी तौ(=तावत्)धन(=वित्त)देने आदिसे(=त्यागादिना) सेवकोंकी
उपकारे, वर्तते, भृत्याः, च, हितप्रतिपादनेन, अहित	=सहायता करनेमें प्रवर्तता है और(=च)चाकर हितकी वार्ता कहिकरि और अहितका
प्रतिषेधेन, आचार्यः, उभय-लोक-फल प्रद	=निषेधकरि स्वामियोंकेउपकारमेंप्रवर्तता है) आचार्य दोनों लोकका फलदेनेवाला(प्रद)
उपदेश-दर्शनेन, च, तद् उपदेश-विहित	=उपदेशको दिखावनेकरि और(=च)उस उपदेशके अनुकूल उचित अथवा योग्य
क्रिया अनुष्ठापनेन, शिष्याणाम्, अनुग्रहे	=क्रियाका आचरण करावनेकरि शिष्योंक उपकार (=अनुग्रह में
वर्तते शिष्या अपि, तद् आनुकूल्यवृत्या,	=प्रवर्तता है । चेलेभी उस आचार्य क अनुकूलपना(=आनुकूल्य)में प्रवृत्ति होकर
आचार्याणाम्, उपकार अधिकारे, पुनर,	=आचार्योंके उपकार विषयमें अधिकारमें,(प्रवर्ततेहैं)(प्रश्न)बहुरि
उपग्रह-वचनम्, किम्, अर्थम् ? पूर्व	=उपग्रह शब्द(इस सूत्रमें)किसलिये है । पहिले (सूत्र अर्थात् इस अध्यायके२०वां सूत्रमें)
उक्त-सुख आदि-चतुष्टय प्रदर्शन अर्थम्, पुनर,	=कहे हुए सुखदुःख जीवित-मरण चारअवयवोंके दिखावनेके लिये फिर (=पुनः)
उपग्रहवचनम्, क्रियते, सुख-आदीनि, अपि,	=उपग्रहवाक्य(=इससूत्रमें)कियागया है सुख-दुःख-जीवित-मरणभी
जीवानाम्, जीवकृतः, उपकार, इति, आह, यदि,	=जीवोंके जीवकृत उपकार है कोई पूछता है कि जो (=यदि)
अवश्यम्, सता, उपकारिणा, भवितव्यम्,	=सत्तारूपवस्तु(=सत्)अवश्य उपकार सहित होनेयोग्य (=भवितव्यम्) है
सन्, च, कालम्, अभिमतः, तस्य, कः, उपकारः,	=और काल सत्तारूप या सत्स्वरूप (=सन)मानागयाहै तोतिस(काल)कावया उपकार है

(१) सत यहांपर प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिंग सत शब्दका है । इसका अर्थ सतरूप अथवा सत्स्वरूपहै।()तत्त्वार्थराजवार्तिकमें आईसे इत्यनाभ्यत' तक यह वाक्य ऐसा ही है जैसाकि सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है 'तस्य क उपकार' के स्थानमें सत्किमुपकारः राजवार्तिकमें है उससे अर्थ भेद नहीं होताहै। इस वाक्यका अनुवाद पंडित पन्नालालजी दूनीवाले और पंडित पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने क्रमसे ऐसे किया है "या कोऊ शिष्य कहै है जो अवश्य

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्द कर्मव्यतिहारे वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः । परस्परस्योपग्रह परस्परोपग्रह । जीवानामुपकार. ॥ क पुनरसौ ? । स्वामी भृत्य , आचार्य शिष्य , इत्येवमादि भावेन वृत्ति परस्परोपग्रह ॥

(1)सूत्रम्—परस्परोपग्रहो जीवनाम्(२१) = परस्परोपग्रहो(जीवानाम्)जीवानाम्(उपकार)भवति॥२१॥

सूत्रार्थः—परस्पर-उपग्रह-(2)जीवानाम्। =परस्पर उपकार जीवोंको

जीवानाम्। (3)उपकारः। भवति। =जीवोंका उपकार है अर्थात् जीवकारणवशात् एक दूसरेका सुख दुःख जीवन मरण तथा सेवा शुश्रूसा आदिसे उपकार करते हैं भावार्थ एक जीव दूसरेको आपसमें सुख का निमित्त,दुःखका निमित्त, जीवनका हेतु मरणका निमित्त और सेवा शुश्रूसा आदिका हेतुभी होते हैं

वृत्यनुवादः—परस्परशब्दः। कर्म-व्यतिहारे। वर्तते। =(इस सूत्रमें)परस्परशब्द क्रिया(=कर्म)के अलटन पलटन(=व्यतिहार)केअर्थविषैं वर्तता है

कर्मव्यतिहारः। च=क्रियाव्यतिहारः। =और(=च) कर्मव्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह वह करता है और उसको उपग्रह वह करता है

परस्परस्य। उपग्रहः। परस्पर-उपग्रहः। =आपसका उपग्रह या अनुग्रह है सो परस्पर उपग्रह है

जीवानाम्। उपकारः। =(यह परस्परउपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंके एक दूसरेकेलिये उपकार प्रवर्तता है

कः। पुनः=असौ। स्वामी। भृत्यः। =प्रश्न) बहुरि(=पुनः)यह(=असौ)(परस्पर उपग्रह) क्या है (उत्तर) स्वामी, चाकर

आचार्यः। शिष्यः। इत्येवम्=आदि। भावेन। =आचार्य शिष्य इत्यादिककी हृदयकी अवस्थासे(=भावेन)

वृत्तिः। परस्पर-उपग्रहः। =जो चेष्टा-प्रयोग-उपाय व्यवसायरूप =वृत्ति) है सो परस्पर उपग्रह है

(१) दोनो सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ हमारे यहां किसी २ पुस्तकमें जीवानाम् के स्थान पर 'जीवानां' पाठ है वह कातन्त्ररूप माला व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ४ ५, और पृष्ठ १३४ १४०)

(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति २२वें सूत्रमें जाती है। (३) 'उपकार' इस शब्दकी अनुवृत्ति बाकरके सूत्रमें जाती है।

स्वामी तावद्वित्तत्यागादिना भृत्यानामुपकारे वर्तते । भृत्याश्च हितप्रतिपादनेनाहितप्रतिषेधेन च ॥ आचार्य उभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनेन तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठापनेन च शिष्याणामनुग्रहे वर्तते । शिष्या अपि तदानुकूल्यवृत्त्या आचार्याणामुपकाराधिकारे ॥ पुनरुपग्रहवचनं किमर्थम् ? पूर्वोक्तसुखादिचतुष्टयप्रदर्शनार्थं पुनरुपग्रहवचनं क्रियते ॥ सुखादीन्यपि जीवानां जीवकृत उपकार इति ॥ आह यद्यवश्यं सतोपकारिणा भवितव्यं सश्च कालोऽभिमतस्तस्य क उपकार

७१

स्वामी, तावत् = वित्तत्याग आदिना, भृत्यानाम्,	=स्वामी तो (=तावत्) धन (=वित्त) देने आदिसे (=त्यागादिना) सेवकोंकी
उपकारे, वर्तते, भृत्याः, च = हितप्रतिपादनेन, अहित	=सहायता करनेमें प्रवर्तता है और (=च) चाकर हितकी वार्ता कहिकरि और अहितका
प्रतिषेधेन, आचार्यः, उभय-लोक फल प्रद	=निषेधकरि स्वामियोंके उपकारमें प्रवर्तता है) आचार्य दोनों लोकका फल देनेवाला (प्रद)
उपदेश-दर्शनेन, च = तद् उपदेश-विहित-	=उपदेशको दिखावनेकरि और (=च) उस उपदेशके अनुकूल उचित अथवा योग्य
क्रिया अनुष्ठापनेन, शिष्याणाम्, अनुग्रहे,	=क्रियाका आचरण करावनेकरि शिष्योंके उपकार (=अनुग्रह में
वर्तते शिष्याः अपि = तद् आनुकूल्यवृत्त्या,	=प्रवर्तता है । चेलाभी उस (आचार्य के अनुकूलपना (=आनुकूल्य) में प्रवृत्ति होकर
आचार्याणाम्, उपकार अधिकारे, पुनर् =	=आचार्योंके उपकार विषयमें अधिकारमें (प्रवर्तते हैं) (प्रश्न) बहुरि
उपग्रह-वचनम्, किम्, अर्थम्, ? पूर्व	=उपग्रह शब्द (इस सूत्रमें) किसलिये है । पहिले (सूत्र अर्थात् इस अध्यायके २०वां सूत्रमें)
उक्त-सुख आदि-चतुष्टय प्रदर्शन अर्थम्, पुनर् =	=कहे हुए सुखदुःख जीवित-मरण चारअवयवोंके दिखावनेके लिये फिर (=पुनः)
उपग्रहवचनम्, क्रियते ; सुख आदीनि, अपि =	=उपग्रहवाक्य (=इससूत्रमें) कियागया है सुख-दुःख जीवित मरणभी
जीवानाम्, जीवकृत, उपकार, इति = आह । यदि =	=जीवोंके जीवकृत उपकार है कोई पूछता है कि जो (=यदि)
अवश्यम् = सता, उपकारिणा, भवितव्यम्,	=सत्तास्वरूपवस्तु (=सत्) अवश्य उपकार सहित होनेयोग्य (=भवितव्यम्) है
सन्, च = कालम्, अभिमत, तस्य, कः, उपकार,	=और काल सत्तारूप या सत्स्वरूप (=सन्) मानागया है तोतिस (काल) कास्या उपकार है

(१) सन यहांपर प्रथमा विभक्ति एकवचन पुलिंग 'सत शब्दका है । इसका अर्थ सतरूप अथवा सत्स्वरूपहै। () तत्त्वार्थराजवार्तिकमें आइस इत्यतःपर तक यह वाक्य ऐसा ही है जैसाकि सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है 'तस्य क उपकारः' के स्थानमें तत्किमुपकारः राजवार्तिकमें है उससे अर्थभेद नहीं होताहै। इस वाक्यका अनुवाद पंडित पन्नालालजी दूनीवाले और पंडित पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने क्रमसे ऐसे किया है ॥ जो शिष्य कहे है जो अवश्य

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्द कर्मव्यतिहारे वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः । परस्परस्योपग्रह परस्परोपग्रह । जीवानामुपकार ॥ कः पुनरसौ ? । स्वामी भृत्य, आचार्य शिष्य, इत्येवमादि भावेन वृत्ति परस्परोपग्रह ॥

(1)सूत्रम्—परस्परोपग्रहो जीवनाम्(२१) = परस्परोपग्रहो(जीवानाम्)जीवानाम्(उपकार)भवति॥२१॥

सूत्रार्थ—परस्पर उपग्रह-(2)जीवानाम् । =परस्पर उपकार जीवोंको

जीवानाम् । (3)उपकार । भवति । =जीवोंका उपकार है अर्थात् जीवकारणवशात् एक दूसरेका सुख दुःख जीवन मरण तथा सेवा शुश्रूषा आदिसे उपकार करते हैं भावार्थ एक जीव दूसरेको आपसमें सुख का निमित्त, दुःखका निमित्त, जीवनका हेतु मरणका निमित्त और सेवा शुश्रूसा आदिका हेतुभी होते हैं

वृत्त्यनुवाद—परस्परशब्द । कर्म-व्यतिहारे । वर्तते । =(इस सूत्रमें)परस्परशब्द क्रिया(=कर्म)के अलटन पलटन(=व्यतिहार)के अर्थविषैं वर्तता है

कर्मव्यतिहार । च । क्रियाव्यतिहार । =और(=च) कर्मव्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह यह करता है और उसको उपग्रह यह करता है

परस्परस्य । उपग्रह । परस्पर-उपग्रह । =आपसका उपग्रह या अनुग्रह है सो परस्पर उपग्रह है

जीवानाम् । उपकार । =(यह परस्परउपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंके एक दूसरेकेलिये उपकार प्रवर्तता है

कः । पुनः असौ । स्वामी । भृत्य । =प्रश्न)बहुरि(=पुनः)यह(=असौ)(परस्पर उपग्रह) क्या है (उत्तर) स्वामी, चाकर

आचार्य । शिष्य । इत्येवम् आदि । भावेन । =आचार्य शिष्य इत्यादिकको हृदयकी अवस्थासे(=भावेन)

वृत्ति । परस्पर-उपग्रह । =जो चेष्टा-उद्योग-उपाय व्यवसायरूप =वृत्ति) है सो परस्पर उपग्रह है

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है । हमारे यहां किसी २ पुस्तकमें जीवानाम् के स्थान पर 'जीवानां' पाठ है वह कालस्वरूप मात्रा व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५ ६, और पृष्ठ ५३३, ५५०)

(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति १५वें सूत्रसे होती है । (३) 'उपकार' इस शब्दकी अनुवृत्ति सत्रहवें सूत्रसे होती है ।

= वर्तना-परिणाम-क्रिया-(१)परत्वापरत्वेच(जीवानाम् पुद्गलानाम्) कालस्य(उपकार)भवति॥ २२॥

और तथा और पदोंमें कहे अर्थवाले होसकते हैं परन्तु चकार को कोष्ठकमें लानेके पश्चात् और" शब्द लायेहैं। इससे जानपड़ता है कि उपकार का प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रसे पिछले सूत्रसे मिलादिया है अर्थात् जीवोंके परस्पर उपकार है (सूत्र २१) और (=च) कालके वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ये पांच उपकार हैं। सूत्र२२ ॥ ऐसे दोनों सूत्रोंको मिलासकते हैं। 'तथा'शब्द अधिक जान पड़ताहै अंतिम और शब्द 'परत्वापरत्व समासका तोड़नेसे 'परत्व अपरत्व च ऐसा होजाता है सो इस चकारका भाषानुवाद है। पंडित सदासुखजीकृत अर्थप्रकाशिका और पंडित जयचंदजीकृत सर्वार्थसिद्धि वचनिका में चकारका भाषानुवाद नहीं है अर्थात् दोनोंमें यथाक्रम ऐसा अर्थ किया है कि वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए कालकृत उपकार हैं। वर्तना परिणाम क्रिया परत्वा परत्व ए कालके उपकार हैं॥

(ii) द्विवचनान्त क्यों है (उत्तर) संस्कृत सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ५८७ का पाठ है कि 'ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु =इस सूत्रमें वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये 'तद्भेदाः परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्' इस वर्तनाके भेद परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व है तिन भेदोंका भिन्न ग्रहण निष्प्रयोजन है नानर्थकम्=निष्प्रयोजन परिणामादिका ग्रहण नहीं है॥ कालद्वय सूचनार्थत्वात्प्रपञ्चस्य =क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके लिये विस्तारका कथन है। कालोहि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च =काल दो प्रकार है परमार्थकाल और व्यवहारकाल

परमार्थकालो वर्तना लक्षणः =वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थकाल है॥ परिणामादि लक्षणो व्यवहारकालः =परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो व्यवहारकाल है॥ अब वर्तना निश्चयकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं तब वर्तना शब्दको एक वचन मानकर और परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व इन सबको एक मानकर दोनोंको मिलाकर वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वे ऐसा द्विवचन किया है। इनों शंकाओंका समाधान ऐसा होसकता है कि यदि चकारको समुच्चयके अर्थ में लेवें अर्थात् उपकारका प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रको पूर्व २१वांसूत्रसे मिलादिया जावे 'वर्तना'को निश्चयकालका लक्षण मानकर और परिणाम क्रिया-परत्वअपरत्वको व्यवहारकालका लक्षण मानकर दोनोंप्रकारके लक्षणोंको एक एक मानकर मिला देवें समास करदेवें तो च वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे कालस्य ऐसा सूत्रहोजाताहै

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें "वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेच कालस्य" ऐसे सूत्रका यह हेतु दिया है कि 'परत्वापरत्वे (=परत्वं अपरत्वं च) सापेक्ष होनेसे 'परत्व अपरत्व' को दो शब्द पृथक् पृथक् समझकर नपुंसकलिंगमें द्विवचनमें लाये और वर्तना-परिणाम क्रिया इतनेका एकसमास करके "वर्तना परिणाम क्रियाः ऐसा स्त्रीलिंग बहुवचनमें लाये क्योंकि क्रियाशब्द स्त्रीलिंग है॥ परत्व अपरत्व दोनों नपुंसकलिंगी हैं और "च 'वर्तना परिणाम क्रियाः और परत्वा परत्वे दोनों समासोंको मिलाता है। अब अर्थ ऐसा हुआ कि 'वर्तना परिणाम क्रिया और परत्वापरत्व कालके उपकार हैं॥ यहांपर स्मरण रहै कि इस सूत्रमें कालस्य शब्दका प्रयोग सामान्यरूपमें किया है कालद्वय निश्चयकाल और व्यवहारकाल अर्थात् समय मात्रको मुहूर्त पहर दिन इत्यादि दोनों का वाचक है इसलिये यह अर्थ हुआ कि 'वर्तना निश्चय या परमार्थकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्व और अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं॥

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेचकालस्य ॥ २२ ॥

भावार्थ ऐसा है कि जब यह बात सुनिश्चितरूपसे मानी जाचुकी है कि जो सत्स्वरूप
द्रव्यभी सत्स्वरूप पदार्थ है उसका उपकार है। कालद्रव्यका लक्षण विशदरूपसे आगे सूत्र ३६में कहाजायगा और वह अमूर्तीक
होगा वह अवश्य उपकारी होगा जैसे धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य इत्यादि पदार्थ सत्स्वरूप हैं इसलिये वे उपकारी मानेगये हैं तब काल
स्वरूप और निष्कर्म है सब द्रव्योंका यहां उपकार प्रकरण है इसलिये

इतिप्रश्नउच्यते।

=इस प्रकार यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहाजाता है कि—

'सूत्रम्—वर्तनापरिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥

उपकारीहूं मत दोनों पाठ्य है जो मतलब काल अभिमत है सो कहा उपकारवान है"। तत्वार्थराजवार्तिक अध्याय५ पृष्ठ ११ आगे जो सत्तारूप वस्तु
है सोई उपकारकरि परिणमन रूप होय है। काल द्रव्य भी सत्ता स्वरूप है" सो कालद्रव्य कहीं उपकाररूप है तत्वार्थश्लोकवार्तिक अध्याय ५ पृष्ठ ६२ ॥

(१) इस सूत्रके यह पाठ हैं। मुद्रितसंस्कृत सर्वार्थसिद्धि की और पद्मावतीजी वाक्लीवाल मुद्रित मोक्षशास्त्रकी दोनों दामो आवृत्तियोंमें उपर्युक्त पाठ
है क्योंकि अनुवाद संस्कृत सर्वार्थसिद्धिसे किया है। अतः पूर्वोक्त पाठ लिया है (२) सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १०७में वर्तना परिणामः क्रिया
परत्वापरत्वेचकालस्य' ऐसा पाठ है। वहांपर उक्तभाष्यमें यह टिप्पणी भी है कि 'यहां पर वर्तना परिणाम और क्रिया इन तीनों पदोंका विरोध न
होनेसे समास करके पढ़ना चाहिये कोई असमस्त ही पढ़ते हैं। लाघव होनेसे परत्वापरत्वका तो समास है ही' । और तत्वार्थश्लोकवार्तिक(मुद्रित)
पृष्ठ ४१२में वर्तनया समाप्यका ही पाठ है अर्थात् दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ एकप्रकारसे एकसा' वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वेच काल
स्य हुआ।२२। और दोनों आम्नायोंमें अर्थभी एकसा है। (३) पण्डित सदासुखजी कृत 'अर्थप्रकाशिका' के पृष्ठ ३०८ और पण्डित सदासुखजीकृत
लघु मंजरीका के पृष्ठ २१ में पण्डित जयचन्द्रजीकी कृत सर्वार्थसिद्धि वचनिकाके पृष्ठ १५० में निर्णयसागर मुद्रित बम्बई के दैन नित्यपाठसंग्रहके
११६ दामो आवृत्तियोंमें (जहां तत्वार्थसूत्र मुद्रित है) और श्रीयुत ज्ञानचन्द्रजी मुद्रित तत्वार्थसूत्रादि के पृष्ठ १६में और सनातन जैनग्रन्थमालाके पृष्ठ
६० में तथा तत्वार्थराजवार्तिक के पृष्ठ ३४३ में निम्नलिखित पाठ है। "वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वेच कालस्य इस पाठमें दो शंकायें उत्पन्न
होती हैं। प्रथम इस स्थान पर क्यों लाये दूसरी शंका यह कि जब वर्तना शब्दसे परत्वे शब्दपर्यन्त एकसमास है जोकि तोड़िवचनमें समासान्त क्यों
किया? बहुवचन करके ऐसा सूत्र क्यों न किया कि वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वानि च कालस्य (क) चकारके सम्बन्ध में पूज्यपाद स्वामीने
वृत्तिमें भी कुछ नहीं लिखा कि क्यों लाए और अर्थतक काम लियागया है किसी भाषाके अनुवादक महाशय ने भी नहीं लिखा कि "च"शब्द सूत्रमें
इस कारणसे लाए हैं हां पन्नालाल पाटनीकृत मोक्षशास्त्र बालबोधिनी भाषाटीका सहित द्वितीयावृत्ति के पृष्ठ १८ में ऐसा अर्थ किया है
"(च)और (कालस्य) कालके (वर्तना परिणामक्रिया) वर्तना, परिणामःक्रिया तथा(परत्वा परत्वे)परत्व और अपरत्व ये पांच उपकार हैं इस अनुवादमें

= वर्तना-परिणाम-क्रियाः-[1]परत्वापरत्वेच(जीवानाम् पुद्गलानाम्) कालस्य(उपकार)भवति॥ २२॥

और तथा और चैतोंमें चके अर्थवाची होसकते हैं परन्तु चकार को कोष्ठकमें लाकके पश्चात् और शब्द लायेहैं। इससे जानपड़ता है कि उपकार का प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रसे पिछले सूत्रसे मिलादिया है अर्थात् जीवोंके परस्पर उपकार है (सूत्र २१) और (=च) कालके वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ये पांच उपकार हैं॥ सूत्र२२॥ ऐसे दोनों सूत्रोंको मिलासकते हैं। तथा'शब्द अधिक जान पड़ताहै अंतिम'और' शब्द परत्वापरत्व समासका तोड़नसे "परत्व अपरत्वंच ऐसा होजाता है सो इस चकारका भाषानुवाद है। पंडित सदासुखजीकृत अर्थप्रकाशिका और पंडित जयचंदजीकृत सर्वार्थसिद्धि वचनिका में चकारका भाषानुवाद नहीं है अर्थात् दोनोंमें यथाक्रम ऐसा अर्थ किया है कि "वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए कालकृत उपकार हैं। वर्तना परिणाम क्रिया परत्वा परत्व ए कालके उपकार हैं॥

(ii) द्विवचनान्त क्यों है (उत्तर) संस्कृत सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ५८८ का पाठ है कि ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु =इस सूत्रमें वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये तद्भेदाः परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम् उसके वर्तनाके भेद परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व हैं तिन भेदोंका भिन्न ग्रहण निरप्रयोजन है नानर्थकम् = निष्प्रयोजन परिणामादिका ग्रहण नहीं है॥ कालद्वय सूचनार्थत्वात्प्रपञ्चस्य = क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके लिये विस्तारकर कथन है। कालोहि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च = काल दो प्रकार है परमार्थकाल और व्यवहारकाल

परमार्थकालो वर्तना लक्षणः = वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थकाल है॥ परिणामादि लक्षणो व्यवहारकालः = परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो व्यवहारकाल है॥ जब वर्तना निश्चयकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं तब वर्तना शब्दको एक वचन मानकर और परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व इन सबको एक मानकर दोनोंको मिलाकर वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वे ऐसा द्विवचन किया है। दोनों शंकाओंका समाधान ऐसा होसकता है कि यदि चकारको समुच्चयके अर्थ में लेवें अर्थात् उपकारका प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रको पूर्वके सूत्रमें मिलादिया जावे 'वर्तना'को निश्चयकालका लक्षण मानकर और परिणाम क्रिया परत्वअपरत्वको व्यवहारकालका लक्षण मानकर दोनोंप्रकारके लक्षणोंका एक एक मानकर मिला देवें समास करदेवें तो "वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे कालस्य ऐसा सूत्र होजाता है

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें "वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेच कालस्य" इस सूत्रका यह हेतु दिया है कि 'परत्वापरत्वे (=परत्वं अपरत्वं च) मालूम होनेसे परत्व अपरत्व' का दो शब्द पृथक् पृथक् समझकर नपुंसकलिंगमें द्विवचनमें लाये और वर्तना-परिणाम क्रिया इतनेका एकसमास करके 'वर्तना परिणाम क्रिया' ऐसा स्त्रीलिंग बहुवचनमें लाये क्योंकि क्रियाशब्द स्त्रीलिंग है॥ परत्व अपरत्व दोनों नपुंसकलिंगी हैं और "च" 'वर्तना परिणाम क्रियाः और परत्वा परत्व दोनों समासोंको मिलाता है। अब अर्थ ऐसा हुआ कि वर्तना परिणाम क्रिया और परत्वापरत्व कालके उपकार हैं॥ यहांपर स्मरण रहे कि इस सूत्रमें कालस्य शब्दका प्रयोग सामान्यरूपमें किया है कालशब्द निश्चयकाल और व्यवहारकाल अर्थात् समय मासकी मुहूर्त पहर दिन इत्यादि दोनों का वाचक है इसलिये यह अर्थ हुआ कि 'वर्तना निश्चय या परमार्थकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्व और अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं॥

= (१)वर्तना-परिणाम-क्रिया —च परत्वम् अपरत्वम् च(=परत्वापरत्वे)जीवानाम् पुद्गलानाम् कालस्य उपकार भवति॥२२॥

सूत्रार्थ—वर्तना =वर्तना =पदार्थोंकी पर्यायोंके पूरणकरनेमें बाह्य सहकारता)
परिणाम =परिणाम(=द्रव्यका अपने स्वभावको न छोड़कर पहिली अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थारूप होना)
क्रिया =क्रिया (=हलनचलनादिरूप होना अथवा एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्र तक जाना)
च परत्वम् =और परत्व (=एकसे दूसरेका काल रचित अवस्थामें बड़ापन अथवा पहिले होना या पूर्वता)
अपरत्वम् च =तथा अपरत्व (एक दूसरेका काल रचित अवस्थामें छोटा होना अथवा पिछलापन या छोटापन)
जीवानाम् पुद्गलानाम् =(ये पांच) जीवोंको और पुद्गलोंको
कालस्य उपकार =काल(द्रव्य कृत उपकार है अर्थात् वर्तना लक्षण निश्चय या परमार्थ कालका है और परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व व्यवहार कालके लक्षण हैं भावार्थ यह है कि कालद्रव्य दो प्रकारका है।(१) निश्चयकाल या परमार्थकाल (२) व्यवहारकाल (१) जो आदि तथा अन्तसे रहित है अमूर्त है, नित्य है समय घंटा आदिका उपादानकारण भूत है तो भी समय आदि भेदोंसे रहित है और कालाणुद्रव्यरूप है यह तो निश्चयकाल है बृहद्द्रव्यसंग्रह (पृष्ठ ५४) (२)जो आदि तथा अन्तसे सहित है समय घड़िका तथा प्रहर आदि विवक्षित व्यवहारके विकल्पोंसे युक्त है यह उसी द्रव्यकालका पर्यायभूत व्यवहारकाल है (बृहद्द्रव्य संग्रह पृष्ठ ५४) अथवा यों कहिये कि जीव तथा पुद्गलका परिवर्तन जो नूतन तथा जीर्ण

---

(१)यद्यपि द्रव्य अपनी अपनी पर्यायोंके पूर्णार्थ (=पूरणार्थ)अपने अपने उपादान कारणकरि स्वभावसही वर्ते है तौभी(=तथापि)जैसे कुम्हारके चाकके भ्रमणमें हलक नीचेकी शिलाकीसी सहकारिणी है तैसे जो इस अन्तरंग परिणतिमें अथवा वर्तनेमें बाह्यकारण है सो सब पदार्थोंकी परिणतिमें सहकारी है उसीका "वर्तना" कहते हैं॥

(२) वर्ते तो सर्वद्रव्योंके पर्याय हैं इन द्रव्योंका प्रवर्तानेवाला अथवा हेतुकर्ता कालद्रव्य है तिस समय स्वरूप वर्तनाको कालका वर्तना कहिये (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ४४१) यहां भावार्थ ऐसा है जो धर्मादि द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटते हैं सो इस पलटनेकूं समय है सोही निमित्त मात्र है। तिस समय ही कू कालकी वर्तना कहिये है। यह वर्तना ही कालाणु द्रव्यका अस्तित्व जनावे है। बहुरि इस वर्तनाकू जेती बार लगी ताका नाम काल कहिये। सो यह व्यवहारकालसंज्ञा है। सो तिस निश्चयकालकी अपेक्षा ही है कहिये है ऐसे यह वर्तना द्रव्यनिकू कालका उपकार है। सर्वार्थसिद्धिवचनिका पृष्ठ ४४४

वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा (१)युट् स्त्रीलिङ्गे वर्तते । तेनेति भवति ।

पर्याय है वा पर्यायकी जो समय घटिका आदिरूप स्थिति है वही जिसका स्वरूप है वह द्रव्यपर्यायरूप व्यवहारकाल है सोही संस्कृत प्राभृतमें कहागी है कि "स्थिति जो है सो कालसंज्ञक है" तात्पर्य यह है कि उस द्रव्यके पर्यायसे संबन्ध रखनेवाली जो समय घटिका आदिरूप स्थिति है वह स्थितिही'व्यवहारकाल' इस संज्ञाकी धारक होवीहै ॥ निश्चयकालका वर्तनालक्षण है और व्यवहारकालके परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व लक्षणहैं ये पांचों निश्चयकालके निमित्तसे होवे हैं और अन्य द्रव्योंको यह (निश्चय)कालद्रव्यका उपकार है और उसी परमार्थकालका अस्तित्व जतावे है । क्योंकि व्यवहारकाल गौण निश्चय मुख्यकाल के बिना नहीं होसकता है ॥ व्यवहारकाल अन्यपदार्थों करि जाना जाता है जैसे दिनरात आदिक व्यवहारकाल सूर्यादिकके उदय अस्तसे जाने जावे हैं और व्यवहारकाल ही अन्य पदार्थों के जतलानेका कारण है जैसे यह पुत्र शतवर्षका है ॥ यावें (व्यवहारकालसे)निश्चयकाल जाना जाता है । (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ८४३देखो) 'जीवपुद्गलोंकेपरिणमनकरि व्यवहारकाल प्रगट होय है सो यह व्यवहारकाल तीनप्रकार है' (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ३०६) अतीत(=भूत) वर्तमान अनागत(=भविष्यत) ॥ निश्चयकालविषैं एक एक लोकाकाशके प्रदेशविषैं आपसमें परस्पर भिन्न २ रत्नकी राशिके सदृश तिष्ठते असंख्यातकालाणु तिनकों काल कहना सो तो मुख्य है और भूत वर्तमान भविष्यत् नाम कहना गौणहै और व्यवहारकालविषैं अतीत वर्तमान अन्य गतनाम हैं सो तो मुख्य है और काल कहना गौण है ।

वृत्त्यनुवाद—(२)वृतेः[1] णिच्-अन्तात्[1] =वृत्(=होना)(धातु)से(परें)णिच् (प्रत्यय)के अन्तमें आनेसे (वृत् धातुका) प्रेरक(प्रयोजक हेतुकर्ता या काममें लगानेहारा)अर्थ होजाता है अर्थात् वृत् धातु)अकर्मकसे सहेतुक सकर्मक क्रिया होजातीहै

कर्मणि[1]।। भावे[1] वा=युट्[1] =(सो वृत् धातु)कर्मविषैं(कर्मणि प्रयोगमें)वर्तता है अथवा भावमें युट्(=अन) प्रत्यय सहित

स्त्रीलिङ्गे[1] वर्तते तेन[1] इति=भवति =स्त्रीलिंगमें वर्तता है । तिस (कर्मणि वा भावे) करि ऐसा होता है

(१) पूज्यपाद स्वामीके 'युट्' औपाणिनिके "ल्युट्" और श्रीतत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके रचयिताके युट् प्रत्ययोंके स्थानमें 'अन' होजाता है सूत्रमें 'काल'शब्द सामान्यतासे निश्चय और व्यवहार कालका वाचक है । (२)(क) वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युट् स्त्रीलिङ्गे वर्तते । तेनेति भवति । वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तना इति ॥ ऐसा पाठ सर्वार्थसिद्धिकी वृत्तिकी प्रथमा वृत्तिमें है । (ख) वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युट् स्त्रीलिङ्गे वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ यह पाठ सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीया वृत्तिमें है । द्वितीयावृत्तिके पाठमें 'वर्त्यते'के पश्चात् 'वर्तते' शब्द नहीं होना चाहिये शेष पाठमें यद्यपि दोनों संस्करणों में कुछ अन्तर है परन्तु अर्थ दोनों पाठोंका एकसा बनजाता है जैसे प्रथमके अर्थके लिये देखो इस पृष्ठको और पृष्ठ८५ को । दूसरेके स्त्रीलिङ्गे वर्तनेति भवति वाक्यका अर्थ है कि'स्त्रीलिङ्गमें वर्तना शब्द ऐसा होता है' । दूसरे भागमें 'वर्तते' शब्द इस हेतुसे ठीक नहीं है कि यह 'कर्तरि' प्रधान "वृत्" धातुका है और यहां पर केवल कर्मणि प्रयोग' और भावे प्रयोगमें' वृत्'में णिच् प्रत्यय लगाया है ॥ तीन

= [1]वर्तना-परिणाम-क्रिया –च परत्वम् अपरत्वम् च(=परत्वापरत्वे)जीवानाम् पुद्गलानाम् कालस्य उपकार भवति॥२२॥

सूत्रार्थ —वर्तना	=वर्तना =पदार्थोंकी पर्यायोंके पूरणकरनेमें बाह्य सहकारता)
परिणाम-	=परिणाम(=द्रव्यका अपने स्वभावको न छोड़कर पहिली अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थारूप होना)
क्रिया१	=क्रिया (=हलनचलनादिरूप होना अथवा एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्र तक जाना)
च३परत्वम्१॥	=और परत्व (=एकसे दूसरेका काल रचित अवस्थामें बड़ापन अथवा पहिले होना या पूर्वता)
अपरत्वम्१ ॥ च०	=तथा अपरत्व (एक दूसरेका काल रचित अवस्थामें छोटा होना अथवा पिछलापन या छोटापन)
जीवानाम्१ पुद्गलानाम्१	=(ये पांच) जीवोंको और पुद्गलोंको
कालस्य१ उपकार१	=काल(द्रव्य का उपकार है अर्थात् वर्तना लक्षण निश्चय या परमार्थ कालका है और परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व व्यवहार कालके लक्षण हैं भावार्थ यह है कि कालद्रव्य दो प्रकारका है (१) निश्चयकाल या परमार्थकाल (२) व्यवहारकाल (१) जो आदि तथा अन्तस रहित है अमूर्त है, नित्य है समय घंटा आदिका उपादानकारण भूत है तो भी समय आदि भेदोंसे रहित है और कालाणुद्रव्यरूप है यह तो निश्चयकाल है वृहद्द्रव्यसग्रह (पृष्ठ ५४) (२)जो आदि तथा अन्तसे सहित है समय घटिका तथा मह।आदि विभक्षित व्यवहारके विकल्पोंसे युक्त है वह उसी द्रव्यकालका पर्यायभूत व्यवहारकाल है (वृहद्द्रव्य सग्रह पृष्ठ ५४) अथवा यों कहिये।क जीव तथा पुद्गलका परिवर्तन जोनूतन तथा जीर्ण

(१)धर्मादिक द्रव्यें अपनी अपनी पर्यायोंके पूर्णार्थ (=पूरणार्थ)अपने अपने उपादान कारणकरि स्वभावसहा वर्ते है तीनां(=तथापि)जैसे कुम्हारके चाकके भ्रमणमें उसके नीचेकी शिलाकीली सहकारिणी है तैसे जो उस अन्तरंग परिणतिमें अथवा वर्तनेमें बाह्यकारण है जो सब पदार्थोंकी परिणतिमें सहकारी है उसीका "वर्तना कहते हैं।

(२) वर्ते जो सर्वद्रव्योंके पर्याय हैं उन द्रव्योंका प्रवर्तावनहारा अथवा हेतुकर्ता कालद्रव्य है तिस समय स्वरूप वर्तनाको कालका वर्तना कहिये (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ७७१) यहां भावार्थ ऐसा है जो धर्मादि द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटते हैं सो इस पलटाने रूं समय है सोही निमित्त मात्र है। तिस समय ही कूं कालकी वर्तना कहिये है। यह वर्तना ही कालाणु द्रव्यका अस्तित्व जनावे है। बहुरि इस वर्तनाकू जेती बार लगी ताका नाम काल कहिये। सो यह व्यवहारकालसंज्ञा है। सो तिस निश्चयकालकी अपेक्षा ही तू कहिये है ऐसे यह वर्तना द्रव्यनिकू कालका उपकार है। सर्वार्थसिद्धिवचनिका पृष्ठ ७७५

स्वात्मनैव वर्तमानाना बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्त्यभावात्तत्प्रवर्तनोपलक्षितः कालः

स्व आत्मना॑। एव॰(१) वर्तमानानाम्॥ बाह्य-	=आपसे स्व आत्मना॑।)ही वर्तमानरूप हैं या वर्तनेवाली हैं (तौभी) बाह्य
उपग्रहात्॑। विना॰	=निमित्त विना (सहायता विना या सहारा विना) उन (धर्मादिक द्रव्यों) की
(२) वृत्ति-अभावात्॑।	=अन्तरंग परणति (=वृत्ति) या वर्तना (=वृत्ति) का अभाव होता है। इससे
तत्-प्रवर्तना-उपलक्षितः॑। कालः॑।	=उन (धर्मादिक द्रव्यों)को वर्तनारूपकरनेमें या प्रवर्तावनेमें काल जाना जाता है-निश्चय कियाजाता है या पहचाना जाता है(=उपलक्षित)अर्थात् धर्मादिक द्रव्यें हैं वे स्वयं उपादान कारणकरि अपनी अपनी पर्यायोंके उत्पत्तिरूप वर्तती हैं तौभी उनकी उक्त पर्यायोंके

लिये बाह्य कारणकी आवश्यकता है, बाह्य निमित्त विना अन्तरंग परणति नहीं होसकती है, सो तिस अन्तरंग परणति अथवा प्रवर्तनेका समय है सो परमार्थकालका चिन्ह है॥ जैसे एक मनुष्य जिसकी पदार्थों के देखनेकी शक्ति विद्यमान है परन्तु उस को यदि बहुत अंधेरेमें लेजाकर पदार्थ दिखाये जावें तो वह किसी प्रकार किसीभी पदार्थको नहीं देख सकता है क्योंकि बाह्य सहकारी कारण अर्थात् उजेला नहीं है इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें अन्तरंग शक्ति वर्तनकी विद्यमान है तौभी द्रव्यकाल या निश्चयकालकी सहायता विना वे द्रव्य वर्तनेमें असमर्थ हैं। इनद्रव्योंको(३)वर्तनारूप करनेमेंही निश्चयकालका अस्तित्व ज्ञात होता है॥

(१) 'धर्मादीनां' और वर्तमानानां येदोनों शब्द'द्रव्याणां' शब्दसे सम्बन्ध रखतेहैं और'द्रव्याणां शब्दके विशेषणहैं,अत नपुंसकलिंगमें प्रयोगमें आये हैं।

(२) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ १६७ में 'वृत्ति'शब्दका अर्थ"अन्तःकरणका परिणामविशेष'और 'वर्तन' लिखाहै।इसलिये अन्तरंग परणति(पं०सदासुखजी के अनुसार) और वर्तना (पं० जयचन्द्रजीके अनुकूल) यहां पर "वृत्ति" शब्दका अनुवाद कियागया है॥

(३) व्याकरण शास्त्रमें करण और अधिकरण अर्थ में धातुओंसे युट् प्रत्ययका विधान माना है। यदि यहां पर 'वर्तीङ् वर्तने' धातुसे करण और अधिकरण अर्थ में युट् प्रत्यय कर एवं 'वर्तते अनया अस्यामिति वर्तना' अर्थात् जिसके द्वारा या जिसमें वर्तन किया जाय वह वर्तना है ऐसा विग्रह कर वर्तना शब्द सिद्ध किया जायगा तो यह नियम है जिन प्रत्ययोंका ट् इत्संज्ञक चलाजाता है उनसे ङी प्रत्यय होता है। यहांपरभी युट्में ट् इत्संज्ञक जानेसे ङी प्रत्यय होगा अतः 'वर्तनी'ऐसारूप सिद्ध होगा'वर्तना'नहीं फिर सूत्रमें 'वर्तना'शब्दका उल्लेख अशुद्धहै?(उत्तर)यहांपर णिच्प्रत्ययान्त'वृतीङ्' धातुसे स्त्रीलिंगमें कर्म और भावरूप अर्थ'के विविक्षित रहनेपर युच् प्रत्यय कर वर्तना शब्दकी सिद्धि कीगई है इसलिये यहांपर ङी प्रत्ययकी कोई संभावना नहीं॥ वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना' अर्थात् जो वर्तन स्वरूप हो वह 'वर्तना' है ऐसा वर्तना शब्दका विग्रह हुआ॥ अथवा "अनुदात्तेतश्च हलादेः/ताच्छीलिके वा" जिसका अनुदात्त इत् जाता है उससे ताच्छीलिक अर्थ में अर्थात् 'वह उसका स्वभाव ही हो' इस अर्थ में व्याकरणशास्त्रकेभीतर 'युच्' प्रत्ययका विधान माना है 'वृतीङ्' धातुका अनुदात्त इत्संज्ञक है इसलिये ताच्छीलिक अर्थ में युच् प्रत्ययकर वर्तना शब्दकी सिद्धि हुई है॥ वर्तनशीला वर्तना अर्थात् वर्तन-परिवर्तन करना ही जिसका स्वभाव हो वह वर्तना है। यह वर्तना शब्दका विग्रह है॥

वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायनिर्वृत्तिं प्रति

वर्त्यते ।=वर्ताया जाता है (यह वाक्य कर्मणिप्रयोगमें या कर्मप्रधानमें न कि कर्तरिप्रयोग वा कर्तृप्रधानमें है)

वर्तनमात्रं ।।। वा॰ वर्तना ॥ इति॰ =अथवा वर्तनेमात्र या वर्तनमात्र है सो वर्तना ऐसा (भावेप्रयोग=भावमें काम लायागया) है । सो वर्तनाशब्द ऐसे बनाहै कि वृत्+णिच्+युट्+आ (=स्त्रीलिंगका चिन्ह)=वर्त्+अन+आ=वर्तना णिच्के लगानेसे ऋको गुणसंज्ञा होकर वर्त् होगया और सहेतुक सकर्मक क्रिया होगई ॥ वर्तना=दूसरोंको प्रवर्तावना अर्थात् पदार्थोंमें परिणमन में सहकारिता । भावार्थ यह है कि वृत् धातुके अन्तमें णिच्प्रत्यय लगाया जिस णिच् प्रत्ययका यह फल होताहै कि वृत् धातुके ऋको गुणसंज्ञाहोकर वर्त् शब्द बनजाताहै और वृत् अकर्मक धातुको (णिच्प्रत्यय) सहेतुक सकर्मक करदेता है अर्थात् वृत् धातुका अर्थ (दूसरोंको) वर्तावना ऐसा होजाता है फिर युट् प्रत्यय (जिसके स्थानमें अन होजाता है) जोड़ा जाता है तब वर्त्+अन=वर्तन शब्द बना पश्चात् 'आ' स्त्रीलिंगका चिन्ह जोड़नेसे वर्त्+अन+आ होजाता है इसलिये वर्तना शब्द स्त्रीलिंग भाव प्रयोगमें बना और उपर्युक्त कथित 'वर्त' धातुमें य कर्मप्रधानका चिन्ह जोड़कर फिर अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपद वर्तमान क्रियाकाचिन्ह 'ते' लगाते हैं तब वर्त्+य+ते=वर्त्यते कर्मप्रधानमें) बनगया इस 'वर्त्यते' काअर्थ वर्तायाजाताहै इसलिये 'वर्तना' भावप्रयोग स्त्रीलिंगमें बना और 'वर्त्यते' कर्मप्रधान, एकवचन, अन्यपुरुष वर्तमानक्रियाका रूप बना॥

धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्याय निर्वृत्तिं ॥ प्रति॰ =धर्मादिक द्रव्यों अपने अपने पर्यायोंके निर्वृत्तिके लिये (=निर्वृत्ति प्रति)

प्रोन हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिमें 'वर्ति स्वात्मिने वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तनेति' ऐसा पाठ है ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकका पाठ कि ... (कर्मविवक्षा वा विवक्षात्) वृत्ति सति वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तनेति' ऐसा है ॥ इसलिये हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है ॥

(१) प॰ ... ... (पृष्ठ ४४१)में ... किया है सम्भव है कि जिस पाठमें उन्होंने व्याख्या की हो उस पाठमें निर्वृत्ति'के स्थानमें उत्पत्ति वृत्ति या निर्वृत्ति ... शब्द हो क्योंकि इन तीन शब्दोंमेंसे कोईभी उत्पत्तिके अर्थमें आसकता है परन्तु निर्वृत्ति"का अर्थ उत्पत्ति नहीं होसकता है राजवार्तिक और श्लोकवार्तिककी अवलोकन कियेगये परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई ॥ "निर्वृत्ति शब्द सर्वार्थसिद्धि व लिखी हस्तलिखित तीन प्रतियोंमें पायाजाता है परन्तु सर्वार्थसिद्धिकी दोनों ... 'निवृत्ति' छपा हुआ है ॥ इससे मैंने उस शब्दको लेकर अनुवाद किया है और मेरी समझमें एक प्रकारसे दोनोंही शब्दोंसे एकही भाव प्रगट होसकता है क्योंकि किसी द्रव्यकी एक पर्यायकी जिस समय निवृत्ति होती है उसी समयमें दूसरी पर्यायकी उत्पत्ति वा निर्वृत्ति होती है अथवा यों कहसकते हैं किसी द्रव्यकी जिस समय एक पर्यायकी उत्पत्ति होती है उसी समय उस द्रव्यकी दूसरी पर्यायकी निर्वृत्ति होती है जैसे जिस समयमें अंगुलिरूप द्रव्यके वक्र (बांके) प्रायायकी उत्पत्ति होती है उसी समयमें उसके सरल प्रयायकी निवृत्ति होती है और अंगुलीरूपसे उस अंगुलीमें ध्रौव्य है अथवा यों कहलना चाहिये कि जिससमयमें अंगुलिरूप द्रव्यके सरल पर्यायकी निवृत्ति होती है उसी समयमें उसकी वक्री पर्यायकी उत्पत्ति होती है ॥ वृत्=... (... पृष्ठ १६४ ... 'वृत्ति' स्त्रीलिंगमें उत्पत्ति के अर्थमें आसकता है ॥

स्वात्मनैव वर्तमानानां बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्त्यभावात्तत्प्रवर्तनोपलक्षित काल

स्व आत्मना[१] एव(१)वर्तमानानाम्[१] बाह्य-	=आपसे स्व आत्मना[१] ही वर्तमानरूप हैं या वर्तनेवाली हैं (तौभी) बाह्य
उपग्रहात्[१] विना	=निमित्त बिना (सहायता बिना या सहारा बिना) उन (धर्मादिक द्रव्यों) की
(२)वृत्ति-अभावात्[१]	=अन्तरंग परणति (=वृत्ति) या वर्तना (=वृत्ति) का अभाव होता है। इससे
तत् प्रवर्तना-उपलक्षितः[१] कालः[१]	=उन (धर्मादिक द्रव्यों)को वर्तनारूपकरनेमें या प्रवर्तावनेमें काल माना जाता है-निश्चय किया जाता है या पहचाना जाता है(=उपलक्षित')अर्थात् धर्मादिक द्रव्यें हैं वे स्वयं उपादान कारणकरि अपनी अपनी पर्यायोंके उत्पत्तिरूप वर्तती हैं तौभी उनकी उक्त पर्यायोंके

लिये बाह्य कारणकी आवश्यकता है, बाह्य निमित्त बिना अन्तरंग परणति नहीं होसकती है, सो तिस अन्तरंग परणति अथवा प्रवर्तनेका समय है सो परमार्थकालका चिन्ह है॥ जैसे एक मनुष्य जिसकी पदार्थों के देखनेकी शक्ति विद्यमान है परन्तु उस को यदि बहुत अंधेरेमें लेजाकर पदार्थ दिखाये जावें तो वह किसी प्रकार किसीभी पदार्थको नहीं देख सकता है क्योंकि बाह्य सहकारी कारण अर्थात् उजेला नहीं है इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें अन्तरंग शक्ति वर्तनेकी विद्यमान है तौभी द्रव्यकाल या निश्चयकालकी सहायता बिना वे द्रव्य वर्तनेमें असमर्थ हैं। इनद्रव्योंको(३)वर्तनारूप करनेमेंही निश्चयकालका अस्तित्व ज्ञात होता है॥

(१) 'धर्मादीनां' और 'वर्तमानानां' येदोनों शब्द 'द्रव्याणां' शब्दसे सम्बन्ध रखतेहैं और 'द्रव्याणां' शब्दके विशेषणहैं अत नपुंसकलिंगमें रक्खेगये हैं।

(२) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ११७ में 'वृत्ति'शब्दका अर्थ 'अन्तःकरणका परिणामविशेष' और 'वर्तन' लिखाहै। इसलिये अन्तरंग परणति(पं० सदासुखजी के अनुसार) और वर्तना (पं० जयचन्द्ररायजीके अनुकूल) यहां पर "वृत्ति" शब्दका अनुवाद कियागया है।

(३) व्याकरण शास्त्रमें करण और अधिकरण अर्थ में धातुओंसे युट् प्रत्ययका विधान माना है। यदि यहां पर 'वृतोङ् वर्तने' धातुसे करण और अधिकरण अर्थ में युट् प्रत्यय कर एवं 'वर्तते अनया अस्यांवेति वर्तना' अर्थात् जिसके द्वारा या जिसमें वर्तन किया जाय वह वर्तना है ऐसा विग्रह कर वर्तना शब्द सिद्ध किया जावगा तो यह नियम है जिन प्रत्ययोंका ट् इत्संज्ञक चलाजाता है उनसे ङी प्रत्यय होता है। यहांपरभी युट्में ट् इत्संज्ञक जानेसे ङी प्रत्यय होगा अतः 'वर्तनी' ऐसारूप सिद्ध होगा 'वर्तना' नहीं फिर सूत्रमें 'वर्तना' शब्दका उल्लेख असुन्दर है(उत्तर)यहांपर णिच्प्रत्ययांत 'वृतोङ्' धातुसे स्त्रीलिंगमें कर्म और भावरूप अर्थ के विवक्षित रहनेपर युच् प्रत्यय कर वर्तना शब्दकी सिद्धि कीगई है इसलिये यहांपर ङी प्रत्ययकी कोई सम्भावना नहीं। 'वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना' अर्थात् जो वर्तन स्वरूप हो वह 'वर्तना' है ऐसा वर्तना शब्दका विग्रह हुआ। अथवा "अनुदात्तेतश्च हलादेः" जिसका अनुदात्त इत् जाता है उससे ताच्छीलिक अर्थ में अर्थात् 'वह उसका स्वभाव ही हो' इस अर्थ में व्याकरणशास्त्रकेभीतर 'युच्' प्रत्ययका विधान माना है 'वृतोङ्' धातुका अनुदात्त इत्संज्ञक है इसलिये ताच्छीलिक अर्थ में युच् प्रत्ययकर वर्तना शब्दकी सिद्धि हुई है। वर्तनशीला वर्तना अर्थात् वर्तन-परिवर्तन करना ही जिसका स्वभाव हो वह वर्तना है। यह वर्तना शब्दका विग्रह है॥

वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायनिर्वृत्तिं प्रति

वर्त्यते। =वर्तायाजाता है (यह वाक्य कर्मणिप्रयोगमें या कर्मप्रधानमें न कि कर्तरिप्रयोग वा कर्तृप्रधानमें है)

वर्तनमात्रं (१) वा वर्तना (१)॥ इति॥ =प्रवर्तावनेमात्र वा वर्तनमात्र है सो वर्तना ऐसा(भावप्रयोग=भावमें काम लायागया) है । सो वर्तनाशब्द ऐसे बनाहै कि वृत् + णिच् + युट – आ (=स्त्रीलिंगका चिन्ह)=वर्त् + अन + आ=वर्तना णिच्के लगानेसे ऋको गुणसंज्ञा होकर वर्त् होगया और सहेतुक सकर्मक क्रिया होगई ॥ वर्तना=दूसरोंको प्रवर्तावना अर्थात् पदार्थोंमें परिणमन में सहकारिता । भावार्थ यह है कि वृत् धातुके अन्तमें णिच्प्रत्यय लगाया जिस णिच् प्रत्ययका यह फल होताहै कि वृत् धातुके ऋको गुणसंज्ञाहोकर वर्त् शब्द बनजाताहै और वृत् अकर्मक धातुको (णिच्प्रत्यय) सहेतुक सकर्मक करदेता है अर्थात् वृत् धातुका अर्थ (दूसरोंको) वर्तावना ऐसा होजाता है फिर युट् प्रत्यय जिसके स्थानमें अन होजाता है जोड़ा जाता है तब वर्त् + अन=वर्तन शब्द बना पश्चात् 'आ' स्त्रीलिंगका चिन्ह जोड़नेसे वर्त् + अन – आ होजाता है इसलिये वर्तना शब्द स्त्रीलिंग भाव प्रयोगमें बना और उपर्युक्त कथित 'वर्त्' धातुमें य कर्मप्रधानका चिन्ह जोड़कर फिर अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपद वर्तमान क्रियाकाचिन्ह'ते'लगाते हैं तब वर्त् + य + ते=वर्त्यते कर्मप्रधानमें)बनगया इस'वर्त्यते'का अर्थ वर्तायाजाताहै इसलिये 'वर्तना'भावप्रयोगस्त्रीलिंगमें बना और'वर्त्यते'कर्मप्रधान,एकवचन,अन्यपुरुष वर्तमानक्रियाका रूप बना॥

धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्याय निर्वृत्तिं (१)॥ प्रति॥ =धर्मादिक द्रव्योंके अपने अपने पर्यायोंके निर्वृत्तिके लिये (=निर्वृत्ति प्रति)

प्राप्त हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिमें 'वर्तते स्वात्मनैव वर्तमानमिति भवति । वर्त्यते वर्तमानमात्रं वा वर्तनेति ऐसा पाठ है । तत्त्वार्थराजवार्तिकका पाठ कि स्वौमिते (कर्मविशाय वा विज्ञनान्) वृत्ति वर्ति वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तनेति' ऐसा है । इसलिये हमने प्रथमायुक्तिका पाठ किया है ।

(१) प जयचन्द्ररायजी न वचनिका (पृष्ठ ७७१)में अस्पष्ट लिखा है सम्भव है कि जिस पाठसे इन्होंने वचनिका की हो उस पाठमें निवृत्ति के स्थानमें उत्पत्ति वृत्ति वा निर्वृत्ति मेंसे कोई शब्द हो क्योंकि इन तीन शब्दोंमेंसे कोई भी उत्पत्तिके अर्थमें आसकता है परन्तु निवृत्ति"का अर्थ उत्पत्ति नहीं होसकता है राजवार्तिक और श्लोकवार्तिककी अवलोकन कियागये परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई । "निर्वृत्ति' शब्द सर्वार्थसिद्धि व लिखी हस्तलिखित तीन प्रतियोंमें पायाजाता है परन्तु सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें 'निवृत्ति' छपा हुआ है । इससे मैंने उस शब्दको लेकर अनुवाद किया है और मेरी समझमें एक प्रकारसे दोनोंही शब्दोंसे एकही भाव प्रगट होसकता है क्योंकि किसी द्रव्यकी एक पर्यायकी जिस समय निवृत्ति होती है उसी समयमें दूसरी पर्यायकी उत्पत्ति वा निर्वृत्ति होती है अथवा यों कहसकते हैं किसी द्रव्यकी जिस समय एक पर्यायकी उत्पत्ति होती है उसी समय उस द्रव्यकी दूसरी पर्यायकी निवृत्ति होती है जैसे जिस समयमें मोतीरूप द्रव्यके वाद (पीछे) प्रभावकी उत्पत्ति होती है उसी समयमें इसके सरल प्रभावकी निवृत्ति होती है और अणुओंरूपसे सब अणुओंमें ध्रौव्य है अथवा यों कहना चाहिये कि जिससमयमें अणुलिरूप द्रव्यके सरल पर्यायकी निवृत्ति होती है उसी समयमें उसकी वक्री पर्यायकी उत्पत्ति होती है । वृत्त=उत्पन्न (पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ १९५ तथा 'वृत्ति' स्त्रीलिंगमें उत्पत्ति के अर्थमें आसकता है ।

८०

स्वात्मनैव वर्तमानानां बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्त्यभावात्तत्प्रवर्तनोपलक्षित कालः

स्व आत्मना[१] एव(१) वर्तमानानाम्[२] बाह्य- =आपसे स्व-आत्मना[१]ही वर्तमानरूप हैं या वर्तनेवाली हैं (तौभी) बाह्य

उपग्रहात्[३] विना =निमित्त विना (सहायता विना या सहारा विना) उन (धर्मादिक द्रव्यों) की

(२) वृत्ति-अभावात्[४] =अन्तरंग परणति (=वृत्ति) या वर्तना (=वृत्ति) का अभाव होता है। इससे

तत् प्रवर्तना-उपलक्षितः[५] कालः[६] =उन (धर्मादिक द्रव्यों)को वर्तनारूपकरनेमें या प्रवर्तानेमें काल जाना जाता है-निश्चय क्रियावानों या पहचाना जाता है(=उपलक्षितः) अर्थात् धर्मादिक द्रव्यें हैं वे स्वयं उपादान कारणकरि अपनी अपनी पर्यायोंके उत्पत्तिरूप वर्तती हैं तौभी उनकी उक्त पर्यायोंके लिये बाह्य कारणकी आवश्यकता है, बाह्यनिमित्त विना अन्तरंग परणति नहीं होसकती है, सो तिस अन्तरंग परणति अथवा प्रवर्तनेका समय है सो परमार्थकालका चिन्ह है॥ जैसे एक मनुष्य जिसकी पदार्थों के देखनेकी शक्ति विद्यमान है परन्तु उस को यदि बहुत अंधेरेमें लेजाकर पदार्थ दिखाये जावें तो वह किसी प्रकार किसीभी पदार्थको नहीं देख सकता है क्योंकि बाह्य सहकारी कारण अर्थात् उजेला नहीं है इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें अन्तरंग शक्ति वर्तनेकी विद्यमान है तौभी द्रव्यकाल या निश्चयकालकी सहायता विना ये द्रव्य वर्तनेमें असमर्थ हैं। इनद्रव्योंको(३)वर्तनारूप करनेसेही निश्चयकालका अस्तित्व ज्ञात होता है॥

---

(१) 'धर्मादीनां' और 'वर्तमानानां' येदोनों शब्द 'द्रव्याणां' शब्दसे सम्बन्ध रखतेहैं और द्रव्याणां शब्दके विशेषणहैं अत नपुंसकलिंगमें रक्खेगये हैं।

(२) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ६६७ में 'वृत्ति'शब्दका अर्थ 'अन्तःकरणका परिणामविशेष' और 'वर्तन' लिखाहै इसलिये अन्तरंग परणति(पं॰सदासुखजी के अनुसार) और वर्तना (पं॰ जयचन्द्रायजीके अनुकूल) यहां पर 'वृत्ति' शब्दका अनुवाद कियागया है॥

(३) व्याकरण शास्त्रमें करण और अधिकरण अर्थ में धातुओंसे युट् प्रत्ययका विधान माना है। यदि यहां पर 'वर्तीङ् वर्तने' धातुसे करण और अधिकरण अर्थ में युट् प्रत्यय कर एवं 'वर्तते अनया अस्यांवेति वर्तना' अर्थात् जिसके द्वारा या जिसमें वर्तन किया जाय वह वर्तना है ऐसा विग्रह कर वर्तना शब्द सिद्ध किया जायगा तो यह नियम है जिन प्रत्ययोंका ट् इत्संज्ञक बताजाता है उनसे ङी प्रत्यय होता है। यहांपरभी युट्में ट् इत्संज्ञक जानेसे ङी प्रत्यय होगा तथा 'वर्तनी'ऐसारूप सिद्ध होगा'वर्तना'नहीं फिर सूत्रमें 'वर्तना'शब्दका उल्लेख असुद्धहै?(उत्तर)यहांपर विधप्रत्ययांत'वृतीङ्' धातुसे स्त्रीलिंगमें कर्म और भावरूप अर्थ के विविक्षित रहनेपर युच् प्रत्यय कर वर्तना शब्दकी सिद्धि कीगई है इसलिये यहांपर ङी प्रत्ययकी कोई संभावना नहीं॥ 'वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तना' अर्थात् जो वर्तन स्वरूप हो वह 'वर्तना' है ऐसा वर्तना शब्दका विग्रह हुआ॥ अथवा "अनुदात्तेत्वाच्च हलादेः" जिसका अनुदात्त हो जाता है उससे ताच्छीलिक अर्थ में अर्थात् 'वह उसका स्वभाव ही हो' इस अर्थ में व्याकरणशास्त्रकेभीतर 'युच्' प्रत्ययका विधान माना है 'वृतीङ्' धातुका अनुदात्त इत्संज्ञक है इसलिये ताच्छीलिक अर्थ में युच् प्रत्ययकर वर्तना शब्दकी सिद्धि हुई है॥ वर्तनशीला वर्तना अर्थात् वर्तन-परिवर्तन करना ही जिसका स्वभाव हो वह वर्तना है। यह वर्तना शब्दका विग्रह है॥

इति कृत्वा वर्तना कालस्योपकार ॥ को णिजर्थ ? । वर्तते द्रव्यपर्यायस्तस्य वर्तयिता काल ॥ यद्येव कालस्य क्रियावत्वं प्राप्नोति । यथा शिष्योऽधीते, उपाध्यायोऽध्यापयतीति ॥ नैष दोष । निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्ट । यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति। एव कालस्य हेतुकर्तृता ॥

इति॰कृत्वा॰वर्तना॥ कालस्य॥ उपकार॥ । =इस प्रकार करके (समयरूप) वर्तना कालका उपकार है ।

क॥ णिच्॥ अर्थ॥ ? वर्तते॥ द्रव्य =(वृत्‌धातुमें)णिच् प्रत्यय जो लगाया है,किसलिये है(उत्तर)वर्तती है द्रव्यकी

पर्याय॥ तस्य॥ (१)वर्तयिता॥ काल॥ ॥ =पर्याय, तिस(द्रव्यकी पर्याय)का वर्तावनेवाला काल है अर्थात् 'णिच्' प्रत्यय प्रयोजनके हेतुकर्ता विषैं (जो कुछ हमारा प्रयोजन है उसके प्रेरकके प्ररणा करनेवालेके अर्थ विषैं यहां द्रव्यके वर्तावनेका प्रयोजन है) अथवा प्रयोजनके प्रेरक विषैं आया है भावार्थ ऐसा है कि धर्मादिक द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटत हैं सो इस पलटनेका समय जो काल सोही (इस पलटनेकों) निमित्त है अतः इस प्रकार कहते है कि द्रव्योंकी पर्यायें वर्तती हैं तिन पर्यायोंका वर्तावनेवाला द्रव्यकाल अथवा निश्चयकाल है ॥

यदि॰एवम्॰कालस्य॥ क्रियावत्त्वम्॥ प्राप्नोति । =जो ऐसे है(कि काल वर्तावनेवाला है)तो कालके क्रियावान्‌पना प्राप्त होता है

यथा॰शिष्य॥ अधीते, उपाध्याय॥ अध्यापयति इति =जैसे शिष्य पढता है गुरु पढाता है ऐसा (होता है

न॰एष॥ दोष॥ ; निमित्तमात्रे॥ अपि॰ =(उत्तर)यह दूषण नहीं है । निमित्त कारणमात्रमेंभी(नकि उपादान कारणमात्रमें)

हेतुकर्तृव्यपदेश॥ दृष्ट॥ ; यथा॰कारीष॥ =हेतु कर्ताका कथन या नाम देखाजाता है जैसे कारीष अथवा कंडेकी

अग्नि॥ अध्यापयति । =आग (शीतकालमें) पढाती है अर्थात् शीतकालमें शिष्य कंडेकी आगके सहारेसे स्वयं पढते हैं परन्तु ससार में ऐसेभी कहते हैं कि जाडेकी ऋतुमें अथवा जडकालमें कंडेकी आग शिष्यको पढाती है ।

एवम्॰कालस्य॥ हेतुकर्तृता॥ =ऐसे कालके (पदार्थों के वर्तावनेमें) हेतुकर्तापना या प्रेरकपना है ॥

(१) जैसे पितृ शब्दकी प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग 'पिता' शब्द है तैसे 'वर्तयितृ पुल्लिंग शब्दका वर्तयिता एकवचन प्रथमाविभक्तिपुल्लिंग बनताहै ।

स कथं काल इत्यवसीयते ? समयादीनां क्रियाविशेषाणां समयादिभिर्निर्वर्त्यमानानां च पाकादीनां समय पाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढिसद्भावेऽपि समय कालः, ओदनपाककाल इति अध्यारोप्यमाणः कालव्यपदेशः ।

सः कथम् कालः इति अवसीयते ? =(प्रश्न)सो(करीपाके आगके दृष्टान्तवत्)कैसे काल जाना जाता है? या निश्चय किया जाता है!
समय-आदीनाम् (१) क्रियाविशेषाणाम् =समय आदिक क्रियाके विशेषोंके
(किसी विशेष क्रिया वा अमुक क्रिया करनेमें जो समयादिक व्यतीत होते हैं सो)
समय आदिभिः निर्वर्त्यमानानाम् च पाक-आदीनाम् =तथा (=च)समय आदिकरि कियेहुए पाकआदिकोंका
समयः पाकः इत्येवम्-आदि (२) स्वसंज्ञारूढि =समय पाक इत्यादिमें स्वसंज्ञारूढि
सद्भावे अपि =होनेपर भी अर्थात् अपनी अपनी समय और पाककी संज्ञा प्रसिद्ध होनेपर भी
समयः कालः ओदनपाककालः इति अध्यारोप्यमाणः =समयकाल तथा भातका पाककाल(अनुक्रमसे)ऐसा आरोपणकरि
काल-व्यपदेशः। =(व्यवहार)कालका कथन होता है भावार्थ यह है कि किसी क्रिया करनेमें जो समय आवली, घंटा, वा दिन आदि लगता है तथा किसी कार्य जैसे भात ओषधि रसोई आदि करनेमेंजो समय,आवली,घंटा [redacted] दिन आदि व्यतीत होवाहै उसको(क्रमसे)समयकाल-आवलीकाल-घंटाकाल-दिवसकाल कहते हैं तथा ओदन(भात)पाककाल, ओषधि पाककाल, रसोई पाककाल कहते हैं सो यह समय, आवली तथा घंटा आदि व्यवहारकालका कथन है अर्थात् समय, आवली, घंटा तथा दिन आदि व्यवहारकाल है।

(२) 'असंज्ञारूढि'-सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें 'स्वसंज्ञारूढि' के स्थानमें 'असंज्ञारूढि' अशुद्ध छपगयाहै। असंज्ञारूढि शब्दका कुछभी यौगिकअर्थ नहीं हसाहै असंज्ञारूढि होनेपर असंज्ञा कैसे रूढि [redacted] प्रसिद्ध होसकती है अतः पाठ शुद्ध करदियागयाहै ॥ सर्वार्थसिद्धि तीन हस्तलिखितप्रतियोंमें भी तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके "समयपाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढि सद्भावेऽपि" वाक्यमें जो शब्द या सर्वार्थसिद्धिके पाठसे मिलता है 'स्वसंज्ञारूढि' शब्द पाया जाता है।

(१) पुद्गल परमाणुका चलकरी एक अणुसे दूसरी अणुतक मन्दगति जानेमें अथवा लोकाकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशतक मंदगति जानेमें जोकाल व्यतीत होता है उसको समय कहते हैं। ऐसा करनेमें पुद्गल परमाणुकी जाने रूपक्रियाको विशेष क्रिया कहसकते हैं ॥ 'एक काल अणुसेती दूजी अणु पुद्गल पुद्गलकी परमाणु तहां समय होत है। असंख्य करोरी घरी मुहूरत दिन होय मास रितु वर्ष, ऐसे व्यवहारिक काल होत है। नई वस्तु जोपी करै परावर्त काल धरै सोई व्यवहारकाल विनाशीक होत है। अतीत अनागत वरतमान परजाय कालानु दर्श दाखी आकेवर और देखामतविलास ॥

इति कृत्वा वर्तना कालस्योपकार ॥ को णिजर्थ ? । वर्तते द्रव्यपर्यायस्तस्य वर्तयिता काल ॥ यद्येवं कालस्य क्रियावत्त्वं प्राप्नोति । यथा शिष्योऽधीते, उपाध्यायोऽध्यापयतीति ॥ नैष दोष । निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्ट । यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति । एव कालस्य हेतुकर्तृता ॥

इति कृत्वा वर्तना कालस्य उपकार ; =इस प्रकार करके (समयरूप) वर्तना कालका उपकार है ।
क णिच् अर्थ ? वर्तते द्रव्य =(धातुमें) णिच् (प्रत्यय जो लगाया है) किसलिये है (उत्तर) वर्तती है द्रव्यकी
पर्याय तस्य (१) वर्तयिता काल ॥ =पर्याय, तिस (द्रव्यकी पर्याय) का वर्तावनेवाला काल है अर्थात् 'णिच्' प्रत्यय प्रयोजनके हेतुकर्ता विषैं (जो कुछ हमारा प्रयोजन है उसके प्रेरकके प्रेरणा करनेवालेके अर्थ विषैं यहां द्रव्यके वर्तावनेका प्रयोजन है) अथवा प्रयोजनके प्रेरक विषैं आया है भावार्थ ऐसा है कि धर्मादिक द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटते हैं सो इस पलटनेका समय जो काल सोही (इस पलटनेकों) निमित्त है अतः इस प्रकार कहते है कि द्रव्योंकी पर्यायें वर्तती हैं तिन पर्यायोंका वर्तावनेवाला द्रव्यकाल अथवा निश्चयकाल है ॥

यदि एवम् कालस्य क्रियावत्त्वम् प्राप्नोति । =जो ऐसे है (कि काल वर्तावनेवाला है) तो कालके क्रियावान्पना प्राप्त होता है
यथा शिष्य अधीते, उपाध्याय अध्यापयति इति =जैसे शिष्य पढ़ता है गुरु पढ़ाता है ऐसा (होता है
न एष दोष, निमित्तमात्रे अपि =(उत्तर) यह दूषण नहीं है । निमित्त कारणमात्रमेंभी (नकि उपादान कारणमात्रमें)
हेतुकर्तृ व्यपदेश दृष्ट, यथा कारीष =हेतु कर्ताका कथन वा नाम देखाजाता है जैसे कारीष अथवा कंडेकी
अग्नि अध्यापयति । =आग (शीतकालमें) पढ़ाती है अर्थात् शीतकालमें शिष्य कंडेकी आगके सहारेसे स्वयं पढ़ते हैं परन्तु संसार में ऐसेभी कहते हैं कि जाड़ेकी ऋतुमें अथवा जड़कालमें कंडेकी आग शिष्यको पढ़ाती है ।
एवम् कालस्य हेतुकर्तृता ॥ =ऐसे कालके (पदार्थों के वर्तावनेमें) हेतुकर्तापना वा प्रेरकपना है ॥

(१) जैसे पितृ शब्दकी प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग 'पिता' शब्द है तैसे 'वर्तयितृ पुल्लिंग शब्दका वर्तयिता एकवचन प्रथमाविभक्तिपुल्लिंग बनता है ।

वृद्धिहानिकृत ॥ क्रिया परिस्पन्दात्मिका । सा द्विविधा । प्रायोगिकवैस्रसिकभेदात् । तत्र प्रयोगिकी शकटादीनां, वैस्रसिकी मेघादीनाम् ॥ परत्वापरत्वे क्षेत्रकृते कालकृते स्त । तेऽत्र कालोपकरणात्कालकृते गृह्यते ॥ त एते वर्तनादय उपकाराः कालस्यास्तित्वं गमयन्ति ॥ ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु, तद्भेदा परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्। नानर्थकम् । कालद्वयसूचनार्थत्वात्

वृद्धि-हानि कृत = वृद्धिहानिरूप होना(परिणाम)है । क्रिया = परिस्पन्द-आत्मिका = हिलनेचलनेरूप है सो क्रिया है ॥ प्रायोगिक वैस्रसिक भेदात् = प्रायोगिक तथा वैस्रसिक भेदसे सा = वह(क्रिया) द्विविधा = दो प्रकार है । तत्र = तहां प्रायोगिकी = प्रायोगकी क्रिया अर्थात्

शकटादीनाम् = (अन्यके प्रयोगसे होनेवाली क्रिया) जैसे गाडी आदिकका(बैलों द्वारा चलना)

वैस्रसिकी = वैस्रसिकी अर्थात् स्वयं वा निजस्वभावसे विना किसी अन्यके निमित्तसे होनेवाली

मेघादीनाम् = (जैसे)बादलादिका (=मेघादीनाम्) ॥ परत्व अपरत्वे = परत्व और अपरत्व क्षेत्रकृते = क्षेत्रकृत

कालकृते = (और)कालकृत(दोनों प्रकारके) स्तः = हैं, ते = वे अत्र = यहां कालोपकरणात् = कालका प्रधान साधन होनेसे

कालकृते = कालकृत या कालसंबंधीय (जो परत्व अपरत्व विषयभूत होनसे) गृह्यते = लियेगये हैं

ते = वे एते = एते वर्तनादय = वर्तनादिक उपकाराः = उपकार(निश्चय-मुख्य-वा परमार्थ) कालस्य = कालकी

अस्तित्वम् = विद्यमानताको गमयन्ति = जताते हैं अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व ये सब कालके निमित्त (=उपकार)से होते हैं और इन्हींसे निश्चयकाल, परमार्थकाल, मुख्यकाल वा असंख्यातकालाणुरूप द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता है ॥

ननु = वर्तना-ग्रहणम् = प्रश्न (इस सूत्रमें)वर्तनाका ग्रहणही एव = होना अस्तु = चाहिये, तद् = उस (वर्तना)के भेदाः = भेद

परिणाम-आदयः = परिणाम-क्रिया-परत्व अपरत्व हैं । तेषां = उन भेदोंका पृथग्-ग्रहणम् = पृथक् ग्रहण अनर्थकं = व्यर्थ है

न अनर्थकम् = उत्तर(परिणाम क्रिया-परत्व अपरत्व वर्तनाके भेदोंका सूत्रमें ग्रहण करना)निष्प्रयोजन नहीं है

कालद्वय सूचन अर्थत्वात् = क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके अर्थ अर्थात् कालके दो भेद जतलानेके लिये

---

(१) परत्व अपरत्व तीन प्रकारको हैं (क) प्रशंसाकृत जैसे धर्म 'पर' है ज्ञान 'पर' है तथा अधर्म 'अपर' है अज्ञान 'अपर' है (ख) क्षेत्र(देश)कृत जैसे एकदेश वा कालमें स्थितदूरवर्ती पदार्थोंके विषय जो दूरवर्ती है पर है और जो समीप है वह अपर है (ग) कालकृत जैसे सोलह वर्ष वालेकी अपेक्षासे

तद्व्यपदेशनिमित्तस्य मुख्यस्य कालस्यास्तित्वं गमयति। कुत ? गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात् ॥ द्रव्यस्य पर्यायो धर्मान्तरनिवृत्तिधर्मान्तरोपजननरूप अपरिस्पन्दात्मक परिणामो, जीवस्य क्रोधादि । पुद्गलस्य वर्णादि । धर्माधर्माकाशानामगुरुलघुगुण-

तद्-व्यपदेश-निमित्तस्य =उस(व्यवहारकाल)का(उपर्युक्त)कथन(अपने)निमित्तक अथवा हेतुकर्ता

मुख्यस्य कालस्य अस्तित्वम् गमयति । =निश्चय(=मुख्य)या परमार्थ (=मुख्य)कालकी विद्यमानताको जताता है भावार्थ समय आवली घटिका इत्यादिरूप जो व्यवहारकाल है तिस(समय आवली-घटिकादिरूप व्यवहारकाल) नामको निमित्त ऐसा जो निश्चयकाल (=असंख्यातरूपकालाणु) तिन असंख्यात कालाणुओंका अस्तित्व या विद्यमानता इस(समय-आवली-घटिकादिरूप व्यवहारकालसे जानी जाती है

कुत ? गौणस्य =प्रश्न)(व्यवहारकालसे निश्चयकालका ज्ञान)क्योंकर होता है। गौणकी(विद्यमानता)

मुख्य अपेक्षत्वात् =मुख्यकी अपेक्षासे होती है अर्थात् क्योंकि गौण मुख्यके बिना कभीभी नहीं होसक्ता है भावार्थ व्यवहारकाल गौण है, निश्चयकाल मुख्य है, ओदनपाकादि जो प्रसिद्ध व्यवहारकाल है वह निश्चयकालसे उत्पन्न होने वाले समय आदिका समूह है बिना निश्चयकालके व्यवहारकाल उत्पन्न नहीं होसकता इसलिये व्यवहारकालसे निश्चयकाल जाना जाता है ॥

द्रव्यस्य पर्यायः धर्मान्तर-निवृत्ति-(१ धर्मान्तर =द्रव्यकी पर्याय(अर्थात्)अन्य अवस्थाको(=धर्मान्तर)छोड़कर दूसरी अवस्था

उपजननरूपः अपरिस्पन्दात्मकः परिणाम =रूप होना तथा क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें चलनरूप न होना सो परिणाम या परणति है

जीवस्य क्रोधादिः पुद्गलस्य वर्ण-आदिः =जीवके क्रोधादिक (परिणाम) है पुद्गल के वर्णादिक(परिणाम) है ।

धर्माधर्म-आकाशानाम् (२ अगुरुलघुगुण =धर्माधर्म आकाशके अगुरुलघुगुण अथवा द्रव्यकीद्रव्यतारखनेवाले गुणकी

(१) एक हस्तलिखित प्रतिके पृष्ठ ४७ पर 'निवृत्ति' शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि निवृत्तिका अर्थ छोड़ना निश्चित होजाता है निर्वृत्तिका अर्थ रचना अथवा करना है। यहां पर पहिले अर्थ में है ॥

(२) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता स्थिर रहे अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमे और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक या अनन्तगुण बिखरकर जुदे २ न होजावें उसको अगुरुलघुगुण कहते हैं ॥

(३) यहां २ तरह क्रिया तीन प्रकारकी मानी है प्रथम प्रायोगिकी द्वितीय विस्रसाजनित और तृतीय मिश्रजनित इनमें प्रायोगिकी पुरुषप्रयत्नजन्य है। विस्रसाजनित =स्वयं परिणाम सेजन्य है और मिश्रिका(=मिश्रजा)उभयजन्य है अर्थात् पुरुषप्रयत्नऔर स्वयंपरिणामसे उत्पन्नहोनेवाली क्रियाको मिश्रिका कहते हैं

वृद्धिहानिकृत ॥ क्रिया परिस्पन्दात्मिका । सा द्विविधा । प्रायोगिकवैस्रसिकभेदात् । तत्र प्रयोगिकी शकटादीना, वैस्रसिकी मेघादीनाम् ॥ परत्वापरत्वे क्षेत्रकृते कालकृते स्त । तेऽत्र कालोपकरणात्कालकृते गृह्यते ॥ त एते वर्तनादय उपकारा कालस्यास्तित्वं गमयन्ति ॥ ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु, तद्भेदा परिणामादयस्तेषा पृथग्ग्रहणमनर्थकम्। नानर्थकम् । कालद्वयसूचनार्थत्वात्

वृद्धि-हानि-कृत, क्रिया परिस्पन्द आत्मिका, प्रायोगिक=वृद्धिहानिरूप होना(परिणाम)है । हिलनेचलनेरूप है सो क्रिया है ॥ प्रायोगिक वैस्रसिक भेदात्, सा 'द्विविधा', तत्रप्रयोगिकी =तथा वैस्रसिक भेदसे वह(क्रिया) दो प्रकार है । तहां प्रायोगकी क्रिया अर्थात्

शकटादीनाम् =(अन्यके प्रयोगसे होनेवाली क्रिया) जैसे गाडी आदिकका(बैलों द्वारा चलना)

वैस्रसिकी =वैस्रसिकी अर्थात् स्वयं वा निजस्वभावसे विना किसी अन्यके निमित्तसे होनेवाली

मेघादीनाम्, परत्व-अपरत्वे क्षेत्रकृते =(जैसे)बादलादिका (=मेघादीनाम्) ॥ परत्व और अपरत्व क्षेत्रकृत

कालकृते स्त। ते अत्र कालउपकरणात् =(और)कालकृत(दोदो प्रकारके) हैं,वे यहां कालका प्रधान साधन होनेसे

काल कृते गृह्यते ॥ =कालकृत वा कालसंबंधीय (जो परत्व अपरत्व विषयभूत होनेसे)लियेगये हैं

ते एते वर्तना आदयः उपकारा कालस्य =वे एते वर्तनादिक उपकार(निश्चय-मुख्य-वा परमार्थ)कालकी

अस्तित्वम् गमयन्ति ॥ =विद्यमानताको जताते हैं अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व ये सब कालके निमित्त (=उपकार)से होते हैं और इन्हींसे निश्चयकाल, परमार्थकाल, मुख्यकाल वा असंख्यातकालाणुरूप द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता हैं ॥

ननु वर्तना-ग्रहणम् एव अस्तु, तत् भेदाः =नन (इस सूत्रमें)वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये, उस (वर्तना)के भेद

परिणाम-आदयः तेषां पृथग्-ग्रहणम् अनर्थकं =परिणाम-क्रिया-परत्व अपरत्व हैं । उन भेदोंका पृथक् ग्रहण व्यर्थ है

न अनर्थकम्, =उत्तर)(परिणाम क्रिया-परत्व अपरत्व वर्तनाके भेदोंकासूत्रमेंग्रहणकरना)निष्प्रयोजन नहीं है

कालद्वय-सूचन अर्थत्वात् =क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके अर्थ अर्थात् कालके दो भेद बतलानेके लिये

---

(१) परत्व अपरत्व तीन प्रकारसे हैं (क) प्रशंसाकृत जैसे धर्म 'पर' है ज्ञान 'पर' है तथा अधर्म 'अपर' है अज्ञान 'अपर' है (ख) क्षेत्र(देश)कृत जैसे एकरेश वा कालमें स्थितदूरवर्ती पदार्थोंके विषय जो दूर है वहती पर है और जो समीप है वह अपर है (ग) कालकृत जैसे सोलह वर्ष वालेकी अपेक्षा

तद्व्यपदेशनिमित्तस्य मुख्यस्य कालस्यास्तित्वं गमयति। कुत ? गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात् ॥ द्रव्यस्य पर्यायो धर्मान्तरनिवृत्तिधर्मान्तरोपजननरूप अपरिस्पन्दात्मक परिणामो, जीवस्य क्रोधादि । पुद्गलस्य वर्णादि । धर्माधर्माकाशानामगुरुलघुगुण-

तद्-व्यपदेश-निमित्तस्य	=उस(व्यवहारकाल)का(उपर्युक्त)कथन(अपने)निमित्तक अथवा हेतुकर्ता
मुख्यस्य कालस्य अस्तित्वम् गमयति ।	=निश्चय(=मुख्य)वा परमार्थ (=मुख्य)कालकी विद्यमानताको जताता है भावार्थ समय आवली घटिका इत्यादिरूप जो व्यवहारकाल है तिस(समय आवली-घटिकादिरूप व्यवहारकाल) नामको निमित्त ऐसा जो निश्चयकाल (=असंख्यातरूपकालाणु) तिन असंख्यात कालाणुओंका अस्तित्व वा विद्यमानता इस(समय-आवली-घटिकादिरूप व्यवहारकालसे जानी जाती है
कुत ? गौणस्य	= प्रश्न)(व्यवहारकालसे निश्चयकालका ज्ञान)क्योंकर होता है। गौणकी(विद्यमानता)
मुख्य अपेक्षत्वात्	=मुख्यकी अपेक्षासे होती है अर्थात् क्योंकि गौण मुख्यके बिना कभीभी नहीं होसक्ता है भावार्थ व्यवहारकाल गौण है, निश्चयकाल मुख्य है, ओदनपाकादि जो प्रसिद्ध व्यवहारकाल है वह निश्चयकालसे उत्पन्न होने वाले समय आदिका समूह है बिना निश्चयकालके व्यवहारकाल उत्पन्न नहीं होसकता इसलिये व्यवहारकालसे निश्चयकाल जाना जाता है ॥
द्रव्यस्य पर्यायः धर्मान्तर निवृत्ति-(१ धर्मान्तर उपजननरूपः अपरिस्पन्दात्मकः परिणामः	=द्रव्यकी पर्याय(अर्थात्)अन्य अवस्थाको(=धर्मान्तर)छोड़कर दूसरी अवस्था =रूप होना तथा क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें चलनरूप न होना सो परिणाम वा परणति है
जीवस्य क्रोधादिः पुद्गलस्य वर्ण-आदिः;	=जीवके क्रोधादिक (परिणाम) है पुद्गल के वर्णादिक(परिणाम) है।
धर्माधर्म आकाशानाम् (२ अगुरुलघुगुण	=धर्माधर्म आकाशके अगुरुलघुगुण अथवा द्रव्यकी द्रव्यतारखनेवाले गुणकी

(१) यह इस्तलिखित प्रतिके पृष्ठ ५४ पर 'निव रित' शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि निवृत्तिका अर्थ छोड़ना,निश्चित होजाना है निर्वृत्तिका अर्थ रचना उत्पन्न करना है। यहां पर पहिले अर्थ में है ॥

(२) जिन शक्तिके निमित्तसे द्रव्यको द्रव्यता स्थिर रहै अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमे और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमे तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्तगुण बिखरकर जुदे २ न होजावें उसको अगुरुलघुगुण कहते हैं ॥

(३) यहीं ? पर क्रिया तीन प्रकारकी मानी हैं प्रथम प्रायोगिकी द्वितीय विस्रसाजनित और तृतीय मिश्रजनित इनमें प्रायोगजनित पुरुषप्रयत्नजन्य है। विस्रसाजनित = स्वयं परिणमनसे जन्य है और मिश्रित(= मिश्रज)उभयजन्य है अर्थात् पुरुषप्रयत्न और स्वयंपरिणमनसे उत्पन्न हुआ ऐसी क्रियाको मिश्रित कहते हैं

वृद्धिहानिकृत ॥ क्रिया परिस्पन्दात्मिका । सा द्विविधा । प्रायोगिकवैस्रसिकभेदात् । तत्र प्रयोगिकी शकटादीनां, वैस्रसिकी मेघादीनाम् ॥ परत्वापरत्वे क्षेत्रकृते कालकृते स्तः । तेऽत्र कालोपकरणात्कालकृते गृह्यते ॥ त एते वर्तनादय उपकाराः कालस्यास्तित्वं गमयन्ति ॥ ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु, तद्भेदाः परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्। नानर्थकम् । कालद्वयसूचनार्थत्वात्

वृद्धि-हानि-कृतः। क्रिया। परिस्पन्द-आत्मिका। प्रायोगिक =वृद्धिहानिरूप होना(परिणाम)है । हिलनेचलनेरूप है सो क्रिया है ॥ प्रायोगिक
वैस्रसिक-भेदात्।सा। द्विविधा।,तत्र प्रयोगिकी। =तथा वैस्रसिक भेदसे वह(क्रिया) दो प्रकार है । तहां प्रायोगकी क्रिया अर्थात्
शकटादीनाम्। =(अन्यके प्रयोगसे होनेवाली क्रिया) जैसे गाडी आदिकका(बैलों द्वारा चलना)
वैस्रसिकी। =वैस्रसिकी अर्थात् स्वयं या निजस्वभावसे विना किसी अन्यके निमित्तसे होनेवाली
मेघादीनाम्।,परत्व-अपरत्वे। क्षेत्रकृते। =(जैसे)बादलादिका (=मेघादीनाम्) ॥ परत्व और अपरत्व क्षेत्रकृत
कालकृते। स्तः। ते। अत्र-काल-उपकरणात्। =(और)कालकृत(दोनो प्रकारके) हैं,वे यहां कालका प्रधान साधन होनेसे
कालकृते। गृह्यते ॥ =कालकृत या कालसंबंधीय (दो परत्व अपरत्व विषयभूत होनेसे)लियेगये हैं
ते। एते। वर्तना-आदयः। उपकाराः। कालस्य। =वे एते वर्तनादिक उपकार(निश्चय मुख्य-वा परमार्थ)कालकी
अस्तित्वम्। गमयन्ति ॥ =विद्यमानताको जताते हैं अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व ये सब कालके निमित्त (=उपकार)से होते हैं और इन्हींसे निश्चयकाल, परमार्थकाल, मुख्यकाल वा असंख्यातकालाणुरूप द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता है ॥
ननु-वर्तना-ग्रहणम्। एव-अस्तु, तद्-भेदाः। =अब (इस सूत्रमें)वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये, उस (वर्तना)के भेद
परिणाम-आदयः। तेषां। पृथग्-ग्रहणम्। अनर्थकं। =परिणाम-क्रिया-परत्व अपरत्व हैं । उन भेदोंका पृथक् ग्रहण व्यर्थ है
न-अनर्थकम्।, = उत्तर।(परिणाम क्रिया-परत्व अपरत्व वर्तनाके भेदोंकासूत्रमेंग्रहणकरना)निष्प्रयोजन नहीं है
कालद्वय-सूचन अर्थत्वात्। =क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके अर्थ अर्थात् कालके दो भेद जतलानेके लिये

(१) परत्व अपरत्व तीन प्रकारसे हैं (क) प्रशंसाकृत जैसे धर्म 'पर' है ज्ञान 'पर' है तथा अधर्म 'अपर' है अज्ञान 'अपर' है (ख) क्षेत्र(देश)कृत जैसे एकदेश या कालमें स्थितद्रव्य पदार्थोंके विषय जो दूरदेशवर्ती पर है और जो समीप है वह अपर है (ग) कालकृत जैसे सोलह वर्ष वालेकी अपेक्षा

प्रपञ्चस्य ॥ कालो हि द्विविध परमार्थकालो व्यवहारकालश्च । परमार्थकालो वर्तनालक्षण । परिणामादिलक्षणो व्यवहारकाल ॥अन्येन परिच्छिन्न अन्यस्य परिच्छेदहेतु क्रियाविशेष काल इति व्यवह्रियते। स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वर्तमानोभविष्यन्निति॥तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशो मुख्य । भूतादिव्यपदेशो गौण ॥ व्यवहारकालेभूतादिव्यपदेशो मुख्य । कालव्यपदेशो गौण ।

प्रपञ्चस्य, कालः, हि द्विविधः, परमार्थकालः
व्यवहारकालः, वर्तनालक्षणः, परमार्थ
परिणामादि-लक्षणः
सः, अन्येन, परिच्छिन्नः
अन्यस्य, परिच्छेद-हेतुः
क्रिया-विशेषः, कालः, इति व्यवह्रियते
सः, त्रिधा भूतः, वर्तमानः, भविष्यत्, इति
व्यवतिष्ठते । तत्र परमार्थकाले, काल-व्यपदेशः
मुख्यः, भूतादि-व्यपदेशः
गौणः, व्यवहारकाले, भूत आदि-व्यपदेशः
मुख्यः, काल-व्यपदेशः, गौणः

=विस्ताररूप(पूर्वोक्त कथन)है । जैसे(=हि)काल दो प्रकार है, परमार्थकाल
=और(=च)व्यवहारकाल, वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थ वा निश्चय
=काल है । परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो
=व्यवहारकाल है । (वह व्यवहारकाल)अन्य(पदार्थ)करि जाना जाता है
(जैसे सूर्य चन्द्र आदिके उदय अस्तसे दिन रात्रि जाने जाते हैं सो व्यवहार काल है जीव और पुद्गलके परिणमनसभी व्यवहारकाल प्रगट होताहै)
=(व्यवहारकाल)दूसरी(वस्तु)के ज्ञान करानेमें निमित्त है जैसे (क) इस कालसे निश्चयकाल जानाजाताहै(इसअध्यायका पृष्ठ८४)(ख) यह पुत्र सौवर्षकाहै-ऐसीअवस्थापुत्रकीहै
=क्रिया विशेष है सो कालहै ऐसा व्यवहार कियाजाताहै (क्रियाका विशेष व्यवहारकालहै)
=वह(व्यवहारकाल)तीन प्रकार अतीत-वर्तमान-अनागत ऐसे
=व्यवस्थित है । (तहां परमार्थकाल(की अपेक्षा) विषैं कालका नाम वा कथन
(अर्थात् लोकाकाशके एकएकप्रदेशपरएकएककालाणुभिन्नभिन्न तिष्ठतेहुओंकोकालकहना)
=मुख्य वा प्रधान है,भूत,वर्तमान,भविष्यत्का कथन(निश्चयकालकी अपेक्षासे)
=गौण वा अप्रधान है । व्यवहारकाल विषैं अतीत वर्तमान अनागतका कथन
=प्रधान है और काल कहना गौण वा अप्रधान है अर्थात् निश्चयकाल वा परमार्थकाल

जन(मो), वर्षवाला पर है और सनवर्षवालेकी अपेक्षासे सोलह वर्षवाला अपर है ॥ यहां प्रशंसा तथा क्षेत्रकृत परत्वअपरत्वको छोड़कर वर्तनादि सब व्यवहार है क्योंकि वर्तना परिणाम क्रिया कालिक परत्व कालिक अपरत्व ये कालके उपकारी ॥

क्रियावद्द्रव्यापेक्षत्वात्कालकृतत्वाच्च ॥

अत्राह धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवकालानामुपकारा उक्ता । लक्षणं चोक्तम् "उपयोगो लक्षण-मित्येवमादि" पुद्गलाना तु सामान्यलक्षणमुक्तं "अजीवकाया इति" विशेषलक्षणं नोक्तम् । तत्किमित्यत्रोच्यते—

॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

कहना गौण है नकि समय,आवली,घटिका,प्रहर,दिन,रात्रि,पक्ष मास,ऋतु,अयन,वरस इत्यादिको कहना गौण है क्योंकि कथन करते समय ये सब (समय, आवली, घटिका इत्यादि) यातो भूतकालमें वा वर्तमान कालमें वा भविष्यत्कालमें आजावेंगे, गर्भित हो जावेंगे और सम्बन्ध रक्खेंगे ॥ फिर भूतादिको मुख्य कहना, समय घटिकादिको गौण कहना एकही वस्तुको मुख्य गौण कहदेना है सो ठीक नहीं ॥

(१)क्रियावत्॰ द्रव्य अपेक्षत्वात्॥ च॰	=क्रियावान् (अन्य) द्रव्योंकी अपेक्षाभावसे(व्यवहारकालनाम पाया है)और(=च)
काल-कृतत्वात्॥	=निश्चयकाल(=काल)द्वारा कियेजानेसे(उत्पन्न होनेसे)(व्यवहारकाल नाम पाया है)
अत्र॰आह॰धर्म अधर्म आकाश-पुद्गल-जीव-कालानाम्॥	=यहां पूछता है कि धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल द्रव्योंके
उपकाराः॥ उक्ताः॥ लक्षणम्॥ च॰उक्तम्॥ "उपयोगः॥	=उपकार कहेगये(और) लक्षणभी(=च)(इनके)कहेगये। उपयोग(अध्याय२सूत्र८)
लक्षणम्॥ इत्येवम् आदि॥" पुद्गलानाम्॥ तु॰	=(जिसका लक्षण है इत्यादिक (कहेगये) और (=तु) पुद्गलोंका
"अजीव-कायाः॥ इति" सामान्य लक्षणम्॥ उक्तम्॥	="अजीवकाया" ऐसा(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें) साधारण लक्षण कहागया
विशेष-लक्षणम्॥ न॰ उक्तम्॥ तत्॥ किम्॥	=(किन्तु)(पुद्गलोंका)विशेष लक्षणनहीं कहागया है। वह विशेष लक्षण क्या है
इति॰अत्र॰उच्यते।	=इस हेतुसे(=इति)(पुद्गलोंका विशेष लक्षण अग्रिमसूत्रमें)कहाजाता है कि

सूत्रम् (२)स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त पुद्गलाः२३ = स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्त पुद्गला "(भवन्ति)॥ २३॥

(१) (प्रश्न) समय आवली घटिका प्रहर दिन इत्यादि ने व्यवहार काल नाम कैसे पाया है। (उत्तर) क्रियावान् जो अन्य द्रव्य तिनकी अपेक्षासे व्यवहारकाल,नाम पाया है तथा निश्चय कालकरि कियेगये हैं जो समय आवली घटिका प्रहर,दिन रात्रि तिससे (व्यवहार)काल नाम पाया है ॥

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनो श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एकसा है।

प्रपञ्चस्य ॥ कालो हि द्विविध परमार्थकालो व्यवहारकालश्च । परमार्थकालो वर्तनालक्षण । परिणामादिलक्षणो व्यवहारकाल ॥अन्येन परिच्छिन्न अन्यस्य परिच्छेदहेतु क्रियाविशेष काल इति व्यवह्रियते। स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वर्तमानोभविष्यन्निति॥तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशो मुख्य । भूतादिव्यपदेशो गौण ॥ व्यवहारकालेभूतादिव्यपदेशो मुख्य । कालव्यपदेशो गौण ।

प्रपञ्चस्य, कालः हि द्विविध परमार्थकालः	=विस्ताररूप(पूर्वोक्त कथन)है । जैसे(=हि)काल दो प्रकार है, परमार्थकाल
च व्यवहारकालः, वर्तनालक्षणः परमार्थ	=और(=च)व्यवहारकाल; वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थ वा निश्चय
कालः, परिणामादि-लक्षणः	=काल है । परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो
व्यवहारकालः, अन्येन परिच्छिन्नः	=व्यवहारकाल है । (वह व्यवहारकाल)अन्य(पदार्थ)करि जाना जाता है (जैसे सूर्य चन्द्र आदिके उदय अस्तसे दिन रात्रि जाने जाते हैं जो व्यवहार काल है जीव और पुद्गलके परिणमनसेभी व्यवहारकाल प्रगट होताहै)
अन्यस्य परिच्छेद-हेतुः	=(व्यवहारकाल)दूसरी(वस्तु)के ज्ञान करानेमें निमित्त है जैसे (क) इस कालसे निर्ग्रंथ-काल जानाजाताहै(इसअध्यायका पृष्ठ=४)(ख) यह पुरुष सौवर्षकाहै-ऐसीअवस्थापुरुषकीहै
क्रिया-विशेषः कालः इति व्यवह्रियते ।	=क्रिया विशेष है सो कालहै ऐसा व्यवहार कियाजाताहै (क्रियाका विशेष व्यवहारकालहै)
सः त्रिधा भूतः वर्तमानः भविष्यन् इति	=वह(व्यवहारकाल)तीन प्रकार अतीत-वर्तमान-अनागत ऐसे
व्यवतिष्ठते । तत्र परमार्थकाले काल-व्यपदेशः	=व्यवस्थित है । (वहां परमार्थकाल(की अपेक्षा) विषैं कालका नाम वा कथन (अर्थात् लोकाकाशके एकएकप्रदेशपरएकएककालाणुभिन्नभिन्न तिष्ठतेहुओंकोकालकहना)
मुख्यः, भूतादि-व्यपदेशः	=मुख्य वा प्रधान है,भूत,वर्तमान,भविष्यत्का कथन(निश्चयकालकी अपेक्षासे)
गौणः, व्यवहारकाले भूत-आदि-व्यपदेशः	=गौण वा अप्रधान है । व्यवहारकाल विषैं अतीत वर्तमान अनागतका कथन
मुख्यः काल व्यपदेशः गौणः	=प्रधान है और काल कहना गौण वा अप्रधान है अर्थात् निश्चयकाल वा परमार्थकाल

प्र(भा) वर्तमान [illegible] है और ज्ञानवर्तेवालेकी अपेक्षासे सौलह वर्षवाला अपर है । यहां प्रशंसा तथा क्षेत्रकृत परत्वअपरत्वको छोड़कर वर्तनादि [illegible] कालकृत है अर्थात् वर्तना परिणाम क्रिया कालिक परत्व,कालिक अपरत्व ये कालके उपकारहैं ॥

क्रियावद्द्रव्यापेक्षत्वात्कालकृतत्वाच्च ॥

अत्राह धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवकालानामुपकारा उक्ता । लक्षणं चोक्तम् "उपयोगो लक्षण-मित्येवमादि" पुद्गलानां तु सामान्यलक्षणमुक्तं "अजीवकाया इति" विशेषलक्षणं नोक्तम् । तत्किमित्यत्रोच्यते—

॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

कहना गौण है नकि समय, आवली, घटिका, प्रहर, दिन, रात्रि, पक्ष मास, ऋतु, अयन, वरस इत्यादिको कहना गौण है क्योंकि कथन करते समय ये सब (समय, आवली, घटिका इत्यादि) यातो भूतकालमें वा वर्तमान कालमें वा भविष्यत्कालमें आजावेंगे, गर्भित हो जावेंगे और सम्बन्ध रक्खेंगे ॥ फिर भूतादिको मुख्य काला, समय घटिकादिको गौण कहना एकही वस्तुको मुख्य गौण कहदेना है सो ठीक नहीं ॥

(१)क्रियावत्॰ द्रव्य-अपेक्षत्वात्॥ च॰	=क्रियावान् (अन्य) द्रव्योंकी अपेक्षामात्रसे(व्यवहारकालनाम पाया है)और(=च)
काल-कृतत्वात्॥	=निश्चयकाल(=काल)द्वारा कियेजानेसे(उत्पन्न होनेसे)(व्यवहारकाल नाम पाया है)
अत्र॰आह॰धर्म-अधर्म आकाश-पुद्गल-जीव-कालानाम्॥	=यहां पूछता है कि धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल द्रव्योंके
उपकाराः॥उक्ताः॥,लक्षणम्॥च॰उक्तम्॥ "उपयोगः॥	=उपकार कहेगये(और) लक्षणभी(=च)(इनके)कहेगये। उपयोग(अध्याय२सूत्र८)
लक्षणम्॥ इत्येवम्-आदि॥" पुद्गलानाम्॥ तु॰	=(जो जिका लक्षण है इत्यादिक (कहेगये) और (=तु) पुद्गलोंका
"अजीव-कायाः॥ इति" सामान्य लक्षणम्॥ उक्तम्॥	="अजीवकाया" ऐसा(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें) साधारण लक्षण कहागया
विशेष-लक्षणम्॥ न॰ उक्तम्॥ तत्॥ किम्॥	=(किन्तु)(पुद्गलोंका)विशेष लक्षणनहीं कहागया है। वह विशेष लक्षण क्या है
इति॰अत्र॰उच्यते॥	=इस हेतुसे(=इति)(पुद्गलोंका विशेष लक्षण अग्रिम सूत्रमें)कहाजाता है कि

सूत्रम् (२)स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त पुद्गला २३ = स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्त पुद्गला (भवन्ति)॥ २३॥

(१) (प्रश्न) समय आवली घड़ी प्रहर दिन इत्यादि में व्यवहार काल नाम कैसे पाया है। (उत्तर) क्रियावान् ॥ अन्य द्रव्य तिनकी अपेक्षासे व्यवहारकाल नाम पाया है तथा निश्चय कालकरि कियेगये हैं जे समय आवली घटिका प्रहर, दिन रात्रादि तिससे (व्यवहार) काल नाम पाया है ॥

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एकसा है।

प्रपञ्चस्य ॥ कालो हि द्विविध परमार्थकालो व्यवहारकालश्च । परमार्थकालो वर्तनालक्षण । परिणामादिलक्षणो व्यवहारकाल ॥अ येन परिच्छिन्न अन्यस्य परिच्छेदहेतु क्रियाविशेष काल इति व्यवह्रियते। स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वर्तमानोभविष्यन्निति॥ तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशो मुख्य । भूतादिव्यपदेशो गौण ॥ व्यवहारकालेभूतादिव्यपदेशो मुख्य । कालव्यपदेशो गौण ।

प्रपञ्चस्य॥ कालः॥ हि॥ द्विविधः॥ परमार्थकालः॥ च॥ व्यवहारकालः॥ वर्तनालक्षणः॥ परमार्थकालः॥ परिणामादि-लक्षणः॥ व्यवहारकालः॥ अन्येन॥ परिच्छिन्नः॥

अन्यस्य॥ परिच्छे...

=विस्तारूप(पूर्वोक्त कथन)है । जैसे(=हि)काल दो प्रकार है, परमार्थकाल =और(=च)व्यवहारकाल; वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थ वा निश्चय =काल है । परिणाम-क्रिया-परत्व अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो =व्यवहारकाल है । (यह व्यवहारकाल)अन्य(पदार्थ)करि जाना जाता है (जैसे सूर्य चन्द्र आदिके उदय अस्तसे दिन रात्रि जाने जाते हैं सो व्यवहार काल है जीव और पुद्गलके परिणमनसेभी व्यवहारकाल प्रगट होवाहै) =(व्यवहारकाल)दूसरी(वस्तु)के ज्ञान करानेमें निमित्त है जैसे (क) इस कालसे निश्चय-काल जानाजावाहै(इसअध्यायका पृष्ठ=४)(ख) यह पुत्र सौवर्षकाहै-ऐसीअवस्थापुत्रकीहै ... है सो कालहै ऐसा व्यवहार कियाजावाहै (क्रियाका विशेष व्यवहारकालहै) ... अतीत-वर्तमान-अनागत ऐसे ...) विषैं कालका नाम वा कथन ...र्मोकोकालकरना)

इति । नित्ययोगे (१)मन्निर्देश ॥ यथा क्षीरिणो न्यग्रोधा इति ॥ ननु च "रूपिण पुद्गला" इत्यत्र पुद्गलाना रूपवत्त्वमुक्तं तदविनाभाविनश्च रसादयस्तत्रैव परिगृहीता इति व्याख्यातं तस्मात्तेनैव पुद्गलानां रूपादिमत्त्वसिद्धे सूत्रमिदमनर्थकमिति ॥ नैष दोष । नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्यत्र धर्मादीना नित्यत्वादिनिरूपणेन

इति॰नित्य-योगे॰ मत्-निर्देशः॥	=इस प्रकार सदैव संयोगमें मतुप् (= मत्)प्रत्ययका निरूपण है भावार्थ "स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः" इस वाक्यको जब पृथक् पृथक् करदेते हैं तब स्पर्शवान् रसवान्-गंधवान्-वर्णवान्-ऐसे चार शब्द होते हैं स्पर्शका नित्य है संयोग जिसमें अथवा स्पर्शगुण सदैव जिसमें रहता है वह स्पर्शवान् (पुद्गल) है इसप्रकार मतुप् (=मत्) प्रत्यय स्पर्शगुणके सदैव विद्यमान रहनेके अर्थमें लगाया गया है ऐसेही रसवान्-गंधवान्-वर्णवान् जानना ॥ स्मरण रहे कि इस सूत्रके दो प्रकारसे विभाग होसकते हैं (क) स्पर्शवन्तः पुद्गलाः ; रसवन्तः पुद्गलाः, गंधवन्तः पुद्गलाः, वर्णवन्तः पुद्गलाः, अथवा (ख) स्पर्शवान् पुद्गलः, रसवान् पुद्गलः, गंधवान् पुद्गलः वर्णवान् पुद्गलः ॥
यथा॰क्षीरिणः॰न्यग्रोधाः॰इति॰ननु॰च॰रूपिणः॰	=जैसे दूधवाले अथवा दूधयुक्त बड़वृक्ष(=वटवृक्ष)। पुनि प्रश्न, रूपी वा मूर्तीक
पुद्गलाः॰इति॰अत्र॰पुद्गलानाम्॰रूपवत्त्वम्॰उक्तम्॰	=पुद्गल हैं ऐसे यहां (अध्याय ५ सूत्र ५में) पुद्गलोंके रूपपना कहागया है
तद्-अविनाभाविनः॰ च॰रस आदयः॰ तत्र॰	=और(=च)उस (रूप)का अविनाभावी तथा भिन्न न रहनेवाले रस-स्पर्श गंध वहां
एव॰परिगृहीताः॰ इति॰ व्याख्यातम्॰	=(उस पांचवां सूत्रसे)ही ग्रहण कियेगये ऐसा वर्णन कियागया है
तस्मात्॰ तेन॰एव॰पुद्गलानाम्॰	=तिस कारणसे(=तस्मात्)उस(इस अध्यायके पांचवां सूत्र)करिही पुद्गलोंके
रूप आदिमत्त्वसिद्धे॰सूत्रम्॰इदम्॰अनर्थकम्॰इति॰॥	=रूपपना, स्पर्शपना, रसपना, गंधपना सिद्ध होनेसे यह सूत्र निष्प्रयोजन है ॥
न॰एषः॰ दोषः॰; नित्य अवस्थानि॰ अरूपाणि॰	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है नित्य, अवस्थानि और अरूपाणि,
इति॰अत्र॰धर्मादीनाम्॰ नित्यत्वादि-निरूपणेन॰	=ऐसे यहां धर्मादिकोंका ध्रुवपनादिकका कथन करनेसे

(१) प्रथमावृत्ति सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'मन्निर्देशः' पाठ है द्वितीयावृत्तिमें औरएकहस्तलिखितमें 'मन्निर्देशः' पाठहै दोअन्यहस्तलिखितप्रतियोंमें 'मत्निर्देश' पाठहै 'मन्निर्देश' और 'मत्निर्देशः' एकहो है क्योंकि प्रथम वाक्य सन्धिरूपमें है दूसरेमें सन्धि नहीं कीगई है । यहांपर समास करना है सन्धि अवश्य होनी चाहिये इसलिये 'मन्निर्देश' पाठ 'मत्निर्देश'की अपेक्षा ग्राह्य है । द्वितीया वृत्तिमें और जहां कहीं भी 'मत्निर्देशः' और 'मन्निर्देशः' पाठहैं वे ग्राह्य हैं।

स्पृश्यते स्पर्शनमात्रं वा स्पर्शः । सोऽष्टविधः । मृदुकठिनगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षभेदात् ॥ रस्यते रसनमात्रं वा रसः । स पञ्चविधः । तिक्ताम्लकटुमधुरकषायभेदात् ॥ गन्ध्यते गन्धनमात्रं वा गन्धः । स द्वेधा । सुरभिरसुरभिरिति ॥ वर्ण्यते वर्णनमात्रं वा वर्णः । स पञ्चविधः । कृष्णनीलपीतशुक्ललोहितभेदात् ॥ त एते मूलभेदाः प्रत्येकं संख्येयासंख्येयानन्तभेदाश्च भवन्ति॥ स्पर्शश्च रसश्च गन्धश्च वर्णश्च स्पर्शरसगन्धवर्णास्त एतेषां सन्तीति स्पर्शरसगन्धवन्तः

सूत्रार्थः—स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः

वृत्यनुवाद—स्पृश्यते वा स्पर्शनमात्रम् स्पर्शः, सः अष्टविधः, मृदु-कठिन-गुरु-लघु-शीत-उष्ण-स्निग्ध-रूक्ष भेदात्, रस्यते रसनमात्रम् वा रसः, स पञ्चविधः, तिक्त-अम्ल-कटु-मधुर कषाय भेदात्, गन्ध्यते वा गन्धनमात्रम् गन्धः स द्वेधा सुरभिः असुरभिः इति। वर्ण्यते वा वर्णमात्रम् वर्णः, स पञ्चविधः कृष्ण-नील-पीत शुक्ल-लोहित-भेदात्, ते एते मूलभेदाः प्रत्येकम् संख्येय असंख्येय अनन्तभेदाः च भवन्ति।

स्पर्शः च रसः च गन्धः च वर्णाः च स्पर्शरसगन्धवर्णाः ते। एतेषाम् सन्ति इति स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः।

=स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाले पुद्गल होते हैं अर्थात् स्पर्श रस, गन्ध, वर्ण ये चार गुणोंकरि सहित अथवा लक्षणोंकरि युक्त पुद्गल होते हैं ॥

=(वृत्तिका अनुवाद) जो स्पर्श्या वा छूआ जाता है अथवा छूनेमात्र सो स्पर्श है वह 'स्पर्श' आठ प्रकार, कोमल मुलायम(मृदु) कठोर(कड़ा) भारी, हलका, ठंडा, =गरम, सचिक्कन(=चिकना) रूखा भेदसे है। स्वाद लियाजाता है वा स्वादमात्र =रस है सो पांच प्रकार चिरपर(चरपरा) खट्टा(आम्ल) कड़वा(कटुक) मीठा, =कषायला(कसैला) भेदसे हैं। जो सूंघा जाता है अथवा वासमात्र है सो गन्ध है =वह (गन्ध) दो प्रकार सुगन्ध दुर्गन्ध होती है। जो वर्ण स्वरूप देखाजाता है =वा रूपमात्र सो वर्ण है। सो पांच प्रकार काला, नीला, पीला =श्वेत, लाल(रक्त-अरुण) भेदसे है। ये इतने मूलभेद हैं। (इन बीस भेदोंमेंसे) एक एकके =संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद होते हैं अर्थात् इन बीस (८ स्पर्श ५ वर्ण ५ रस-दो गन्धके) भेदोंमेंसे प्रत्येक २ भेदके स्थानकोंकी अपेक्षासे (एक-दो-तीन-चार इत्यादि) संख्यातभेद, असंख्यातभेद हैं, अविभाग प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षासे अनंतभेद हैं =और(=च, स्पर्श और(=च) रस और(=च) गन्ध और(=च) वर्ण हैं =सो द्वन्द्वसमासमें) स्पर्शरसगन्धवर्णाः (ऐसा वाक्य) होता है। ते (स्पर्शरसगन्धवर्ण) =जिनके होते हैं वे स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवाले हैं अर्थात् वे पुद्गल हैं [illegible] रस-गन्ध-वर्ण [illegible] करने चाहिये॥

शब्दो द्विविधो भाषालक्षणो विपरीतश्चेति ॥ भाषालक्षणोद्विविधः। साक्षरोऽनक्षरश्चेति ॥ अक्षरीकृतः शास्त्राभिव्यञ्जकःसंस्कृतविपरीतभेदादार्यम्लेच्छव्यवहारहेतु ॥ अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादीनामतिशयज्ञानस्वरूपप्रतिपादनहेतु स एष सर्वप्रायोगिक।अभाषात्मकोद्विविध ।प्रायोगिको वैस्रसिकश्चेति॥

तमोवन्तः पुद्गलाः वा तमोवान् पुद्गलः,	=अंधकारवाले पुद्गल हैं अथवा अंधकारसंयुक्त पुद्गल है
छायावन्तः पुद्गलाः वा छायावान् पुद्गलः,	=छायासहित पुद्गल हैं अथवा छायावान् पुद्गल है
आतपवन्तः पुद्गलाः वा आतपवान् पुद्गलः,	=आतपसंयुक्त पुद्गल हैं अथवा उष्णरूपप्रकाशसहित पुद्गल है
च उद्योतवन्तः पुद्गलाः	=और शीतल प्रकाश जैसे चांदनी(=चंद्रमाकी पटबीजनाकी चमक)वाले पुद्गल हैं
वा उद्योतवान् पुद्गलः	=या उद्योतवान् जैसे चांदनीवान् पुद्गल है अर्थात् येदशपुद्गल द्रव्यके पर्याय, परिणाम, विकार वा अवस्थाविशेष हैं ॥
वृत्त्यनुवादः-शब्दः द्विविधः भाषालक्षणः च	=शब्द दोप्रकार है भाषास्वरूप वा भाषात्मक और (च)
विपरीतः इति ॥ भाषालक्षणः द्विविधः ।	=प्रतिकूल अर्थात् अभाषास्वरूप वा अभाषात्मक; भाषात्मकशब्द दो प्रकारहै
स-अक्षरः च अन् अक्षरः इति ॥	=अक्षररूप(अक्षरसहित,अक्षरीकृत)और(च) अनक्षररूप(अक्षररहित)
अक्षरीकृतः शास्त्र-अभिव्यञ्जकः संस्कृत	=अक्षररूपभाषा(भाषात्मक शब्द)शास्त्रके प्रगटकरनेवाली संस्कृत और
विपरीत	=(संस्कृतसे)प्रतिकूल वा विरोधीभाषा अर्थात् देशभाषा, प्राकृत, पैशाचीआदि
भेदात् आर्य-म्लेच्छ-व्यवहारहेतुः, अनक्षरात्मकः	=भेदसे आर्य और म्लेच्छ(मनुष्यों)के व्यवहारका कारणहै । अनक्षररूप भाषा
द्वीन्द्रिय-आदीनाम्, अतिशय ज्ञान-स्वरूप-प्रतिपादनहेतुः	=दोइन्द्रियादिजीवोंकेहै,औरसर्वोत्तमज्ञानकास्वरूपकहनेकाकारणहैअर्थात्अक्षररहित भाषा है सो दोइन्द्रियवाले जीवोंमें, तीन इन्द्रियवाले जीवोंमें, चारइन्द्रिय वाले जीवोंमें, औरकितनेई पांचइन्द्रियवालेजीवोंमेंपीपाईजातीहैऔर(अक्षररहितभाषाही) अतिशयरूप अथवा महान्ज्ञानके प्रकाशनेके कारण सर्वज्ञके दिव्यध्वनिमेंभी है॥
सः एषः सर्व-प्रायोगिकः	=सो यह (भाषास्वरूपशब्द) समस्त प्रायोगिक है अर्थात् पुरुषके प्रयत्नसे होताहै॥
अभाषा-आत्मकः द्वि-विधः, प्रायोगिकः	=अभाषास्वरूप (शब्द) दोप्रकारहै,प्रायोगिकअर्थात्पुरुषकेनिमित्तसे उपजाऊ
च वैस्रसिकः इति ॥	=और वैस्रसिक (स्वाभाविक) ...

पुद्गलानामरूपत्वप्रसंगे तदपाकरणार्थं तदुक्तम्॥ इदं तु तेषां स्वरूपविशेषप्रतिपत्त्यर्थमुच्यते॥ अवशिष्टपुद्गलविकारप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—

॥शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च॥

पुद्गलानाम् अरूपत्व प्रसंगे तद्	=पुद्गलोंके अमूर्तीकपनेका अवसर आनेपर उस (अरूपत्व)के
अपाकरण अर्थम् तद् उक्तम् इदम् तु	=निराकरणके लिये वह (रूपिणः पुद्गलाः) कहागया है ॥ यह(सूत्र) तो
तेषाम् स्वरूपविशेष प्रतिपत्ति-अर्थम् उच्यते।	=तिन(पुद्गलों)के विशेष स्वरूप जाननेके लिये कहागया है ॥
अवशिष्ट-पुद्गल-विकार-प्रतिपत्ति अर्थम्	=शेष पुद्गलके परिणाम (=विकार = पर्याय) जाननेके लिये
इदम् उच्यते।	=यह (उपर सूत्र) कहाजाता है कि

सूत्रम्—शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥

=शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद तमः—छाया-आतपः—उद्योतवन्तः—च पुद्गलाः भवन्ति ॥२४॥

पदच्छेदः—शब्दवन्तः पुद्गलाः, वा शब्दवान् पुद्गलः। बन्धवन्तः पुद्गलाः वा बन्धवान्पुद्गलः सौक्ष्म्यवन्तः पुद्गलाः वा सौक्ष्म्यवान् पुद्गलः। स्थौल्यवन्तः पुद्गलाः वा स्थौल्यवान् पुद्गलः। संस्थानवन्तः पुद्गलाः वा संस्थानवान् पुद्गलः। भेदवन्तः पुद्गलाः वा भेदवान् पुद्गलः। तमोवन्तः पुद्गलाः वा तमोवान् पुद्गलः। छायावन्तः पुद्गलाः वा छायावान् पुद्गलः। आतपवन्तः पुद्गलाः वा आतपवान् पुद्गलः। च उद्योतवन्तः पुद्गलाः वा च उद्योतवान् पुद्गलः।

सूत्रार्थ —शब्दवन्तः पुद्गलाः वा शब्दवान् पुद्गलः।	=शब्दयुक्त पुद्गल हैं अथवा शब्द सहित पुद्गल है
बन्धवन्तः पुद्गलाः वा बन्धवान् पुद्गलः।	=बंधसहित पुद्गल हैं वा बन्धयुक्त पुद्गल है।
सौक्ष्म्यवन्तः पुद्गलाः वा सौक्ष्म्यवान् पुद्गलः।	=सूक्ष्मतावान् पुद्गल हैं अथवा सूक्ष्मतासहित पुद्गल है
स्थौल्यवन्तः पुद्गलाः वा स्थौल्यवान् पुद्गलः।	=स्थूलतासहित पुद्गल हैं अथवा स्थूलतावान् पुद्गल है
संस्थानवन्तः पुद्गलाः वा संस्थानवान् पुद्गलः।	=आकारसहित पुद्गल हैं अथवा आकारसंयुक्त पुद्गल है।
भेदवन्तः पुद्गलाः भेदवान् पुद्गलः।	=भेदवाले पुद्गल हैं अथवा भेदसहित पुद्गल है

क्योंकि 'मत्' प्रत्यय सदृश अथवा तुल्य अर्थमें आता है और मतुप् (मत्) प्रत्यय 'नित्ययोग' अर्थमें आता है यहांपर अर्थ ऐसा है कि 'वे' (स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण) जिनके होवें (वे) स्पर्श-रस-गंध वर्णवाले हैं। इनकी नित्ययोगमें मतुप(मत्) प्रत्यय होनाचाहिये ... "नित्ययोग" इसके।

तत्रान्त्यं परमाणूनाम् । आपेक्षिकं बिल्वामलकबदरादीनाम् ॥ स्थौल्यमपि द्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं चेति ॥ तत्रान्त्यं जगद्व्यापिनि महास्कन्धे । आपेक्षिकं बदरामलकबिल्वतालादिषु ॥ संस्थानमाकृति । तद्द्विविधं, इत्थंलक्षणमनित्थंलक्षणं चेति ॥ वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रायत-

तत्र अन्त्यम् परमाणूनाम्, आपेक्षिकम् बिल्व आमलक-बदर आदीनाम् ॥	=वहां परमाणुओंकी (सूक्ष्मता) अन्त्य है। आपेक्षिक सूक्ष्मता बेल(=बिल्व) =आमलेके फलकी(=आमलक)और बेरआदिककी सूक्ष्मता है अर्थात् बेलके फलसे आमलेका फल सूक्ष्म है और आमलेके फलसे झरबेरीके बेरआदि छोटे होते हैं
स्थौल्यम् अपि द्वि-विधम् अन्त्यम् आपेक्षिकम् च इति	=स्थूलता भी दो प्रकारकी है अन्त्य और(=च) आपेक्षिक अर्थात् किसीकी अपेक्षासे।
तत्र अन्त्यम् जगद्व्यापिनि महास्कन्धे,	=वहां अन्तिम (स्थूलता) जगतमें व्याप्त होनेवाला या सर्वलोकव्यापी महास्कंधमें है
आपेक्षिकम् बदर-आमलक-बिल्व-ताल आदिषु,	=आपेक्षिक(स्थूलता) बेर, आमलेके फल, बेलफल और तालफलादिकमें है अर्थात् झरबेरीके बेरकी अपेक्षा आमला स्थूल होता है आमलेसे बेल बड़ा होता है और बेलकी अपेक्षा तालफलादिक बड़े होते हैं ॥
संस्थानम् आकृतिः,	=संस्थान है सो आकृति अथवा आकार है अर्थात् अवयव रचनाविशेष है।
तत् द्विविधम् इत्थम् लक्षणम्	=वह(आकार) दो प्रकारका है इत्थंलक्षण अर्थात् आकार जिसका लक्षण कथनयोग्य है
अनित्थम् लक्षणम् च इति॥	=और(=च) अनित्थं लक्षण अर्थात् वह आकार जिसका लक्षण कथनयोग्य नहीं है
वृत्त-त्र्यस्र, चतुरस्र-आयत-	=गोलवा वर्तुल =वृत्त) त्रिकोना(=त्र्यस्र) चतुष्कोण(चतुरस्र) आयत, जात्यायत अर्थात् समानान्तर चतुर्भुज जिसके सब कोन समकोन हों किंतु सब भुज बराबर नहीं परंतु आमनेसामनेके भुज बराबर हों ॥



'वृत्त वह सम धरातल क्षेत्र है जो एक रेखासे जिसको परिधि कहते हैं घिरा हो और ऐसा हो कि उसके अन्दर एक विशेष बिन्दुसे परिधि तक जितनी रेखा खींची जांय वह सब आपसमें बराबर हों और इस बिन्दुको उसवृत्तका केन्द्र कहते हैं। वृत्त वह गोल क्षेत्र है जिसकी क ख ग रेखा परिधि है च केन्द्र है और जिसकी चक चख चग चघ और चङ सब रेखायें आपसमें बराबर हैं॥

वैस्रसिको वलाहकादिप्रभव । प्रायोगिकश्चतुर्धा, ततविततघनसौषिरभेदात ॥ तत्र चर्मतननिमित्त पुष्करभेरीदर्दुरादिप्रभवस्तत । तन्त्रीकृतवीणासुघोषादिसमुद्भवो वितत । तालघण्टालालनाद्यभिघातजो घन । वंशशंखादिनिमित्त सौषिर ॥ बन्धो द्विविधो वैस्रसिक प्रायोगिकश्च ॥ पुरुषप्रयोगानपेक्षो वैस्रसिक । तद्यथा—स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तो विद्युदुल्काजलधाराग्नीन्द्रधनुरादिविषय ॥ पुरुषप्रयोगनिमित्त प्रायोगिक, अजीवविषयो जीवाजीव विषयश्चेति द्विधाभिन्न । तत्राजीवविषयो जतुकाष्ठादिलक्षणः । जीवाजीवविषयः कर्मनोकर्मबन्ध ॥ सौक्ष्म्यं द्विविधं, अन्त्यमापेक्षिक च ॥

वैस्रसिकः (वलाहक-आदि-प्रभवः), =वैस्रसिक (भाषात्मक शब्द) जैसे मेघ (=वलाहक) आदिसे उपजनेवाला ॥
प्रायोगिकः (चतुर्धा) (तत-वितत-घन-सौषिर-भेदात्), =प्रायोगिक (अभाषात्मक शब्द) चारप्रकार, तत-वितत-घन-सौषिर भेदसे है
तत्र (चर्मतनन-निमित्तः) (पुष्कर भेरी (=भेरि) =वहां चमड़ेके तननेके कारण या हेतुसे खंजरी (=पुष्कर) दुंदुभि-ढोल-नगारा
दर्दुर आदि-प्रभव) (ततः), =दर्दुर (एकप्रकारका) बाजा आदिसे उत्पन्न होनेवाला शब्द तत है ।
तन्त्रीकृत-वीणा-सुघोष =तांत अथवा तारसे रचित बीन (=वीणा) सुघोष अर्थात् एकप्रकारका सितार
आदि समुद्भव (वितत), ताल-घण्टा-लालन-आदि =आदिसे उपजाऊ (शब्द) वितत है ॥ ताल-घंटाका हिलावना (=लालन, आदिके
अभिघातजः (घनः) । वंश-शंख-आदि-निमित्तः =चोटसे उपजा (=अभिघातज) शब्द घन है । बंसुरीशंख आदिके कारण जिसको
सौषिर), बन्धः (द्विविधः) (वैस्रसिकः) (प्रायोगिकः) च ॥ =(ऐसा शब्द) सौषिर है । बन्ध दो प्रकार है । वैस्रसिक और प्रायोगिक
पुरुष प्रयोग-अनपेक्षः (वैस्रसिकः), तद्यथा =पुरुषके प्रयोग या प्रयत्नकी अपेक्षारहित वैस्रसिक है ॥ जैसे
स्निग्ध-रूक्षत्व गुण-निमित्तः विद्युत् उल्का जलधारा =चिकना, रूखापन गुणकेकारणसे बिजली, उल्कापात, बादल
अग्नि-इन्द्रधनुष आदि-विषयः, पुरुषप्रयोगनिमित्तः =आग, इन्द्र धनुषादि सम्बन्धी है ॥ पुरुषके प्रयत्न हेतुक वा कारणक है सो
प्रायोगिकः (अजीवविषयः) (च जीवाजीवविषयः) इति =प्रायोगिक है । (प्रायोगिक च) अजीव सम्बंधी और (च) जड़चेतनसबंधी
द्विधा भिन्नः, तत्र अजीवविषयः जतु-काष्ठादि =दोप्रकारमें (द्विधा) विभाजित है । तहां अचेतनसंबंधी लाख (जतु) और काठ आदिका
लक्षणः, जीव-अजीव विषय (कर्म-नोकर्म बन्धः), =सम्बंध होता है । चेतनअचेतनसम्बंधी कर्म-नोकर्मका (जीवके साथ) बंधहै;
सौक्ष्म्यम् (द्विविधम्), अन्त्यम् (आपेक्षिकं) च ॥ =सूक्ष्मता दो प्रकार है अन्त्य और (च) आपेक्षिक

तत्रान्त्यं परमाणूनाम् । आपेक्षिकं बिल्वामलकबदरादीनाम् ॥स्थौल्यमपिद्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं चेति ॥ तत्रान्त्यं जगद्व्यापिनि महास्कन्धे । आपेक्षिकं बदरामलकबिल्वतालादिषु ॥संस्थानमाकृति । तद्द्विविधं, इत्थंलक्षणमनित्थलक्षणं चेति ॥ वृत्तत्र्यस्रचतुस्रायत-

तत्र॥अन्त्यम्॥परमाणूनाम्॥आपेक्षिकम्॥बिल्व-आमलक-बदर-आदीनाम्॥ ॥ =वहां परमाणुओंकी (सूक्ष्मता) अन्त्य है । आपेक्षिक सूक्ष्मता बेल =बिल्व) =आमलेके फलकी(=आमलक)और बेरआदिककीसूक्ष्मताहै अर्थात् बेलकेफलसे आमलेकाफल सूक्ष्म है औरआमलेकेफलसे झरबेरीके बेरआदि छोटे होतेहैं

स्थौल्यम्॥अपि॥द्वि-विधम्॥अन्त्यम्॥आपेक्षिकम्॥च॥इति=स्थूलताभी दोप्रकारहै अन्त्य और(=च)आपेक्षिकअर्थात्किसीकीअपेक्षासे

तत्र॥अन्त्यम्॥जगद्व्यापिनि॥महास्कंधे॥ =वहां अन्तिम (स्थूलता)जगतमें व्याप्त होनेवाला या सर्वलोकव्यापीमहास्कंधमेंहै

आपेक्षिकम्॥बदर-आमलक-बिल्व-ताल-आदिषु॥ =आपेक्षिक(स्थूलता)बेर, आमलेकेफल,बेलफल और तालफलादिकमें है अर्थात् झरबेरीकेबेरकी अपेक्षा आमला स्थूल होताहै आमलेसे बेल बड़ा होताहै और बेलकी अपेक्षा तालफलादिक बड़े होते हैं ॥

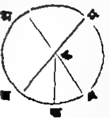
संस्थानम्॥आकृतिः॥ =संस्थान है सो आकृति अथवा आकारहै अर्थात् अवयव रचनाविशेष है।

तत्॥द्विविधम्॥इत्थम्॥लक्षणम्॥ =वह(आकार)दोप्रकारहै इत्थंलक्षण अर्थात् आकार जिसकालक्षणकथनयोग्यहै

अनित्थम्॥लक्षणम्॥च॥इति॥ =और(=च) अनित्थं लक्षणअर्थात् वहआकारजिसकालक्षण कथनयोग्य नहीं है

वृत्त-त्र्यस्र, चतुस्र-आयत- =गोलवा वर्तुल =वृत्त) त्रिकोना(=त्र्यस्र) चतुष्कोण(चतुरस्र) आयत, जात्यायत अर्थात् समानान्तर चतुर्भुज जिसके सबकोन समकोन हों किन्तु सबभुज बराबर नहीं परंतु आमनेसामनेके भुज बराबर हों ॥

'वृत्त' वह सम धरातल क्षेत्र है जो एक रेखासे जिसको परिधि कहते हैं घिरा हो और ऐसा हो कि उसके अन्दर एक विशेष बिन्दुसे परिधि तक जितनी रेखा खींची जांय वह सब आपसमें बराबर हों और उस बिन्दुको उसवृत्तका केन्द्र कहतेहैं। वृत्त यह गोल क्षेत्र है जिसकी क ख ग रेखा परिधि है 'च' केन्द्र है और जिसकी चज, चक चख चग और चघ सब रेखायें आपसमें बराबर हैं ॥



परिमण्डलादीनामित्थंलक्षणम् । ततोऽन्यन्मेघादीनां संस्थानमनेकविधमित्थमिदमिति निरूपणाभावादनित्थंलक्षणम् ॥ भेदाः षोढा, उत्करचूर्णखण्डचूर्णिकाप्रतराणुचटनविकल्पात् ॥ तत्रोत्करः काष्ठादीनां करपत्रादिभिरुत्करणम् । चूर्णो यवगोधूमादीनां सक्तुकणिकादि । खण्डो घटादीनां कपालशर्करादि । चूर्णिका माषमुद्गादीनां । प्रतरोऽभ्रपटलादीनाम् । अणुचटनं सन्तप्तायःपिण्डादिषु अयोघनादिभिरभिहन्यमानेषु स्फुलिङ्गनिर्गमः ॥ तमो दृष्टिप्रतिबन्धकारणं प्रकाशविरोधि॥ छाया प्रकाशावरणनिमित्ता । सा द्वेधा, वर्णादिविकारपरिणता

परिमण्डल आदीनाम् इत्थंलक्षणम् । इयम् इदम् इति = चारोंओर गोलआदिकके इत्थंलक्षण(संस्थान) है ऐसे यह इत्थम् है
ततः अन्यत् मेघ आदीनाम् संस्थानम् अनेकविधम् = तिस (इत्थंलक्षणसंस्थान)से अन्य बादल-आदिकका आकार बहुतप्रकारहै।
निरूपण अभावात् = सो परिमापण अथवा कथनकियेजानेके अभावसे
अनित्थंलक्षणम् । भेदाः षोढा उत्कर-चूर्ण = अनित्थं लक्षण(संस्थान)है॥भेद छ प्रकार (=षोढा)अर्थात् उत्कर-चूर्ण-
खण्ड चूर्णिका-प्रतर अणुचटन-विकल्पात् ॥ = खण्ड-चूर्णिका-प्रतर अणुचटन विकल्पसे है
तत्र उत्करः काष्ठ आदीनाम् करपत्र-आदिभिः = वहां उत्कर भेद काठादिका आरा (=करपत्र-क्रकच) आदिकसे
उत्करणम् । चूर्णः यव गोधूम-आदीनाम् = विदारण है। चूर्ण जौ गेहूं(=गोधूम) आदिकोंका
सक्तु-कणिकादिः । खण्डः घटादीनां कपाल-शर्करादिः । = सतुआ भाग वा चून आदिक है।खंड घड़ादिकोंके टुकड़ा रोड़ादिक हैं।
चूर्णिका माष मुद्ग आदीनाम् । प्रतरः अभ्र = चूर्णिका उरद (माष) मूंग (=मुद्ग) आदिकी दाल है। प्रतर अभ्रकके
पटल आदीनाम् । अणुचटनम् सन्तप्त अयस्- = पत्रादिकोंका (उपाटना) है। अणुचटन वा अणुचर अतिगरमलोहेके
पिण्डादिषु अयस्-घन आदिभिः अभिहन्यमानेषु = पिंडादिक विषैं लोहेके घनादिककरि चोटलेनेपर वा पीटनेपर
स्फुलिङ्ग-निर्गमः । तमः दृष्टि-प्रतिबन्धकारणम् = स्फुलिंगोंका निर्गमन, उछलनावानिकलनाहै।तमअन्धकार दृष्टिकारोकनेवाला
प्रकाश-विरोधि । छाया प्रकाश आवरणनिमित्ता = प्रकाशका विलोम वा प्रतिकूल है। छाया प्रकाशके ढकनेकाकारण है।
सा द्वेधा वर्ण आदिविकार-परिणता = सो छाया दो प्रकार है वर्णादि विकार परिणत अथवा तद्वर्ण परिणत
(अर्थात् कांचविषैं झलके) वर्णादिकका परिणमन होजाना

स्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्त पुद्गला इत्यभिसम्बध्यते॥ च शब्देन नोदनाभिघाता-दय पुद्गलपरिणामा आगमे प्रसिद्धा समुच्चीयन्ते ॥ उक्तानां पुद्गलाना भेदप्रदर्शनार्थमाह—

प्रतिबिम्बमात्र-आत्मिका॥ च॥ इति॥ ।	=और (=च)प्रतिबिम्बस्वरूप ही(=छाया)
उष्ण प्रकाश-लक्षणः॥ आतपः॥	=ताप(=उष्ण-सहित)रूप है स्वभाव(=लक्षण)जिसका ऐसा प्रकाश या उजाला है सो आतप है
आदित्य-आदि-निमित्तः॥	=वह आतप सूर्य,अग्नि,इत्यादिके निमित्तसे उत्पन्न होता है जैसे धूप, घाम, लौ सहित अग्नि का प्रकाश
उद्योतः॥ चन्द्रमणि	=ठंडा(शीतल)प्रकाश या उजाला सो उद्योत है यह चन्द्रकान्ति
खद्योत-आदि प्रभवः॥ प्रकाशः॥ । ते॥ एते॥ शब्दादयः॥	=जुगनू(पटबीजना)आदिकसे उपजनेवाला प्रकाश है । ये इतने शब्दादिक
पुद्गलद्रव्य विकाराः॥ ते॥	=पुद्गलद्रव्यके विकार,पर्याय,परिणाम या परिणत हैं । वे (शब्दादिक)
एषाम्॥ सन्ति॥ इति॥ शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य	=जिनके (विद्यमान)हैं ऐसे शब्द-बन्धान-सूक्ष्मता-स्थूलतावाले
संस्थान भेद-तमस्-छाया-आतप-उद्योतवन्तः॥	=आकार, भेद, अन्धकार, छाया, तप्तउजाला, शीतल प्रकाश
पुद्गलाः॥ इति॥ अभिसम्बध्यते ॥ च-शब्देन॥	=पुद्गल हैं ऐसा सम्बन्ध कियाजाता है (इस सूत्रमें) चशब्दकरि
नोदन-अभिघात-आदयः॥ पुद्गल परिणामाः॥	=प्रेरणा (नोदन) अभिघात(=मारना)आदिक पुद्गलद्रव्यके विकार या पर्याय
आगमे॥ प्रसिद्धाः॥ समुच्चीयन्ते ॥	=(जोपरिणाम)शास्त्रमें विख्यात या व्यक्त हैं इकट्ठे जाये गये हैं अर्थात् ग्रहण कियेगये हैं ॥
उक्तानाम्॥ पुद्गलानाम्॥ भेद-प्रदर्शन-अर्थम्॥ आह	=कथित पुद्गलोंके भेद दिखाने के लिये(उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

नुद् इसका तुदादिगणका धातु है जो प्रेरण अर्थमें (=प्रेरणे) आता है। (प्रश्न) यदि स्पर्श रसादि तथा शब्दबन्धादि पुद्गलोंहीमें होते हैं तो स्पर्शादिक तथा शब्दादिकके लिये पृथक २ दो सूत्र क्यों किये। अर्थात् स्पर्श रस गन्ध इत्यादि (२३) तथा शब्द-बन्ध इत्यादि (२४) दो सूत्र क्यों किये एकही सूत्रसे कार्य चलजाता (उत्तर) स्पर्श रस आदि जो हैं वे परमाणुओंमें तथा स्कन्धोंमें स्वभावसेही होते हैं और शब्द-बन्ध-आदि तो स्कन्धोंहीमें होते हैं और अनेक निमित्तोंसे होते हैं न कि केवल परिणाम जन्य इसलिये पृथक् पृथक् सूत्र किये गये हैं॥

परिमण्डलादीनामित्थंलक्षणम् । ततोऽन्यन्मेघादीना संस्थानमनेकविधमित्थमिदमिति निरूपणाभावादनित्थंलक्षणम् ॥ भेदा षोढा, उत्करचूर्णखण्डचूर्णिकाप्रतराणुचटनविकल्पात् ॥ तत्रोत्कर काष्ठादीना करपत्रादिभिरुत्करणम् । चूर्णो यवगोधूमादीना सक्तुकणिकादि । खण्डो घटादीना कपालशर्करादि । चूर्णिका माषमुद्गादीना । प्रतरोऽभ्रपटलादीनाम् । अणुचटनं सन्तप्ताय पिण्डादिषु अयोघनादिभिरभिहन्यमानेषु स्फुलिङ्गनिर्गम ॥ तमो दृष्टिप्रतिबन्धकारणं प्रकाशविरोधि॥ छाया प्रकाशावरणनिमित्ता । सा द्वेधा, वर्णादिविकारपरिणता

परिमण्डल-आदीनाम् इत्थंलक्षणम् । इत्थम् इदम् इति =चारोंओर गोलआदिकके इत्थंलक्षण(संस्थान) है ऐसे यह इत्थम् है

तत अन्यत् मेघ आदीनाम् संस्थानम् अनेकविधम् =जिस (इत्थंलक्षणसंस्थान)से अन्यबादल आदिकका आकार बहुतप्रकारहै।

निरूपण अभावात् =सो परिमापण अथवा कथनक्रियेअनेके अभावसे

अनित्थंलक्षणम् ॥ भेदा षोढा उत्कर-चूर्ण =अनित्थं लक्षण(संस्थान)है॥भेद छ प्रकार (=षोढा)अर्थात् उत्कर-चूर्ण-

खण्ड-चूर्णिका प्रतर अणुचटन-विकल्पात् ॥ =खण्ड-चूर्णिका प्रतर अणुचटन विकल्पसे है

तत्र उत्कर काष्ठ आदीनाम् करपत्र-आदिभि =वहां उत्कर भेद काठादिका आरा (=करपत्र-क्रकच) आदिकसे

उत्करणम् । चूर्ण यव गोधूम आदीनाम् =विदारण है। चूर्ण जौ गेहूँ(=गोधूम) आदिकोंका

सक्तु कणिक आदि । खण्ड घटादीनाम् कपाल शर्करादि । =सतुआ आटा या चून आदिक है। खंड घड़ादिकोंके टुकड़ा रोड़ादिक हैं।

चूर्णिका माष मुद्ग-आदीनाम् । प्रतर अभ्र =चूर्णिका उरद (माष) मूंग (=मुद्ग) आदिकी दाल है। प्रतर अभ्रकके

पटल आदीनाम् । अणुचटनम् सन्तप्त अयस् =पत्रादिकोंका (उपाटना) है। अनुचटन या अनुतर अतिगरमलोहेके

पिण्डादिषु अयस्-घन आदिभि अभिहन्यमानेषु =पिंडादिक विषैं लोहेके घनादिककरि चोटदेनेपर वा पीटनेपर

स्फुलिङ्ग-निर्गम । तम दृष्टि प्रतिबन्धकारणम् =स्फुलिंगोका निर्गमन, चमकनाया निकलना है।तमअन्धकार दृष्टिकारोकनेवाला

प्रकाश-विरोधि । छाया प्रकाश आवरणनिमित्ता =प्रकाशका विरोध या प्रतिकूल है। छाया प्रकाशके रुकनेकाकारण है।

सा द्वेधा वर्ण-आदिविकार-परिणता॥ =यह छाया दो प्रकार है वर्णादि विकार परिणत अथवा तद्वर्ण परिणत (अर्थात् कांचविषैं इत्यादि) वर्णादिकका परिणामन होजाना

संघातानां द्वितयनिमित्तवशाद्विदारणं भेद । पृथग्भूतानामेकत्वापत्ति संघात ॥ ननु च द्वित्वाद्द्विवचनेन भवितव्यम् ॥ बहुवचननिर्देशस्तृतीयसंग्रहार्थ । भेदात्संघाताद्भेदसंघाताभ्यां च उत्पद्यन्त इति ॥ तद्यथा—द्वयो परमाण्वो संघाताद्द्विप्रदेश स्कन्ध उत्पद्यते । द्विप्रदेशस्याणोश्च त्रयाणां वा अणूनां संघातात्त्रिप्रदेश । द्वयोर्द्विप्रदेशयोस्त्रिप्रदेशस्याणोश्चतुर्णां वा अणूनां संघाताच्चतु प्रदेश

तथा ऐसेही किसी स्कन्धके भेद होनेसे अथवा बिदारे जानेसे और उसी समयमें अन्य स्कन्धोंके संघातके जुड़नेसे स्कन्धोंकी उत्पत्ति होती है

पृथग्नुवाद:—संघातानाम्॥ द्वितयनिमित्त-वशात्॥ विदारणम्॥ भेद:॥ पृथक्भूतानाम्॥ एकत्व आपत्ति:॥ संघात:॥ ननु च द्वित्वात्॥
द्विवचनेन॥
भवितव्यम्॥ । बहुवचन-निर्देश:॥
तृतीय-संग्रह अर्थ:॥ भेदात्॥
संघातात्॥ भेद-संघाताभ्याम्॥ च
उत्पद्यन्ते इति तद्यथा द्वयो:॥ परमाण्वो:॥
संघातात्॥ द्विप्रदेश:॥ स्कंध:॥ उत्पद्यते॥ द्विप्रदेशस्य॥ च
अणो:॥ त्रयाणाम्॥ वा अणूनाम्॥ संघातात्॥
त्रिप्रदेश:॥ द्वयो:॥ द्वि प्रदेशयो:॥
त्रि प्रदेशस्य॥ अणो:॥ चतुर्णाम्॥ वा
अणूनाम्॥ संघातात्॥ चतु: प्रदेश:॥

=संघातोंके दोनों (बाह्य और अभ्यन्तर) निमित्तोंके वशसे
=टूटना ("न्यारा न्यारा वा भिन्न २ होना) है सो भेद है। न्यारी-न्यारी द्रव्योंके एकपनाकी
=प्राप्ति है सो संघात है। पुनि प्रश्न द्वित्वसे अर्थात् भेदपना और संघातपना के निमित्तोंसे (इस सूत्रमें)
=दो वचन युक्त (भेदसंघाताभ्याम् ऐसा न कि बहुवचन भेद संघातभ्य ऐसा)
=होना चाहिये। (उत्तर इससूत्रमें) बहुवचनका निरूपण वा वर्णन
=तीसरे (भेदसंघाताभ्याम्)के समुच्चय के लिये है। (पुद्गलोंके स्कन्ध) बिछुड़नसे
=मिलने (जुड़न)से और (=च) मिलने बिछुड़न (दोनोंसे)
=उत्पन्न होते हैं (अतः भेदसंघातभ्य: ऐसा बहुवचन है)। जैसकि दो परमाणुओंके
=जुड़नेसे दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है। दो प्रदेशवाले (स्कन्ध)के और (=च)
=अणुके (=अणो:) (संघातसे) अथवा तीन (जुड़ीहुई) परमाणुके मिलनसे (=संघातात्)
=तीन प्रदेशवाला (स्कन्ध उपजता) है। दो दो प्रदेशवाले दो (स्कन्धों)के (संघातसे),
=तीन प्रदेशवाले (स्कन्ध) के और अणुके संघातसे, अथवा चार (जुड़ीहुई)
=परमाणुओंके संघातसे चार प्रदेशी (स्कंध उत्पन्न) होता है

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च स्पर्शादिमन्तश्चेति ॥ आह किमेषां पुद्गलानामणुस्कन्धलक्षणः परिणामोऽनादिरुत आदिमानित्युच्यते। स खलूत्पत्तिमत्त्वादादिमान्प्रतिज्ञायते ॥ यद्येवं तस्मादभिधीयतां कस्मान्निमित्तादुत्पद्यन्त इति ॥ तत्र स्कन्धानां तावदुत्पत्तिहेतुप्रतिपादनार्थमुच्यते—

॥ भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

शब्द-बन्ध सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद तमस्-छाया-आतप-उद्योतवन्तः। च ० स्पर्श-आदिमन्तः। च ० इति ० =शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, खंड, अंधकार, छांह, तप्त प्रकाश =और(=च) शीतल प्रकाश संयुक्त हैं। (और) स्पर्श रस गंध-वर्णवान् भी (च) हैं

आह। किम् ० एषाम्। पुद्गलानाम्। अणुस्कन्धलक्षणः। परिणामः। अनादिः। उत ० आदिमान्। इति ० उच्यते। =शिष्य पूछता है कि क्या इन पुद्गलोंके अणुस्कन्ध लक्षणरूप =विकार अनादि है अथवा (=उत) आदिमान् है (उत्तरमें ऐसा कहाजाता है कि

सः। खलु ० उत्पत्तिमत्त्वात्। आदिमान्। प्रतिज्ञायते। =यह (परिणाम) निश्चयसे उत्पत्तिमान होनेसे आदिमान् कहागया है

यदि ० एवम् ० तस्मात्। अभिधीयताम्। कस्मात्। निमित्तात्। उत्पद्यन्ते। इति ०। तत्र ० स्कंधानाम्। तावत् ० उत्पत्ति-हेतु-प्रतिपादन अर्थम्। उच्यते। =जो ऐसा है अर्थात् आदिमान् है तो (=तस्मात्) कहाजाना चाहिये कि किस =निमित्तसे वा किस कारणसे उत्पन्न होते हैं। तहां प्रथम (=तावत्) स्कंधोंकी =उत्पत्तिका कारण कहनेके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहाजाता है कि

॥ [1]भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥ = (पुद्गलानां स्कंधाः) भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

= पुद्गलानां स्कंधाः भेदात्-संघातात् भेदसंघाताभ्याम् च* उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

सूत्रार्थ —पुद्गलानाम्। स्कंधाः। भेदात्। संघातात्। भेद-संघाताभ्याम्। च ० उत्पद्यन्ते। =पुद्गलोंकेस्कंध भेदसे और संघातसे =और (एकही कालमें) भेद संघात (दोनोंसे) उत्पन्न होते हैं अर्थात् (१) बाह्य वा अभ्यन्तरिक निमित्तसे स्कंधोंके टूट जानेसे दो परमाणुओं तकके अनेक स्कंध उत्पन्न होते हैं (२) और बाह्य वा अभ्यन्तरिक कारणसे अन्य अन्य स्कंधोंके संघातसेभी स्कंध होते हैं

(१) श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते" ऐसा पाठ उपर्युक्त सूत्रका है परन्तु अर्थ दोनोंआम्नायोंमें एकसा है।

संघाताना द्वितयनिमित्तवशाद्विदारणं भेद । पृथग्भूतानामेकत्वापत्ति संघात ॥ ननु च द्वित्वाद्द्विवचनेन भवितव्यम् ॥ बहुवचननिर्देशस्तृतीयसंग्रहार्थं । भेदात्संघाताद्भेदसंघाताभ्यां च उत्पद्यन्त इति ॥ तद्यथा—द्वयो परमाण्वो संघाताद्द्विप्रदेश स्कन्ध उत्पद्यते । द्विप्रदेशस्याणोश्च त्रयाणा ... संघातात्त्रिप्रदेशः । द्वयोर्द्विप्रदेशयोस्त्रिप्रदेशस्याणोश्चतुर्णां वा अणूनां संघाताच्चतु प्रदेशः

कहा जाता है वह नियमके लिये होता है और ...
है कि पुद्गलके अणु और स्कंध दो भेद होते हैं और स्कंध ...
भेद संघात दोनोंसे स्कंध उत्पन्न होते हैं यह विधि सूत्र अथवा एक वाक्य ...
पचीसवां सूत्रसे इस २६वां सूत्रमें अणव: स्कंधा: दोनोंकी अनुवृत्तियां यदि लीजावें तो ...
... स्कंध (१) भेदसे (२) संघातसे और (३) एकही समयमें भेद संघात दोनोंसेही उत्पन्न होते हैं, यथा ...
... इसलिये ऊपरके अर्थको नियमित या रोकनेके लिये पूर्वोक्त विधि सूत्र २६वां के पश्चात्ही दूसरा विधि सूत्र ... सूत्र कि अणु भेदसेही उपजते हैं (नकि संघातसे और भेद संघात दोनोंसे उपजते हैं) दिया है ॥

... न संघातात् अपि = अणुकी उत्पत्ति भेदसेही है नकि संघातसे भी ॥
... संघातात् एव = (और नकि एकसमयमें) भेदसंघात दोनोसे (होती है) (शिष्य) तर्क करता है कि संघातसेही
... भेदग्रहणम् ॥ = स्कंधोंके स्वरूप लाभ सिद्ध होने पर (संघातके साथ) भेदको ग्रहण करना
= निष्प्रयोजन है अर्थात् संघातसे स्कंध उत्पन्न होते हैं फिर भेद संघातसे उत्पत्ति कहना निरर्थक है
... र्थम् ॥ = इस संघातके साथ भेद (शब्द) के लानेके प्रयोजन करनेके लिये
= यह (अग्रिम सूत्र) कहा जाता है कि

एवं संख्येयासंख्येयानन्तानामनन्तानन्तानां च संघातात्तावत्प्रदेशाः। एषामेव भेदात्तावद्द्विप्रदेश-पर्यन्ताः स्कन्धा उत्पद्यन्ते ॥ एवं भेदसंघाताभ्यामेकसामयिकाभ्यां द्विप्रदेशादयः स्कन्धा उत्पद्यन्ते। अन्यतो भेदेनान्यस्य संघातेनेति॥ एवं स्कन्धानामुत्पत्तिहेतुरुक्तः॥ अणोरुत्पत्तिहेतुप्रदर्शनार्थमाह—

॥ भेदादणुः ॥ २७ ॥

एवम् • संख्येय असंख्येय-अनन्तानाम् ¦ अनन्तानन्तानाम् ¦ च •	=इसप्रकार संख्यात असंख्यात-अनन्त-और(=च) अनन्तानन्तके
१०० संघातात् ¦ तावत् • प्रदेशाः ¦, एषाम् ¦ एव • भेदात् ¦	=संघातसे उतने प्रदेशवाले स्कंध(उपजते हैं),इन(स्कन्धों)के ही विदारणसे
तावत् • द्वि • प्रदेश पर्यन्ताः ¦ स्कंधाः ¦ उत्पद्यन्ते T	=(तावत्—'वाक्यके भूषणके लिये है') दो प्रदेशीतक स्कंध उपजते हैं अर्थात् अन्य बहुत प्रदेशवाले स्कंध यदि विदारे जाये तो वे स्कंध टूट टूटकर छोटेसे छोटे स्कंधदो प्रदेश तकके होसकते हैं। इससे छोटा स्कंध नहीं होसकता है
एवम् • भेद-संघाताभ्याम् ¦ एकसामयिकाभ्याम् ¦	=इस प्रकार एक समयकरि(=सामयिक)भेद संघात दोनोंसे
द्विप्रदेशादयः ¦ स्कन्धाः ¦ उत्पद्यन्ते ।	=दो प्रदेशादिक वाले स्कंध उत्पन्न होते हैं अर्थात् किसी स्कन्धका विदारण हो और उसी समय में किसी दूसरे स्कन्धसे उसका संघात होतो इसप्रकारभेद संघात दोनों से एक ही समय में स्कन्ध उपजते हैं
अन्यतः • भेदेन ¦ अन्यस्य ¦ संघातेन ¦ इति • ॥	=अन्यसे भेदकरि (और) अन्यका संघात करि (ये स्कंध उत्पन्न होते हैं) अर्थात् ये भेद संघात (दोनों) सेएक ही समयमें उत्पन्न होनेवाले स्कंध इस प्रकार होते हैं कि किसीएक स्कंधकी जिस समय टूटन हुई उसी समय किसी दूसरेस्कंधके साथ उसका जुड़ना होतो कहेंगेकि अमुकस्कन्ध भेद संघातसे उपजा है
एवम् • स्कन्धानाम् ¦ उत्पत्ति हेतुः ¦ उक्तः ¦ ॥	=इस प्रकार स्कन्धोंकी उत्पत्तिका कारण कहा गया
अणोः ¦ उत्पत्ति हेतु प्रदर्शन-अर्थम् ¦ आह T	=अणु की उत्पत्तिका कारण दिखावनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहतेहैं कि
सूत्रम्—भेदादणुः ॥२७॥	=भेदात् अणुः (उत्पद्यते) ॥२७॥

(१) हमारे [illegible] पृष्ठ १३७ पर और [illegible] पर [illegible] है

सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थो भवति। अणोरुत्पत्तिर्भेदादेव, न संघातान्नापि भेदसंघाताभ्यामिति॥ आह संघातादेव स्कन्धानामात्मलाभे सिद्धे भेदग्रहणमनर्थकमिति ॥ तद्ग्रहणप्रयोजनप्रतिपादनार्थमिदमुच्यते—

सूत्रार्थः—भेदात् ॥ अणुः॥ उत्पद्यते ।	=भेद से अणु उत्पन्न होता है अर्थात् अणु किसी वस्तुके टूटने से उपजता है न कि किसी वस्तु के जुड़ने अथवा मिलने से ॥
वृत्त्यनुवादः-सिद्धे॥ विधिः॥ आरभ्यमाणः॥ नियम-अर्थः॥ भवति।	=सिद्ध होनेपर अर्थात् सिद्ध होनेके पश्चात् विधि सूत्रका आरम्भ नियमके लिये =होता है अर्थात् जो पहले विधि सूत्रसे अर्थ सिद्ध होनेपर फिर विधि सूत्र

कहा जाता है वह नियमके लिये होता है और उसको नियम सूत्र(सीमाबंधक सूत्र) कहते हैं जैसे पचीसवां सूत्रमें कहा है कि पुद्गलके अणु और स्कंध दो भेद होते हैं और छब्बीसवां सूत्रमें कहते हैं कि (१)भेदसे (२) संघातसे और (३) भेद संघात दोनोंसे स्कंध उत्पन्न होते हैं यह विधि सूत्र अथवा एक बातको साधारण वर्णन करनेवाला सूत्र है, पचीसवां सूत्रसे इस २६वां सूत्रमें अणवः स्कंधाः दोनोंकी अनुवृत्तियां यदि लीजावें तो यह अर्थ होगा कि अणु और स्कंध (१) भेदसे (२) संघातसे और (३) एकही समयमें भेद संघात दोनोंसेही उत्पन्न होते हैं, यथार्थमें यह अर्थ है नहीं इसलिये ऊपरके अर्थको नियमित या रोकनेके लिये पूर्वोक्त विधि सूत्र २६वां के पश्चात्‌ही दूसरा विधि सूत्र अर्थात् २७वां सूत्र कि अणु भेदसेही उपजते हैं (नकि संघातसे और भेद संघात दोनोंसे उपजते हैं) दिया है ॥

अणोः॥ उत्पत्तिः॥ भेदात्॥ एव॥, न॥ संघातात्॥ अपि॥	=अणुकी उत्पत्ति भेदसेही है नकि संघातसे भी ॥
भेद-संघाताभ्याम्॥ इति॥। आह। संघातात्॥ एव॥	=(और नकि एकसमयमें)भेदसंघात दोनोसे(होतीहै)(शिष्य)तर्क करताहैकि संघातसेही
स्कन्धानाम् ॥ आत्म-लाभे॥ सिद्धे॥ भेदग्रहणम्॥॥	=स्कंधोंके स्वरूप लाभ सिद्ध होने पर(संघातके साथ) भेदको ग्रहण करना
अनर्थकम्॥॥ इति॥	=निष्प्रयोजन है अर्थात् संघातसे स्कंध उत्पन्न होते हैं फिर भेद संघातसे उत्पत्ति करना निरर्थक है
तद्-ग्रहण प्रयोजन प्रतिपादन अर्थम्॥॥	=उस संघातके साथ भेद(शब्द)के लानेके प्रयोजन कहनेके लिये
इदम्॥॥ उच्यते।	=यह(अग्रिम सूत्र)कहाजाता है कि

॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अनन्तानन्तपरमाणुसमुदयनिष्पाद्योऽपि कश्चिच्चाक्षुष कश्चिदचाक्षुष ॥ तत्र योऽचाक्षुष

सूत्रम्–भेदसघाताभ्या चाक्षुष[1] ॥ २८ ॥ = भेदसघाताभ्याम्‌चाक्षुष (स्कध उत्पद्यते)॥ २८॥

सूत्रार्थ —भेदसघाताभ्याम् ॥ चाक्षुष ॥ स्कध ॥ उत्पद्यते ॥ =भेद सघात(दोनों)सेही नेत्र इन्द्रियगोचर स्कध उत्पन्न होता है(भेदसे नहीं होता) अर्थात् जो सूक्ष्म परिणामनरूप स्कंध है उसका भेद अथवा खंड होनेपर वो सूक्ष्म परिणामको नहीं छोडता है इससे वह नेत्र इन्द्रियसे अगोचर है परन्तु जब वह सूक्ष्म परिणाम(=भेद)रूप किया हुआ स्कंध अन्य स्कधमें सघातरूप होकर मिले तब सूक्ष्मपणाके परिणामको छोडकर स्थूलपनाको प्राप्त होकर नेत्र इंद्रिय ग्राह्य होता है इसलिये कहते हैं कि भेद सघात दोनोंसे नकि केवल भेदसे नेत्रइन्द्रियगोचर स्कध पैदा होता है

सर्वार्थसिद्धि:—अनन्तानन्त-परमाणु-समुदय-निष्पाद्य ॥ अपि =अनन्तानन्त परमाणुके समूहकरि उत्पन्न होने योग्य(स्कंधों)में भी
कश्चित् चाक्षुष ॥ कश्चित् अचाक्षुष ॥ =कोई एक(स्कंध)नेत्र इन्द्रियकरि ग्राह्य है कोई एक नेत्रइन्द्रियकरि ग्रहण योग्य नहीं है
तत्र य ॥ अचाक्षुष ॥ =तहां जो स्कंध नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य नहीं (अचाक्षुषः) है

(1) नेत्र इन्द्रियगोचर = नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होनेवाला नेत्रइन्द्रियकर ग्राह्य नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य (२) दिगम्बर आम्नायकी प्राचीन सूत्रपाठकी [illegible] हस्तलिखित कई प्रतियोंमें यह सूत्र पूर्वोक्त लेखअनुसार है परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा श्रीसिद्धसेनसूरि रचित [illegible] पृष्ठ ४०६ पर यह सूत्र इस प्रकार है कि "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः ॥" अर्थात् चाक्षुषः [illegible] चाक्षुष (नेत्र इन्द्रियगोचर) [illegible] और [illegible] यह [illegible] है कि स्कन्धाः शब्दकी अनुवृत्ति पच्चीसवें सूत्रसे और उत्पद्यन्ते शब्दकी अनुवृत्ति [illegible] सूत्रसे लेकर [illegible] "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः स्कन्धाः उत्पद्यन्ते" यह अनुवृत्तिपूर्वक सूत्र होजाता है। [illegible] "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" होजाता है अनुवृत्ति स्कन्धाके स्थानमें स्कन्धः [illegible] है और इसी प्रकार [illegible] स्थानमें [illegible]। अर्थ इसप्रकार तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें किया है कि

भेद-संघाताभ्यां ॥ चाक्षुषाः ॥ स्कन्धाः ॥ =भेद-संघात (दोनों)से ही नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होनेवाले स्कन्ध
[illegible] =उत्पन्न होते हैं और (=तु) [illegible] इन्द्रियगोचर नहीं है [illegible] (छब्बीसवें सूत्रमें कहागया है कि)
[illegible] =[illegible] भेदसे तथा(=च) संघातभेद(दोनों)से(ही)(उत्पन्न होते हैं)। अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है॥

स कथं चाक्षुषो भवतीति चेदुच्यते । भेदसंघाताभ्यां चाक्षुष । न भेदादिति ॥ का तत्रोपपत्तिरिति चेत् ब्रूमः । सूक्ष्मपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदे सौक्ष्म्यापरित्यागादचाक्षुषत्वमेव । सौक्ष्म्यपरिणतः पुनरपरः सत्यपि तद्भेदेऽन्यसंघातान्तरसंयोगात्सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थौल्योत्पत्तौ चाक्षुषो भवति॥ आह धर्मादीनां द्रव्याणां विशेषलक्षणान्युक्तानि,सामान्यलक्षणं नोक्तं, तद्वक्तव्यम्॥ उच्यते—

॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

सः॥ कथम् चाक्षुषः॥ भवति॥ इति चेत् उच्यते ।	=सो कैसे नेत्र इन्द्रियगोचर होता है। ऐसी शंका होनेपर कहाजाता है कि
भेदसंघाताभ्याम्॥ चाक्षुषः॥ न भेदात्॥ इति	=भेदसंघात दोनों से नेत्र इन्द्रियगोचर(स्कन्ध)होता है न भेद वा खंडसे केवल ।
का॥ तत्र उपपत्तिः॥ इति चेत् ब्रूमः ।	=क्योंकर वहां चाक्षुषस्क न्धकी)उत्पत्ति है ऐसा संदेह है(उत्तरमें) हम कहते हैं कि
सूक्ष्म-परिणामस्य॥ स्कन्धस्य॥ भेदे॥ सौक्ष्म्य-	=सूक्ष्म परिणमनरूप स्कन्धके भेद वा खंड होनेपर सूक्ष्मताके
अपरित्यागात्॥ अचाक्षुषत्वम्॥ एव ।	=न छोड़ने(के कारण)से नेत्र इन्द्रियके अगोचरही रहता है।
सौक्ष्म्य-परिणतः॥ पुनः अपरः॥ सति॥ अपि तद्-भेदे॥	=बहुरि कोई एक(=अपर)सूक्ष्मतारूप परिणम्या(स्कन्ध)सो उस(स्कन्ध)के भेद होनेपर
अन्य-संघात-अन्तर-संयोगात्॥ सौक्ष्म्य	=अन्य(स्कन्ध)का संघात विशेषके(अन्तर)मिलनेसे सूक्ष्मपनाके
परिणाम-उपरमे॥ स्थौल्य-उत्पत्तौ॥ चाक्षुषः॥ भवति ॥	=परिणमनको छोड़नेपर और(=च)स्थूलताके उत्पन्न होनेपर नेत्र इन्द्रियगोचर होताहै
आह धर्मादीनां॥ द्रव्याणाम्-विशेष-लक्षणानि॥ उक्तानि॥	=शिष्य पूछता है कि धर्मादिक द्रव्योंके विशेष लक्षण कहेगये
सामान्य-लक्षणम्॥ न उक्तम्॥ तद्-वक्तव्यम्॥ उच्यते	=सामान्यलक्षण नहीं कहागया,उस सामान्यलक्षणको कहना चाहिये-कहाजाताहैकि
सद्द्रव्यलक्षणम् ॥२९॥	= सत्-द्रव्य-लक्षणम् (भवति) ॥२९॥
सूत्रार्थः-सत्॥ द्रव्य-लक्षणम्॥ भवति	=द्रव्यका लक्षण सत् है वही द्रव्य है अथवा जो सत्रूप है वही द्रव्य है

श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें यह सूत्र नहीं है अर्थात् इसका सूत्र नहीं माना है वार्तिक और वृत्तिरूपमें दिया है ॥

॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अनन्तानन्तपरमाणुसमुदयनिष्पाद्योऽपि कश्चिच्चाक्षुष कश्चिदचाक्षुष ॥ तत्र योऽचाक्षुष

सूत्रम्-भेदसंघाताभ्यां चाक्षुष[1]॥ २८ ॥ = भेदसंघाताभ्याम् चाक्षुष (स्कंध उत्पद्यते)॥ २८॥

सूत्रार्थ —भेदसंघाताभ्याम् ॥ चाक्षुष ॥स्कंधः॥ उत्पद्यते ॥=भेद संघात(दोनों)सेही नेत्र इन्द्रियगोचर स्कंध उत्पन्न होता है(भेदसे नहीं होता) अर्थात् जो सूक्ष्म परिणामनरूप स्कंध है उसका भेद अथवा खंड होनेपर तौ सूक्ष्म परिणामको नहीं छोडता है इससे वह नेत्र इन्द्रियसे अगोचर है परन्तु जब वह सूक्ष्म परिणाम(=भेद)रूप किया हुआ स्कंध अन्य स्कंधमें संघातरूप होकर मिले तब सूक्ष्मपणाके परिणामका छोड़कर स्थूलपनाको प्राप्त होकर नेत्र इंद्रिय ग्राह्य होता है इसलिये कहते हैं कि भेद संघात दोनोंसे नकि केवल भेदसे नेत्रइन्द्रियगोचर स्कंध पैदा होता है

सूत्रानुवाद—अनन्तानन्त-परमाणु-समुदय-निष्पाद्य ॥ अपि॥=अनन्तानन्त परमाणुके समूहकरि उत्पन्न होने योग्य(स्कंधों)में भी

कश्चित्॥चाक्षुषः॥ कश्चित्॥अचाक्षुषः॥ =कोई एक(स्कंध)नेत्र इन्द्रियकरि ग्राह्य है,कोई एक नेत्रइन्द्रियकरि ग्रहण योग्य नहीं है

तत्र ॥ अचाक्षुषः॥ =तहां जो स्कंध नेत्र इन्द्रियके ग्रहण याग्य नहीं (अचाक्षुषः) है

(1) नेत्र इन्द्रियगोचर=नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्षहोनेवाला नेत्रइन्द्रियके मात्र नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य (२) दिगम्बर आम्नायकी बहुतसी सूत्रग्रन्थकी पत्रक तथा हस्तलिखित कई प्रतियोंमें यह सूत्र पूर्वोक्त लेखअनुसार है परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पृष्ठ ४०६ पर यह सूत्र इस प्रकार है कि "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" ॥ अर्थात् चाक्षुषाः बहुवचन चाक्षुष (नेत्र इन्द्रियगोचर) हैं ऐसा पाठ है और सूक्ष्मता यह जान पड़ती है कि 'स्कन्धाः' शब्दकी अनुवृत्ति पच्चीसवां सूत्रसे और उत्पद्यन्ते शब्दकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे लेकर इस प्रकारसे सत्ताईसवां सूत्र किये हुए "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः स्कन्धाः उत्पद्यन्ते" यह अनुवृत्तियोंसहित सूत्र होजाता है। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकारके शुद्धसूत्र बोध होजाताहै अर्थात् "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" होजाता है अनुवृत्ति स्कन्धाः के स्थानमें 'स्कन्धः' की भावना पड़ती है और इसी प्रकार उत्पद्यन्ते के स्थानमें उत्पद्यते की। अर्थ इसप्रकार सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें किया है कि

भेद-संघाताभ्यां, चाक्षुषाः, स्कन्धाः॥ =भेद-संघात (दोनों),से ही नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष ग्रहणकरनेवाले स्कन्ध

उत्पद्यन्ते॥ अचाक्षुषाः तु ॥ उक्तवान्तरात्॥ =उत्पन्न होते हैं और (=तु)जोनेत्र इन्द्रियगोचर नहीं हैं वे जैसाकि (छब्बीसवांसूत्रमें कहागया है कि)

संघातात् ॥ भेदात् ॥ संघातभेदात् ॥ उत्पद्यन्ते =संघातसे भेदसे तथा(=च) संघातभेद(दोनों)से(ही)(उत्पन्न होते हैं)। अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है॥

स कथं चाक्षुषो भवतीति चेदुच्यते । भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः । न भेदादिति ॥ का तत्रोपपत्तिरिति चेत्ब्रूमः । सूक्ष्मपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदे सौक्ष्म्यापरित्यागादचाक्षुषत्वमेव । सौक्ष्म्यपरिणतः पुनरपरः सत्यपि तद्भेदेऽन्यसंघातान्तरसंयोगात्सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थौल्योत्पत्तौ चाक्षुषो भवति॥ आह धर्मादीनां द्रव्याणां विशेषलक्षणान्युक्तानि, सामान्यलक्षणं नोक्तं, तद्वक्तव्यम्॥ उच्यते—

॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

सः कथम् चाक्षुषः भवति इति चेत् उच्यते ।	=सो कैसे नेत्र इन्द्रियगोचर होता है । ऐसी शंका होनेपर कहाजाता है कि
भेदसंघाताभ्याम् चाक्षुषः न भेदात् इति	=भेदसंघात दोनों से नेत्र इन्द्रियगोचर (स्कन्ध) होता है न भेद या खंडसे केवल ।
का तत्र उपपत्तिः इति चेत् ब्रूमः ।	=क्योंकर वहां चाक्षुषस्कन्धकी) उत्पत्ति है ऐसा सन्देह है (उत्तरमें) हम कहते हैं कि
सूक्ष्म-परिणामस्य स्कन्धस्य भेदे सौक्ष्म्य	=सूक्ष्म परिणमनरूप स्कन्धके भेद या खंड होनेपर सूक्ष्मताके
अपरित्यागात् अचाक्षुषत्वम् एव ।	=न छोड़ने(के कारण)से नेत्र इन्द्रियके अगोचरही रहता है ।
सौक्ष्म्य-परिणतः पुनः अपरः सति अपि तद्-भेदे	=बहुरि कोई एक(=अपर) सूक्ष्मता रूप परिणया (स्कन्ध) तो उस (स्कन्ध)के भेद होनेपर
अन्य-संघात-अन्तर-संयोगात् सौक्ष्म्य	=अन्य (स्कन्ध) का संघात विशेषके (अन्तर) मिलनेसे सूक्ष्मपनाके
परिणाम उपरमे स्थौल्य-उत्पत्तौ चाक्षुषः भवति ॥	=परिणमनको छोड़नेपर और (=च) स्थूलताके उत्पन्न होनेपर नेत्र इन्द्रियगोचर होता है
आह धर्मादीनां द्रव्याणाम् विशेष-लक्षणानि उक्तानि	=शिष्य पूछता है कि धर्मादिक द्रव्योंके विशेष लक्षण कहेगये
सामान्य-लक्षणम् न उक्तम् तद्-वक्तव्यम् उच्यते	=सामान्यलक्षण नहीं कहागया, उस सामान्यलक्षणको कहना चाहिये—कहाजाता है कि
सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥	= सत्-द्रव्य-लक्षणम् (भवति) ॥ २९ ॥
सूत्रार्थः- सत् द्रव्य-लक्षणम् भवति	=द्रव्यका लक्षण सत् है वही द्रव्य है अथवा जो सत्रूप हैं वही द्रव्य है

श्वेताम्बराम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें यह सूत्र नहीं है अर्थात् इसको सूत्र नहीं माना है वार्तिक और वृत्तिरूपमें दिया है ॥

॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुपः ॥ २८ ॥

अनन्तानन्तपरमाणुसमुदयनिष्पाद्योऽपि कश्चिच्चाक्षुष कश्चिदचाक्षुष ॥ तत्र योऽचाक्षुष

सूत्रम्–भेदसंघाताभ्यां चाक्षुष[1]॥ २८ ॥ = भेदसंघाताभ्याम्‌चाक्षुष (स्कंध उत्पद्यते)॥ २८॥

सूत्रार्थ —भेदसंघाताभ्याम्॥ चाक्षुषः॥ स्कन्धः॥ उत्पद्यते॥ =भेद संघात(दोनों)सेही नेत्र इन्द्रियगोचर स्कंध उत्पन्न होता है(भेदसे नहीं होता) अर्थात् जो सूक्ष्म परिणमनरूप स्कंध है उसका भेद अथवा खंड होनेपर वो सूक्ष्म परिणामको नहीं छोड़ता है इससे वह नेत्र इन्द्रियसे अगोचर है परन्तु जब वह सूक्ष्म परिणाम(=भेद)रूप किया हुआ स्कंध अन्य स्कंधमें संघातरूप होकर मिले तब सूक्ष्मपणाके परिणामको छोड़कर स्थूलपनाको प्राप्त होकर नेत्र इंद्रिय ग्राह्य होता है इसलिये कहते हैं कि भेद संघात दोनोंसे नकि केवल भेदसे नेत्रइन्द्रियगोचर स्कंध पैदा होता है

वृत्त्यनुवाद—अनन्तानन्त-परमाणु-समुदय-निष्पाद्य॥ अपि॥ =अनन्तानन्त परमाणुके समूहकरि उत्पन्न होने योग्य(स्कंधों)में भी

कश्चित्॥ चाक्षुषः॥ कश्चित्॥ अचाक्षुषः॥ =कोई एक(स्कंध)नेत्र इन्द्रियकरि ग्राह्य है कोई एक नेत्रइन्द्रियकरि ग्रहण योग्य नहीं है

तत्र॥ यः॥ अचाक्षुषः॥ =तहां जो स्कंध नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य नहीं (अचाक्षुषः) है

(1) नेत्र इन्द्रियगोचर=नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होनेवाला। नेत्रइन्द्रियके ग्राह्य नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य (२) दिगम्बर आम्नायकी बहुतसी सुद्रितग्रन्थकी तरहें तथा हस्तलिखित कई प्रतियोंमें यह सूत्र पर्योक्त लेखप्रमाण है परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पृष्ठ ४०६ पर यह सूत्र इस प्रकार है कि 'भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः ॥ अर्थात् चाक्षुषा बहुवचन चाक्षुष'(नेत्र इन्द्रियगोचर)का है चाक्षुषाः शब्दके बहुवचन और सूत्रका यह आशय है कि'स्कन्धाः शब्दकी अनुवृत्ति पच्चीसवां सूत्रसे और उत्पद्यन्ते शब्दकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे लेकर ऐसा अर्थसे तीनोंकी मिला दियेहुए "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः स्कन्धाः उत्पद्यन्ते" यह अनुवृत्तियोंसमेत सूत्र होजाता है। इसमें संदेह नहीं कि एक अक्षरके गुरुतम्भ दीर्घ होजाता है अर्थात् "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" होजाता है अनुवृत्ति स्कन्धाके स्थानमें'स्कन्धाः की मानती पड़ती है और इसी प्रकार उत्पद्यन्ते आगमें उत्पद्यन्तेको। अर्थ इसप्रकार सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें किया है कि

भेदसंघाताभ्याम्॥ चाक्षुषाः॥ स्कन्धाः॥ =भेद संघात (दोनों)से ही नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होसकनेवाले स्कन्ध

उत्पद्यन्ते॥ अचाक्षुषाः, तु॥ अचाक्षुषाः, ॥ =उत्पन्न होते हैं और (=तु) अतीन्द्रियगोचर नहीं हैं वे जैसाकि (छब्बीसवां सूत्रमें कहागया है कि)

यथासम्भवम्॥ भेदात्॥ संघातात्॥ भेदसंघाताभ्यां च॥ =संघातसे भेदसे तथा(=च) संघातभेद(दोनों)से(ही)(उत्पन्न होतेहैं)। अर्थ दोनोंसम्प्रदायोंमें एकसा है।

तथा पूर्वभावविगमनं व्यय । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृते ॥ अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुव ।

नाश होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद मानना

तथा=पूर्वभावविगमनम्॥ व्ययः॥ । =वैसेही (=तथा) पहिली अवस्थाका विनाश होना (=विगमनं) समुच्छेद होना अथवा अभाव होना सो व्यय है

यथा=घट उत्पत्तौ॥ पिण्ड आकृतेः॥, =जैसे घटके उपजनेमें पिंडके आकारका (विनाश होना)

अनादि पारिणामिक-स्वभावेन॥ (१)व्यय-उदय अभावात्॥ =अनादिकालसे परिणमन होनेवाले स्वभाव द्वारा (पर्यायोंके) विनाश उत्पादनके वशसे रहित

(२)ध्रुवति॥ स्थिरीभवति॥ इति=ध्रुवः॥ =स्थिर रहता है वा अवतिष्ठमान रहता है (=स्थिरी भवति) ऐसा ध्रुव है अर्थात् जो पूर्वभावका नाश और उत्तरभावका उत्पाद होतेभी अपनी जातिको नहीं छोड़ता है सो ध्रुव है, पर्याय नवीन उपजती हैं और विनशती हैं, द्रव्यस्वभावकरि उत्पाद विनाशरूप नहीं है ध्रुव है ही ॥

कुण्डलरूप अवस्थाका नष्ट होना सो विनाश वा व्यय है और पीतता भारीपन आदि अपनी सोनेकी जातिको लिये हुए दोनो अवस्थाओंमें विद्यमान रहना सो ध्रौव्य है। और भी जैसे मिट्टीके पिंडका घट करना सो उत्पाद है। और पिंडपर्यायका अभाव सो व्यय है और पिंडपर्यायमें तथा घटपर्यायमें मिट्टीका अभाव न होना तथा सर्व मिट्टीके गुणोंको धारण किये हुये दोनो पिंड तथा घट अवस्थाओंमें रहना है सो ध्रौव्य है ॥

(१) श्वेताम्बराम्नायमें इस सूत्रके भिन्नभिन्नभाष्य और पाठ ऐसे हैं कि (क)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येण च युक्तंसत्" (ख)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येणच युक्तमेतत्सत्म् (उत्पादसे व्ययसे तथा ध्रौव्यसे युक्त होना यह सतका लक्षण है) (ग) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं चैतत् त्रितययुक्तं सत् (घ) उत्पादव्ययो ध्रौव्यं च सतो लक्षणम् (ङ)उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों एकही पदमें पढे हैं। सर्वथा सूत्रका यह अर्थहै कि उत्पाद, व्यय ध्रौव्य सहित सत् है ॥

(२)अनेकान्तस्वरूप वस्तुके अन्वयी ओड़रूप तो गुण है और व्यतिरेकी पर्याय हैं जैसे मृत्तिकाविषैं स्पर्श रस गन्ध रूप ये तो गुणहैं और पिंड घट कपाल खंड शर्करादिक पर्याय हैं। स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं ते तो मृत्तिका के साथही घट कपाल खंडादिक सर्वपर्यायोंमें पाये जात हैं तिससे स्पर्शादि गुण अन्वयी हैं। और घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमें पायेजाते हैं। जिस कालमें पिंड पर्याय है तिस कालमें घटादिक अन्य पर्याय नहीं हैं और घट पर्याय है तिसमें पिण्डादिक पर्याय नहीं है तिससे पर्याय व्यतिरेकी है और द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्न नहीं है गुण पर्यायात्मकही द्रव्य है। गुण हैं ते तो द्रव्यमें युगपत् प्रवर्तते हैं और पर्याय हैं ते क्रमकरि प्रवर्तती हैं तिससे गुणपर्यायहैं ते द्रव्यका स्वभाव भूत हैं तिससे द्रव्यलक्षणपना का धारण करती है। इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) कहेगये हैं।

यत्सत्तद्द्रव्यमित्यर्थ ॥ यद्येवं तदेव तावद्वक्तव्यं किं सत् ? इत्यत आह—

॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

चेतनस्याचेतनस्य वा द्रव्यस्य स्वां जातिमजहत उभयनिमित्तवशाद्भावान्तरावाप्तिरुत्पादन-मुत्पादः । मृत्पिण्डस्य घटपर्यायवत् ॥

शब्दार्थ—यत्=जो सत्=सत् तत्=द्रव्यम् इति=अर्थः=जो सत् है वा द्रव्य है ऐसा तात्पर्य है
यदि=एवम्=तावत्=तत्=एव =जो ऐसे हैं अर्थात् जो सत् है सो द्रव्य है तो(=तावत्) सोही (तदेव)
वक्तव्यम्=किम्=सत् इति=अतः=आह =कहना चाहिये सत् क्या है इसलिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं[2] सत् ॥३०॥ = भवति सत् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् ॥ ३०

सूत्रार्थ—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्=सत्=भवति =उत्पत्ति-नाश-स्थिरता स्वरूप (=युक्त) सत् है वा उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षणवाला (=युक्त) सत् है अर्थात् (३) उत्तर पर्यायका उपजना सोही पूर्व पर्यायका नाश होना है और जो पूर्व पर्यायका नाश होना सोही उत्तर पर्यायका उत्पाद है और ध्रुव है सो उत्पादमेंभी वही द्रव्य है और व्यय में भी वही द्रव्य है अन्य द्रव्य नहीं होगई है और उत्पाद-व्यय द्रव्यमें समय समय होता है इससे सर्वद्रव्य परिणामी हैं परिणमन बिना किसी समयमेंभी कोई द्रव्य नहीं रहती है। ये (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) तीनों गुण द्रव्यमें एक साथ निरन्तर रहते हैं।

शब्दार्थ—स्वाम्=जातिम्=अजहत=चेतनस्य =जिसने अपनी जातिको नहीं खोया है चेतन
अचेतनस्य=वा=द्रव्यस्य=उभय-निमित्त-वशात् =अथवा अचेतन द्रव्यके (बाह्य, अभ्यन्तर) दोनों कारणोंके बलसे
भावान्तर अवाप्तिः=उत्पादनम्=उत्पादः =(एक अवस्थासे) अन्य अवस्था या परणतिको प्राप्त होना सो उत्पाद है
मृत्पिण्डस्य=घट-पर्यायवत् =माटीके पिंडके घट पर्याय होने सदृश है अर्थात् मृत्तिका द्रव्य विषैं पिंड पर्यायका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ [illegible] ... है । श्वेताम्बर आम्नायमें कई पाठ हैं उनमेंसे एक पाठ मिलता है (देखो पृष्ठ १०१) ।
(२) (प्रश्न) जब इनमेंसे सूत्रमें 'सत्' शब्द है तो यहां [illegible] 'सत्' शब्द क्यों आते हैं, [illegible] अनुवृत्ति लेकर देना सूत्र क्यों नहीं [illegible] ... सत् शब्दकी अनुवृत्ति है अथवा [illegible] क्योंकि उत्पाद व्यय ध्रौव्य [illegible] ... (३) जैसे [illegible] ... उत्पाद है और

तथा पूर्वभावविगमनं व्यय । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृतेः॥ अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुव ।

नाश होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद जानना

तथा पूर्वभावविगमनम् व्ययः । =वैसेही (=तथा) पहिली अवस्थाका विनाश होना (=विगमनं) समुच्छेद होना अथवा अभाव होना सो व्यय है

यथा घट उत्पत्तौ पिण्ड-आकृतेः अनादि =जैसे घटके उपजनेमें पिंडके आकारका (विनाश होना) अनादिकालसे

पारिणामिक-स्वभावेन व्यय-उदय-अभावात् =परिणमन होनेवाले स्वभाव द्वारा (पर्यायोंके) विनाश उत्पादनके वशसे रहित

ध्रुवति स्थिरीभवति इति ध्रुवः =स्थिर रहता है वा अवस्थितमान रहता है (=स्थिरी भवति) ऐसा ध्रुव है अर्थात् जो पूर्वभावका नाश और उत्तरभावका उत्पाद होतेभी अपनी जातिको नहीं छोड़ता है सो ध्रुव है, पर्याय नवीन उपजती हैं और विनशती हैं, द्रव्यस्वभावकरि उत्पाद विनाशरूप नहीं है ध्रुव है ही ॥

कुण्डलरूप अवस्थाका नष्ट होना सो विनाश वा व्यय है और पीतत्व भारीपन आदि अपनी सोनकी जातिको लिये हुए दोनों अवस्थाओंमें विद्यमान रहना सो ध्रौव्य है। और भी जैसे मिट्टीके पिंडका घट करना सो उत्पाद है और पिंडपर्यायका अभाव सो व्यय है और पिंडपर्यायमें तथा घटपर्यायमें मिट्टीका अभाव न होना तथा सर्व मिट्टीके गुणोंको धारण किये हुये दोनों पिंड तथा घट अवस्थाओंमें रहना है सो ध्रौव्य है ॥

(१) श्वेताम्बराम्नायमें इस सूत्रके भिन्नभिन्नभाष्य और पाठ ऐसे हैं कि (क) उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येण च युक्तंसत्" (ख) उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येण च युक्तंसतोलक्षणम् (उत्पादसे व्ययसे तथा ध्रौव्यसे युक्त होना यह सतका लक्षण है) (ग) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं चैतत् त्रितययुक्तं सत् (घ) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं च सतो लक्षणम् (ङ) उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों एकही पदमें पढे हैं ॥ सर्वथा सूत्रका यह अर्थहै कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित सत् है ॥

(२) अनेकान्तस्वरूप वस्तुके अन्वयी ओड़रूप ही गुण हैं और व्यतिरेकी पर्याय हैं जैसे मृत्तिकाविषैं स्पर्श रस गन्ध वर्ण ये तो गुण हैं और पिंड घट कपाल खंड शर्करादिक पर्याय हैं ॥ स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं ते तो मृत्तिका के सावही घट कपाल खंडादिक सर्वपर्यायोंमें पाये जाते हैं तिससे स्पर्शादि गुण अन्वयी हैं। और घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमें पायेजाते हैं। जिस कालमें पिंड पर्याय है तिस कालमें घटादिक अन्य पर्याय नहीं हैं और घट पर्याय है तिसमें पिण्डादिक पर्याय नहीं है तिससे पर्याय व्यतिरेकी है और द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्न नहीं है गुण पर्यायात्मक ही द्रव्य है ॥ गुण हैं ये तो द्रव्यमें युगपत् प्रवर्तते हैं और पर्याय हैं ते क्रमकरि प्रवर्तती हैं तिससे गुणपर्यायही तो द्रव्यका स्वभाव भूत हैं तिससे द्रव्यलक्षणपना को धारण करती है ॥ इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) कहेगये हैं।

मर्यादा

विधि

यत्सत्तद्द्रव्यमित्यर्थ ॥ यद्येव तर्हि तावद्वक्तव्यं किं सत् ? इत्यत आह—

॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

चेतनस्याचेतनस्य वा द्रव्यस्य स्वां जातिमजहत उभयनिमित्तवशाद्भावान्तरावाप्तिरुत्पादन-मुत्पादः । मृत्पिण्डस्य घटपर्यायवत् ॥

१०४ शब्दार्थ—यत् ।।सत् ।।तत् ।।द्रव्यम् ।।इति०अर्थः।=जो सत् है वह द्रव्य है ऐसा तात्पर्य है

यदि ।।एवम् ०तावत् ०तर्हि ।। एव० =जो ऐसे है अर्थात् जो सत् है सो द्रव्य है तो (=तावत्) सोही (तद्एव)

वक्तव्यम् ।।किम् ।।सत् ।। इति०अत आह =कहना चाहिये सत् क्या है इसलिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

(१) उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त (२)सत् ॥३०॥ = भवति सत् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् ॥ ३०

सूत्रार्थ—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम् ।।सत् ।।भवति। =उत्पत्ति-नाश-स्थिरता स्वरूप (=युक्त) सत् है वा उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षणवाला (=युक्त) सत् है अर्थात् (३)उत्तर पर्यायका उपजना सोही पूर्व पर्यायका नाश होना है और जो पूर्व पर्यायका नाशहोना सोही उत्तर पर्यायका उत्पाद है और ध्रव्य है सो उत्पादमेंभी वही द्रव्य है और व्यय में भी वही द्रव्य है अन्य द्रव्य नहीं होगई है और उत्पाद-व्ययद्रव्यमें समय सभय होता है इससे सर्वद्रव्य परिणामी हैं परिणमन विना किसी समयमेंभी कोई द्रव्य नहीं रहती है । ये(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) तीनों गुण द्रव्यमें एक साथ निरन्तर रहते हैं।

शब्दानुवाद—स्वाम् ।।जातिम् ।।अजहत ।।चेतनस्य ।। =जिसने अपनी जातिको नहीं छोड़ा है चेतन

अचेतनस्य ।।वा०द्रव्यस्य ।।उभय-निमित्त-वशात् ।। =अथवा अचेतन द्रव्यके (बाह्य, अभ्यन्तर) दोनों कारणोंके वशसे

भावान्तर-अवाप्ति ।।उत्पादनम् ।।उत्पाद ।। =(एक अवस्थासे)अन्य अवस्था वा परणतिको प्राप्त होना सो उत्पाद है

मृत् ।। पिण्डस्य ।। घट-पर्यायवत्० =माटीके पिंडके घट पर्याय होने सदृश है अर्थात् मृत्तिका द्रव्य विषें पिंड पर्यायका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ [illegible] है । श्वेताम्बर आम्नायमें कई पाठ हैं उनमेंसे एक पाठ मिलता है (देखो पृष्ठ १०[illegible]) ।

(२) (प्रश्न) जब इसमेंसे सूत्रमें सत् शब्द है तो यहां तीसवें सूत्रमें सत् शब्द क्यों लाये हैं, [illegible] सूत्रमें अनुवृत्ति लेकर ऐसा सूत्र क्यों नहीं किया कि "उत्पाद-व्यय ध्रौव्ययुक्तं [illegible]" [illegible] 'सत्' शब्दकी अनुवृत्ति है [illegible] क्योंकि उत्पाद व्यय ध्रौव्य [illegible] (३) [illegible] उत्पाद है और

तथा पूर्वभावविगमनं व्यय । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृते ॥अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुव ।

नाश होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद जानना

तथा पूर्वभावविगमनम्॥व्यय॥ । =तैसेही (=तथा) पहिली अवस्थाका विनाश होना (=विगमनं) समुच्छेद होना अथवा अभाव होना सो व्यय है

यथा घट-उत्पत्तौ॥पिण्ड आकृतेर्॥, अनादि =जैसे घटके उपजनेमें पिंडके आकारका (विनाश होना)अनादिकालसे

पारिणामिक-स्वभावेन॥ १)व्यय-उदय अभावात्॥ =परिणमन होनेवाले स्वभाव द्वारा (पर्यायोंके) विनाश उत्पादनके वशसे रहित

(२)ध्रुवति॥ स्थिरीभवति॥इति ध्रुवः॥ =स्थिर रहता है वा अवस्थित रहता है (=स्थिरी भवति) ऐसा ध्रुव है अर्थात् जो पूर्वभावका नाश और उत्तरभावका उत्पाद होतेभी अपनी जातिको नहीं छोड़ता है सो ध्रुव है, पर्याय नवीन उपजतीहै और विनशती हैं, द्रव्यस्वभावकरि उत्पाद विनाशरूप नहीं है ध्रुव है ही ॥

कुण्डलरूप अवस्थाका नष्ट होना सो विनाश वा व्यय है और पीतरंग आदिपन आदि अपनी सोनेकी जातिको लिये हुए दोनों अवस्थाओंमें विद्यमान रहना सो ध्रौव्य है। और भी जैसे मिट्टीके पिंडका घट बनना सो उत्पाद है और पिंडपर्यायका अभाव सो व्ययहै और पिंडपर्यायमें तथा घटपर्यायमें मिट्टीका अभाव न होना तथा वर्ण मिट्टीके गुणोंको धारण किये हुये दोनों पिंड तथा घट अवस्थाओंमें रहना है सो ध्रौव्य है ॥

(१) श्वेताम्बराम्नायमें इस सूत्रके भिन्नभिन्नभाष्य और पाठ ऐसे हैं कि (क)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येण च युक्तंसत्' (ख)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येणच युक्तमेकलक्षणम् (उत्पादसे व्ययसे तथा ध्रौव्यसे युक्त होना यह सतका लक्षण है) (ग) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं चैतत् त्रितयमुक्तं सत् (घ) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं च सतो लक्षणम् (ङ)उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों एकही पदमें पढे हैं ॥ सर्वथा सूत्रका यह अर्थहै कि उत्पाद, व्यय ध्रौव्य सहित सत् है ॥

(२)अनेकान्तस्वरूप वस्तुके अन्वयी ओरूप तो गुण है और व्यतिरेकी पर्याय हैं जैसे मृत्तिकाविषैं स्पर्श रस गन्ध रूप ये तो गुणहैं और पिंड घट कपाल खंड, शर्करादिक पर्याय हैं ॥ स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं ते तो मृत्तिका के साथही घट कपाल खंडादिक सर्वपर्यायोंमें पाये जात हैं तिससे स्पर्शादि गुण अन्वयी हैं। और घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमें पायेजाते हैं। जिस कालमें पिंड पर्याय है तिस कालमें घटादिक अन्य पर्याय नहीं हैं और घट पर्याय है तिसमें पिण्डादिक पर्याय नहीं है तिससे पर्याय व्यतिरेकी है और द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्न नहीं है गुण पर्यायात्मकही द्रव्य है ॥ गुण हैं वे तो द्रव्यमें युगपत् प्रवर्तते हैं और पर्याय हैं ते क्रमकरि प्रवर्तती हैं तिससे गुणपर्यायहैं ते द्रव्यका स्वभाव भूत हैं तिससे द्रव्यलक्षणपना को धारण करती है ॥ इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) कहेगये हैं।

ध्रुवस्य भावः कर्म वा ध्रौव्यम् । यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वयः ॥ तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्युक्तं सदिति ॥ आह भेदे सति युक्तशब्दो दृष्टः । यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सति तेषां त्रयाणां

ध्रुवस्य॥ भावः॥ कर्म॥ वा० ध्रौव्यम्॥ ।	ध्रुवका भाव अथवा कर्म है सो ध्रौव्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना ध्रौव्य है
यथा० मृद् पिण्ड-घटादि अवस्थासु॥ मृद् आदि अन्वयः॥ ॥	=जैसे मिट्टीका ढेला घट (कपाल) आदिक अवस्थाओं में मिट्टी आदि है =सो जोड़ रूप या सर्व दशाओंमें सम्बन्धरूप है अर्थात् वही मिट्टी पिंडमें थी वही घटमें
तैः॥ उत्पाद-व्यय ध्रौव्यैः॥ युक्तम्॥ सत्॥ इति०॥	=तिन उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता (तीनों) करि सहित (=युक्त) सत् है ॥
आह॥ भेदे॥ सति॥ युक्तशब्दः॥ दृष्टः॥ ।	=प्रश्न करता है कि भेद होनेमें युक्त शब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एक वस्तु से दूसरी वस्तु भिन्न दिखानी होती है वहां युक्त शब्द लाते हैं
यथा० दण्डेन॥ युक्तः॥ देवदत्तः॥ इति० ॥	=जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य वस्तु है । देवदत्त और दंड एक ही नहीं है
तथा० सति॥ तेषाम्॥ त्रयाणाम्॥	=इस भांति (=तथा) होने में (=सति) तिन तीन (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) के

(1) "यथा मृत्पिण्ड घटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय" ऐसा पाठ हो अर्थात् 'मृदन्वयः' के स्थानमें 'मृदाद्यन्वय' हो तो 'पिण्डका अर्थ' [illegible] (देखो [illegible] पृष्ठ ३१६) होगा और वाक्यका अर्थ इसप्रकार होगाकि जैसे मिट्टी और [illegible] (=पिण्ड, घट आदिक [illegible] [illegible] अवस्थाओंमें मिट्टीऔर [illegible] [illegible] है (२) [illegible] एक [illegible] [illegible] उत्पाद व्यय ध्रौव्य [illegible] । एक गुण पर्यायवान् (देखो सूत्र३८) [illegible] इन तीन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आजाते हैं । [illegible] [illegible] उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् [illegible] और [illegible] पर्यायवान् [illegible] स्वयमेव आजाते हैं । और उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् [illegible] [illegible] और गुणपर्यायवान् [illegible] स्वयमेव [illegible] होजाता है और गुण पर्यायवान् [illegible] [illegible] और उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना स्वयमेव आजाते हैं ।

तैर्युक्तस्य द्रव्यस्य चाभाव प्राप्नोति ॥ नैष दोष । भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया युक्त-शब्दो दृष्ट । यथा सारयुक्त स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सद्व्यपदेशो युक्त ॥ समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्त समाहित तदात्मक इत्यर्थ । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्

च॰तैः युक्तस्य द्रव्यस्य अभाव प्राप्नोति ॥	=और(=च)तिन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होता है अर्थात् जो ऐसे तीन भाव पृथक् पृथक्करि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आवा है
न॰एष दोष, (१ भेदे अपि॰कथञ्चित्॰	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है, भेद होनेपरभी कभी कभी
अभेद-नय-अपेक्षया युक्तशब्द दृष्ट	=अभेदनयकी अपेक्षासेयुक्त शब्द देखागयाहै अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द आते ही हैं परन्तु कभी कभी अभेदपनाके अर्थमेंभी युक्त शब्द आता है ।
यथा॰सारयुक्त स्तम्भ इति ॰॥ तथा॰सति तेषाम्	=जैसे सारयुक्त स्तम्भ है, तैसे होनेमें तिन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)के
अविनाभावात् सत्-व्यपदेश युक्त	=अविनाभाव होनेसे(=एकबिना दूसरेका अस्तित्व न रहसकनेकेहेतुसे)सत्का कथन है
समाधिवचन वा॰युक्तशब्द । युक्त समाहित	=अथवा युक्त शब्दएकमेकतारूप वचन (=समाधिवचन) है । युक्त है सो समाहित
तदात्मक इति॰अर्थ ।उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त सत्	=तदात्मक या तत्स्वरूप ऐसा अर्थ है । उत्पत्ति,नाश, स्थिरता, मिलित(=युक्त)सत् है,

(१) सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें "भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है इस पर फुटनोटमें ऐसे है कि "अभेदेऽपिकथञ्चिद्भेदा-पेक्षया इत्यपि पाठान्तरम् द्वितीयावृत्तिमेंभी यही फुटनोट है परन्तु "अभेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया इत्यादि पाठ है यह छापेकी अशुद्धि है अथवा सम्भव है कि अन्य प्रकारकी अशुद्धि हो क्योंकि कोईभी पाठ हम लें यदि आरंभमें 'अभेद' शब्द है तो मध्यमें भेद शब्द होना चाहिये यदि प्रारम्भमें 'भेद' शब्द हो तो दूसरा शब्द अभेद होना चाहिये । दो हस्तलिखित प्रतियोंमें 'अभेदेऽपिकथंचिद्भेदनयापेक्षया" पाठ है एक अन्य हस्त लिखित पुस्तकमें "अभेदेन कथंचिद् द्रव्यापेक्षया" ऐसा पाठ है । इन समस्त पाठोंको छोड़कर हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है क्योंकि शिष्यके प्रश्नके शब्दोंके क्रमानुकूल उत्तर प्राप्त होजाता है जैसाकि नीचेके हिन्दी अनुवादसे प्रगट है । प्रश्न करता है कि "भेद होनेमें युक्तशब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तु भिन्न दिखाली होतीहै वहां युक्त शब्द आतेहैं जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो चेतन है और दंड अचेतन अन्य वस्तु है देवदत्त और दंड एकही नहीं है इस भांति होनेपर तिन तीन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)के और उन(उत्पाद व्यय ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होताहै अर्थात् जो ऐसे तीनभाव भिन्नकरि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आताहै ।(उत्तर)यह दूषण नहींहै । भेद होनेपरभी कभीकभी अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखाजाता है अर्थात् जहां एक वस्तुसे दूसरी वस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द आतेही हैं परन्तु कभीकभी अभेदपनाके अर्थमें भी युक्तशब्द आता है । जैसे सार युक्त स्तम्भ है ऐसे होनेपर तिन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)केअविनाभावसे सत् का कथनहै॥

१०६

ध्रुवस्य भाव कर्म वा ध्रौव्यम् । यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय ॥ तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्युक्त सदिति ॥ आह भेदे सति युक्तशब्दो दृष्ट. । यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सति तेषा त्रयाणा

ध्रुवस्य॥ भाव ॥ कर्म॥ वा॰ध्रौव्यम्॥ ।	ध्रुवका भाव अथवा कर्म है सो ध्रौव्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना ध्रौव्य है
यथा॰ मृत् पिण्ड-घटादि अवस्थासु॥ मृत् आदि	=जैसे मिट्टीका डेला घट (कपाल) आदिक अवस्थाओं में मिट्टी आदि है
अन्वय॥ ॥	=सो जोड़ रूप वा सर्व दशाओंमें सम्बन्धरूप है अर्थात् वही मिट्टी पिंडमें थी वही घटमें
तैः॥ उत्पाद-व्यय ध्रौव्यैः॥ युक्तम्॥ सत्॥ इति॰॥	=तिन उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता (तीनों) करि सहित (=युक्त) सत् है ॥
आह॥ भेदे॥ सति॥ युक्तशब्दः॥ दृष्टः॥ ।	=प्रश्न करता है कि भेद होनेमें युक्त शब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एक वस्तु से दूसरी वस्तु भिन्न दिखानी होती है वहां युक्त शब्द लाते हैं
यथा॰ दण्डेन॥ युक्तः॥ देवदत्तः॥ इति॰ ॥	=जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य वस्तु है । देवदत्त और दंड एक ही नहीं है
तथा॰ सति॥ तेषाम्॥ त्रयाणाम्॥	=इस भांति (=तथा) होने में (=सति) तिन तीन (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) कूं

(१) "यथा मृत्पिण्ड घटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय " ऐसा पाठ हो अर्थात् 'मृदन्वयः' के स्थानमें 'मृदाद्यन्वय' हो तो पिण्डका [illegible] होता (देखो [illegible] पृष्ठ ११६) होता और वाक्यका अर्थ इसप्रकार होता कि जैसे मिट्टी और [illegible] (=पिंड, घट आदिक [illegible] अवस्थाओंमें मिट्टी और [illegible] का सम्बन्ध रूप है (२) द्रव्यका एक लक्षण सत् कहा एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य [illegible] कहा । एक गुण पर्यायवान् (देखो सूत्र३८) [illegible] इन तीन लक्षणोंमें [illegible] कहने पर अन्य दो लक्षण [illegible] आजाते हैं ॥ सत् लक्षणके कहनेमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् तथा और गुण पर्यायवान् [illegible] आजाते हैं ॥ और उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् कहने पर सत्पना और गुणपर्यायवान् [illegible] गर्भित होजाता है और गुण पर्यायवान् [illegible] कहनेमें सत्पना और उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना [illegible] आजाते हैं ॥

तैर्युक्तस्य द्रव्यस्य चाभाव प्राप्नोति ॥ नैष दोष । भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया युक्त-शब्दो दृष्ट । यथा सारयुक्त स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सद्व्यपदेशो युक्त ॥ समाधिवचनो वा युक्तशब्द । युक्त समाहित तदात्मक इत्यर्थ । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

च=तैः युक्तस्य द्रव्यस्य अभाव प्राप्नोति ॥	=और(=च)तिन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होता है अर्थात् जो ऐसे तीन भाव पृथक् पृथक्करि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आवे है
न=एषः दोषः, (१ भेदे अपि=कथंचित्=	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है, भेद होनेपरभी कभी कभी
अभेद-नय-अपेक्षया युक्तशब्दः दृष्टः	=अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखा गया है अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द आवे ही है परन्तु कभी कभी अभेदपनाके अर्थमेंभी युक्त शब्द आता है।
यथा=सारयुक्तः स्तम्भः इति ॥ तथा=सति तेषाम्	=जैसे सारयुक्त स्तम्भ है, वैसे होनेमें तिन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)के
अविनाभावात् सत्-व्यपदेशः युक्तः।	=अविनाभाव होनेसे(=एकबिना दूसरेका अस्तित्व न रहसकनेकेहेतुसे)सत्का कथन है
समाधिवचनः वा=युक्तशब्दः। युक्तः समाहितः	=अथवा युक्त शब्द एकमेकतारूप वचन (=समाधिवचन) है। युक्त है सो समाहित
तदात्मकः इति=अर्थः, उत्पाद-व्यय ध्रौव्य-युक्तं सत्	=तदात्मक या तत्स्वरूप ऐसा अर्थ है। उत्पत्ति,नाश, स्थिरता,मिलित(=युक्त)सत् है,

(१) सर्वार्थसिद्धिका प्रथमावृत्तिमें "भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है इस पर पादटिप्पणी ऐसे है कि 'अभेदेऽपिकथञ्चिद्भेदनयापेक्षया इत्यपि पाठान्तरम्' द्वितीयावृत्तिमेंभी यही पादटिप्पणी है परन्तु "अभेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया इत्यादि पाठ है यह छापेकी अशुद्धि है अथवा सम्भव है कि अन्य प्रकारकी अशुद्धि हो क्योंकि कोईभी पाठ हम लें यदि आरम्भमें 'अभेद' शब्द है तो मध्यमें भेद शब्द होना चाहिये यदि आरम्भमें 'भेद' शब्द हो तो दूसरा शब्द अभेद होना चाहिये। दो हस्तलिखित प्रतियोंमें 'अभेदेऽपिकथंचिद्भेदनयापेक्षया" पाठ है एक अन्य हस्तलिखित पुस्तकमें "अभेदेन कथञ्चिद् नयापेक्षया ऐसा पाठ है। इन समस्त पाठोंको छोड़कर हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है क्योंकि शिष्यके प्रश्नके शब्दोंके क्रमानुकूल उत्तर प्राप्त होजाता है जैसाकि नीचेके हिन्दी अनुवादसे प्रगट है। प्रश्न करता है कि "भेद होनेमें युक्तशब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तु भिन्न दिखानी होती है वहां युक्त शब्द आता है जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो चेतन है और दंड अचेतन अन्य वस्तु है देवदत्त और दंड एकही नहीं है इस भांति होनेपर तिन तीन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)के और उन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होता है अर्थात् जो ऐसे तीनभाव भिन्नकरि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आता है।(उत्तर)यह दूषण नहीं है। भेद होनेपरभी कभीकभी अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखाजाता है अर्थात् जहां एक वस्तुसे दूसरी वस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द आवेही है परन्तु कभीकभी अभेदपनाके अर्थमें भी युक्तशब्द आता है। जैसे सार युक्त स्तम्भ है ऐसे होनेपर तिन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)के अविनाभावसे सत् का कथन है।

ध्रुवस्य भावः कर्म वा ध्रौव्यम् । यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय ॥ तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्युक्तं सदिति ॥ आह भेदे सति युक्तशब्दो दृष्टः । यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सति तेषां त्रयाणा

ध्रुवस्य भावः कर्म वा ध्रौव्यम् ।	ध्रुवका भाव अथवा कर्म है सो ध्रौव्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना ध्रौव्य है
१०९ यथा मृत्पिण्ड-घटादि अवस्थासु मृद्-आदि अन्वयः ॥	=जैसे मिट्टीका डेला घट (कपाल) आदिक अवस्थाओं में मिट्टी आदि है =सो जोड़ रूप या सर्व दशाओंमें सम्बन्धरूप है अर्थात् वही मिट्टी पिंडमें थी वही घटमें
तैः उत्पाद-व्यय ध्रौव्यैः युक्तम् सत् इति ॥	=तिन उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता (तीनों) करि सहित (=युक्त) सत् है ॥
आह । भेदे सति युक्तशब्दः दृष्टः ।	=प्रश्न करता है कि भेद होनेमें युक्त शब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एक वस्तु से दूसरी वस्तु भिन्न दिखानी होती है वहां युक्त शब्द लाते हैं
यथा दण्डेन युक्तः देवदत्तः इति ॥	=जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य वस्तु है । देवदत्त और दंड एक ही नहीं है
तथा सति तेषाम् त्रयाणाम्	=इस भांति (=तथा) होने में (=सति) तिन तीन (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) कै

(१) "यथा मृत्पिण्ड घटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय" ऐसा पाठ हो अर्थात् 'मृदन्वय' के स्थानमें 'मृदाद्यन्वय' हो तो 'पिण्डका अर्थ' लोहा (श्री रायचन्द्रशास्त्र पृष्ठ ११६) होगा और वाक्यका अर्थ इसप्रकार होगा कि जैसे मिट्टी और लोहा (=पिण्ड) घट आदिक [illegible] अवस्थाओंमें मिट्टी और [illegible] है (२) द्रव्यका एक लक्षण सत् कहा [illegible] उत्पाद व्यय ध्रौव्य [illegible] कहा । एक गुण पर्यायवान् " (इसी सूत्र ३८) [illegible] हम तीन लक्षणोंमें [illegible] अन्य [illegible] हैं । सत् लक्षणके कहनेमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् गुण और पर्याय पर्यायवान् गुण स्वयमेव आजाते हैं । और उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् कहने पर सत्पना और गुणपर्यायवान् पना स्वयमेव गर्भित होजाता है और गुण पर्यायवान् [illegible] सत्पना और उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना स्वयमेव आजाते हैं ।

तैर्युक्तस्य द्रव्यस्य चाभाव प्राप्नोति ॥ नैष दोष । भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया युक्त-शब्दो दृष्ट । यथा सारयुक्त स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सद्व्यपदेशो युक्त ॥ समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्तः समाहित तदात्मक इत्यर्थ । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

च॥तैः॥युक्तस्य॥द्रव्यस्य॥अभाव॥प्राप्नोति ॥ =और(=च)तिन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यकै अभाव प्राप्त होता है अर्थात् जो ऐसे तीन भाव पृथक् पृथक्करि युक्त है सो द्रव्यका अभाव आता है

न॥एषः॥दोषः॥, (१ भेदे॥अपि॥कथञ्चित्॥ =(उत्तर) यह दूषण नहीं है, भेद होनेपरभी कभी कभी

अभेद-नय अपेक्षया॥युक्तशब्दः॥ दृष्टः॥ =अभेदनयकी अपेक्षासेयुक्त शब्द देखागयाहै अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द लाते ही हैं परन्तु कभी कभी अभेदपनाके अर्थमेंभी युक्त शब्द आता है।

[illegible] सारयुक्तः॥ स्तम्भः॥ इति ॥ तथा॥सति॥तेषाम्॥ =जैसे सारयुक्त स्तम्भ है, तैसे होनेमें तिन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)के

[illegible] युक्तः॥ =अविनाभाव होनेसे(=एकबिना दूसरेका अस्तित्व न रहसकनेकेहेतुसे)सत्का कथन है

[illegible] ।युक्तः॥समाहितः॥ =अथवा युक्त शब्दएकमेकतारूप वचन (=समाधिवचन) है। युक्त है सो समाहित

[illegible] युक्तं॥सत् =तदात्मक वा तत्स्वरूप ऐसा अर्थ है। उत्पत्ति,नाश, स्थिरता,मिलित(=युक्त)सत् है,

---

(१) [illegible] दभेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है इस पर [illegible] टिप्पणी ऐसे है कि 'अभेदेऽपिकथञ्चिद्भे'[illegible] [illegible] टिप्पणी है परन्तु "अभेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया' इत्यादि पाठ है यह छापेकी अशुद्धि [illegible] यदि प्रारंभमें 'अभेद' शब्द है तो मध्यमें भेद शब्द होना चाहिये यदि [illegible] प्रतियोंमें 'अभेदेऽपिकथंचिदभेदनयापेक्षया' पाठ है एक अन्य [illegible] [illegible] पाठोंको छोड़कर हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है क्योंकि टिप्पणके [illegible] स्पष्ट है। प्रश्न करता है कि "भेद होनेमें युक्तशब्द देखा जाता है [illegible] जैसे दण्डकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो चेतन है और [illegible] (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)के और सत्(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)करि युक्त [illegible] है(उत्तर)यह दूषण नहीं है। भेद होनेपरभी कभीकभी [illegible] पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द लातेही हैं परन्तु [illegible] (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)केअविनाभावसे सत्का कथन है।

उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिति यावत् । एतदुक्तं भवति—उत्पादादीनि त्रीणि द्रव्यस्य लक्षणानि । द्रव्यं लक्ष्यम् । तत्पर्यायार्थिकनयापेक्षया परस्परतो द्रव्याच्चार्थान्तरभाव ॥ द्रव्यार्थिकनयापेक्षया व्यतिरेकेणानुपलब्धेरनर्थान्तरभाव इति लक्ष्यलक्षणभावसिद्धि ॥

आह नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्युक्तं तत्र न ज्ञायते किं नित्यमित्यत आह—

॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

उत्पाद-व्यय ध्रौव्य आत्मकम् इति यावत् । एतद् । उक्तं भवति ।	=उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता स्वरूप होना इतना(=यावत्) अर्थ है अर्थात् यह सिद्ध होता है कि
उत्पाद आदीनि ।। त्रीणि ।। द्रव्यस्य ।। लक्षणानि ।।	=उत्पादादिक तीनों द्रव्यके लक्षण हैं
द्रव्यं ।। लक्ष्यम् ।। तत्-पर्यायार्थिक-नय	=द्रव्य लक्ष्य है वे(=तद्=उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)पर्यायार्थिकनयकी
अपेक्षया ।। परस्परतः द्रव्यात् ।। च अर्थ अन्तर भाव ।।	=अपेक्षासे आपसमें तथा (=च)द्रव्यसे अन्य अन्य पदार्थ हैं अर्थात् विशेषकी अपेक्षा समस्त पर्याय क्रमवर्ती भिन्नभिन्न हैं, परस्पर मिलें नहीं तिसकरि भिन्न हैं
द्रव्यार्थिक-नय-अपेक्षया ।। व्यतिरेकेण ।।	=द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)पृथक् पृथक् (=व्यतिरेकेण)
अनुपलब्धेः ।। अनर्थ अन्तर भाव ।। इति	=न प्राप्ति होनेसे अन्य अन्य पदार्थ नहीं हैं अर्थात् ये उत्पाद-व्यय ध्रौव्य सामान्य तो अभिन्न हैं योंही एक द्रव्य है द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थ प्रकाशिका पृ० ३२२) (इस प्रकार भेद अभेदनयकी अथवा (पर्यायार्थिक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे)
लक्ष्य लक्षणभाव सिद्धिः ।। आह । नित्य अवस्थितानि ।।	=लक्ष्य लक्षणभावकी सिद्धि है । (शिष्य) पूछता है कि "नित्यावस्थितान्य
अरूपाणि ।। इति उक्तम् ।।	=रूपाणि" (इस प्रकार इस अध्यायका चौथा सूत्र) कहागया है
तत्र न ज्ञायते किम् नित्यम् ।। इति अतः आह	=तहां नहीं बतायागया है कि नित्य क्या है,इसलिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

[1]तद्भावाऽव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

तद्भाव—तद् भाव अव्ययम् ।। नित्यम् ।।	=यह(सत्)जो स्वभावसे विनाशरहित वा अविनाशी(=अव्यय)है सो नित्य है

(१) दोनो श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंसे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है हमारे यहां 'नित्यम्' शब्दके स्थानमें किसी किसी पुस्तकमें 'ध्रुवं' पाठ है वह [illegible] अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ५ [illegible])

तद्भाव इत्युच्यते । कस्तद्भाव ? । प्रत्यभिज्ञानहेतुता । तदेवेदमिति स्मरणं प्रत्यभिज्ञानम् । तदकस्मान्न भवतीति योऽस्य हेतु स तद्भाव । तस्य भावस्तद्भाव ॥ येनात्मना प्राग्दृष्टं वस्तु तेनैवात्मना पुनरपि भावात्तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञायते ॥ यद्यत्यन्तविरोधोऽभिनवप्रादुर्भावमात्रमेव वा स्तात्तत

अर्थात्-तद्-भाव जो पहिले समयमें था सोही दूसरे समयमें था उसका नाश न होना सोही नित्य है भावार्थ यह है कि पहिले कहा हुआ (तद्)अथवा २६वां सूत्रमें कथित सत् जो स्वभावसे अविनाशी वा विनाशरहित है सोही नित्य है अर्थात् जिस स्वरूपकरि वस्तु पूर्वमें देखाथा उसी स्वरूपकरि वर्तमानमें देखिये है ऐसा जोड़रूप वस्तु में भाव वही तद्भाव है, उस जोड़रूप भाव द्वारा विनाश रहित (=अव्यय)हो उसीको नित्य कहते हैं। सर्वथा नित्य अर्थात् कूटस्थ कोई वस्तु नहीं है कूटस्थके पर्याय पलटनेका अभाव है तब संसार तथा संसारके अभावके कारण विधानमें विरोध आता है।

वृत्त्यनुवादः-तद्भावः इति उच्यते। कः तद्भावः प्रत्यभिज्ञान-	=(सूत्रमें) तद्भाव ऐसा कहागया है। तद्भाव क्या है। प्रत्यभिज्ञानका
हेतुता तद् एव इदम् इति	=हेतुपन वा कारणपना है। यह (=इदम्)वही है(=तद्-एव) ऐसी
स्मरणम् प्रत्यभिज्ञानम् तद् अकस्मात्	=स्मृति प्रत्यभिज्ञान है, वह(प्रत्यभिज्ञान)अकस्मात्(विना हेतु वस्तुमें)
न भवति इति यः अस्य हेतुः सः तद्भावः तस्य	=नहीं होता है, जो इस(प्रत्यभिज्ञान)का कारण सो तद्भाव है तिस (सत्)का
भावः तद्भावः येन आत्मना प्राग्दृष्टम् वस्तु	=भाव अथवा होना सो तद्भाव है। जिस स्वरूपकरि पहिले देखा हुआ पदार्थ है
तेन एव आत्मना पुनः अपि भावात्	=तिसही स्वरूपकरि फिरभी विद्यमान होनेसे (स्वभावात्)
तद् एव इदम् इति प्रत्यभिज्ञायते ॥	=कि यह वही है इस प्रकार प्रत्यभिज्ञान कियाजाता है
यदि अत्यन्त-विरोधः	=जो(पूर्वोक्त प्रत्यभिज्ञानके अस्तित्वके)अतिशय विपरीत हो अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का अभाव हो
अभिनव प्रादुर्भावमात्रम् एव वा स्यात् तत	=अथवा नवीन आविर्भावमात्रही हो, तहां

उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिति यावत् । एतदुक्तं भवति—उत्पादादीनि त्रीणि द्रव्यस्य लक्षणानि । द्रव्यं लक्ष्यम् । तत्पर्यायार्थिकनयापेक्षया परस्परतो द्रव्याच्चार्थान्तरभाव ॥ द्रव्यार्थिकनयापेक्षया व्यतिरेकेणानुपलब्धेरनर्थान्तरभाव इति लक्ष्यलक्षणभावसिद्धि ॥

आह नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्युक्तं तत्र न ज्ञायते किं नित्यमित्यत आह—

॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आत्मकम् इति यावत् । एतत् उक्तं भवति ।	=उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता स्वरूप होना इतना(=यावत्) अर्थ है अर्थात् यह सिद्ध होता है कि
उत्पाद आदीनि । त्रीणि । द्रव्यस्य । लक्षणानि ॥	=उत्पादादिक तीनों द्रव्यके लक्षण हैं
द्रव्यम् । लक्ष्यम् । तत्-पर्यायार्थिक-नय	=द्रव्य लक्ष्य है वे(=तद्=उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)पर्यायार्थिकनयकी
अपेक्षया । परस्परत । द्रव्यात् । च । अर्थ अन्तर-भाव ।	=अपेक्षासे आपसमें तथा (=च)द्रव्यसे अन्य अन्य पदार्थ हैं अर्थात् विशेषकी अपेक्षा समस्त पर्याय क्रमवर्ती भिन्नभिन्न हैं, परस्पर मिलें नहीं तिसकरि भिन्न हैं
द्रव्यार्थिक-नय-अपेक्षया । व्यतिरेकेण ।	=द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)पृथक् पृथक् (=व्यतिरेकेण)
अनुपलब्धे । अनर्थ अन्तर भाव । इति	=न प्राप्ति होनेसे अन्य अन्य पदार्थ नहीं हैं अर्थात् ये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सामान्य तो अभिन्न हैं सोही एक द्रव्य व द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थ प्रकाशिका पृ० ३२२) (इसप्रकार भेद अभेदनयकी अथवा (पर्यायार्थिक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे)
लक्ष्य-लक्षणभाव सिद्धि । आह । नित्य अवस्थितानि ।	=लक्ष्य लक्षणभावकी सिद्धि है । (शिष्य) पूछता है कि "नित्यावस्थितान्य-
अरूपाणि । इति उक्तम् ।	=रूपाणि" (इस प्रकार इस अध्यायका चौथा सूत्र) कहागया है
तत्र न ज्ञायते किम् नित्यम् । इति अत आह	=तहां नहीं जतायागया है कि नित्य क्या है,इसलिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

[1]तद्भावाऽव्यय नित्यम् ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थ—तद्-भाव अव्ययम् । नित्यम् ॥	=भाव(सत्)जो स्वभावसे विनाशरहित वा अविनाशी(=अव्यय)है सो नित्य है

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंसे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है हमारे यहां नित्यम् शब्दके स्थानमें किसी किसी पुस्तकमें 'नित्यं' पाठ है वह व्याकरणमाहात्म्यादरसे अनिश्चित अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ५ २,५५०-५५१)

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवतः॥अत्राह सतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्यः सतां स्कंधात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं,किं संघातः संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति?।उच्यते—सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यतां,कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥

११३ विशेष अर्पणया॥अनित्यम्॥ =विशेषअर्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(योजित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

इति॰न॰अस्ति॰विरोधः॥तौ॥च॰सामान्यविशेषौ॥ =इस प्रकार विरोध नहीं है । बहुरि(=च)ते(दोनों)सामान्य-विशेष

कथञ्चित्॰भेद-अभेदाभ्याम्॥व्यवहार-हेतू॥भवतः। =कथंचित् भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं ।

अत्र॰आह॥सतः॥अनेक-नय-व्यवहार-तन्त्रत्वात्॥ =यहां(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे

उपपन्ना॥भेद संघातेभ्यः॥सताम्॥स्कंध आत्मना उत्पत्तिः॥ =भेद तथा संघात औरभेदसंघातकरि जे सत् जहैं तिनको(=सताम्)स्कंधस्वरूप करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्ना)है सारांश सत् है तातें अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातें सत्रूप पुद्गलस्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है

इदम्॥तु॰सन्दिग्धम्॥किम्॥द्वि अणुक आदि-लक्षणः॥संघातः॥=परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि लक्षणवाला संघात

संयोगात्॥एव॰भवति उत॰कश्चित्॰विशेषः॥अवध्रियते॥इति।=संयोगमात्रसेही होताहै वा(=उत)कोई और(=कश्चित्)विशेषनिर्णय कियागया है अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होताहै वा कुछ और बात है ॥

उच्यते॥बन्धात्॥एकत्वपरिणाम-आत्मकात्॥सति॥संयोगे॥ =(उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणमन स्वरूप बन्धानसे संयोगहोनेपर

संघातः॥निष्पद्यते ॥ यदि॰एवम्॰उच्यताम्। =संघात उपजता है जो इस प्रकार कहाजाय तो (अर्थात् जो आप कहतेहैंकि संयोग होते संते एकत्व परिणमनस्वरूप बंधसे संघातकी निष्पत्ति होती है ११२

कुतः॰(१)नु, खलु॰पुद्गलजाति-अपरित्यागे॥ =तो(=नु)कहांसे(ऐसाहोता,है क्योंकिपुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नछोड़तेसंते

(१) नु = वितर्क = विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकालना (देखो पद्यचन्द्रकोष पृ॰ २२१) इसका अनुवाद 'तो' किया गया है

सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्या सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोधः । तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागिनेय इत्येवमादयः सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणाभेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्य

भावार्थ—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करि कहै सो तो अर्पित है और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मके कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है

सतः॥ अपि॰अविवक्षा॥ भवति। इति॰ =सत् की अविवक्षा भी होती है अर्थात् सत् की विवक्षा तथा अविवक्षा दोनों होती हैं तिस से सत् रूप होय तिसकूं प्रयोजन के वशसे अविवक्षा करिये सो गौण है इस लिये विरोध रहित दोनों (विवक्षा तथा अविवक्षा) में वस्तु की सिद्धि है

उपसर्जनीभूतम्॥ अनर्पितम्॥ इति॰उच्यते। =अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है

अर्पितम्॥ च॰अनर्पितम्॥ च॰ अर्पितानर्पिते॥ =और (=च) अर्पित और (च=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रूपमें है)

ताभ्याम्॥ सिद्धेः॥ अर्पित अनर्पित सिद्धेः॥ =तिन (अर्पित अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनसे "अर्पित-अनर्पित सिद्धेः" (ऐसा सूत्र)

न॰ अस्ति॥ विरोधः॥ तद्यथा॰ एकस्य॥ देवदत्तस्य॥ =विरोध रहित है। जैसे कि एक देवदत्तका

पिता॥ पुत्रः॥ भ्राता॥ भागिनेयः॥ इत्येवम्॰आदयः॥ =पिता-पुत्र-भाई भानजा-इत्यादिक

सम्बन्धाः॥ जनकत्व जन्यत्व आदि-निमित्ताः॥ =सम्बन्ध जनकपना (तथा) जन्यपना आदिक निमित्त

अर्पणा-भेदात्॥ न॰विरुध्यन्ते॥ पुत्र अपेक्षया॥ =अर्पणा या मुख्यताके भेदसे नहीं विरोध्या जाता है। बेटेकी अपेक्षाकरि (वह पुरुष)

पिता॥ पितृ अपेक्षया॥ पुत्रः॥ इत्येवम्॰आदिः॥ =बाप है बापकी अपेक्षासे वही पुरुष बेटा इत्यादिक है ॥

तथा॰ द्रव्यम्॥ अपि॰सामान्यअर्पणया॥ नित्यम् =जैसाही (=तथा) द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

(१) सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्तिमें भ्राता शब्द नहीं है ॥ तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी यह शब्द नहीं है प॰ जयचन्द्रजी का वचनिकामें भी नहीं है देवकीनंदन सम्पादक संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है इसमें इसमें भ्राता शब्द नहीं रक्खा है यह भ्राता शब्द भ्राता शब्दके पश्चात् द्वितीयावृत्तिमें है॥
(२) यहां पर ... [illegible]

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवत ॥ अत्राह सतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्यः सतां स्कन्धात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं, किं संघात संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति? । उच्यते—सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यतां, कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

	और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥
विशेष अर्पणया॥ अनित्यम्॥	=विशेषअर्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(योजित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥
इति न अस्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ॥	=इस प्रकार विरोध नहीं है । बहुरि(=च)वे(दोनों)सामान्य-विशेष
कथंचित् भेद-अभेदाभ्याम्॥ व्यवहार-हेतू॥ भवतः।	=कथंचित् भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं ।
अत्र आह। सतः॥ अनेक-नय-व्यवहार-तन्त्रत्वात्॥	=यहां(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे
उपपन्ना॥ भेद संघातेभ्यः॥ सताम्॥ स्कंध आत्मना उत्पत्तिः॥	=भेद तथा संघात औरभेदसंघातकरि ये सत् जो है तिनकी(=सताम्)स्कन्धस्वरूप करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्ना)है सारांश सत् है ताकै अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातै सत्रूप पुद्गल स्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है
इदम्॥ तु सन्दिग्धम्॥ किम्॥ द्वि-अणुक आदि-लक्षणः॥ संघातः॥	=परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि लक्षणवाला संघात
संयोगात्॥ एव भवति, उत कश्चित् विशेषः॥ अवध्रियते इति।	=संयोगमात्रसेही होताहै या(=उत)कोई और(=कश्चित्)विशेषनिर्णय कियागया है अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होताहै या कुछ और बात है ॥
उच्यते। सति॥ एकत्वपरिणाम-आत्मकात्॥ बन्धात्॥ संयोगे॥	=(उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणमन स्वरूप बन्धानसे संयोगहोनेपर
संघातः॥ निष्पद्यते। ॥ यदि एवम् उच्यताम्।	=संघात उपजता है जो इस प्रकार कहाजाय तो (अर्थात् जो आप कहतेहैकि संयोग होते संते एकत्व परिणमनस्वरूप बंधसे संघातकी निष्पत्ति होती है
कुतः (१)नु, खलु पुद्गलजाति अपरित्यागे॥	=तौ(=नु)कहांसे(ऐसा होता,) है क्योंकि पुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नछोड़तेसंते

(१) नु = वितर्क = विगत तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकालना (देखो पदचन्द्रकोष पृ० २२१) इसका अनुवाद 'तो' किया गया है

सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्या सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोध । तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागिनेय इत्येवमादय सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणाभेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्य

भावार्थ—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करि कहै सो तो अर्पित है और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मके कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है

१११

अपि॰ अविवक्षा। भवति। इति॰ =सत् की अविवक्षा भी होती है अर्थात् सत् की विवक्षा तथा अविवक्षा दोनों होती है तिस से सत् रूप होय तिसकूं प्रयोजन के वशसे अविवक्षा करये सो गौण है इस लिये विरोध रहित।दोनों (विवक्षा तथा अविवक्षा) में वस्तु की सिद्धि है

उपसर्जनीभूतम्। अनर्पितम्। इति॰ उच्यते। =अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है

अर्पितम्। च॰ अनर्पितम्। च॰ अर्पितानर्पिते। =और (=च) अर्पित और (च=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रूपमें है)

ताभ्याम्। सिद्धे। अर्पित अनर्पित-सिद्धे। =तिन (अर्पित-अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनसे "अर्पित-अनर्पित सिद्धे" (ऐसा सूत्र)

न॰ अस्ति। विरोध। तद्यथा॰ एकस्य। देवदत्तस्य। =विरोध रहित है। जैसे कि एक देवदत्तका

पिता। पुत्र। भ्राता। भागिनेय। इत्येवम्॰ आदय। =पिता-पुत्र-भाई भानजा-इत्यादिक

सम्बन्धा। जनकत्व जन्यत्व आदि निमित्ता। =सम्बन्ध जनकपना (तथा) जन्यपना आदिक निमित्त

अर्पणा-भेदात्। न॰ विरुध्यन्ते। पुत्र-अपेक्षया। =अर्पणा या मुख्यताके भेदसे नहीं विरोध्या जाता है। बेटेकी अपेक्षाकरि (वह पुरुष)

पिता। पितृ-अपेक्षया। पुत्र। इत्येवम्॰ आदि। =बाप है बापकी अपेक्षासे वही पुरुष बेटा इत्यादिक है ॥

तथा॰ द्रव्यम्। अपि॰ सामान्य-अर्पणया। नित्यम् =जैसेही(=तथा) द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

(१) [illegible] सर्वार्थसिद्धिकी [illegible] भ्राताशब्द नहीं है। तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी यह शब्द नहीं है [illegible] में भी नहीं है [illegible] सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है [illegible] भ्राता शब्द नहीं रखना है वह भ्राता शब्द [illegible] के पश्चात् [illegible] है।
(२) [illegible] पितृ = पितर् ([illegible]) + अपेक्षया = पित्रपेक्षया बनाया ॥

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवत ॥ अत्राह सतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्य सतां स्कंधात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं, किं संघात संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति? ॥ उच्यते—सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यतां, कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥

विशेष अर्पणया॥ अनित्यम्॥ =विशेषअर्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(चाहित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

इति॰न॰अस्ति। विरोधः॥ तौ॥ च॰सामान्यविशेषौ॥ =इस प्रकार विरोध नहीं है। बहुरि(=च)वे(दोनों)सामान्य-विशेष

कथञ्चित्॰भेद अभेदाभ्याम्॥ व्यवहार-हेतू॥ भवतः॥ =कथंचित् भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं।

अत्र॰आह। सतः॥ अनेक-नय-व्यवहार-तन्त्रत्वात्॥ =यहां(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे

उपपन्ना॥ भेद संघातेभ्यः॥ सताम्॥ स्कंध आत्मना उत्पत्तिः॥ =भेद तथा संघात औरभेदसंघातकरि ये सत् जे हैं तिनकी(=सताम्)स्कंधस्वरूप करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्ना)है सारांश सत् है ताकै अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातैं सत्रूप पुद्गल स्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है

इदम्॥ तु॰सन्दिग्धम्॥ किम्॥ द्वि-अणुक आदि-लक्षणः॥ संघातः॥ =परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि लक्षणवाला संघात

संयोगात्॥ एव॰भवति उत॰कश्चित्॰विशेषः॥ अवध्रियते॥ इति। =संयोगमात्रसेही होताहै वा(=उत)कोई और(=कश्चित्)विशेषनिर्णय कियागया है अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होताहै वा कुछ और बात है ॥

उच्यते। च यात्॥ एकत्वपरिणाम आत्मकात्॥ सति॥ संयोगे॥ =(उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणमन स्वरूप बन्धानसे संयोगहोनेपर

संघातः॥ निष्पद्यते॥ यदि॰एवम्॰उच्यताम्॥ =संघात उपजता है जो इस प्रकार कहाजाय तो (अर्थात् जो आप कहतेहैंकि संयोग होते संते एकत्व परिणमनस्वरूप बंधसे संघातकी निष्पत्ति होती है

कुतः॰(१)नु, खलु॰पुद्गलजाति-अपरित्यागे॥ =तौ(=नु)कहांसे(ऐसाहोता,है क्योंकिपुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नछोड़तेसते

---

(१) नु = वितर्क = विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकालना (देखो पदार्थमञ्जरी भाग पृ॰ २२१) इसका अनुवाद 'तो' किया गया है

सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्यां सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोध । तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागिनेय इत्येवमादय सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणाभेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्यं

भावार्थ—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करि कहै सो तो अर्पित है और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मके कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है

सत। अपि ० अविवक्षा। भवति। इति० =सत् की अविवक्षा भी होती है अर्थात् सत् की विवक्षा तथा अविवक्षा दोनों होती हैं तिस से सत् रूप होय तिसकूं प्रयोजन के वशसे अविवक्षा करये सो गौण है इस लिये विरोध रहित दोनों (विवक्षा तथा अविवक्षा) में वस्तु की सिद्धि है

उपसर्जनीभूतम्। अनर्पितम्। इति० उच्यते। =अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है

अर्पितम्। च० अनर्पितम्। च० अर्पितानर्पिते। =और (=च) अर्पित और (च=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रूपमें है)

ताभ्याम्। सिद्धेः। अर्पित-अनर्पित सिद्धेः। =तिन (अर्पित अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनेसे "अर्पित-अनर्पित सिद्धेः" (ऐसा सूत्र)

न ० अस्ति। विरोधः। तद्यथा ० एकस्य। देवदत्तस्य। =विरोध रहित है। जैसे कि एक देवदत्तका

पिता। पुत्रः। भ्राता। भागिनेयः। इत्येवम् ० आदयः। =पिता-पुत्र भाई भानजा-इत्यादिक

सम्बन्धाः। जनकत्व जन्यत्व आदि-निमित्ताः। =सम्बन्ध जनकपना (तथा) जन्यपना आदिक निमित्त

अर्पणा भेदात्। न० विरुध्यन्ते। पुत्र अपेक्षया। =अर्पणा वा मुख्यताके भेदसे नहीं विरोध या जाता है। बेटेकी अपेक्षाकरि (यह पुरुष)

पिता। ० पितृ अपेक्षया। पुत्रः। इत्येवम् ० आदि। =बाप है बापकी अपेक्षासे वही पुरुष बेटा इत्यादिक है ॥

तथा ० द्रव्यम्। अपि ० सामान्य अर्पणया। नित्यम् =वैसेही (=तथा) द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

(१) सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें भ्राता शब्द नहीं है। तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी यह शब्द नहीं है प०जयचन्दजीकृत वचनिकामें भी नहीं है [illegible] सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है इसमे इसमें 'भ्राता' शब्द नहीं रक्खा है यह भ्राता शब्द भ्राता शब्दके पश्चात् द्वितीयावृत्तिमें है।
(२) यहां पर ऋके स्थानमें र् होता है [illegible] अर्थात् पितृ = पितर् (ऋके स्थानमें र् आनेसे) + अपेक्षया = पित्रपेक्षया बनाया ॥

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवत॥अत्राहसतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसघातेभ्य सतां स्कंधात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं,किं संघात संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति?।उच्यते–सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यतां,कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥

विशेष अर्पणया॥ अनित्यम्॥ =विशेषअर्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(योजित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

इति॰न॰अस्ति। विरोधः॥ तौ॥ च॰सामान्यविशेषौ॥ =इस प्रकार विरोध नहीं है। बहुरि(=च)वे(दोनों)सामान्य-विशेष

कथञ्चित्॰भेद-अभेदाभ्याम्॥ व्यवहार-हेतू॥ भवतः॥ =कथंचित् भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं।

अत्र॰आह। सतः॥ अनेक-नय-व्यवहार-तन्त्रत्वात्॥ =यहां(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे

उपपन्ना॥ भेद संघातेभ्यः॥ सताम्॥ स्कंध-आत्मना उत्पत्तिः॥ =भेद तथा संघात औरभेदसंघातकरि ये सत् जहैं तिनकें(=सताम्)स्कंधस्वरूप करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्ना:)है सारांश सत् है तातें अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातें सत्रूप पुद्गल स्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातस है

इदम्॥ तु॰सन्दिग्धम्॥ किम्॥ द्वि-अणुक आदि-लक्षण॥ संघातः॥ =परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि लक्षणवाला संघात

संयोगात्॥ एव॰भवति। उत॰कश्चित्॰विशेषः॥ अवध्रियते। इति। =संयोगमात्रसेही होताहै वा(=उत)कोई और(=कश्चित्)विशेषनिर्णय कियागया है अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होताहै वा कुछ और बात है ॥

उच्यते। बन्धात्॥ एकत्वपरिणाम आत्मकात्॥ सति॥ संयोगे॥ =(उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणमन स्वरूप बन्धानसे संयोगहोनेपर

संघातः॥ निष्पद्यते ॥ यदि॰एवम्॰उच्यताम्। =संघात उपजता है जो इस प्रकार कहाजाय तो (अर्थात् जो आप कहतेहैकि संयोग होते संते एकत्व परिणमनस्वरूप बंधसे संघातकी निष्पत्ति होती है

कुतः॰(१)नु, खलु ॰पुद्गलजाति अपरित्यागे॥ =तौ(=नु)कहांसे(ऐसाहोता,है क्योंकिपुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नछोड़तेसंते

---

(१) नु – वितर्क = विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकालना (देखो पद्मचन्द्रकोष पृ॰ २२१) इसका अनुवाद 'तो' किया गया है

सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्यां सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोधः । तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागिनेय इत्येवमादयः सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणाभेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्य

भावार्थ—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करि कहै सो तो अर्पित है और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मके कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है

सतः॥ अपि ॥ अविवक्षा॥ भवति। इति॥ =सत् की अविवक्षा भी होती है अर्थात् सत् की विवक्षा तथा अविवक्षा दोनों होती है तिस से सत् रूप होय तिसकूं प्रयोजन के वशसे अविवक्षा करये सो गौण है इस लिये विरोध रहित। दोनों (विवक्षा तथा अविवक्षा) में वस्तु की सिद्धि है

उपसर्जनीभूतम्॥ अनर्पितम्॥ इति॥ उच्यते। =अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है

अर्पितम्॥ च॥ अनर्पितम्॥ च॥ अर्पितानर्पिते॥ =और (=च) अर्पित और (च=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रूपमें है)

ताभ्याम्॥ सिद्धेः॥ अर्पित अनर्पित सिद्धेः॥ =तिन (अर्पित अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनेसे "अर्पित-अनर्पित सिद्धेः" (ऐसा सूत्र)

न॥ अस्ति॥ विरोधः॥ तद्यथा॥ एकस्य॥ देवदत्तस्य॥ =विरोध रहित है। जैसे कि एक देवदत्तका

पिता॥ पुत्रः॥ भ्राता॥ भागिनेयः॥ इत्येवम्॥ आदयः॥ =पिता-पुत्र-भाई भानजा-इत्यादिक

सम्बन्धाः॥ जनकत्व जन्यत्व आदि-निमित्ताः॥ =सम्बन्ध व जनकपना (तथा) जन्यपना आदिके निमित्त

अर्पणा भेदात्॥ न॥ विरुध्यन्ते॥ पुत्र अपेक्षया॥ =अर्पणा या मुख्यताके भेदसे नहीं विरोध्या जाता है। बेटेकी अपेक्षाकरि (वह पुरुष)

पिता॥ पितृ अपेक्षया॥ पुत्रः॥ इत्येवम्॥ आदि॥ =बाप है बापकी अपेक्षासे वही पुरुष बेटा इत्यादिक है ॥

तथा॥ द्रव्यम्॥ अपि॥ सामान्य अर्पणया॥ नित्यम् =वैसाही (=तथा) द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

(१) सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें भ्राताशब्द नहीं है। तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी यह शब्द नहीं है प० जयचंद्रजी की वचनिकामें भी नहीं है जैनसिद्धान्त प्रकाशक संस्था प्रकाशित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है इसलिये हमने 'भ्राता' शब्द नहीं रक्खा है यह 'भ्राता' शब्द भ्राता शब्दके पश्चात् [illegible]

(२) यहां पर [illegible] है अपेक्षया का यहं अर्थात् पितृ = पितर् (ऋकारके स्थानमें र् आदेश) + अपेक्षया = पित्रपेक्षया बनाया ॥

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवत ॥अत्राहसतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्य सतां स्कंधात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं,किं संघात संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति?।उच्यते—सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥यद्येवमिदमुच्यतां,कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥

अविशेषार्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(योजित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

इस प्रकार विरोध नहीं है । बहुरि(=च)वे(दोनों)सामान्य-विशेष अर्पित और अनर्पितके व्यवहारके कारण होते हैं ।

... पूछना है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे ... सत् भये तिनकें(=सताम्)स्कंधस्वरूप ... अनेक व्यवहारक ...

...ता है और बन्धका कारण स्नि...

...लिये स्निग्धता और रूक्षता हेतु है ...

...ना चाहिये (नकि केवल अणुओं सम्बन्ध) जैसा कि

... दोप्रदेशवाला स्कन्ध उपजताहै दोप्रदेशवाले स्कन्धक ...

है । दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धोंके संघातसे तीन प्रदेशवाले स्कन्ध ... उपजता है । इस प्रकार संख्यात,असंख्यात अनन्त अनन्तानन्तके संघातसे ... के साथ परस्पर संघातसे स्निग्ध रूक्षताके हेतुसे बन्ध होताहै और परमाणुका परमाणु ... से सम्बन्धरखता है नकि केवल परमाणुओंसेही॥

... स्निग्धरूक्षपनावाले पुद्गलनिके परस्पर बन्ध जानना पं० सदासुखजीकृतार्थप्रकाशिकाके तेतीसवांसूत्रका उपोद्घात(उपोतिक)वाक्यदेखो ॥ ... स्निग्धताके अविभागपरिच्छेदके निमित्तसे एक परमाणु तथा द्वि अणुकादि स्कन्धके परस्पर बन्ध होयहै" सदासुखजी ... अणु के वाक्यका,यह अर्थ है कि स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे एक परमाणु तथा दोपरमाणुका स्कंधके ... परमाणु वाले स्कन्धके परस्पर बन्ध होता है एक परमाणु तथा चार अणुका स्कन्धके परस्पर बन्ध ... आदिक अणुवाले स्कन्धके परस्पर बन्ध जानना ।

पर्यायार्थ विधि ११५

सयोगे च सति भवति केषाचिद्वन्धोऽन्येषा च नेति । उच्यते यस्मात्तेषा पुद्गलात्माविशेषेऽप्यनन्त-पर्यायाणा परस्परविलक्षणपरिणामादाहितसामर्थ्याद्वन्धप्रतीत

॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्‌बन्धः ॥ ३३ ॥

(1)सयोगे च सति भवति ।	=और संयोग होते सते यह होगा कि
केषाचित् बन्ध । अन्येषाम् । च न इति ।	=कितने परमाणुओंको बन्ध और(च)दूसरी परमाणुओंका(बन्ध)नहीं (होता) है
उच्यते-यस्मात् तेषाम् । पुद्गल आत्म अविशेषे । अपि ।	=इससकहाजाता है कि तिन(परमाणुओं)केपुद्गलस्वरूपकरि विशेषता न होने पर भी
अनन्त पर्यायाणाम् । परस्पर विलक्षण-परिणामात् । आहित	=अनन्त पर्यायोंके परस्पर विलक्षण परिणमनकरिग्रहणकरीभई(=आहित)
सामर्थ्यात् । भवन् । प्रतीत ।	=सामर्थ्यसे बन्धका होना प्रतीत है ।(भवन् वर्तमानकृदन्त प्रथमा एकवचन पुल्लिंग है)

(1)सूत्रम्—(1)स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्ध ॥३३॥ = (पुद्गलाना)स्निग्धरूक्षत्वात् बन्ध (भवति)॥ ३३॥

(1)राजवार्तिकमें [illegible] "सयोगे च सति भवति" वाक्य [illegible] सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रतियोंमें विद्यमान है और तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृ० २४० पर तथा हस्तलिखित राजवार्तिकोंमेंभी उक्त वाक्य 'सति' शब्दके अतिरिक्त पाया जाता है [illegible] सम्बन्ध मिल सकता है ।

(२) [illegible] पाठ और [illegible] है । कहीं [illegible] पाठहै कहीं [illegible] पाठ है दोनों पाठ ठीक है (१अध्याय ५४० ।४१)

(३) [illegible] हमारे यहां भाष्यकारों तथा हिंदी टीकाकारोंने उक्त सूत्रोंका तात्पर्य लिखा है [illegible] हमारे यहां [illegible] नहीं है । [illegible] प्रथम चार सूत्रोंका पाठ हमारे यहांके पाठसे [illegible] मिलता है । [illegible] हमारे यहां [illegible] है अर्थात् हमारे यहां 'च' है [illegible] यहां 'सम' शब्द है । [illegible] तीन सूत्रोंके अर्थों में भेद पाया जाता है जिसका उल्लेख हम प्रसगानुसार आगे करेंगे । उक्त [illegible] प्रथम [illegible] पृथक् सूत्रका अर्थ करें यह उचित है कि दोनों आम्नायोंमें जो अर्थ भेद है [illegible] स्निग्धद्वारा दोगुण(=अविभागप्रतिच्छेद) अधिककरि बन्ध होताहै और रूक्षका रूक्षद्वारा [illegible] अधिककरि बन्ध होता है और स्निग्धका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है [illegible] अधिकगुण सम(अर्थात ४ ६ ८ १० १२ इत्यादि) हो अथवा विषम(अर्थात ३,५ ११ १३ इत्यादि)हो दोगुणअधिककरिही [illegible] नहीं है । [illegible] सूत्रका [illegible] यह अर्थ करते हैं कि [illegible] बन्ध नहीं होता हमारे यहांके प्रथम भागको मानाहै और दूसरे भागको नहीं मानाहै [illegible] अधिककरि बन्ध होता है और [illegible] दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और [illegible] है कि [illegible] बन्ध होवे और [illegible] बन्ध होनेमें दोगुणोंकी अधिकताकी आवश्यकता नहीं है [illegible]

अध्याय५ सूत्र ३२ ३३

११४

सूत्रार्थ — १)पुद्गलानाम् २)स्निग्धत्वात् ३)	=पुद्गलोंके(परस्पर छूजानेपर स्पृष्ट या स्पर्श होनेपर) स्निग्धपनासे या चिकनाईसे
रूक्षत्वात् ४) बन्धः ५) भवति	=(और)रूक्षपनासे रूखेपनसे, या खरखरेपनसे बन्ध होता है अर्थात्
	दो पृथक्पृथक् परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक्पृथक् स्कन्धोंका

इसी हतुसे उन्होंने "द्वि अधिकादिगुणानांतु सदृशानां बन्धो भवति" इस सूत्रमें केवल'सदृशानां'की अनुवृत्ति की है और यह अर्थ किया है कि सदृशोंके बन्धके लिये दोगुण अधिक होनेकी आवश्यकता है असदृशोंके बन्धके लिये अधिक गुणोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस मत को पुष्ट करनेकेलिये कि असदृशोंका बन्ध बिना गुणोंकी अधिकताके होजाता है हमारे यहांके "बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौच"के स्थानमें बन्धे समाधिकौ परिणामकौ' सूत्र दिया है और यह अर्थ किया है कि 'बन्धे सति समगुणस्य समगुणः परिणामका भवति अधिकगुणो हीनस्येति' बन्ध होनेपर यदि समगुण है तब तो
११५ समगुण का समगुणवालाही परिणाम होगा और हीन गुणका अधिक गुणवान् परिणाम होगा अर्थात् असदृशोंके बन्धमें जहां गुणोंकी समता है वहां समगुणवाला परिणाम होगा और सदृशोंके बन्धमें जहां दोगुण अधिक हैं वहां अधिक गुणवान् परिणाम होगा ॥ "जघन्यगुणवालोंका बन्ध नहीं होता" इस अन्तिम सिद्धान्तमें दोनों आम्नाय सहमत हैं।

(१) यहां यह शंका होसकती है कि 'पुद्गलानां' शब्दका अथवा 'अणुनां' शब्दका अध्याहार करना चाहिये अर्थात् यहसूत्र केवल अणुओंसे संबंध रखताहै अथवा अणुओं और स्कन्धों दोनोंसे सम्बन्ध रखताहै। २६वां सूत्रमें यह निर्देश है कि स्कंध भेदसे संघातसे और भेदसंघातसे उत्पन्न होतेहैं। यहांपर संघात शब्द और बन्ध शब्दका एकही अर्थ जान पड़ता है जैसाकि आगे बन्ध संघात एकत्व और संयोगके अनन्तर दिखानेमें सिद्ध करेंगे। बन्ध संघात एकत्व संयोगके भेद जानिये इस अध्यायका पृष्ठ १५०,१५१ देखो ।(उत्तर)यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंसे सम्बन्ध रखताहै क्योंकि

(क) दो पृथक् २ परमाणुओं के बन्ध या संघातसे स्कन्ध होता है। एक परमाणु और स्कन्धके संघातसे स्कन्ध उत्पन्न होता है दो तीन आदिक स्कन्धोंके बन्धसे स्कन्ध होता है और बन्धका कारण स्निग्धत्व रूक्षत्वही कहा है। परमाणुओंके स्निग्धत्व और रूक्षत्वसेही बन्ध होता है। अब स्कन्धोंके भी आपस के बन्धके लिये स्निग्धता और रूक्षता हेतु है और पुद्गलके "अणवः स्कन्धाः" ये दोही भेद हैं तो प्रगट है कि तेतीसवां सूत्रमें "पुद्गलानां" शब्दका अध्याहार होना चाहिये (नकि केवल अणुनां शब्दका) जैसा कि निम्न लिखित उदाहरण सूत्र२६(देखो इसअध्यायका ९९,१००)में दिखाई जैसेकि दो परमाणुओंके जुड़नेसे दोप्रदेशवाला स्कन्ध उपजताहै दोप्रदेशवाले स्कन्धके और एकअणुके संघातसे या तीन जुड़ीहुई परमाणुओंके मिलनेसे तीनप्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है। दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धोंके संघातसे तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा चार जुड़ी हुई परमाणुके संघातसे चार प्रदेशी स्कन्ध उपजता है। इस प्रकार संख्यात असंख्यात,अनन्त अनन्तानन्तके संघातसे उतने प्रदेशवाले स्कन्ध उपजतेहैं इससे प्रगट हैकि एक स्कन्धका दूसरे स्कन्धके साथ परस्पर संघातसे स्निग्ध रूक्षताके हेतुसे बन्ध होताहै और परमाणुका परमाणुकरि बन्धहोताहै। अतः यह सूत्र परमाणुओं और स्कन्ध दोनोंसे सम्बन्धरखता है नकि केवल परमाणुओंसेही॥

(ख) "ऐसे स्निग्धरूक्षपनातें पुद्गलनिकै परस्पर बन्ध जानना"पं०सदासुखजीकृतअर्थप्रकाशिकाके तेतीसवांसूत्रका उपांत्य(उपान्तिम)वाक्यदेखो ॥

(ग) "स्निग्धरूक्षगुणनिमित्तो विद्युत्" स्निग्धरूक्षताके अविभागपरिच्छेदके निमित्तसे एक परमाणु तथा द्वि-अणुकादि स्कन्धके परस्पर बन्ध होयहै भ्रमरासुकजी ११५
कृत तत्त्वार्थ सूत्रकी लघु टीका पृष्ठ ४३ ॥ उपर्युक्त वाक्यका,यह अर्थ है कि स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे एक परमाणु तथा दोपरमाणुका स्कंधके परस्पर बन्ध होता है। एक परमाणु तथा तीन परमाणु वाले स्कन्धके परस्पर बन्ध होता है एक परमाणु तथा चार अणुका स्कन्धके परस्पर बन्ध होता है इसी प्रकार एक परमाणु तथा चार आदिक अणुवाले स्कन्धके परस्पर बन्ध जानना॥

सयोगे च सति भवति केपाचिद्वन्धोऽन्येषा च नेति । उच्यते यस्मात्तेषा पुद्गलात्माविशेषेऽप्यनन्त-पर्यायाणा परस्परविलक्षणपरिणामादाहितसामर्थ्याद्भवन्प्रतीत

॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्वन्धः ॥ ३३ ॥

(१)सयोगे च सति भवति	=और संयोग होते संते यह होगा कि
केषाचित्+बन्ध अन्येषाम् च न इति	=कितने परमाणुओंको बन्ध और(=च)दूसरी परमाणुओंका(बन्ध)नहीं (होता) है
उच्यते-यस्मात्+तेषाम् पुद्गल आत्म अविशेषे अपि+	=इससे कहा जाता है कि तिन(परमाणुओं)केपुद्गलस्वरूपकरि विशेषता न होने पर भी
अनन्त पर्यायाणाम् परस्पर-विलक्षण परिणामात् आहित	=अनन्त पर्यायोंके परस्पर विलक्षण परिणमनकरिग्रहणकरीभई(=आहित)
सामर्थ्यात् भवन् प्रतीत	=सामर्थ्यसे बन्धका होना प्रतीत है ।(भवन् वर्तमानकृदन्त प्रथमा एकवचन पुल्लिंग है)

(२)सूत्रम्—(३)स्निग्धरूक्षत्वाद्वन्ध ॥३३॥ = (पुद्गलाना)स्निग्धरूक्षत्वात् बन्ध (भवति)॥३३॥

(१) श्वेताम्बरी भाईयों सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें "सयोगे च सति भवति" वाक्य छपनेसे रहगया है क्योंकि यह वाक्य सोलह हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रतियोंमें विद्यमान है और तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृ० २४०पर तथा हस्तलिखित राजवार्तिकोंमें भी उक्त वाक्य 'सति' शब्दके अतिरिक्त पाया जाता है बिना इस वाक्य [illegible] नहीं हो सकता है न वाक्योंका परस्पर सम्बन्ध मिल सकता है ।

(२) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है । कहीं 'बन्ध' पाठ है कहीं 'पर' 'बन्ध' पाठ है दोनों पाठ ठीक है (१अध्याय ५४० ।४१)

(३) इन तीनों सूत्रोंका अर्थ और तात्पर्य भिन्न है अपने अपने ढंगसे हमारे यहां भाष्यकारों तथा हिंदी टीकाकारोंने उक्त सूत्रोंका तात्पर्य लिखा है सबमें हमारे यहां मतभेद नहीं है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में प्रथम चार सूत्रोंका पाठ हमारे यहांके पाठसे प्रायःकरि मिलता है । "बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ" च स्थानमें हमारे यहां "बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ" च सूत्र है अर्थात् हमारे यहां 'च' है उनके यहां सम शब्द है । दोनों आम्नायोंके पाठमें इतनी समानता होनेपर भी पिछले तीन सूत्रोंके अर्थोंमें भेद पाया जाता है जिसका उल्लेख हम प्रसगानुसार आगे करेंगे । उक्त पांचों सूत्रोंके भावार्थमें मतभेद प्रकट किया गया है प्रथम इसके कि हम पृथक् पृथक् सूत्रका अर्थ करें यह उचित है कि दोनों आम्नायोंमें जो अर्थ भेद है उसको सक्षेपसे कुछ उल्लेख किया जावे । स्निग्धका स्निग्धद्वारा दोगुण(=अविभागपरिच्छेद) अधिककरि बन्ध होताहै और रूक्षका रूक्षद्वारा [illegible] अधिककरि बंध होता है और रूक्षका स्निग्धद्वारा [illegible] अधिककरि बन्ध होता है और स्निग्धका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है इन सबको दो करि [illegible] अधिकगुण सम(अर्थात ४ ६ ८ १० १२ इत्यादि) हो अथवा विषम(अर्थात ३,५ ११ १३ इत्यादि)हो दोगुणअधिककरिही बन्ध है अन्यकरि नहीं है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वा । [illegible] 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रका शब्दश यह अर्थ करते हैं कि गुणसाम्ये सति सदृशानां बन्धो न भवति गुणकी समता होनेपर सदृश परमाणुओंका बन्ध नहीं होता हमारे यहांकि प्रथम भागको मानते हैं और दूसरे भागको नहीं मानते हैं अर्थात् स्निग्धका स्निग्धद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और इससे सहमत हैं और कहते हैं कि रूक्षका स्निग्धद्वारा बन्ध होनेमें और स्निग्धका रूक्षद्वारा बन्ध होनेमें दोगुणोंकी अधिकताकी आवश्यकता नहीं है बल्कि सर्व पसमानगुणोंसेभी है।

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादि परिणामः ।

स्निग्ध-रूक्षत्वात् इति हेतु निर्देशः	=चिकनापन रूखापनसे एस हेतुका कथन है अर्थात् बन्धका कारण जो पुद्गलोंमें है वह चिकनाई रूखापन है
तत्कृतो बन्धः द्व्यणुक आदि-परिणाम	=उन(स्निग्धपन-रूखपन)का किया हुआ बन्ध दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥

(१) स्निग्ध रूक्षत्वात् इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें 'स्निग्ध रूक्षत्वात्' क्यों आये केवल 'पुद्गलानाम्' इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु होजाता और 'पुद्गलानां' शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणूनां' शब्दका अध्याहार किया जावे अथवा 'पुद्गलानां' शब्दका। दूसरा प्रश्न यह है कि बन्धका निमित्त या हेतु सूत्रके शब्दानुकूल(न कि सिद्धान्तके अनुकूल) 'स्निग्धत्व रूक्षत्व मिले हुए हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनों हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थ के अनुसार स्निग्धपन और रूखापन अथवा यों कहिये कि रूखापन स्निग्धपन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु है या स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्व पृथक् भी बंधके कारण हैं

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके दुइ भेद अणु हो भेद हैं। अणु रूप स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित बीस गुण हैं। वर्ण पांच (श्वेत पीत नील अरुण कृष्ण)। रस पांच (तिक्त कटुक कषायला खट्टा मीठा)। गन्ध दो (सुगंध दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष मृदु कठोर हलका भारी)। अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक पांच वर्णोंमेंसे एक दो गन्धोंमेंसे एक स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध कविवर पन्नालालजीने "द्रव्यसंग्रह की भाषामें कहा भी है कि पञ्च अजीव शुद्ध हैं चारों (=धर्म अधर्म आकाश काल) जिनके कभी विभाव न होय। पुद्गल शुद्ध अशुद्ध विराजै शुद्ध अणु गुन पांचों जाय ॥ सीत ताप रुख चिकनै(में)से दो रस गन्ध वरन इकमाय। पंच अशुद्धबीस गुन परगट दर्वोंभाने चेतन साय ॥ कवित्त १॥ भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत ॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्व और रूक्षत्व ही है इसलिये इस तेतीसवें सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व आये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण रस गन्धमें से कोई गुण और स्पर्शके आठ गुणोंमें से स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त तो यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व बन्धके हेतु हैं परन्तु भिन्न भिन्न हेतुओंसे सूत्रका अभिप्राय यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका(सिद्धान्तके अनुकूल)यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्वरूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता है तो सूत्रकी रचना एस होती कि स्निग्धरूक्षाभ्यां बन्धः अर्थात् स्निग्धपनसे और रूक्षपनसे और स्निग्धपन रूक्षपनसे बन्ध होता है जैसाकि उमा स्वामीजीने 'भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (पुद्गलोंका स्कन्ध) भेदसे उपजता है संघातसे उपजता है और भेदसंघातसेभी उपजता है। दूसरे यह कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावे कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व)का भी बन्ध नहीं होता है और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे इस पिछले कहे हुए मतका अर्थ करेंगे। (तीसरे यह कि जहांतक हमने देखा कोई संस्कृतके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी अकलंक स्वामी श्रीधरसेन सूरि सभाष्यके रचयिता हरिभद्रने और भाषाके टीकाकारोंने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रके अर्थमें यह नहीं लिखा कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्वसे' बन्ध होता है। हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थकरनेमें तो यही प्रगट कियाहै कि स्निग्धरूक्षत्व से बन्ध होताहै परन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त दर्शायाहै 'स्निग्धा

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्ध । तथा रूक्षणाद्रूक्ष । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भाव स्निग्धरूक्षत्व । स्निग्धत्व चिक्कणगुणलक्षण पर्याय । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्व ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके द्वारा होता है ॥

[illegible]	=बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिक्कण पर्यायके
[illegible]	प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निग्धन) ऐसा स्निग्ध है । वैसही
[illegible]	=रूक्षेपनसे रूक्ष है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनेसे जिसमें रूक्षता है सो रूक्ष है
[illegible]	=और स्निग्धऔररूक्षहै उनकारूप सो(द्वन्द्वसमासमें)स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनता है ।
[illegible]	=उनदोनों(स्निग्धरूक्ष)का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रूखापन है ॥
[illegible]	=चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है
[illegible]	=उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम वा पर्याय सो रूखापन है

[illegible]

(३) [illegible] —स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके) पुद्गलोंका आपसमें मिलाने पर बन्ध होता है ।

[illegible] बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है ॥

[illegible]

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादि परिणाम ।

स्निग्ध-रूक्षत्वात् इति हेतु निर्देश	=चिकनापन रूखापनसे ऐसा हेतुका कथन है अर्थात् बन्धका कारण जो पुद्गलोंमें है वह चिकनाई रूखापन है
तद् कृत बन्धो द्व्यणुक आदि-परिणाम	=उन(स्निग्धपन-रूक्षपन)का किया हुआ बन्ध दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥

(१) स्निग्धरूक्षत्वात् इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें स्निग्धरूक्षत्वात् क्यों आये केवल'पुद्गलानां बन्ध' इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु होजाता और पुद्गलानां'शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणूनां' शब्दका अध्याहार किया जावे अथवा'पुद्गलानां' शब्दका । दूसरा प्रश्न यह है कि बन्धका निमित्त या हेतु सूत्रके शब्दानुकूल(न कि सिद्धान्तके अनुकूल) स्निग्धत्व रूक्षत्व मिले हुए हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनों हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थ के अनुसार स्निग्धपन और रूक्षपन अथवा यों कहिये कि रूक्षपन स्निग्धपन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु है या स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्वपृथक् भी बंधका कारण है

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके दुय अणुरु दो भेद हैं । अणुस्वरूप स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित बीस गुण हैं । वर्ण पांच (श्वेत पीत नील अरुण कृष्ण) । रस पांच (तिक्त, कटुक कषायला खट्टा मीठा) । गन्ध दो (सुगन्ध दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष मृदु कठोर हलका भारी) ॥ अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक पांच वर्णोंमेंसे एक दो गन्धमेंसे एक स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध कविवर पन्नालालजीने "द्रव्यसंग्रह की भाषामें कहाभी है कि पंच अजीव शुद्धहैं चारों (=धर्म अधर्म आकाश काल) जिनके कभी विभाव न होय । पुद्गल शुद्ध अशुद्ध विराजै शुद्ध अनू गुन पांचो जोय ॥ सीत ताप रूख चिकनी(में)से दो रस गन्ध वरन इकलाय । पर २ अशुद्धबीस गुन परनत देखेजाते सकल साय ॥ कवित्त ११। भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत ॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्वऔररूक्षत्वही है इसलिये इस तेतीसवें सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व आये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण रस गन्धमें से कोई गुण और स्पर्शके आठ गुणोंमें से स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है ।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त भी यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व बन्धके हेतु हैं परन्तु भिन्न भिन्न हेतुओंसे सूत्रका शब्दार्थ यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका(सिद्धान्तके अनुकूल)यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्वरूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता हैतो सूत्रकी रचना ऐसे होती कि स्निग्धरूक्षत्वयोर्बन्ध "अर्थात् स्निग्धपनसे और रूक्षपनसे और स्निग्धपन रूक्षपनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने 'भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (अणुओंका स्कन्ध)भेदसे उपजता है संघातसे उपजता है और भेदसंघातसेभी उपजताहै॥ दूसरे यह कि'गुणसाम्येसदृशानां' सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावे कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व)का भी बन्ध नहीं होताहै और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे इस पिछले कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे॥(तीसरे यहकि अबतक हमने जहांतक कीहै सम्पूर्णक भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी अकलंक स्वामी श्रीश्रुतसागर सूरिजी सर्वार्थसिद्धिके रचयिता इत्यादिने और भाषाके टीकाकारों ने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रके अर्थ में यह नहीं लिखा कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्वसे बन्ध होता है । हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थकरनेमें तो यही प्रकट कियाहै कि स्निग्धरूक्षत्व से बन्ध होताहैपरन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त देदियाहै'स्निग्धा

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्ध । तथा रूक्षणाद्रूक्ष । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भाव स्निग्धरूक्षत्व । स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षण पर्याय । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्वं ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे होता है ॥

सूत्रार्थ — बाह्य अभ्यन्तर कारणवशात् स्नेह-पर्याय	=बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिक्कण पर्यायके
आविर्भावात् स्निह्यते । अस्मिन् इति • स्निग्ध तथा	=प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निह्यते) ऐसा स्निग्ध है । वैसेही
रूक्षणात् रूक्ष	=रूखेपनसे रूक्ष है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनेसे जिसमें रूक्षता है सो रूक्ष है
स्निग्ध • च रूक्ष • च स्निग्ध रूक्षौ	=और स्निग्ध और रूक्ष है उनका रूप सो (द्वन्द्वसमासमें) स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनता है ।
तयो भाव स्निग्ध-रूक्षत्वम्	=उन दोनों (स्निग्धरूक्ष) का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रूखापन है ॥
चिक्कणगुणलक्षण पर्याय स्निग्धत्वम्	=चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है
तद्-विपरीत-परिणाम रूक्षत्वम्	=उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम या पर्याय सो रूखापन है

(च) स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगात्तस्माभावात् पुद्गलानां बन्धः स्यात् = स्नेहगुणयोगात्स्निग्धाः रूक्षगुणयोगात्रूक्षाः तत्स्मात् पुद्गलानां बन्धः स्यात् = चिकनाईके संयोगसे स्निग्ध है रूक्षगुणके संयोगसे रूक्ष है उनके भावसे (=होनेकरि) पुद्गलोंका बन्ध होता है । तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो ॥ स्वाद—रूक्षा अपरम [illegible] स्निग्धरूक्षत्वयोगत । पुद्गलानामिति व्यवस्था सूत्रस्मिस्तपत्रावता ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो = [illegible] स्यात् [illegible] च प्रति पर्यां स्निग्ध रूक्षत्वयोगत । पुद्गलानां इति व्यवस्था सूत्रे अस्मिन् नहु समावता ॥ = बन्धसे स्कन्ध होता है और (च) [illegible] चिकनाई रूखेपनके योगसे होता है, (पुद्गलोंका) आवश्यक [illegible] कि पुद्गलनामको प्राप्त होजाता है, अभावहै ॥ (स्वाद) स्निग्धास्निग्धैस्तथा रूक्षा रूक्षैः स्निग्धास्तु पुद्गला । बन्धं यान्ति स्कन्धसिद्धं बाधकवर्जित ॥ २ ॥

= स्निग्धाः स्निग्धैः तथा रूक्षा रूक्षैः स्निग्धा च पुद्गला । बन्धं यथा आसते स्कन्धसिद्धं बाधकवर्जित ॥

= स्निग्ध (पुद्गल स्निग्धकरि, तथा रूक्ष (पुद्गल) रूक्षकरि और (च) स्निग्ध पुद्गल (रूक्षकरि, यथायोग्य (बन्ध) बन्धको प्राप्त होत हैं स्कन्धकी सिद्धि बाधारहित है

(छ) "स्निग्धरूक्षयोः पुद्गलयोः परस्परयो स्पृष्टयो बन्धो भवतीति" = स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके) पुद्गलोंका आपसमें छूजाने पर बन्ध होता है । समन्तभद्राश्रमचन्द्र पृ० १६७ । पुद्गलयोः शब्दक प्रयोग स्पष्ट है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है ॥

(ज) 'बन्धसे बन्ध' से स्कन्धोंके बन्धका अभाव आताहै और यह नियमता हो जाता है कि संसारमें केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै स्कन्धोंका नहीं और यह बात प्रत्यक्षता और आगमके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै । अतः उपर के हेतुओंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होती है कि यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंके बन्धसे सम्बन्ध रखताहै अत हमने 'पुद्गलानां' शब्दको अध्याहार करके इस सूत्रका भावार्थ ऊपर यह लिखाहै कि दो पृथक् २ परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक् २ स्कन्धोंका आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षतासे होताहै ॥

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादि परिणाम ।

स्निग्ध-रूक्षत्वात् इति हेतु निर्देश है =चिकनापन रूखापनसे यह हेतुका कथन है अर्थात् बन्धका कारण जो पुद्गलोंमें है वह चिकनाई रूखापन है तद् कृत किया हुआ है द्व्यणुक आदि-परिणाम दो अणु आदि परिणाम (स्निग्धपन-रूक्षपन)का किया हुआ बन्ध दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥

(१) स्निग्ध रूक्षत्वात् इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें 'स्निग्ध रूक्षत्वात्' क्यों आये केवल 'पुद्गलानां बन्धः' इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु हो जाता और 'पुद्गलानां' शब्दके भी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणूनां' शब्दका अध्याहार किया जावे अथवा 'पुद्गलानां' शब्दका। दूसरा प्रश्न यह है कि बन्धका निमित्त या हेतु सूत्रके शब्दानुकूल (न कि सिद्धान्तके अनुकूल) स्निग्धत्व रूक्षत्व मिले हुए हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनों हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके क्रमके अनुसार स्निग्धपन और रूक्षपन अथवा यों कहिये कि रूक्षपन स्निग्धपन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु हैं या स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्व पृथक् भी बंधके कारण हैं।

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके दुय अणुक दो भेद हैं। अणुकरूप स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित बीस गुण हैं। वर्ण पांच (श्वेत पीत नील, अरुण कृष्ण)। रस पांच (तिक्त कटुक कषायला आम्ल मीठा)। गन्ध दो (सुगन्ध दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष मृदु कठोर हलका भारी)। अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक पांच वर्णोंमेंसे एक दो गन्धोंमेंसे एक स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध कविवर पञ्चास्तिकायबीज द्रव्यसंग्रह की भाषामें कहा भी है कि एक प्रदेश शुद्ध है प्यारो (=वर्ण प्रदर्श प्रकाश काल) जिनके कभी विभाव न होय। पुद्गल शुद्ध अशुद्ध विराजे शुद्ध अनु गुन पांचा जोय ॥ सीत ताप रूख चिकनी(में)स दो रस गन्ध वरन इकवाय। पंच अशुद्धबीस गुन परगट देखे जाने चतन लाय ॥ कवित्त १।। भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत ॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्व और रूक्षत्व है इसलिये इस सेतीसवां सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व आये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण रस गन्धमें से कोई गुण और स्पर्शके आठ गुणोंमें से स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त भी यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व बन्धके हेतु हैं परन्तु निम्न लिखित हेतुओंसे सूत्रका आशय नहीं है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका (सिद्धान्तके अनुकूल) यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्वरूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता है तो सूत्रकी रचना यह होती कि स्निग्धरूक्षत्वाभ्यां बन्धः "अर्थात् स्निग्धपनसे और रूक्षपनसे और स्निग्धपन रूक्षपनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने 'भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (पुद्गलोंका स्कन्ध) भेदसे उपजता है संघातसे उपजता है और भेदसंघातसेभी उपजता है। दूसरे यह कि 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावे कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व)का भी बन्ध नहीं होता है और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे इस विषयसे कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे। (तीसरे यहकि अद्यावधि हमने उदाहरण कोई संस्कृतके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी अकलंक स्वामी श्रीधवलाकार सहित समाप्यके रचयिता इत्यादिने और भाषाके टीकाकारोंने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रकेद्वारा ऐसा नहीं लिखा कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्वसे बन्ध होता है। हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थकरनेमें तो यही प्रगट किया है कि 'स्निग्धरूक्षत्व'से बन्ध होता है परन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त दर्शाया है 'स्निग्धा

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्धः । तथा रूक्षणाद्रूक्षः । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भावः स्निग्धरूक्षत्वं । स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षणः पर्यायः । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्वं ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धमें स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे होता है ॥

शब्दार्थ—बाह्य अभ्यन्तर कारणवशात्॥स्नेह-पर्याय	=बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिक्कण पर्यायके
आविर्भावात्॥स्निह्यते। अस्मिन्॥इति = स्निग्धः॥	तथा=प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निह्यते)ऐसा स्निग्ध है। वैसेही
रूक्षणात्॥रूक्ष॥	=रूखेपनसे रूखा है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनेसे जिसमें रूक्षता है सो रूक्ष है
स्निग्ध॥च॥रूक्ष॥च॥स्निग्ध-रूक्षौ॥	=और स्निग्ध और रूक्ष है उनका रूप सो(द्वन्द्व समासमें)स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनता है।
तयो॥भाव॥स्निग्ध-रूक्षत्वम्॥	=उनदोनों(स्निग्धरूक्ष)का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रूखापन है॥
चिक्कणगुणलक्षण॥पर्याय॥स्निग्धत्वम्॥	=चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है
तद्-विपरीत-परिणाम॥रूक्षत्वम्॥	=उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम वा पर्याय सो रूखापन है

(प) स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगाद्रूक्षास्तद्भावात् पुद्गलानां बन्धः स्यात् =स्नेहगुणयोगात्स्निग्धाः रूक्षगुणयोगाद्रूक्षाः तद्भावात् पुद्गलानां बन्धः स्यात् =चिकनागुणके संयोगसे स्निग्ध हैं रूक्षगुणके संयोगसे रूक्ष हैं उनके भावन(=होनेकरि)पुद्गलोंका बन्ध होता है। तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृ०४३५देखो॥ १४।८—रूक्षा बन्धस्तु तावदेषां स्निग्धरूक्षत्वयोगतः । पुद्गलानामिति व्यस्ता सूत्रस्मिंस्तदन्वयता ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो =(जैन बन्धात् स च अस्ति एषां स्निग्ध रूक्षत्वयोगतः । पुद्गलानां इति व्यस्ता सूत्रे अस्मिन् तद् अनन्वयता ॥ =बन्धसे स्कन्ध होता है और(च) वह स्कन्ध परमाणुओंके चिकनाई रूखेपनके संयोगसे होता है (पुद्गलोंका)मालूम होता है इस सूत्रमें इस सिद्धान्तका कि पुद्गलकाही योग होता है, अभाव है। (स्वाद) स्निग्धाः स्निग्धैस्तथा रूक्षाः रूक्षैः स्निग्धाश्च पुद्गलाः । बन्धं यथासते स्कन्धसिद्धं योग्यतामिताः ॥ २ ॥ =स्निग्धाः स्निग्धैः तथा रूक्षाः रूक्षैः स्निग्धाः च पुद्गलाः । बन्धं यथा आसते स्कन्धसिद्धं योग्यतामिताः ॥ =स्निग्ध(पुद्गल स्निग्धकरि,तथा रूक्ष(पुद्गल)रूक्षकरि और(च)स्निग्ध पुद्गल(रूक्षकरि,यथायोग्य(बन्ध)बन्धको प्राप्त होतहैं स्कन्धकीसिद्धिवास्ते।

(ख) "स्निग्धरूक्षयोः पुद्गलयोः परस्परयोः स्पृष्टयोः बन्धो भवतीति" =स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके)पुद्गलोंका आपसमें छूजाने पर बन्ध होता है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृ० १३७। पुद्गलयोः शब्दके जाननेसे स्पष्ट है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है।

(ध)'अपूर्वो बन्ध' से स्कन्धोंके बन्धका अभाव माना है और यह नियमसा होजाता है कि संसारमें केवल अणुओंकाही बन्ध होता है स्कन्धोंका नहीं और यह बात यथार्थता और मान्यताके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होताहो। अतः अपूर्व व अणुओंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होती है कि यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंके बन्धसे सम्बन्ध रखता है अतः हमने 'पुद्गलानां' शब्दकी अध्याहार करके इस सूत्रका भावार्थ ऊपर यह लिखा है कि दो पृथक्२ परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक्२ स्कन्धोंका आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके होता है।

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादि परिणाम ।

स्निग्ध-रूक्षत्वात् ॥ इति हेतु निर्देशः ॥ =चिकनापन रूखापनसे ऐसा हेतुका कथन है अर्थात् बन्धका कारण जो पुद्गलोंमें है वह चिकनाई रूखापन है तद् कृतः बन्धः द्वि अणुक-आदि-परिणामः ॥ =उन (स्निग्धपन-रूक्षपन) का किया हुआ बन्ध दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥

(१) स्निग्धरूक्षत्वात् इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें 'स्निग्धरूक्षत्वात्' क्यों लाये केवल 'पुद्गलानां बन्धः' इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु हो जाता और 'पुद्गलानां' शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणूनां' शब्दका अध्याहार किया जावे अथवा 'पुद्गलानां' शब्दका। दूसरा प्रश्न यह है कि बन्धका निमित्त या हेतु सूत्रके शब्दानुकूल (न कि सिद्धान्तके अनुकूल) स्निग्धत्व रूक्षत्व मिले हुये हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनो हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थ के अनुसार स्निग्धपन और रूक्षपन अथवा यों कहिये कि रूक्षपन स्निग्धपन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु है या स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्व पृथक् भी बंधके कारण हैं।

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके दुइ अणुस्कंध दो भेद हैं। अणु स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित बीस गुण हैं। वर्ण पांच (श्वेत पीत नील अरुण कृष्ण)। रस पांच (तिक्त कटुक कषायला खट्टा मीठा)। गन्ध दो (सुगंध दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष मृदु कठोर हलका भारी)॥ अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक पांच वर्णोंमेंसे एक दो गन्धोंमेंसे एक, स्पर्शके आठगुणोंमे से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध कविवर पंचास्तिकायकी ने द्रव्यसंग्रह की भाषामें कहाभी है कि एक अजीव दरब है धारो (=धर्म अधर्म आकाश काल) जिनके कभी विभाव न होय। पुद्गल सुध असुध विराजै सुध अणु गुन पांचो आय ॥ सीत ताप रूक्ष चिकनी(मे)से दो रस वर्ण एकजाय। पंच असुधबीस गुन परमत खंधनामे बनन साव ॥ कवित्त ३४। भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत ॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्व और रूक्षत्व ही है इसलिये इस तेतीसवें सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व लाये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण रस गन्धमें से कोई गुण और स्पर्शके आठ गुणोंमें से स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त तो यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व बन्धके हेतु हैं परन्तु निम्न लिखित हेतुओंसे सूत्रका शब्दार्थ यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यो कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका (सिद्धान्तके अनुकूल) यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्वरूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्पर बन्ध होता है तो सूत्रकी रचना एस होती कि "स्निग्धरूक्षत्वयोर्बन्धः अर्थात् स्निग्धपनसे और रूक्षपनसे और स्निग्धपन रूक्षपनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने 'भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (पुद्गलोंका स्कन्ध) भेदसे उपजता है संघातसे उपजता है और भेदसंघातसभी उपजता है। दूसरे यह कि "गुणसाम्ये सदृशानां" सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावे कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व) का भी बन्ध नहीं होता है और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे इस पिछले कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे॥ (तीसरे यहकि अबतक हमने टटोला कोई संस्कृतके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी अकलंक स्वामी श्रीधनसागर सूरि सभाष्य० के रचयिता इत्यादिने और भाषाके टीकाकारोने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रके अर्थमें सन्देह नहीं किया कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्वसे बन्ध होता है। हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थकरनेमें तो यही प्रगट कियाहै कि स्निग्धरूक्षत्व से बन्ध होताहै परन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त दर्शायाहै स्निग्धा

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्ध । तथा रूक्षणाद्रूक्ष । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भाव स्निग्धरूक्षत्वं । स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षण पर्याय । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्वं ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताका हेतु होता है ॥

बाह्य-अभ्यन्तर कारणवशात् स्नेह-पर्याय	=बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिक्कण पर्यायके
अविर्भावात् स्निह्यते अस्मिन् इति स्निग्ध तथा	=प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निह्यते) ऐसा स्निग्ध है । वैसेही
रूक्षणात् रूक्ष	=रूखेपनसे रूक्ष है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनेसे जिसमें रूक्षता है सो रूक्ष है
स्निग्ध च रूक्ष च स्निग्ध-रूक्षौ	=और स्निग्ध और रूक्ष है उनका रूप सो (द्वन्द्व समासमें) स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनता है ।
तयो भाव स्निग्ध-रूक्षत्वम्	=उनदोनों (स्निग्धरूक्ष) का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रूखापन है ॥
चिक्कणगुणलक्षण पर्याय स्निग्धत्वम्	=चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है
तद्-विपरीत-परिणाम रूक्षत्वम्	=उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम या पर्याय सो रूखापन है

(ग) स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगाद्रूक्षास्तद्भावात् पुद्गलानां बन्ध स्यात् =स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगाद्रूक्षास्तद्भावात् पुद्गलानां बन्ध स्यात् =स्निग्धगुणके संयोगसे स्निग्ध हैं रूक्षगुणके संयोगसे रूक्ष हैं उनके भावसे (=होनेकरि) पुद्गलोंका बन्ध होता है ॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृ०४३५ देखो ॥ स्यात्—रूक्षा बन्धस्य वास्येषां स्निग्धरूक्षत्वयोगत । पुद्गलानामिति व्यस्ता सूत्रस्मिस्तत्प्रभावता ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४ । देखा =बन्ध बन्धात् स च अस्ति यथा स्निग्धरूक्षत्वयोगत । पुद्गलानां इति व्यस्ता सूत्रे अस्मिन् तद् प्रभावता ॥ =बन्धसे स्कन्ध होता है और (च) परस्परका पुद्गलोंकेभि स्निग्धरूक्षपनकेसंयोगसे होता है, (पुद्गलोंका) बन्ध होजाता है इससूत्रमें इससिद्धान्तका कि पुद्गलबन्धहोमात्रहोजाता है, प्रभावहै ॥ (स्याद) स्निग्धास्निग्धैर्लप्ता रूक्षाश्च रूक्षैः स्निग्धाश्च पुद्गला । बन्ध यथासने स्कन्धसिद्ध बोधकवाक्यमित ॥ २ ॥
=स्निग्धा स्निग्धै तथा रूक्षा रूक्षै स्निग्धा च पुद्गला । बन्धं यथा आसत स्कन्धसिद्धे बाधकवाक्यमित ॥
=स्निग्ध (पुद्गल स्निग्धकरि, तथारूक्ष (पुद्गल, रूक्षकरि) और (च) स्निग्ध पुद्गल (रूक्षकरि, यथायोग्य (बन्ध) बन्धको प्राप्त होतहैं स्कन्धकीसिद्धिबाधारहितहै

(ङ) "स्निग्धरूक्षयो पुद्गलयो परस्परतो स्पृष्टयो बन्धो भवतीति" =स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके) पुद्गलोंका आपसमें छूजाने पर बन्ध होता है। समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृ० ११३। पुद्गलयो शब्दके कामसे स्पष्ट है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है ॥

(च) 'अथवा बन्ध' से स्कन्धोंके बन्धका अभाव आताहै और यह नियमसा होजाताहैकि संभवमें केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै स्कन्धोंका नहीं और यह बात यथार्थता और मान्यताके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै॥अत उपयुक्त हेतुओंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होगई कि यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंके बन्धसे सम्बन्ध रखताहै अत हमने 'पुद्गलानां' शब्दको अध्याहार करके [illegible] सूत्रका भावार्थ ऊपर यह लिखाहै कि दो पृथक्२ परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक्२ स्कन्धोंका आपसमें बन्ध बाद स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षतासे होताहै ॥

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादि परिणामः ।

स्निग्ध-रूक्षत्वात् इति हेतु निर्देश = चिकनापन रूखापनसे पनहेतुका कथन अर्थात् बंधका कारण जो पुद्गलोंमें है चिकनाई रूखापन है। तद् कृतः बन्धः द्वि अणुक-आदि-परिणाम = उन (स्निग्धपन-रूखापन) का किया हुआ बन्ध दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥

(१) स्निग्ध-रूक्षत्वात् इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें 'स्निग्ध रूक्षत्वात्' क्यों लाये केवल पुद्गलानां इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु हो जाता और 'पुद्गलानां' शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणूनां' शब्दका अध्याहार किया जावे अथवा 'पुद्गलानां' शब्दका । दूसरा प्रश्न यह है कि बन्धका निमित्त वा हेतु सूत्रके शब्दानुकूल (न कि सिद्धान्तके अनुकूल) 'स्निग्धत्व रूक्षत्व मिले हुये हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनों हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थ के अनुसार स्निग्धपन और रूखापन अथवा यों कहिये कि रूखापन स्निग्धपन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु है वा स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्व पृथक् भी बंधके कारण हैं

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके गुण अणुरूप दो भेद हैं । अणुस्कन्ध स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित बीस गुण हैं । वर्ण पांच (श्वेत पीत नील अरुण कृष्ण) । रस पांच (तिक्त कटुक कषायला खट्टा मीठा) । गंध दो (सुगंध दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष मृदु कठोर हलका भारी) । अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक पांच वर्णोंमेंसे एक दो गन्धोंमेंसे एक स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध कविवर प द्यानतरायजीने "द्रव्यसंग्रह की भाषामें कहाभी है कि एक अजीव शुद्ध धारी (= धर्म अधर्म आकाश काल) जिनके कभी विभाव न होय । पुद्गल शुद्ध अणुरूप विराजे [illegible] अणु गुण पांचों जोय ॥ सीत ताप रूक्ष चिकनी (में) से दो रस गन्ध बरन इकजाय । अब अशुद्धबीस गुन परगट देखेजाने बतन जाय ॥ कवित्त २१। भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत ॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्व और रूक्षत्व ही है इसलिये इस तेतीसवें सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व लाये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण रस गन्धमें से कोई गुण और स्पर्शके आठ गुणोंमें से स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त भी यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व बन्धके हेतु हैं परन्तु निम्न लिखित हेतुओंसे सूत्रका अभिप्राय यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका (सिद्धान्तके अनुकूल) यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्वरूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता है तो सूत्रकी रचना ऐसे होती कि स्निग्धरूक्षत्वयोर्बन्धः अर्थात् स्निग्धपनसे और रूखापनसे और स्निग्धपन रूखापनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने 'भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (पुद्गलोंका स्कन्ध) भेदसे उपजता है संघातसे उपजता है और भेदसंघातसभी उपजता है॥ दूसरे यह कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावे कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व) का भी बन्ध नहीं होता है और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे इस पिछले कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे। (३) तीसरे यहकि जहांतक हमने देखा कोई संस्कृतके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी अकलंक स्वामी श्रीधनसागर सूरि सभाष्य०के रचयिता इत्यादिने और भाषाके टीकाकारों ने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रकेअर्थ मेंयह नहीं लिखा कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्वसे बन्ध होता है । हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थकरनेमें तो यही ग्रहण कियाहै कि स्निग्धरूक्षत्व से बन्ध होताहै परन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त देदियाहै 'स्निग्धा

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्ध । तथा रूक्षणाद्रूक्ष । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भाव स्निग्धरूक्षत्व । स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षण पर्याय । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्व ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे होता है ॥

बाह्य-बाह्य अभ्यन्तर कारणवशात् स्नेह-पर्याय =बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे चिक्कण पर्यायके आविर्भावात् स्निह्यते । अस्मिन् इति • स्निग्ध, तथा=प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निह्यते) ऐसा स्निग्ध है । वैसेही

रूक्षणात् रूक्ष	=रूखेपनसे रूखा है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनेसे जिसमें रूक्षता है सो रूक्ष है
स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्ध-रूक्षौ	=और स्निग्ध और रूक्ष है उनका रूप सो (द्वन्द्वसमासमें) स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनता है ।
तयो भाव स्निग्ध-रूक्षत्वम्	=उन दोनों (स्निग्धरूक्ष) का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रूखापन है ॥
चिक्कणगुणलक्षण पर्याय स्निग्धत्वम्	=चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है
तद्-विपरीत-परिणाम रूक्षत्वम्	=उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम या पर्याय सो रूखापन है

(य) स्नेहरूक्षयोगाद्विस्रसा रूक्षगुणयोगात् तस्मात् पुद्गलानां बन्धः स्यात् = स्नेहगुणयोगात् स्निग्धाः रूक्षगुणयोगात् रूक्षाः तद्भावात् पुद्गलानां बन्ध स्यात् =चिकनापनके संयोगसे स्निग्ध हैं रूक्षगुणके संयोगसे रूक्ष हैं उनके भावसे (=होनेकरि) पुद्गलोंका बन्ध होता है ॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो ॥ स्कन्ध—स्कन्ध उत्पन्न वासवेनां स्निग्धरूक्षत्वयोगत । पुद्गलानामिति व्यक्ता सूत्रेऽस्मिन्नप्रवाक्यता ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो =स्कन्ध बन्धात् स च अस्ति पर्या स्निग्धरूक्षत्वयोगत । पुद्गलानां इति व्यक्ता सूत्रे अस्मिन् तद् अभावता ॥ =बन्धसे स्कन्ध होता है और (च) स्कन्धपनपुद्गलोंकीस्निग्धरूक्षपनकेसंयोगसेहोताहै, (पुद्गलोंका) नामहोजाताहै सूत्रमेंइससिद्धान्तका कि पुद्गलनामस्कंधोमातहोजाताहै, अभावहै ॥ (श्लोक) स्निग्धास्निग्धैस्तथा रूक्षै स्निग्धाश्च पुद्गला । बन्धं यथासते स्कन्धसिद्ध बाधवर्जित ॥ २ ॥ =स्निग्धाः स्निग्धैः तथा रूक्षाः रूक्षैः स्निग्धाः च पुद्गला । बन्धं यथा आसते स्कन्धसिद्धे बाधवर्जिता ॥ =स्निग्ध (पुद्गल स्निग्धकरि, तथा रूक्ष (पुद्गल) रूक्षकरि और (च) स्निग्ध पुद्गल (रूक्षकरि, यथायोग्य (बन्ध) बन्धको प्राप्त होते हैं स्कन्धकीसिद्धिबाधारहितहै

(र) 'स्निग्धरूक्षयो पुद्गलयोः परस्परया श्लेषया बन्धो भवतीति" =स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके) पुद्गलोंका आपसमें श्लेषणे पर बन्ध होता है। समाप्ततत्त्वार्थविषयक पृ० १३७ । पुद्गलया अपने कार्यसे स्पष्ट है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है ॥

(व) 'अथवा बन्ध से स्कन्धोंके बन्धका अभाव आता है और यह नियमसा होजाताहै कि संसारमें केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै स्कन्धोंका नहीं और यह बात यथार्थता और अनुभवके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होताहो ॥ अतः ऊपर के हेतुओंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होती है कि यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंके बन्धसे सम्बन्ध रखताहै अतः हमने पुद्गलानां शब्दको अध्याहार करके इस सूत्रका आशय ऊपर यह लिखाहै कि दो पृथक् परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक् स्कन्धोंका आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षतासे होताहै ॥

तथा रूक्षगुणोऽपि॥तद्गुणाः परमाणवः सन्ति।यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीक्षीरघृतेषु स्नेहगुण प्रकर्षाप्रकर्षेण प्रवर्तते। पांशुकणिकाशर्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्ट। तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्ति प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते॥स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाह-

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

तथा॰रूक्षगुणः॥अपि॰ ॥ =वैसेही(=तथा)रूक्षगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच छह इत्यादि संख्यात,असंख्यात और अनन्त रूक्षगुण तक होसकते हैं

तद्-गुणाः॥परमाणवः॥सन्ति। यथा॰तोय-अजा =पूर्वकथित(=तद्)चिकने रूखेगुणवाली परमाणुऐं। जैसे जल(=तोय)बकरी(अजा)

गो-महिषि-उष्ट्री-क्षीर-घृतेषु॥स्नेहगुणः॥ =गऊ(=गो)भैंस(=महिषि)ऊटनी(=उष्ट्री)के दूध घी विषैं सचिक्कणगुण

प्रकर्ष-अप्रकर्षेण॥ प्रवर्तते। च॰पांशु-कणिका =प्रकर्षकरि और घटतीकरि प्रवर्तता है। और (=च)धूलि(=पांशु)बालु(=कणिका)

शर्करादिषु॥रूक्षगुणः॥दृष्टः॥। तथा॰ =कंकरादिकमें रूक्षगुण(बढता घटता क्रमसे) देखा जाता है। तैसे

परमाणुषु॥अपि॰स्निग्ध-रूक्षगुणयोः॥वृत्तिः॥ =परमाणुओंमेंभी चिकने रूखे दोनों गुणोंकी स्थिति (=वृत्तिः)

प्रकर्ष-अप्रकर्षेण॥अनुमीयते॥ स्निग्धरूक्षत्व =बढताई घटताईसे अनुमान कीजाती है। सचिक्कनता और रूखापन

गुणनिमित्ते॥बन्धे॥अविशेषेण॥प्रसक्ते॥ =गुणनिमित्तक बन्धमें अविशेषताकरि प्रसंग आनेपर

अनिष्ट-गुण-निवृत्ति-अर्थम्॥आह॥ =अनिष्ट फलके निवारण के लिये कहते हैं अर्थात् पुद्गलके गुणोंमेंसे चिकनाई रूखापनके हेतुसे बन्ध होता है इससे यह प्रसंग आता है कि यदि सचिक्कणता और रूखापन परमाणुओंमें वर्तमान वा विद्यमान है तो बन्ध सर्व प्रकार अभेदरूपसे विशेषता रहित होती जावागा इस अनभिष्ट अनुमानको दूर करने के लिए अग्रिम सूत्रमें कहते हैं कि

[1]सूत्रम्—न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥ = न जघन्यगुणानाम्(परमाणूना बन्ध भवति) ॥३४॥

स्निग्धरूक्षत्वात्॥ न जघन्य गुणानाम्॥परमाणूनाम्॥बन्धः॥भवति=स्निग्धरूक्षतासे निकृष्टगुणोंके परमाणुका बन्ध नहीं होता है अर्थात् जिस परमाणुमें

(1) इस सूत्रका पाठ और अर्थ भी दूसरे आम्नायोंमें पलटता है। हमारे यहां कहां कहींपर न जघन्यगुणानाम् पाठ है अब कातन्त्ररूपमाला व्याकरणके अतिरिक्त प्रयुक्त है(भ० पृ० ४४०,४४१) इस सूत्रमें'परमाणूना और भवति' शब्दोंका अध्याहार कियागया है और बन्धशब्दकी अनुवृत्ति पूर्वसूत्रसे है।

द्वयो स्निग्धरूक्षयोरणवो परस्परश्लेषलक्षणे बन्धे सति द्वयणुकस्कन्धो भवति ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेश स्कन्धो योज्य । तत्र स्नेहगुण एकद्वित्रिचतु संख्येयासंख्येयानन्तविकल्प ॥

द्वयो ' स्निग्ध-रूक्षयो अणवो परस्पर-श्लेष-लक्षणे =दो चिकनी रूखी अणुओंमें आपसके एकमेक(=श्लेष,स्वरूपविषै(=लक्षणे) बन्धे सति द्वि अणुक-स्कन्ध भवति ॥ =बन्ध होनेपर(=सति)दो अणुवाला स्कन्ध होता है अर्थात् दो परमाणु स्निग्ध और रूक्षगुणोंसहित हों उनके परस्पर सर्वात्मभावकरि प्रदेशानुप्रवेशात्मक बन्ध होनेपर दो अणुवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है

एवम् ' संख्येय असंख्येय अनन्तप्रदेश स्कन्ध योज्य । =इस प्रकार संख्यात असंख्यात और अनन्त प्रदेशवाला स्कन्ध जुडजाता है

तत्र स्नेहगुण एक द्वि-त्रि-चतुर्-संख्येय-असंख्येय-अनन्तविकल्प । =वहां स्निग्धगुण एक,दो,तीन,चार संख्यात =असंख्यात और अनन्तभेदरूप हैं अर्थात् एकगुण स्निग्ध, दोगुण स्निग्ध, तीनगुण स्निग्ध,चारगुण स्निग्ध,पांचगुण स्निग्ध,छहगुण स्निग्ध इत्यादि ऐसे संख्यातगुण स्निग्ध, असंख्यातगुणस्निग्ध और अनन्तगुण स्निग्ध तक एक परमाणुमें होसकते हैं ॥

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः स्निग्धत्व पुद्गलों [illegible] स्वामीजीके 'गुणसाम्ये सदृशानां' न सूत्रके आशयसे यह बात झलकती है कि 'स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः' [illegible] (जहांतक उसका सम्बन्ध है) रखता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथ बन्ध और रूक्षका रूक्षके साथ बन्ध से । और यह कि उपर्युक्त क्रम से [illegible] और क्रमका महत्व प्रगट होता है सो कैसे? इस प्रकार कि [illegible] सूत्र बन्धका केवल हेतु प्रगट करता है और चौतीसवां सूत्र सामान्यरूपसे [illegible] सूत्रका अपवाद है पैंतीसवांसूत्र गुणोंकी समानतामें तेतीसवांसूत्रका अपवाद होतेहुयेभी विषमगुणोंकी [illegible] उस(तेतीसवां) सूत्रका विधान करता है छत्तीसवां सूत्र इस विधानकी त्रुटिको पूरा करता है कि दो अधिक आदिगुणोंके होनेपरही सदृश और असदृशोंका बन्ध होता है सैंतीसवां सूत्रमें बन्धके होनेपर द्रव्यकी एकतीसरी अवस्था या तीसरा स्वरूप होजाता है न प्रथम रूप रहै न दूसरा [illegible] पारिणामिक धारण करती है [illegible] मिलजानेपर [illegible]

(१) "यहां स्निग्धपणाका वा रूक्षपणाका अविभागपरिच्छेद है तिनहीकू गुण कहे हैं । परमाणुमें स्निग्धपणाका एकअविभागपरिच्छेदसे लेय अनन्त पर्यन्त कहे हैं । अर एक परमाणुमें अनंत अविभाग परिच्छेद सें घटै तो असंख्यात वा संख्यात और तथा एक अंशपर्यन्त रहै।तथा स्निग्धका [illegible] परमाणु [illegible] है एक परमाणु [illegible] होय है । समय समय परिणमन है अर बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकनिके निमित्ततैं परिणमै है।ऐसे स्निग्धरूक्षगुण परमाणुमें तथा स्कन्धमें जानना ॥ पं० सदासुखजी कृत अर्थ प्रकाशिका पृ० ३१५ सूत्र तेतीसकी भाषा से उद्धृत)

(२ यह संख्यात प्रदेशी स्कन्ध इस प्रकार उत्पन्न होता है कि रूक्षता तथा स्निग्धताके अविभाग परिच्छेदके निमित्तसे दो परमाणुके भेदसे दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है । दोप्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा तीन जुडी हुई परमाणुके मिलनेसे तीन प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है। दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धो के संघातसे तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा चार जुडी हुई परमाणुओंके संघातसे चारप्रदेशी स्कन्ध उपजता है इसी प्रकार सब संख्यात प्रदेशी स्कन्धपूर्वोक्त क्रमानुसार बन्धी हुई और जुडी हुई परमाणुसे उपजता है ऐसाही क्रम असंख्यात प्रदेशी स्कन्धकी अनन्त प्रदेशी स्कन्धकी और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्धकी उत्पत्ति जानों ॥

तथा रूक्षगुणोऽपि॥ तद्गुणा परमाणवः सन्ति। यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीक्षीरघृतेषु स्नेहगुण प्रकर्षाप्रकर्षेण प्रवर्तते। पांशुकणिकाशर्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्टः। तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्तिः प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते॥ स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाह -

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

तथा रूक्षगुणः अपि ॥	=वैसेही(=तथा)रूक्षगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच छह इत्यादि संख्यात, असंख्यात और अनन्त रूक्षगुण तक होसकते हैं
तद्-गुणाः परमाणवः सन्ति । यथा तोय अजा	=पूर्वकथित(=तद्)चिकणे स्नेहगुणवाली परमाणुहैं। जैसे जल(=तोय)बकरी(अजा)
गो-महिषि-उष्ट्री-क्षीर-घृतेषु स्नेहगुणः	=गऊ(=गो)भैंस(=महिषि)ऊंटनी(=उष्ट्री)के दूध घी विषैं सचिक्कणगुण
प्रकर्ष-अप्रकर्षेण प्रवर्तते । च पांशु-कणिका	=प्रकर्षकरि और घटतीकरि प्रवर्तता है। और (=च)धूलि(=पांशु)बालु(=कणिका)
शर्करादिषु रूक्षगुणः दृष्टः । तथा	=कंकरादिकमें रूक्षगुण(बढ़ता घटता क्रमसे) देखा जाता है। तैसे
परमाणुषु अपि स्निग्ध-रूक्षगुणयोः वृत्तिः	=परमाणुओंमेंभी चिकने रूखे दोनों गुणोंकी स्थिति (=वृत्तिः)
प्रकर्ष अप्रकर्षेण अनुमीयते ॥ स्निग्धरूक्षत्व	=बढ़वाई घटवाईसे अनुमान कीजाती है। सचिक्कनता और रूखापन
गुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते	=गुणनिमित्तक बन्धमें अविशेषताकरि प्रसंग आनेपर
अनिष्ट-गुण-निवृत्ति-अर्थम् आह	=अनिष्ट फलके निवारण के लिये कहते हैं अर्थात् पुद्गलके गुणोंमेंसे चिकनाई रूखापनके हेतुसे बन्ध होता है इससे यह प्रसंग आता है कि यदि सचिक्कणता और रूखापन परमाणुओंमें वर्तमान वा विद्यमान है तो बन्ध सर्व प्रकार अभेदरूपसे विशेषता रहित होही जावाहोगा इस अनिष्ठित अनुमानके दूर करने के लिये अग्रिम सूत्रमें कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४॥ = न जघन्यगुणानाम्(परमाणूना बन्ध भवति) ॥ ३४॥

स्निग्धरूक्षत्वात् न जघन्य गुणानां परमाणूनां बन्धः भवति=स्निग्धरूक्षतासे निकृष्टगुणोंके परमाणुका बन्ध नहीं होता है अर्थात् जिस परमाणुमें

इस सूत्रका पाठ और अर्थ भी दोनों आम्नायोंमें एकसा है। हमारे [illegible] कहीं कहीपर 'अजघन्यगुणानां' पाठ है वह कातन्त्ररूपमाला व्याकरणके प्रतिकूल प्रयुक्त है(भ०१ पृ० ५४० ५४१) इस सूत्रमें परमाणूनां और 'भवति' शब्दोंका अध्याहार कियागया है और बन्धशब्दकी अनुवृत्ति ३०वांसूत्रसे है।

द्वयो स्निग्धरूक्षयोरणवो परस्परश्लेपलक्षणे बन्धे सति द्वयणुकस्कन्धो भवति ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेश स्कन्धो योज्य । तत्र स्नेहगुण एकद्वित्रिचतु सख्येयासख्येयानन्तविकल्प ॥

द्वयो: । स्निग्ध-रूक्षयो: । अणवो: । परस्पर-श्लेष-लक्षणे ।	=दो चिकनी रूखी अणुओंमें आपसके एकमेक(=श्लेष,स्वरूपविषें(=लक्षणे)
बन्धे । सति । द्वि अणुक-स्कन्ध । भवति ॥	=बन्ध होनेपर(=सति)दो अणुवाला स्कंध होता है अर्थात् दो परमाणु स्निग्ध और रूक्षगुणोंसहित हों उनके परस्पर सर्वात्मभावकरि प्रदेशानुप्रवेशात्मक बन्ध होनेपर दो अणुवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है
एवम् । सख्येय-असंख्येय अनन्तप्रदेश । स्कन्ध: । योज्य: ॥	=इस प्रकार संख्यात असंख्यात और अनन्त प्रदेशवाला स्कन्ध जुड़जाता है
तत्र । स्नेहगुण । एक द्वि-त्रि-चतुर् -संख्येय	=वहां स्निग्धगुण एक,दो,तीन,चार संख्यात
असंख्येय-अनन्तविकल्प ॥	=असंख्यात और अनन्तपदरूप हैं अर्थात् एकगुण स्निग्ध, दोगुण स्निग्ध, तीन गुण स्निग्ध,चारगुण स्निग्ध,पांचगुण स्निग्ध,छहगुण स्निग्ध इत्यादि ऐसे संख्यातगुण स्निग्ध, असंख्यातगुणस्निग्ध और अनन्तगुण स्निग्ध तक एक परमाणुमें होसकते हैं ॥

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्ध: स्निग्धत्व पुद्गलों [illegible] स्वामीजीके गुणसाम्ये सदृशानां न बन्धे भाष्यसे यह बात झलकती है कि 'स्निग्धरूक्षत्वात् बन्ध' [illegible] (यहांतक उसका सम्बन्ध है) रखता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथ बन्ध" और रूक्षका रूक्षके साथ बन्ध से है (१) [illegible] उसमें क्रम से रचनाका और क्रमका महत्त्व प्रगट होता है सो कैसे? इस प्रकार कि [illegible] सूत्र बन्धका केवल हेतु प्रगट करता है और [illegible] सामान्यरूपसे [illegible] अपवाद है [illegible] समानतामें [illegible] अपवाद होनेपुरुषी विषमगुणोंकी [illegible] विधान करता है [illegible] सूत्र इस विधानकी त्रुटिको पूरा करता है कि दो अधिक [illegible] होनेपरही [illegible] और [illegible] बन्ध होता है [illegible] सूत्रमें [illegible] होनेपर [illegible] अवस्था या तीसरा स्वरूप होजाता है न प्रथम रूप रहै न दूसरा [illegible]

(१) "[illegible] अविभागपरिच्छेद है [illegible] परमाणुमें [illegible] अविभागपरिच्छेदका [illegible] परमाणु [illegible] परमाणु [illegible] समय समय परिणमन है [illegible] निमित्तसे परिणमे हैं [illegible] परमाणुमें तथा स्कन्धमें जानना ॥ पं० [illegible] पृ० ३३४ [illegible] भाषा से उद्धृत)

(२ यह संख्यात प्रदेशी स्कन्ध इस प्रकार उत्पन्न होता है कि रूक्षता तथा स्निग्धताके अविभाग परिच्छेदके निमित्तसे दो परमाणुके जुड़नेसे दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है । दो प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा तीन जुड़ी हुई परमाणुके मिलनेसे तीन प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है। दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धों के संघातसे तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे, अथवा चार जुड़ी हुई परमाणुओंके संघातसे चारप्रदेशी स्कन्ध उपजता है इसी प्रकार अन्य संख्यात प्रदेशी स्कन्धपूर्वोक्त क्रमानुसार बन्धो हुई और खुली हुई परमाणुसे उपजता है ऐसाही असंख्यात प्रदेशी स्कन्धकी अनन्त प्रदेशी स्कन्धकी और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्धकी उत्पत्ति जानो ॥

तथा रूक्षगुणोऽपि॥ तद्गुणा परमाणवः सन्ति। यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीक्षीरघृतेषु स्नेहगुण प्रकर्षाप्रकर्षेण प्रवर्तते। पाशुकणिकाशर्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्ट। तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्ति प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते॥ स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाह -

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

तथा॰ रूक्षगुणः॥ अपि॰ ॥ =जैसेही (=तथा) रूक्षगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच आदि इत्यादि संख्यात, असंख्यात और अनन्त रूक्षगुण तक होसकते हैं

तद्-गुणाः॥ परमाणवः॥ सन्ति॥। यथा॰ तोय अजा गो-महिषि-उष्ट्री-क्षीर-घृतेषु॥ स्नेहगुणः॥ प्रकर्ष-अप्रकर्षेण॥ प्रवर्तते॥। च॰ पांशु-कणिका-शर्करादिषु॥ रूक्षगुणः॥ दृष्टः॥। तथा॰ परमाणुषु॥ अपि॰ स्निग्ध-रूक्षगुणयोः॥ वृत्तिः॥ प्रकर्ष-अप्रकर्षेण॥ अनुमीयते॥॥ स्निग्धरूक्षत्व गुणनिमित्ते॥ बन्धे॥ अविशेषेण॥ प्रसक्ते॥ अनिष्ट-गुण-निवृत्ति अर्थम्॥॥ आह॥

=पूर्वकथित (=तद्) चिकणे रूखेगुणवाली परमाणुएँ। जैसे जल (=तोय) बकरी (अजा) =गऊ (=गो) भैंस (=महिषि) ऊटनी (=उष्ट्री) के दूध घी विषैं सचिक्कणगुण =प्रकर्षकरि और घटतीकरि प्रवर्तता है। और (=च) धूलि (=पांशु) बालु (=कणिका) =कंकरादिकमें रूक्षगुण (बढता घटता क्रमसे) देखा जाता है। तैसे =परमाणुओंमेंभी चिकने रूखे दोनों गुणोंकी स्थिति (=वृत्ति) =बढताई घटताईसे अनुमान कीजाती है। सचिक्कनता और रूखापन =गुणनिमित्तक बन्धमें अविशेषताकरि प्रसंग आनेपर =अनिष्ट फलके निवारण के लिये कहते हैं अर्थात् पुद्गलके गुणोंमेंसे चिकनाई रूखापनके हेतुसे बन्ध होता है इससे यह प्रसंग आता है कि यदि सचिक्कणता और रूखापन परमाणुओंमें वर्तमान या विद्यमान है तो बन्ध सर्व प्रकार अभेदरूपसे विशेषता रहित होही जावाहोगा इस अनिश्चित अनुमानके दूर करने के लिये अग्रिम सूत्रमें कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४॥ = न जघन्यगुणानाम् (परमाणूना बन्ध भवति) ॥ ३४॥

स्निग्धरूक्षत्वात्॥॥ न जघन्य-गुणानां॥ परमाणूनां॥ बन्धः॥ भवति=स्निग्धरूक्षतासे निकृष्टगुणोंके परमाणुका बन्धनहीं होताहै अर्थात् जिस परमाणुमें

इस सूत्रका पाठ और अन्य भी दानों आम्नायोंमें एकसा है। हमारे यहां कहीं कहींपर 'नजघन्यगुणाना' पाठ है यह कातन्त्ररूपमाला व्याकरणके प्रतिरिक्त मशहूर है (भ॰१ पृ॰ ५४०,५४१) इस सूत्रमें परमाणूनां और 'भवति' शब्दोंका अध्याहार कियागयाहै और बन्धशब्दकी अनुवृत्ति ३३वांसूत्रसेहै।

जघन्यो निकृष्ट गुणो भाग । जघन्यो गुणो येषा ते जघन्यगुणा । तेषा जघन्यगुणाना नास्ति बन्ध । तद्यथा-एकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन च नास्ति बन्ध तस्यैवैकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूक्षेणद्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणरूक्षेण वा नास्ति बन्ध । तथा एकगुणरूक्षस्यापि योज्यमिति ॥ एतौ जघन्यगुणस्निग्धरूक्षौ वर्जयित्वा अन्येषा स्निग्धाना रूक्षाणा च परस्परेण बन्धो भवतीत्यविशेषेण प्रसक्ते तत्रापि प्रतिषेध-

---

रूक्षत्वका वा स्निग्धता का एक अविभाग परिच्छेद(=जघन्यगुण) रहजाय सो बंधको प्राप्त नहीं होता है

शब्दार्थ—जघन्यः निकृष्टः गुणः भागः =जघन्य वा घटिसे घटि है सो निकृष्ट है । गुण है सो गुणका अविभाग परिच्छेद है
जघन्यः गुणः येषाम् ते जघन्यगुणाः =घटिसे घटि है अविभाग परिच्छेद जिनके वे जघन्यगुण हैं
तेषाम् जघन्यगुणानाम् न अस्ति बन्धः तद्यथा =तिन निकृष्टगुणों(वाली परमाणुओं)के बंध नहीं हैं । जैसे
एकगुणस्निग्धस्य एकगुणस्निग्धेन द्वि आदि-संख्येय =एकगुण स्निग्धका एकगुण स्निग्धकरि और(=च)दो आदिक संख्यात
असंख्येय अनंतगुण स्निग्धेन न अस्ति बंध तस्य =असंख्यात अनंतगुण स्निग्धकरि बंध नहीं है । तिस
एव एकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूक्षेण वा द्वि आदि =ही एकगुण स्निग्धका एकगुणरूक्षकरि अथवा दो आदिक
संख्येय असंख्येय अनन्तगुणरूक्षेण बन्धः न अस्ति =संख्यात असंख्यात अनंतगुणरूक्षकरि बंध नहीं है
तथा एकगुणरूक्षस्य अपि योज्यम् इति =तैसेही(=तथा)एकगुण रूक्षके भी लगाना चाहिये अर्थात् एकगुणरूक्षका एकगुण रूक्षकरि और दो तीन चार पांच आदिक संख्यात,असंख्यात,और अनंतगुणरूक्षकरि बन्ध नहीं होता है तैसेही एकगुणरूक्षका एकगुण स्निग्धकरि अथवा दो, तीन, चार,पांच आदि संख्यात असंख्यात अनन्तगुणा स्निग्धकरि बंध नहीं होता है
एतौ जघन्यगुण-स्निग्ध-रूक्षौ वर्जयित्वा-अन्येषाम् =ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाली स्निग्ध रूक्षोंको छोड़कर अन्य
स्निग्धानाम् रूक्षानाम् च परस्परेण बंधः भवति इति =स्निग्ध और(=च)रूक्ष(गुणवाली परमाणु)निके परस्पर बन्ध होता है । ऐसे
अविशेषेण प्रसक्ते तत्र अपि प्रतिषेध- =विशेषरहित प्रसंग आनेपर तहां औरभी(=अपि) बन्धके निषेधके

और यह बंध केवल परमाणुओंसे संबन्ध रखता है क्योंकि जघन्यगुण परमाणुओंही पायाजाताहै और स्कन्धमें और अवकिसीप्रकारकी जघन्यगुणवालेस

विपयस्थापनार्थमाह— ॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥

विपय-स्थापन अर्थम्॥ आह।

=प्रकरणके कहनेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं अर्थात् ऊपरके उपान्तिक या जघन्य वाक्यसे ऐसा अनुमान निकलता है कि जघन्यगुणोंको छोड़कर अन्य सब गुणवाली परमाणुओंका स्निग्धरूक्षतासे बन्ध होजाता होगा सो इस प्रसंगको दूर करनेके लिये आचार्य बन्धके निपेधका निम्नलिखित अन्यसूत्रमें कहते हैं कि

121 [1]सूत्रम्—गुणसाम्ये सदृशानाम्॥ ३५॥ = (न)गुणसाम्ये(स्निग्धरूक्षत्वानाम्) सदृशानाम् (परमाणूनाम् बन्धः भवति) ॥ ३५ ॥

=गुणसाम्ये असदृशानाम् सदृशानाम् परमाणूनाम् बन्धः न भवति ॥ ३५ ॥

परमाणुमें बन्ध नहीं होसका है तब वह परमाणु बिना बन्धके पृथक्ही रहेगी कभीभी स्कन्धरूपमें नहीं होसकी(अबतक जघन्य गुण उसमें विद्यमान है)॥ श्लोकवार्तिक पृ० ४११ राजवार्तिक तथा अर्थप्रकाशिका तत्वार्थवृत्ति पृ० ४२० ४११सेप्रगट है कि यहसूत्र केवल परमाणुओंसेही सम्बन्ध रखता है स्कन्धोंसे।

(१) यह सूत्र भी पूर्व चौतीसवें सूत्रका अपवाद विशेष समर्थनके लिये है परमाणुओंसे सम्बन्ध रखता है स्कन्धोंसे नहीं क्योंकि चौतीसवें सूत्र से परमाणूनाम् शब्दकी भी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आती है। समस्त तेतीसवां सूत्रभी यहां अनुवर्तता है। स्निग्धरूक्षत्वानाम् और असदृशानाम् पदों पर समानार्थकत्वाणी है अत "स्निग्धरूक्षत्वानाम्"के स्थानमें"असदृशानां"शब्दका आदेश करदिया है। बल्कि स्निग्धरूक्षत्वानाम्"की अनुवृत्ति आती है इसके समर्थनमें श्लोकवार्तिकसे निम्न वाक्य देते हैं। ननु एवं विसदृशानां गुणसाम्ये बन्धप्रतिषेधो न स्यादिति न मंतव्यं सदृशग्रहणस्य विसदृशस्य व्यवच्छेदार्थत्वाभावात् सदृशानामेवेत्यवधारणाभावात्॥ गुणसाम्येऽपीति स चोक्ते सदृशानां गुणवैषम्येऽपि बंधप्रतिषेधप्रसक्तौ तद्वत्सिद्धये सदृशग्रहणं तत्र स्निग्धरूक्षतास्या साम्यपि गुणवैषम्येबन्धसिद्धि॥ तत्वार्थ श्लोकवार्तिक सूत्र३५ पृ० ४१७॥

ननु एवं विसदृशानां गुणसाम्ये बंधप्रतिषेधो न स्यात् इति =प्रश्न ऐसे गुणोंकी समानता होनेपर विसदृशोंके बन्धका निपेध नहीं होता होगा

न मंतव्यं सदृशग्रहणस्य विसदृश- =(उत्तर—ऐसा) मानना ठीक नहीं है। क्योंकि सदृशके ग्रहणसे (जो) विसदृशके

व्यवच्छेदार्थत्वाभावात् =व्यवच्छेदका(=व्यवच्छेदार्थत्व)अभाव है अर्थात् विसदृश शब्दकी अनुवृत्ति बराबर आरही है उस (अनुवृत्ति)में कहींपर रुकावट नहीं हुई है

सदृशानाम् एव इति अवधारणा अनाश्रयणात्। =(और)सदृशों काही(=एव) ऐसा निश्चयात्मकपद (सूत्रमें) दिया नहीं है अर्थात् 'गुण साम्ये सदृशानामेव"ऐसा सूत्र नहीं है नहीं तो मानलेते कि असदृशोंकी अनुवृत्ति नहीं आरही है और गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर केवल सदृशोंकाही बन्ध नहीं होता है असदृशोंका गुणोंकी समानता होने पर होजाता है ऐसा मानलेते॥ स्मरण रहै कि ऐसी अवस्थामें श्वेताम्बरतथा दिगम्बरआम्नायोंमें इसपांचोंसूत्रोंका पाठऔरअर्थ एकहोजाता॥ 121

जघन्यो निकृष्ट गुणो भाग । जघन्यो गुणो येषां ते जघन्यगुणाः । तेषां जघन्यगुणानां नास्ति बन्ध । तद्यथा-एकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन च नास्ति बन्ध तस्यैवैकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूक्षेणद्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणरूक्षेण वा नास्ति बन्ध । तथा एकगुणरूक्षस्यापि योज्यमिति ॥ एतौ जघन्यगुणस्निग्धरूक्षौ वर्जयित्वा अन्येषां स्निग्धानां रूक्षाणां च परस्परेण बन्धो भवतीत्यविशेषेण प्रसक्ते तत्रापि प्रतिषेध-

२० रूक्षत्वका वा सचिक्कणता का एक अविभाग परिच्छेद(=जघन्यगुण) रहजाय सो बंधको प्राप्त नहीं होता है

सूत्रानुवाद—जघन्यः। निकृष्टः। गुणः। भागः। =जघन्य वा घटिसे घटि है सो निकृष्ट है । गुण है सो गुणका अविभाग परिच्छेद है

जघन्यः। गुणः। येषाम्। ते। जघन्यगुणाः। =घटिसे घटि है अविभाग परिच्छेद जिनके वे जघन्यगुण हैं

तेषां। जघन्यगुणानाम्। न अस्ति। बन्धः। तद्यथा- =तिन निकृष्टगुणों(वाली परमाणुओं)के बंध नहीं है । जैसे

एकगुणस्निग्धस्य। एकगुणस्निग्धेन। द्वि आदि-संख्येय-=एकगुण स्निग्धका एकगुण स्निग्धकरि और(=च)दो आदिक संख्यात

असंख्येय-अनंतगुण स्निग्धेन। च। न अस्ति बंधः। तस्य। =असंख्यात अनंतगुण स्निग्धकरि बंध नहीं है । तिस

एव एकगुण स्निग्धस्य। एकगुणरूक्षेण। वा। द्वि आदि =ही एकगुण स्निग्धका एकगुण रूक्षकरि अथवा दो आदिक

संख्येय असंख्येय अनन्तगुणरूक्षेण। बन्धः। न अस्ति =संख्यात असंख्यात अनंतगुणरूक्षकरि बंध नहीं है

तथा एकगुणरूक्षस्य। अपि योज्यम्। इति =तैसेही(=तथा)एकगुण रूक्षके भी लगाना चाहिये अर्थात् एकगुणरूक्षका एकगुण रूक्षकरि और दो तीन चार पांच आदिक संख्यात,असंख्यात,और अनंतगुणरूक्षकरि बन्ध नहीं होता है तैसेही एकगुणरूक्षका एकगुण स्निग्धकरि अथवा दो, तीन, चार,पांच आदि संख्यात असंख्यात अनन्तगुण स्निग्धकरि बंध नहीं होता है

एतौ। जघन्यगुण-स्निग्ध-रूक्षौ। वर्जयित्वा-अन्येषाम्। =ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाली स्निग्ध रूक्षोंको छोड़कर अन्य

स्निग्धानाम्। रूक्षाणाम्। च परस्परेण। बंधः भवति-इति=स्निग्ध और(=च)रूक्ष(गुणवाली परमाणु)निके परस्पर बन्ध होता है । ऐसे

अविशेषेण। प्रसक्ते। तत्र। अपि। प्रतिषेध- =विशेषरहित प्रसंग आनेपर तहां औरभी(=अपि) बन्धके निषेधके

और यह सूत्र केवल परमाणुओंसे संबन्ध रखता है क्योंकि जघन्यगुण परमाणुमेंही पायाजाता है तांक स्कधमें और अवकिसीप्रकारसे जघन्यगुणपना

सदृशग्रहणं तल्यजातीयसंप्रत्ययार्थं । गुणसाम्यग्रहणं तुल्यभागसंप्रत्ययार्थम् ॥ एतदुक्तं भवति—द्विगुणस्निग्धाना द्विगुणरूक्षै त्रिगुणस्निग्धानां त्रिगुणरूक्षै द्विगुणस्निग्धाना द्विगुणस्निग्धै द्विगुणरूक्षाणां द्विगुणरूक्षैश्चेत्येवमादिषु नास्ति बन्ध इति ॥ यद्येवं

आदि संख्यात असंख्यात अनंत गुणवाली स्निग्धपरमाणुओंका बन्ध तीन-चार-पांच-छह-सात आदि संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ न होगा ॥ उपर्युक्त उदाहरण विजातीय(असदृश वा विसदृश) परमाणुओंके, जो अविभाग परिच्छेदरूप अंशोंमें समान हैं। निम्नलिखित दृष्टान्त सजातीय वा सदृश परमाणुओंके हैं जो सबकी सब गुणोंमें एक दूसरेके बराबर वा समान हैं।

जैसे दो गुणवा तीन गुणवाली स्निग्धपरमाणुका बन्ध दो, गुणवाली या तीन गुणवाली स्निग्ध परमाणुसे यथाक्रम न होगा और दो गुणवाली अथवा तीन गुणवाली रूक्ष परमाणुका बन्ध दो गुणवाली वा तीनगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ क्रमसे न होगा, इसीप्रकार चार-पांच-छह-सात-आठ आदिक संख्यात-असंख्यात-अनंत स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंका बन्ध चार-पांच-छह-सात-आठ आदि संख्यात-असंख्यात अनंतगुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ क्रमसे न होगा और चार-पांच-छह-सात आठ-आदि संख्यात असंख्यात अनंतरूक्षगुणवाली परमाणुओंका बंध क्रमसे चार-पांच छह-सात-आठ आदि संख्यात असंख्यात-अनंतगुणसे युक्त रूक्षपरमाणुओंके सथ न होगा ॥

सदृशग्रहणम्(१) तुल्य जातीय-संप्रत्यय अर्थम् ॥ =(इस सूत्रमें)सदृश(शब्द)का ग्रहण समानजातिको प्रगट करनेके लिये है

गुणसाम्य ग्रहणम् ॥ तुल्य भाग-संप्रत्यय-अर्थम् ॥ =(इससूत्रमें)गुणसाम्य वाक्यका लाना(स्निग्धता वा रूक्षताकेगणनामें) बराबर अविभागपरिच्छेदरूप अंशोंके जतावनेकेलिये है।

एतद् ॥ उक्तम् ॥ भवति = यह कथन वा अर्थ होता है कि

द्विगुण(१ स्निग्धानाम् द्विगुण(२) रूक्षै त्रिगुण(३) स्निग्धानाम् =दोगुण स्निग्धोंके दोगुण रूक्षों करि, तीनगुण स्निग्धो के

त्रिगुण रूक्षै द्विगुणस्निग्धानाम् द्विगुणस्निग्धैः =तीनगुणरूक्षोंकरि, दोगुणस्निग्धोंके दोगुण स्निग्धोंकरि,

च द्विगुणरूक्षाणाम् द्विगुणरूक्षैः इत्येवम् आदिषु =और दोगुण रूक्षोंके दोगुण रूक्षोंकरि इत्यादि में

न अस्ति बन्ध इति ॥ यदि एवम् =इस प्रकार बन्ध नहीं है। (प्रश्न) जो ऐसे है तो अर्थात् गुणोंकी संख्यामें बराबरी होनेपर न तो सदृश परमाणुओंका बंध होता है और न असदृश

(१)(२)(३)तीन स्थानोंपर इस पृष्ठमें और पांच स्थानोंमें १२४ पृष्ठमें 'बहुवचनमें' ये शब्द इसलिये लाये गये हैं कि वाक्यमें बहुतसी परमा

सूत्रार्थ —गुणसाम्ये॥सदृशानाम् ॥सदृशानाम्॥=गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर विजातीय और सजातीय(=रूक्षरूक्ष,स्निग्धस्निग्ध) परमाणूनाम्॥बन्ध॥न॥भवति —परमाणुओंके बन्ध नहीं होता है अर्थात् एक परमाणुके अविभाग परिच्छेदरूप अंशों(=गुणों)की गणना दूसरी परमाणुके अविभागपरिच्छेदरूप अंशोंकी संख्याके यदि बराबर हो तो उन दोनों परमाणुओंका आपसमें चाहे रूक्षस्निग्ध(विजातीय) (क्रमसे) हो चाहे स्निग्धरूक्ष=(विजातीय)(क्रमसे)होचाहे स्निग्धस्निग्ध=(सजातीय)(क्रमसे)होचाहे रूक्षरूक्ष=(सजातीय)क्रमसे हो बंध नहींहोताहै जैसे रूक्षपरमाणुके दो अविभागपरिच्छेदरूप अंशका बंध स्निग्धपरमाणुके दो गुणोंके साथ नहीं होगा औरदो स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका बन्ध दो रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ नहीं होसकता है इसी प्रकार तीन चार-पांच-छह-सात आदि-संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंका बंध तीन-चार-पांच-छह-सात आदि संख्यात असंख्यात-अनंतगुणवाली स्निग्धपरमाणुओंके साथ नहीं होगा और तीन-चार पांच-छह-सात

गुणसाम्ये वा इति सूत्र क्रियेत हि सदृशानां गुणवैषम्येऽपि = गुणसाम्ये वा' यदि ऐसा सूत्र करते तो गुणोंकी विषमता होनेपर भी सदृशोंके बन्धप्रतिषेध प्रसक्तो =अबन्धका प्रसंग आजाता अर्थात् सदृशोंका भी बन्ध न होता। (इसलिये)

तद् वत् तद् सिद्धये सदृश- =विसदृशोंके समान (=तद्वत्) सदृशोंका बंध (=तद्)सिद्ध करनेके लिये सदृशका ग्रहणम् कृतम् तेन स्निग्धरूक्षजात्या =ग्रहण (इससूत्रमें)किया है। तिसकरि अर्थात् स्निग्ध रूक्ष जातीयसे साम्येऽपि =समान होने पर भी अथवा रूक्ष रूक्ष वा स्निग्ध स्निग्ध होनेपर भी गुण वैषम्ये बंधसिद्धिः। =गुणोंकी विषमता होने पर बन्धकी सिद्धि है। बन्ध होजाता है॥

इस सूत्रके पाठ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें अक्षरशः मिलने पर भी अर्थमें भेद है॥ श्वेताम्बर आम्नायके आचार्यों ने 'स्निग्धरूक्षत्वात्' वेतीसवें सूत्रकी अनुवृत्ति नहीं ली है वे कहते हैं कि तैतीसवें सूत्रसे उपर्युक्त अनुवृत्ति नहीं लेना चाहिये नहीं तो सूत्र अशुद्ध होजावेगा क्यों कारण है कि सूत्रके अर्थ में भेद पड़जाता है उनके मतानुसार'गुणसाम्येसदृशानाम्'="गुणसाम्ये सति सदृशानां बन्धो न भवति"=गुणकी समता होने पर सदृशोंका बन्ध नहीं होता पर असदृशोंका बंध अर्थात् रूक्षस्निग्धका बंध गुणोंकी बराबरी होनेपर भी होजाता है उनका आशय यह है कि गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका (रूक्षका रूक्षके साथ और स्निग्ध का स्निग्धके साथ बंध होजाता है और यह गुणोंकी विषमता उनके द्वि अधिकादिगुणानां तु (=द्व्यधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवति" सूत्रके अनुसार केवल दो गुण एकसदृशमें दूसरे सदृशमें अधिक होना चाहिये बस बन्ध होजायेगा परन्तु उनके मतानुसार इससे यह फल निकला कि असदृशोंके परस्पर (रूक्षका स्निग्धके साथ अथवा यों कहिये कि स्निग्धका रूक्षके साथ) बन्ध होनेके लिये गुणोंकी अधिकताकी कोई आवश्यकता नहीं है वो असदृशोंके गुणोंकी संख्या समान होने पर भी बंध होजाता है। (इस टिप्पणी का हमने श्वेताम्बर आम्नायके ग्रंथोंको मिलाकर सावधानी से लिखी है)॥

...गुणसाम्यग्रहणं तुल्यभागसंप्रत्ययार्थम् ॥ एतदुक्तं ... द्विगुणस्निग्धानां द्विगुणस्निग्धै ...

...ी अवस्थामें नहीं करसक...

...ी बन्ध प्रगट होजाय ; अपि शब्दसे ...

...विषमगुणोंके होनेपर होहीजाता है।सूत्रमें 'सदृशानां' ...

...व्यर्थ नहीं है॥स्मरण रहे कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका ...

...है कि सदृशों(सजातीय परमाणुओं)का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर ...

...होता है इसलिये सूत्रमें सदृशानां' शब्दका ग्रहण है कि गुणकी विषमता होनेपर ...

...आम्नायमें 'सदृशानां' शब्दपर बलदेकर यह अर्थ कियाहै कि सदृशोंका बन्ध गुणोंकीसमानता ...

...का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर भी होजाता है जैसे चार गुणवाली स्निग्ध परमाणुका बन्ध चार ...

...रूक्ष परमाणु के साथ होजावेगा इसीलिये श्वेताम्बर तथा दिगम्बरआम्नायोंमें इस सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है।

...गुणानाम् तु सजातीयनाम् च =इसलिये विषमगुणवाले सदृशोंका और (=च)

...सजातीयनाम् अनियमेन बन्ध =विसदृशों(=असदृशों)का नियमरहित वा अविशेषरूपसे बन्धका

...प्रसङ्गे विशिष्ट अर्थ-संप्रत्यय-अर्थम् =प्रसंग आनेपर विशेष तात्पर्य वा अभिप्राय बतलानेके लिये

इदम् उच्यते। =यह(अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

[1]सूत्रम्–द्व्यधिकादिगुणाना तु।३६। = द्वि-अधिक-आदिगुणानाम् (सदृशानाम् विसदृशानाम् परमाणूना परस्परेण बन्ध) तु (भवति) ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थ–द्वि अधिक-गुणानाम् =किन्तु (पर-परंतु) दोगुण आदिसे(=आदिकरि)अधिकगुणवाले

(१) यह सूत्र परम तु भाग सम्बन्ध रखता है क्योंकि 'न जघन्यगुणानाम् गुणसाम्ये सदृशानाम्' इन सूत्रोंसे अनुवृत्तियां इस सूत्रमें ग्रहण कीगई हैं

सदृशग्रहणं किमर्थं ? गुणवैषम्ये(सदृशानामपि)बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते॥

सदृश-ग्रहणम्[1]॥किम्[2]॥अर्थम्[3]॥ १

गुण-वैषम्ये[1]॥(सदृशानाम्[2]॥अपि[3]) बंध प्रतिपत्ति-अर्थम्[4]॥सदृश-ग्रहणम्-क्रियते ८

१२४ परमाणुओंकाही बंध होताहै जब सदृश विसदृश दोनोंहीका बन्ध नहीं होता तब सूत्रमें =सदृश(शब्द)का ग्रहण किसलिये है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्य' और 'न' की अनुवृत्ति 'नजघन्यगुणानाम्' सूत्रसे आकर 'गुणसाम्येन' सूत्र होकर ऐसा अर्थ होजाता कि '(परमाणुओंमें)गुणोंकी संख्या एक दूसरोंसे बराबर होनेपर बंध नहीं होता' =(उत्तर)गुणोंकी विषमता होनेपर { सजातीय(परमाणु)निकेँ भी(=अपि) } बंध =जतलानेके लिये (सूत्रमें) सदृश(शब्द) ग्रहण किया गया है वा लायागया है॥शिष्यके प्रश्न और आचार्यके उत्तरका सारांश यह है कि शिष्यने 'न जघन्यगुणानाम्' सूत्रका अर्थ समझकर कि जघन्यगुणोंकी परमाणुओंका चाहे सदृश हों वा विसदृश हों बन्ध नहीं होता है अजघन्यगुणोंवाली परमाणुओंका बंध होताहै पश्चात् 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका बंध होता है और न असदृशोंका बन्ध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें चाहें सदृश हों चाहें विसदृश हों बंध होजाता है प्रश्न करदिया कि जब "न जघन्यगुणानाम्" सूत्रमें सदृश विसदृशका बंध नहीं है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका बन्धहै तब सूत्रभी उसी ढांचपर बनाना था अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर बन्ध नहीं होता(न सदृशोंका न असदृशोंका फिर इस सूत्रमें 'सदृशानां' लाना व्यर्थ है आचार्यके उत्तरका भावार्थ यहहैकि सदृशोंका बन्ध विषमगुणोंके होनेपरभी

(१) सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें "गुणवैषम्ये बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं" पाठ है द्वितीयावृत्तिमें 'गुणवैषम्ये सदृशानामपि बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं' पाठ है । तीन हस्तलिखित सर्वार्थ सिद्धिकी प्रतियोंका पाठभी प्रथमावृत्तिसे मिलता है ॥ यही पाठ श्लोकवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें और तीन चार प्रतियों राजवार्तिककी वार्तिक पांचका है तत्वार्थराजवार्तिकमें इस वार्तिककी वृत्ति ऐसे है कि 'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवतीत्येतस्यार्थस्य प्रतिपत्तिः" इत्यादि अर्थात् यह वृत्ति सर्वार्थ सिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मेल रखती है । 'गुणवैषम्ये बन्धो भवति इति परिज्ञानार्थं सवार्थ'सिद्धिकी प्रथमावृत्तिसे मिलता जुलता हुआ पाठ श्रुतसागरी टीकामें है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में दो स्थानोंपर देखो(पृष्ठ ११८)तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकोंसे भी अधिक हैं उसके पत्र ४९८ पर दो स्थानोंपर'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति पाठहै जो सर्वार्थ सिद्धिकी द्वितीया वृत्तिसे मिलता जुलता हुआ है ॥ 'गुणकी विषमता हो तो बन्ध होय है ऐसे जनावनेके अर्थ हैं" पं० जयचन्दजीने ऐसाअर्थ कियाहै॥'गुणकी विषमता होय सदृशोंभी बन्ध होय है' न्यायदिवाकरकी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय५ पत्र १४१में है॥ पं०पन्नालाल कृतीकी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय ५ पत्र १०० पर "गुणनिकी विषमतामें सदृशनिके बन्ध है ऐसा अर्थ प्राप्त है सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर इन सबका परिणाम यहहै कि यथार्थ में सर्वार्थ सिद्धिका पाठ था 'गुणवैषम्ये बन्धप्रतिपत्त्यर्थं' है ॥ "सदृशानां" वाक्य शेष है अर्थात् यह शब्द छिपा हुआ है इसने द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए "सदृशानामपि" को जोड़कर करदिया है क्योंकि "सदृशानां" शब्दके अनुसार करनेमें तथा अर्थ और व्याख्या समझने समझानेमें सरलता हाजाती है॥

अतो विषमगुणाना तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां च अनियमेन बन्धप्रसक्तौ विशिष्टार्थसंप्रत्ययार्थमिदमुच्यते—

॥ द्व्यधिकादिगुणाना तु ॥ ३६ ॥

नहीं होता यदि सूत्रमें 'सदृशानां' न लाते तो यह इस प्रकार छूटजाता कि बेतीसवां सूत्रसे 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्' की अनुवृत्ति तो इस सूत्रमें आजाती और अर्थ यह होता कि गुणोंकी समानता होनेपर स्निग्धरूक्षोंका बन्ध नहीं होताहै इस अनुवृत्तिसे इस बातकी प्राप्ति हुई कि गुणोंकी विषमता होनेपर असदृशोंका बन्ध होगा अब सूत्रमें 'सदृशानां' शब्द तो होताही नहीं अतएव सदृशानां का कथनहीविषमगुणोंकी अवस्थामें नहीं करसकतेथे इसी हेतुसे वृत्तिमें 'सदृशानां' के साथ 'अपि' (=भी) शब्द लाये हैं कि गुणोंकी विषमतामें सदृशोंका भी बन्ध प्रगट होजाय। अपि शब्दसे यह भास होता है कि ३३वां सूत्रकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आनेसे असदृशोंका बन्धतो विषमगुणोंके होनेपर होहीजाताहै। सूत्रमें 'सदृशानां' लानेसे विषमगुणोंमें सदृशोंके बन्धकीभी प्राप्ति होगई अत सूत्रमें सदृशानां' शब्द व्यर्थ नहीं है॥ स्मरण रहे कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका अर्थ करनेमें हमारे यहां 'साम्ये' शब्द पर बल देकर यह अर्थ किया है कि सदृशों (सजातीय परमाणुओं) का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर नहीं होता गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका भी बन्ध होता है इसलिये सूत्रमें सदृशानां' शब्दका ग्रहण है कि गुणकी विषमता होनेपर सजातियोंकाभी बंध होता है॥ श्वेताम्बर आम्नायमें 'सदृशानां' शब्दपर बलदेकर यह अर्थ कियाहै कि सदृशोंका बंध गुणोंकीसमानता होनेपर नहीं होता है विसदृशो का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर भी होजाता है जैसे चार गुणवाली स्निग्ध परमाणुका बन्ध चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ होजावेगा इसीलिये श्वेताम्बर तथा दिगम्बरआम्नायोंमें इस सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है।

अतः॥ विषमगुणानाम्॥ तुल्यजातीयनाम्॥ च॥ =इसलिये विषमगुणवाले सदृशोंका और (=च)
अतुल्यजातीयनाम्॥ अनियमेन॥ बन्ध =विसदृशों (=असदृशों) का नियमरहित वा अविशेषरूपसे बन्धका
प्रसक्तौ॥ विशिष्ट अर्थ-संप्रत्यय-अर्थम्॥ =प्रसंग आनेपर विशेष तात्पर्य वा अभिप्राय जतावनेके लिये
इदम्॥ उच्यते। =यह (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

[1]सूत्रम्—द्व्यधिकादिगुणाना तु।३६। = द्वि अधिक-आदिगुणानाम् (सदृशानाम् विसदृशानाम् परमाणूना परस्परेण बन्ध) तु (भवति) ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थ -द्वि अधिक-गुणानाम्॥ =किन्तु (पर-परंतु) दोगुण आदिस (=आदिकरि) अधिकगुणवाले

(१) यह सूत्रभी परम गुणास सम्बन्ध रखता है क्योंकि 'न जघन्यगुणानाम्' 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' इन सूत्रोंसे अनुवृत्तियां इस सूत्रमें ग्रहण कीगईहैं

सदृशग्रहणं किमर्थं ? गुणवैषम्ये(सदृशानामपि)बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते॥

सदृश-ग्रहणम्॥१॥ किम्॥२॥ अर्थम्॥३॥ ?

परमाणुओंकाही बंध होताहै जब सदृश विसदृश दोनोंहीका बन्ध नहीं होता तब सूत्रमें =सदृश(शब्द)का ग्रहण किसलिये है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्ये' और 'न' की अनुवृत्ति 'नजघन्यगुणानाम्' सूत्रसे आकर 'गुणसाम्येन' सूत्र होकर ऐसा अर्थ होजाता कि '(परमाणुओंमें)गुणोंकी संख्या एक दूसरोंसे बराबर होनेपर बंध नहीं होता'

गुण-वैषम्ये॥१॥(सदृशानाम्॥२॥अपि॥३॥) बंध प्रतिपत्ति-अर्थम्॥४॥सदृश-ग्रहणम्-क्रियते॥५॥

=(उत्तर)गुणोंकी विषमता होनेपर { सजातीय(परमाणु)निके भी(=अपि) } बंध =मतलानके लिये (सूत्रमें) सदृश(शब्द) ग्रहण किया गया है वा लायागया है॥शिष्यके प्रश्न और आचार्यके उत्तरका सारांश यह है कि शिष्यने 'न जघन्यगुणानाम्' सूत्रका अर्थ समझकर कि जघन्यगुणोंकी परमाणुओंका चाहे सदृश हों वा विसदृश हों बन्ध नहीं होता है अजघन्यगुणोंवाली परमाणुओंका बंध होताहै पश्चात् 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका बंध होता है औरन असदृशोंका बन्ध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें चाहें सदृश हों चाहें विसदृश हों बंध होजाता है प्रश्न करदिया कि जब "न जघन्यगुणानाम्" सूत्रमें सदृश विसदृशका बंध नहीं है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका बन्धहै तब सूत्रभी उसी ढांचेपर बनाना था अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर बन्ध नहीं होता(न सदृशोंका न असदृशोंका फिर इस सूत्रमें 'सदृशानां' लाना व्यर्थ है आचार्यके उत्तरका भावार्थ यहहैकि सदृशोंका बन्ध विषमगुणोंके होनेपरभी

(१) अब पंक्तिकी प्रथमावृत्तिमें "गुणवैषम्ये बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है द्वितीयावृत्तिमें "गुणवैषम्ये सदृशानामपि बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है । तीन हस्तलिखित सर्वार्थ सिद्धिकी प्रतियोंका पाठभी प्रथमावृत्तिसे मिलता है । यही पाठ श्लोकवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें और तीन चार प्रतियों राजवार्तिकमें वार्तिक पांचका है तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इस वार्तिककी वृत्ति ऐसे है कि "गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवतीत्येतस्यार्थस्य प्रतिपत्तिः" इत्यादि अर्थात् यह वृत्ति सर्वार्थ सिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मेल रखती है । गुणवैषम्ये बन्धो भवति इति परिज्ञानार्थं' सर्वार्थ सिद्धिकी प्रथमावृत्तिसे मिलता जुलता हुआ पाठ श्रुतसागरी टीकामें है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यमें दो स्थानोंपर देखो(पृष्ठ १३८)तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकोंसे भी अधिक हैं उसके पत्र ४६४ पर दो स्थानोंपर'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति' पाठहै जो सर्वार्थ सिद्धिकी द्वितीया वृत्तिसे मिलता जुलता हुआ है । "गुणका विषमता हो तो बन्ध होय है ऐसी जनावनेके अर्थ है" पं० जयचन्द्रजीने ऐसाअर्थ कियाहै। 'गुणकी विषमता हात समेभी बन्ध होय है' न्यायदिवाकरजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय५ पत्र १५२में है। पं०पन्नालाल सूनीकी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय ५ पत्र १०० पर "गुणनिकी विषमतामें सदृशनिके बन्ध है" ऐसा अर्थ प्राप्त है सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर इन सबका परिणाम यहहै कि यथार्थ में सर्वार्थसिद्धि का पाठ ता 'गुणवैषम्ये बन्धप्रतिपत्त्यर्थं ' है । "सदृशानां" वाक्य शेष है अर्थात् यह शब्द छिपा हुआ है हमने द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए "सदृशानामपि' को कोष्ठकमें करदिया है क्योंकि "सदृशानां" सहित अनुवाद करनेमें तथा अर्थ और व्याख्या समझने समझानेमें सरलता होजाती है।

अतो विषमगुणाना तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां च अनियमेन वन्धप्रसक्तौ विशिष्टार्थसंप्रत्ययार्थमिदमुच्यते—

॥ द्व्यधिकादिगुणाना तु॥ ३६ ॥

नहीं होता यदि सूत्रमें 'सदृशानां' न लाते तो यह इस प्रकार कहाजाता कि तेतीसवां सूत्रसे 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्' की अनुवृत्ति तो इस सूत्रमें आजाती और अर्थ यह होता कि गुणोंकी समानता होनेपर स्निग्धरूक्षोंका बन्ध नहीं होता है इस अनुवृत्तिसे इस बातकी प्राप्ति हुई कि गुणोंकी विषमता होनेपर असदृशोंका बन्ध होगा अब सूत्रमें 'सदृशानां' शब्द तो होताही नहीं अतएव सदृशानां का कथनही विषमगुणोंकी अवस्थामें नहीं करसकते इसी हेतुसे वृत्तिमें 'सदृशानां' के साथ 'अपि' (=भी) शब्द लाये हैं कि गुणोंकी विषमतामें सदृशोंका भी बन्ध प्रगट होजाय ; अपि शब्दसे यह भास होता है कि ३३वां सूत्रकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आनेसे असदृशोंका बन्धतो विषमगुणोंके होनेपर होहीजाता है। सूत्रमें 'सदृशानां' लानेसे विषमगुणोंमें सदृशोंके बन्धकीभी प्राप्ति होगई अतः सूत्रमें सदृशानां' शब्द व्यर्थ नहीं है। स्मरण रहे कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका अर्थ करनेमें हमारे यहां 'साम्ये' शब्द पर बल देकर यह अर्थ किया है कि सदृशों(सजातीय परमाणुओं)का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर नहीं होता गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका भी बन्ध होता है इसलिये सूत्रमें सदृशानां' शब्दका ग्रहण है कि गुणकी विषमता होनेपर सजातियोंकाभी बंध होता है। श्वेताम्बर आम्नायमें 'सदृशानां' शब्दपर बलदेकर यह अर्थ किया है कि सदृशोंका बंध गुणोंकीसमानता होनेपर नहीं होता है विसदृशों का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर भी होजाता है जैसे चार गुणवाली स्निग्ध परमाणुका बन्ध चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ होजावेगा इसीलिये श्वेताम्बर तथा दिगम्बरआम्नायोंमें इस सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है।

अतः १ विषमगुणानाम् २ तुल्यजातीयनाम् ३ च ४	=इसलिये विषमगुणवाले सदृशोंका और (=च)
अतुल्यजातीयनाम् ५ अनियमेन ६ बन्ध	=विसदृशों(=असदृशों)का नियमरहित या अविशेषरूपसे बन्धका
प्रसक्तौ ७ विशिष्ट अर्थ-संप्रत्यय अर्थम् ८	=प्रसंग आनेपर विशेष तात्पर्य या अभिप्राय जतावनेके लिये
इदम् ९ उच्यते ।	=यह(अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

[1]सूत्रम्—द्व्यधिकादिगुणाना तु।३६। = द्वि अधिक-आदिगुणानाम् (सदृशानाम् विसदृशानाम् परमाणूना परस्परेण वन्ध) तु (भवति) ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थ -द्वि अधिक-गुणानाम् १	=किन्तु (पर-परंतु) दोगुण आदिसे(=आदिकरि)अधिकगुणवाले

(१) यह सूत्रभी परम सूत्रसे सम्बन्ध रखता है क्योंकि 'न जघन्यगुणानाम्' 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' इन सूत्रोंसे अनुवृत्तियां इस सूत्रमें ग्रहण कीगई हैं

सदृशग्रहणं किमर्थं ? गुणवैषम्ये(सदृशानामपि)बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते॥

सदृश-ग्रहणम्॥किम्॥अर्थम्॥ ?

गुण-वैषम्ये॥(सदृशानाम्॥अपि॥) बंध-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥सदृश-ग्रहणम्-क्रियते।

परमाणुओंकाही बंध होताहै जब सदृश विसदृश दोनोंहीका बन्ध नहीं होता तब सूत्रमें =सदृश(शब्द)का ग्रहण किसलिये है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्ये' और 'न'की अनुवृत्ति'नजघन्यगुणानाम्'सूत्रसे आकर'गुणसाम्येन' सूत्र होकर ऐसा अर्थ होजाता कि'(परमाणुओंमें)गुणोंकी संख्या एक दूसरोंसे बराबर होनेपर बंध नहीं होता' =(उत्तर)गुणोंकी विषमता होनेपर { सजातीय(परमाणु)निके भी(=अपि) } बंध =जतलानेके लिये (सूत्रमें) सदृश(शब्द) ग्रहण किया गया है वा लायागया है॥शिष्यके प्रश्न और आचार्यके उत्तरका सारांश यह है कि शिष्यने 'न जघन्यगुणानाम्'सूत्रका अर्थ समझकर कि जघन्यगुणोंकी परमाणुओंका चाहे सदृश हों वा विसदृश हों बन्ध नहीं होता है अजघन्यगुणोंवाली परमाणुओंका बंध होताहै पश्चात् 'गुणसाम्ये सदृशानां'सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका बंध होता है और न असदृशोंका बन्ध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें चाहे सदृश हों चाहे विसदृश हों बंध होजाता है प्रश्न करदिया कि जब "न जघन्यगुणानाम्"सूत्रमें सदृश विसदृशका बंध नहीं है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका बन्धहै तब सूत्रभी उसी ढांचेपर बनाना था अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर बन्ध नहीं होता(न सदृशोंका न असदृशोंका फिर इस सूत्रमें'सदृशानां'लाना व्यर्थ है आचार्यके उत्तरका भावार्थ यहहैकि सदृशोंका बन्ध विषमगुणोंके होनेपरभी

(१) सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें "गुणवैषम्ये बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं" पाठ है द्वितीयावृत्तिमें गुणवैषम्ये सदृशानामपि बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है । तीन हस्तलिखित सर्वार्थ सिद्धिकीप्रतियोंका पाठभी प्रथमावृत्तिसे मिलता है । यही पाठ श्लोकवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें और तीन चार प्रतियों राजवार्तिककी वार्तिक पोषता है तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इस वार्तिककी वृत्ति ऐसे है कि "गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवतीत्येतस्यार्थस्य प्रतिपत्त्यर्थ" स्पष्ट है अर्थात् यह वृत्ति सर्वार्थ सिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मेल रखती है । 'गुणवैषम्ये बन्धो भवति इति परिज्ञानार्थं सदृश'सिद्धिकी प्रथमावृत्तिसे मिलता बदला हुआ पाठ श्रुतसागरी टीकामें है । श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थभाष्यमें दो स्थानोंपर देखो(पृष्ठ ११८)तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीका जिसमें बाईस हजार श्लोकोंसे भी अधिक हैं उसके पत्र ४४३ पर दो स्थानोंपर'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति"पाठहै जो सर्वार्थ'सिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मिलता जुलता हुआ है । 'गुणका विषमता हो तो बन्ध होय है ऐसे जनावनेके अर्थ है" पं० जयचन्द्रजीने ऐसा अर्थ कियाहै। 'गुणकी विषमता होते समभी बन्ध होय है स्याद्वादवारिधि अनुवादित राजवार्तिक अध्याय५ पत्र १५४में है। पं०पन्नालाल दूनीजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय ५ पत्र १०० पर "गुणनिकी विषमतामें सदृशनिके बन्ध है ऐसा अर्थ प्राप्त है सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर इन सबका परिणाम यहहै कि यथार्थ में सर्वार्थ सिद्धि का पाठ तो गुणवैषम्ये बन्धप्रतिपत्त्यर्थं है । 'सदृशानां" शब्द शेष है अर्थात् वह शब्द छिपा हुआ है हमने द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए सदृशानामपि को कोष्ठकमें करदिया है क्योंकि "सदृशानां"सहित अनुवाद करनेमें तथा अर्थ और व्याख्या समझने समझानेमें सरलता होजाती है।

सदृशानाम्। विसदृशानाम्। परमाणूनाम्। परस्परेण बन्धः भवति। — सजातीय अथवा विजातीय परमाणुओंका — आपसमें बन्ध होता है ॥ द्वि अधिक आदिगुण वाक्यमें आदि शब्द प्रकार वा जातिवाची है। दोगुणकरि अधिक सो द्व्यधिकगुण है अर्थात् बंध होनेयोग्य जो परमाणु दोगुण करि अधिकहै सो द्व्यधिकगुण(परमाणु) है, जघन्यगुणको छोड़कर बंध होने योग्य दो अधिक गुणवाली परमाणु है। अतः द्व्यधिक गुण परमाणु का अभिप्राय चार गुण संयुक्त परमाणु हुई ॥ "द्व्यधिकादिगुणानां तु" अर्थात् द्व्यधिक प्रकारसे बन्ध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुसे जिस में चारगुण हैं सो दो अधिक गुणवाली परमाणु है, आदि शब्दके हेतुसे तीन गुण वाली परमाणुसे पांच गुण वाली परमाणु दो गुण अधिक है, चार गुण वाली से छह गुण वाली दो गुण अधिक है, पांच गुण वाली से सात गुण वाली दो गुण अधिक है, छह गुण वालीसे आठ गुण वाली दोगुण अधिक है इत्यादि इसी रीति से (आदि शब्द में) पूर्वोक्त से उपरोक्त दो गुणअधिकवाली क्रमसे सर्व (संख्यात असंख्यात अनन्तगुणवाली परमाणुयें गर्भित हैं और इन्हीं प्रकार की परमाणुओंके बंध होता है ॥

(क) सजातीय परमाणुओं के आपस में बंध के उदाहरण — दो गुणवाली स्निग्ध परमाणु चार गुणवाली स्निग्ध परमाणु के साथ बंधको प्राप्त होती है तीन गुणवाली स्निग्ध पांच गुणवाली स्निग्ध के साथ, चार गुणवाली स्निग्ध छह गुणवाली स्निग्ध के साथ पांच गुणवाली स्निग्ध सात गुणवाली के साथ छह गुणवाली स्निग्ध आठ गुणवाली स्निग्ध के साथ बंधको प्राप्त होती हैं इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश, आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुयें, असंख्यात गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें और अनंत गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ दश ग्यारह बारह आदि, संख्यात गुणवाली

अब श्वेताम्बर आम्नायके आचार्योंने "गुणसाम्ये सदृशानां" सूत्रका यह अर्थ किया है कि गुणोंकी समान संख्या होनेपर सदृशोंका बन्ध नहीं होता परन्तु विसदृशोंका बन्ध गुणोंकी संख्याके तुल्य होनेपर भी होजावेगा तब यह परिणाम निकला कि सदृश परमाणुओंके ही बन्धके लिये एकसे दूसरेमें दोगुणोंके अधिक होनेकी आवश्यकता हुई क्योंकि उस आम्नायके सिद्धान्तके अनुकूल विसदृश परमाणुओंके आपसमें बन्ध होनेके लिये एकसे दूसरेमें अधिकगुणोंके होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु हमारे यहां 'गुणसाम्ये सदृशानां'में 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्' कीभी अनुवृत्तिग्रहणकी है इसलिये ऐसा अर्थ होता है कि परमाणुओंमें गुणोंकी संख्या यदि बराबर हो तो चाहे वे परमाणु सजातीय हो अथवा विजातीय हो बन्ध नहीं होता है और पश्चात् 'सदृशानां विसदृशानां' दोनोंकी अनुवृत्ति द्वि अधिकादि गुणानांतु सूत्रमें ग्रहण करके ऐसा तात्पर्य निकाला है कि द्विगुण आदिसे अधिक गुण वाली सदृश परमाणुओंका परस्पर अथवा विसदृश परमाणुओं का आपसमें बन्ध होता है अन्य प्रकारसे नहीं जघन्यगुणवाली परमाणुओंका दोनोंही सम्प्रदायवालोंने कथन वर्जित रक्खा है ॥

गई है। अर्थात् सदृशानां विसदृशानां इसी नया सूत्रमें 'परमाणूनां' ओ तीसवां सूत्रसे बन्ध तेतीसवां सूत्रसे अनुवर्तन है 'परस्परेण और भवति शब्दोंका अध्याहार इस सूत्रमें किया गया है। तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें इस सूत्रकी प्रथमवार्तिककी वृत्तिमें कितनही उदाहरण दिये हैं व समस्त परमाणुओंसे सम्बन्ध रखते हैं राज २४१। यह बात प्रगट है कि बन्ध होनेके पश्चात् स्कन्ध हो जावेगा जैसाकि प्रथमवार्तिककी वृत्तिके अन्तके वाक्यसे प्रगट है अर्थात् एतदुक्तं विविधा बन्धे सति... प्रदेशावसानस्कन्धोत्पत्तिर्वेदितव्या इसप्रकार कथित विधिद्वारा बन्ध होनेपर अणुओंके द्वि अणुआदि अनन्तानन्त प्रदेश पर्यंत स्कन्धोंकी उत्पत्ति जानना चाहिये समर्थनमें देखो इसकापृ० २६ जिसमें श्वेता० आम्नायके संबन्धमें कुछ उल्लेख है

(२) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एक है तो भी अर्थमें यह भेद है कि उन्होंने केवल सदृशानाम् की अनुवृत्ति गतसूत्रसे ... सूत्रसे लेकर इस प्रकार सूत्र किया है द्विअधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवतीति॥ भाष्यम्— द्वाभ्यां गुणविशेषाभ्यामभ्यस्मात् ... परमाणुत ... गुणानां द्विअधिकादिगुणानां यत्र ... गुणवत्ता गुणा परमाणव इत्यर्थ तथा द्वि अधिकादि गुणानामणूनां सदृशानां बन्धो भवति। सदृशानामितिस्नेहसामान्यरूक्षसामान्याभिप्र ... सादृश्य व्याख्येय। आसिद्धसेनसरि विरचित भाष्यानुसारिणी वृत्ती वा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका पर्व ४१६-श्वेताम्बर आम्नायमें यह ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्रपर महत्वका है इसमें बाईस सहस्र श्लोक हैं व्याख्या अधिक कुछ है।

द्वि अधिक आदि गुणानां तु सदृशानाम् बन्ध भवति इति — परन्तु द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाले सदृश(परमाणु)ओंका बन्ध होता है ऐसा है

भाष्यम् — अन्यस्मात् द्वाभ्याम् गुणविशेषाभ्याम् अधिक. — व्याख्या(भाष्य) है कि अन्य(परमाणु अ(—अन्यस्मात्) दो विशेषगुणकरि अधिक अर्थात् स्निग्धहोतो दोगुण अधिकस्निग्धकरि और रूक्षहोतो दोगुण अधिकरूक्षकरि

परमाणु ... आदिः येषाम् गुणानाम् ते द्वि अधि आदिगुणाः — जो परमाणु है सो द्वयादिगुण(—आदिगुणानां)जिनके हैं वे(—ते द्वि अधिकादि गुणाः)

गुणशब्दः अत्र गुणिवचन— — यहां(—अत्र अर्थात् इससूत्रमें) गुण शब्द है सो गुणीका वाचक(—गुणिन-वचन)है।

गुणवन्त गुणाः परमाणव इत्यर्थः — गुण सहित हैं वे गुणा परमाणु हैं ऐसा तात्पर्य है अर्थात् सूत्रमें 'गुणानां' शब्द है सो जिनके गुण विद्यमान है उससे प्रयोजन है ऐसी गुणवाले परमाणु हैं

तेषाम् द्वि अधिकआदिगुणानाम् अणूनाम् सदृशानाम् बन्धो भवति — तिन दोकर अधिक आदिसे सदृश परमाणुओंका बन्ध होता है

सदृशानां इति स्नेहसामान्य रूक्षसामान्य च आश्रित्य — सदृशानां ऐसा वाक्य सामान्य स्निग्धका और सामान्यरूक्षको आश्रयकरि

सदृशग्रहणम् ... भाष्य समाप्य० पृ० १३६से लिया है — (सामान्य स्निग्ध और सामान्यरूक्षकी विवक्षासे)समानता वर्णित है

भाष्यम्—द्वि अधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवति — द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाले सदृश पदार्थोंका भी बन्ध होता है।

विशेषव्याख्या— अब इस विषयको कहते हैं कि रूक्षका रूक्षके साथ और स्निग्धका स्निग्धके साथ भी बन्ध होता है किन्तु रूक्ष तथा स्निग्धगुणों की इस प्रकारसे विषमता होनी चाहियेकि

तथा स्निग्धस्य द्विगुणाद्यधिक स्निग्धेन(द्विगुण आदिअधिक)। — जैसे स्निग्धका अर्थात् सामान्य स्निग्धका द्विगुणआदि अधिक स्निग्धके साथ बंध होता है

द्विगुणाद्यधिक स्निग्धस्य स्निग्धेन द्विगुण आदि अधिक)। — (तथा)द्विगुण आदि अधिक स्निग्धका सामान्यस्निग्धके साथ बन्ध होता है

रूक्षस्यापि द्विगुणाद्यधिकरूक्षेण(द्वि-गुण आदि अधिक) — (ऐसेही सामान्य)रूक्षका द्विगुण आदि अधिक रूक्षके साथ बन्ध होता है

द्विगुणाद्यधिकरूक्षस्य रूक्षेण(—द्वि गुण आदि-अधिक) — तथा द्विगुण आदि अधिक रूक्षका सामान्य रूक्षके साथ भी बन्ध होता है (तात्पर्य यह कि सामान्य स्निग्ध पदार्थका उससे द्विगुण अधिक स्निग्धके साथ बन्ध होता है और सामान्यरूक्ष पदार्थका उससे द्विगुण अधिक रूक्षके साथ बन्ध होता है परन्तु यह वैषम्य द्विगुण आदिसे अधिक होना चाहिये)

एकादिगुणाधिकयोस्तु सदृशयोर्बन्धो न भवति — और एकादिगुण अधिक सदृशोंका बन्ध नहीं होता है॥ देखो समाप्य०पृ० १३६॥

सदृशानाम् विसदृशानाम् परमाणूनाम् परस्परेण बन्धः भवति ।

—सजातीय अथवा विजातीय परमाणुओंका —आपसमें बन्ध होता है ॥ द्वि अधिक आदिगुण वाक्यमें आदि शब्द प्रकार वा जातिवाची है । दोगुणाकरि अधिक सो द्व्यधिकगुण है अर्थात् बंध होनेयोग्य जो परमाणु दोगुण करि अधिक है सो द्व्यधिकगुण(परमाणु) है, जघन्यगुणको छोड़कर बंध होने योग्य दो अधिक गुणवाली परमाणु है । अतः द्व्यधिक गुण परमाणु का अभिप्राय चार गुण संयुक्त परमाणु हुई ॥ "द्व्यधिकादिबन्धोभवति" अर्थात् द्व्यधिक प्रकारसे बन्ध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुसे जिस में चारगुण हैं सो दो अधिक गुणवाली परमाणु है, आदि शब्दके हेतुसे तीन गुण वाली परमाणुसे पांच गुण वाली परमाणु दो गुण अधिक है, चार गुण वाली से छह गुण वाली दो गुण अधिक है, पांच गुण वाली से सात गुण वाली दो गुण अधिक है, छह गुण वालीसे आठ गुण वाली दो गुण अधिक है इत्यादि इसी रीति से (आदि शब्द में) पूर्वोक्त से उपरोक्त दो गुणअधिकवाली क्रमसे सर्व (संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली परमाणुयें गर्भित हैं और इसी प्रकार की परमाणुओंके बंध होता है ॥

(क) सजातीय परमाणुओं के आपस में बंध के उदाहरण:—दो गुणवाली स्निग्ध परमाणु चार गुणवाली स्निग्ध परमाणु के साथ बंधको प्राप्त होती है तीन गुणवाली स्निग्ध पांच गुणवाली स्निग्ध के साथ, चार गुणवाली स्निग्ध छह गुणवाली स्निग्ध के साथ पांच गुणवाली स्निग्ध सात गुणवाली के साथ छह गुणवाली स्निग्ध आठ गुणवाली स्निग्ध के साथ बंधको प्राप्त होती हैं इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश, आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुयें, असंख्यात गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें और अनंत गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ दश ग्यारह बारह आदि, संख्यात गुणवाली

जब श्वेताम्बर आम्नायके आचार्योंने "गुणसाम्ये सदृशानां" सूत्रका यह अर्थ किया है कि गुणोंकी समान अवस्था होनेपर सदृशोंका बन्ध नहीं होता परन्तु विसदृशोंका बन्ध गुणोंकी समानताके तुल्य होनेपर भी होजावेगा तब यह परिणाम निकला कि सदृश परमाणुओंके ही बन्धके लिये एकसे दूसरेमें दोगुणोंके अधिक होनेकी आवश्यकता हुई क्योंकि उस आम्नायके सिद्धान्तके अनुकूल विसदृश परमाणुओंके आपसमें बन्ध होनेके लिये एकसे दूसरेमें अधिकगुणोंके होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु हमारे यहां गुणसाम्ये सदृशानां में स्निग्धरूक्षत्वात् की अनुवृत्ति ग्रहण की है इसलिये ऐसा अर्थ होता है कि परमाणुओंमें गुणोंकी संख्या यदि बराबर हो तो चाहे वे परमाणु सजातीय हों अथवा विजातीय हों बन्ध नहीं होता है और पश्चात् 'सदृशानां विसदृशानां' दोनोंकी अनुवृत्ति द्व्यधिकादि गुणानां तु' सूत्रमें ग्रहण करके ऐसा तात्पर्य निकाला है कि द्विगुण आदिसे अधिक गुण वाली सदृश परमाणुओंका परस्पर अथवा विसदृश परमाणुओं का आपसमें बन्ध होता है अन्य प्रकारसे नहीं जघन्यगुणवाली परमाणुओंका दोनोंही सम्प्रदायवालोंने बन्धन वर्जित रक्खा है ॥

स्निग्ध परमाणुओंके साथ, असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ पूर्वोक्त से उपरोक्त दो दो गुण अधिक, अधिक स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥

( ) दो गुणवाली रूक्ष परमाणु चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ, तीन गुणवाली रूक्ष पांच गुणवाली रूक्षके साथ, चार गुणवाली रूक्ष छह गुण वाली रूक्ष के साथ पांच गुणवाली, रूक्ष सात गुणवाली रूक्षके साथ, छह गुण वाली रूक्ष आठ गुणवाली रूक्षके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यात गुणवाली रूक्ष परमाणुयें असंख्यात गुण वाली रूक्ष परमाणुये और अनंत गुण वाली रूक्ष परमाणुये यथासंख्य नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ, असंख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ और अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणु के साथ पूर्वोक्तसे उपरोक्त दो दो गुण अधिक अधिक रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥

(ग) विजातीय परमाणुओंके परस्पर बंधके दृष्टान्त—दो रूक्ष गुणवाली परमाणुओंका बंध चार स्निग्धवाली परमाणुओंके साथ होता है। तीन रूक्ष गुणवालीका पांच स्निग्धगुणवालीके साथ, चार रूक्षगुणवालीका छह स्निग्ध गुणवालीकेसाथ, पांच रूक्ष गुणवालीका सात स्निग्धवालीके साथ, छह रूक्षगुणवालीका आठ स्निग्धगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इस प्रकारही सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली रूक्ष परमाणुयें, असंख्यात गुणयुक्त रूक्ष परमाणुयें और अनंत गुणसयुक्त रूक्ष परमाणुयें क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं यदि पूर्वोक्त रूक्षगुणवाली परमाणुओंसे उपरोक्त स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंमें दो दो गुण अधिक अधिक स्निग्धताके हों तो ॥

() दो स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका बन्ध चार रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ होता है; तीन स्निग्धगुणवालीका पांच रूक्षगुणवालीके साथ, चारस्निग्धगुणवालीका छह रूक्षगुणवालीके साथ, पांच स्निग्धगुणवालीका सात रूक्षगुणवालीके साथ, छहस्निग्धगुणवालीका आठरूक्षगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली स्निग्धपरमाणुयें असंख्यातगुणयुक्त स्निग्धपरमाणुयें, और अनंतगुणवाली स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह, आदि संख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ असंख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ और अनन्तगुणवाली रूक्ष परमाणुओंके साथ बन्ध को प्राप्ति होती हैं यदि पूर्वोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंसे उपरोक्त रूक्षगुणवाली परमाणुओंमें दो अधिक रूक्षताके हों तो ॥

द्वाभ्यां गुणाभ्यामधिको द्व्यधिकः । क पुनरसौ ? चतुर्गुणः ॥ आदिशब्द प्रकारार्थ । क पुनरसौ प्रकार ? द्व्यधिकता । तेन पंचगुणादीनां सम्प्रत्ययो न भवति । तेन द्व्यधिकादिगुणाना तुल्यजातीयाना मतुल्यजातीयाना च बन्ध उक्तो भवति । नेतरेषाम् ॥ तद्यथा-द्विगुणस्निग्धस्य परमाणोरेकगुणस्निग्धेन, द्विगुणस्निग्धेन, त्रिगुणस्निग्धेन वा नास्ति बन्धः ॥ चतुर्गुणस्निग्धेन पुनरस्तिबन्ध

शब्दानुवादः—द्वाभ्याम्।गुणाभ्याम्।अधिकः।द्वि अधिकः।=(एक परमाणु दूसरेसे) दो गुणकरि अधिक परमाणु सो द्व्यधिक (गुण) है

कः।पुनः।असौ। ? चतुर्गुणः। ॥ =फिर यह(=असौ) क्या है। चारगुणवाली है अर्थात् जघन्यगुणवाली परमाणुओं को छोड़कर एकपरमाणुसे दोगुण जिस परमाणुमें अधिक हों सो चतुर्गुण वाली है।

आदि-शब्दः।प्रकार अर्थ ।। =(इस सूत्रमें) आदि शब्द प्रकार अथवा जातिके लिये है अर्थात् द्व्यधिक प्रकार से बंध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुसे जिसमें चारगुण हैं सो दो अधिकगुण वाला परमाणु है 'आदि'शब्दके निमित्त से तीनगुणवाली परमाणुसे पांचगुणवाली परमाणु दोगुण अधिकहै चार गुणवालीसे छहगुणवाली दोगुण अधिक है पांचगुणवालीसे सातगुणवाली दोगुण अधिक है, छह गुणवालीसे आठ गुणवाली दोगुण अधिक है इत्यादि इसी रीतिसे 'आदि'शब्दमें पूर्वोक्त से उपरोक्त दोगुण अधिक अधिक वाली क्रमसे सर्व संख्यात-असंख्यात-अनन्तगुणवाली परमाणुयें गर्भित हैं और इन्ही प्रकारकी परमाणुओंके बंध होतहैं

कः।पुनः।असौ।प्रकार ?।? द्वि अधिकता।। =(प्रश्न)बहुरि यह प्रकार क्या है ? (एकपरमाणुमें दूसरीसे)दो(गुण)की अधिकता है

तेन।पञ्चगुण-आदीनाम्।संप्रत्ययः।न।भवति। =तिस(द्व्यधिक)से पांच गुणादिकोंका जानना अथवा ज्ञान नहीं होता है

तेन।द्वि अधिक आदि-गुणानाम्।तुल्य जातीयानाम्।च। =तिस(द्व्यधिक)से दो अधिकादिगुणवाली सदृशोंका और(=च)

अतुल्य जातीयानाम्।बन्धः।उक्तः।भवति। । न।इतरेषाम्। =विसदृशोंका बन्ध कहागया(=उक्त)है(=भवति)अन्यपरमाणुके(बंध) नहीं है

तद्यथा।द्विगुण-स्निग्धस्य।परमाणोः।एकगुण =जैसे दोगुणवाली स्निग्धपरमाणुओंके एकगुण

स्निग्धेन।द्विगुण-स्निग्धेन।वा त्रिगुणस्निग्धेन। स्निग्ध(परमाणु)करि दोगुण स्निग्ध(परमाणु)करि वा तीनगुण स्निग्धकरि

न।अस्ति।बन्धः। । चतुर्गुण-स्निग्धेन।पुनः।अस्तिबंधः।=बन्ध नहीं है। बहुरि चारगुण स्निग्ध (परमाणु)करि बन्ध है।

स्निग्ध परमाणुओंके साथ, असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ पूर्वोक्त से उपरोक्त दो दो गुण अधिक, अधिक स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥

( ) दो गुणवाली रूक्ष परमाणु चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ, तीन गुणवाली रूक्ष पांच गुणवाली रूक्षके साथ, चार गुणवाली रूक्ष छह गुण वाली रूक्ष के साथ पांच गुणवाली, रूक्ष सात गुणवाली रूक्षके साथ, छह गुण वाली रूक्ष आठ गुणवाली रूक्षके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यात गुणवाली रूक्ष परमाणुयें असंख्यात गुण वाली रूक्ष परमाणुयें और अनंत गुण वाली रूक्ष परमाणुयें यथासंख्य नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ, असंख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ और अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणु के साथ पूर्वोक्त से उपरोक्त दो दो गुण अधिक अधिक रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥

(ग) विजातीय परमाणुओंके परस्पर बंधके दृष्टान्त—दो रूक्ष गुणवाली परमाणुओंका बंध चार स्निग्धवाली परमाणुओंके साथ होता है। तीन रूक्ष गुणवालीका पांच स्निग्धगुणवालीके साथ, चार रूक्षगुणवालीका छह स्निग्ध गुणवालीके साथ, पांच रूक्ष गुणवालीका सात स्निग्धवालीके साथ, छह रूक्षगुणवालीका आठ स्निग्धगुणवालोंके साथ बंध होता है ॥ इस प्रकारही सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली रूक्ष परमाणुयें, असंख्यात गुणयुक्त रूक्ष परमाणुयें और अनंत गुणसंयुक्त रूक्ष परमाणुयें क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं यदि पूर्वोक्त रूक्षगुणवाली परमाणुओंसे उपरोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंमें दो दो गुण अधिक अधिक स्निग्धताके हों तो ॥

() दो स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका बन्ध चार रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ होता है; तीन स्निग्धगुणवालीका पांच रूक्षगुणवालीके साथ, चार स्निग्धगुणवालीका छह रूक्षगुणवालीके साथ, पांच स्निग्धगुणवालीका सात रूक्षगुणवालीके साथ, छह स्निग्धगुणवालीका आठ रूक्षगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली स्निग्धपरमाणुयें असंख्यातगुणयुक्त स्निग्धपरमाणुयें, और अनंतगुणवाली स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह, आदि संख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ असंख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ और अनन्तगुणवाली रूक्ष-परमाणुओंके साथ बन्ध को प्राप्त होती हैं यदि पूर्वोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंसे उपरोक्त रूक्षगुणवाली परमाणुओंमें दो दो गुण अधिक रूक्षताके हों तो ॥

द्विगुणरूक्षस्य पंचगुणरूक्षादिभिस्तत्रैर्नास्ति बन्ध ॥ एवं त्रिगुणरूक्षादीनामपि द्विगुणाधिकैर्बन्धो योज्य ॥ एवं भिन्नजातीयेष्वपि योज्य ॥उक्तंच–

द्विगुण-रूक्षस्य पंचगुणरूक्षादिभिः तत्रैः = दोगुणरूक्ष(परमाणु)का पांचगुणरूक्षादिकरि अगली तिनकरि

न अस्ति बन्ध एवम् त्रिगुणरूक्ष-आदीनाम् अपि = बन्ध नहीं है। इस प्रकार तीनगुण(वाले)रूक्षादिकोंका भी(=अपि)

(अर्थात् उस तीनगुण-चारगुण-पांचगुण-छहगुण आदि संख्यात, असंख्यात, और अनन्तगुणवाली रूक्षपरमाणुका यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

द्विगुण अधिकैः = दोगुण अधिककरि (अर्थात् पांचगुण रूक्षकरि, छहगुण रूक्षकरि, सातगुण रूक्षकरि, आठ आदिगुण रूक्षकरि ऐसे दोगुण अधिक संख्यातरूक्षगुणकरि, तथा दोगुणअधिक असंख्यातरूक्षगुणकरि, और दोगुण अधिक अनंतरूक्षगुणवाली परमाणुकरि)

बन्धः योज्यः । एवम् भिन्नजातीयेषु अपि = बन्ध योग्य है। इस प्रकार भिन्नजातीय(परमाणुओं)में भी(अर्थात् स्निग्धपरमाणुओंका रूक्षोंकरि और रूक्षपरमाणुओंका स्निग्धोंकरि भी बन्ध)

योज्यः ॥ = योग्य है (=योज्य) भावार्थ द्विगुण स्निग्धके एक दो तीन रूक्षगुण संयुक्त परमाणुओंकरि बन्ध नहीं है। चतुर्गुणी रूक्षकरि बंध है इसी प्रकार तीनगुणस्निग्ध परमाणुओंके पांचगुण रूक्षपरमाणुकरि बंध है। शेष पूर्वोत्तर गुणयुक्त परमाणुओंकरि बंध नहीं है। इस प्रकार संख्यात, असंख्यात, अनन्तगुणके धारक जे स्निग्ध रूक्षपरमाणु तिनके सजातीयमें अथवा विजातीयमें दोगुण अधिक संयुक्त परमाणुकरिही बन्ध है अन्य प्रकार नहीं है। एक परमाणुके बन्धके लिये दूसरीमें दोगुण अधिक होना ही चाहिये ॥

उक्तम् च = कहा भी है कि

णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिएण। लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिएण। णिद्धस्स लुक्खेण उवेदि(हवेदि)बन्धो। जहण्णवज्जो विसमे समे वा ॥गोम्मटसार तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक तथा श्रुतसागरी टीकामें 'दुराधिएण'के स्थानमें 'दुराहिएण' है ॥ गोम्मटसारमें 'उवेदि हवेदि'=(उपैति)के स्थानमें 'हवेज्ज' भवेत् है और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें 'उपए'=है ॥ श्लोकवार्तिक,गोम्मटसार, श्रुतसागरी टीकामें 'वज्ज' है सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें (दोनों आवृत्तियोंमें) राजवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें 'वज्जो' शब्द आते हैं

यह आर्याछन्द अत्यन्त प्राचीन और महत्वका है क्योंकि हमारे यहां के लगभग सब संस्कृत भाष्योंमें जैसे सर्वार्थसिद्धिवृत्ति तत्त्वार्थ राजवार्तिक

तस्यैव पुनर्द्विगुणस्निग्धस्य पंचगुणस्निग्धेन षट्सप्ताष्टसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन वा नास्ति । एवं त्रिगुणस्निग्धस्य पंचगुणस्निग्धेन बन्धोऽस्ति ॥ शेषैः पूर्वोत्तरैर्न भवति ॥ चतुर्गुणस्निग्धस्य षड्गुणस्निग्धेनास्ति बन्धः । शेषैः पूर्वोत्तरैर्नास्ति । एवं शेषेष्वपि योज्यः ॥ तथा—द्विगुणरूक्षस्य एकद्वित्रिगुणरूक्षैर्नास्ति बन्धः । चतुर्गुणरूक्षेणत्वस्ति बन्धः ॥ तस्यैव

तस्य॥ एव ० पुनः ० द्वि-गुण-स्निग्धस्य॥ पंचगुणस्निग्धेन॥ षट्-सप्त-अष्ट-संख्येय असंख्येय अनन्तगुण-स्निग्धेन॥ वा नास्ति । एवम् ० त्रिगुणस्निग्धस्य॥ पंचगुणस्निग्धेन॥ बन्धः॥ अस्ति । शेषैः॥ पूर्वोत्तरैः॥ न ० भवति ॥ — =तथा(=पुनः)तिसही दोगुण स्निग्ध(परमाणु)का पंचगुण स्निग्धकरि =छह,सात,आठ (आदि ऐसे)संख्यात,असंख्यात वा अनन्तस्निग्ध(परमाणु) करि =बन्ध नहीं है । ऐसे तीनगुणस्निग्ध(परमाणु)के पांचगुणवाला =स्निग्धकरि बन्ध है।(पांचसे)प्रथम बताई हुई(संख्या एक-दो-तीन चार स्निग्ध)निकरि =(तीनस्निग्ध गुणवाली परमाणुका बन्ध) तथा अग्रिम (संख्यातस्निग्धगुणवाली,असंख्यात स्निग्धगुणवाली अनंतस्निग्धगुणवाली,निकरि =(तीनस्निग्धवाली परमाणुओंका बन्ध) नहीं होता है अर्थात् तीनगुणवाली स्निग्धपरमाणुका बन्ध एक-दो-तीन-चार स्निग्ध परमाणुओंके साथ जो पांचस्निग्ध गुणवाली परमाणुसे संख्यामें पूर्व है तथा छ-सात-आठ-नौ आदि संख्यात असंख्यात अनंत पर्यन्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंके साथ जो पांचस्निग्ध गुणवाली परमाणुओंसे उपर वा अगली हैं बन्ध नहीं होता है केवल पांचगुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथही तीनस्निग्धगुणवाली परमाणु बन्धको प्राप्त होती है

चतुर्गुणस्निग्धस्य॥ षट्-गुणस्निग्धेन॥ अस्ति बन्धः॥, शेषैः॥ पूर्वोत्तरैः॥ — =चारगुण स्निग्ध(परमाणु)का छहगुणस्निग्ध (परमाणुकरि) बन्ध है =(छहगुणस्निग्धपरमाणुसे) पहली हुई पहली(एकसे पांच तक स्निग्धपरमाणु,निकरि =(तथा छहगुणस्निग्धपरमाणुसे) अगली (सात आठ-नौ-दश आदिक संख्यातगुणा स्निग्ध परमाणु असंख्यातगुण स्निग्धपरमाणु अनंतगुण स्निग्धपरमाणु)निकरि

न ० अस्ति । एवम् ० शेषेषु॥ अपि ० योज्यः॥, तथा ० द्विगुणरूक्षस्य॥ एक-द्वि त्रिगुणरूक्षैः॥ न ० अस्ति बन्धः॥ चतुर्-गुणरूक्षेण॥ तु ० अस्ति बन्धः॥ तस्य॥ एव ० — =(बन्ध)नहीं होता है । इस प्रकार(दोगुण अधिक) अवशेष विषैंभी जोड़ो । उसीप्रकार =दोगुणरूक्ष(परमाणु)के एक दो तीन गुणवाली रूक्ष(परमाणु)करि बन्ध नहीं है किन्तु (=तु)चारगुण वाली रूक्ष परमाणु करि बन्ध है । तिसही

अर्थात् एकस्निग्ध परमाणुका दूसरी दोगुण अधिक स्निग्धपरमाणुके साथ बन्ध होता है ॥

एक रूक्षपरमाणुका दूसरी दोगुण अधिक रूक्षपरमाणुके साथ बन्ध होता है। एकस्निग्धपरमाणुका दूसरी दो अधिक गुणवाली रूक्षपरमाणुके साथ भी बन्ध होता है। समधारा और विषमधारा दोनोंमें बन्ध होता है किन्तु जघन्यगुणवाले परमाणुओंका बन्ध नहीं होता है भावार्थ ऐसा है कि एकगुणवाले परमाणुका तीनगुणवाले परमाणुके साथ बन्ध नहीं होताहै, शेष स्निग्ध वा रूक्ष दोनों जातिके परमाणुओं का समधारा वा विषमधारामें दोगुण अधिक रहनेपर बन्ध होजाताहै॥ स्निग्ध रूक्ष दोनोंमें दो-चार छह-आठ-दश-बारह-इत्यादि जहां दोगुण के ऊपर दो दो अंशोंकी वृद्धि वा अधिकता हो उसको समधारा कहते हैं और स्निग्ध रूक्ष दोनोंमें ही तीन-पांच-सात नौ-ग्यारह-तेरह इत्यादिक जहां तीन गुणोंके ऊपर दो दो अंशोंकी अधिकता हो वहां विषमधारा होती है। इन दोनों धाराओंमें जघन्यगुणको छोड़कर दोगुण अधिकका ही बन्ध होता है अन्यका नहीं ॥ सो इन दोनों सम, विषम धाराओंमें अनन्तर-द्विक(अत्यन्त समीप-द्विक)का बन्ध होताहै अन्यका नहीं जैसे दोगुणवाले स्निग्ध वा दोगुणवाले रूक्षका चारगुणवाले स्निग्ध वा चारगुणवाले रूक्षकेसाथ तथा तीन गुण वाले स्निग्ध वा रूक्षका पांचगुणवाले स्निग्ध वा रूक्षके साथ बन्ध होताहै अन्य किसीके साथ नहीं ऐसे औरऔर अधिकगुणवाली परमाणुओंका बन्धजानो

हमारे यहां भी यही बात है परन्तु पिछली दो पंक्ति सम्बन्धमें भाष्यकारोंने तथा भाषाके टीकाकारोंने दो अधिक परमाणुओं द्वारा बन्धका उल्लेख किया है वह इसप्रकार है कि (क) पूज्यपादस्वामी और अभयसागरसूरिने कुछ भी संस्कृतमें इस आर्योक्तका नहीं किया है (ख) राजवार्तिकके रचयिताने पूज्यपाद स्वामीके मतको विशदरूपसे उदाहरणों द्वारा समर्थन करदिया है इस आर्षा परको पुष्टि नहीं की है ॥ पं० पन्नालालजी दूनी व जयचन्द्रजी पं० सदासुखजी और श्रीअमितगत्याचार्यने सम धन्यका बंध समगुणवाली अर्थात् २,४,६,८,१० १२,१४ आदि गुणवाली परमाणु की हैं और विषम से विषमगुणवाली अर्थात् ३,५,७,९,११,१३,१५ आदि गुणवाली परमाणु ग्रहण की हैं जैसाकि उनके यथाक्रम निम्नलिखित लेखोंसे प्रगट होता है।

स्निग्धके स्निग्धकरि बन्ध होय है। तहां दोयगुण अधिककरि होय है। तथा रूक्षके रूक्षकरि बन्ध होय है। सोभी दोगुण अधिककरि होय है बहुर स्निग्धके रूक्षकरि तथा रूक्षके स्निग्धकरि जैसे जघन्यगुण वर्जिकरि समगुण होऊ तथा विषमगुण होऊ। दोगुण अधिककी करि बन्ध है अन्यकरि नाहीं है इस प्रकार स्निग्ध और रूक्ष इनके दोय दोय गुण अधिकता बन्ध होनेमें कारण है। ताकरि पुद्गलपरमाणुनिके एक विजातक बंध पर्याय होते संते द्विगुणक आदि अनन्तानंत प्रदेश पर्यंत स्कन्धनिकी उत्पत्ति होय है। ऐसा जानना। पं०(पन्नालालजी दूनीने इस गाथाका उपयुक्त कथन किया है) ॥

स्निग्धके स्निग्धकरि दोगुण अधिककरि बन्ध होय है। तथा रूक्षके रूक्षकरि दोयगुण अधिककरि बन्ध होय है। जघन्यगुणवर्जिकरि समगुण होऊ तथा विषमगुण होऊ दोय गुण अधिक होकरि बन्ध है अन्यकरि नाहीं है पंडित जयचन्द्रजीकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४१५

स्निग्ध परमाणुकै स्निग्धपरमाणु दोयगुण अधिककरि बन्ध होय है ॥ बहुर रूक्षपरमाणुकै दोयगुणअधिक रूक्षपरमाणुकरि बन्ध होय है ॥ बहुर स्निग्ध परमाणुकै दोयगुण अधिक रूक्षपरमाणुकरि बन्ध होय है ॥ बहुर जघन्यगुण जो एकगुण तिस सहित परमाणुकरि बन्ध नहीं होय है ॥ बहुर दोय च्यार, छह आठ इत्यादिक समगुणके धारकनिकेहू बन्ध है। बहुर तीन पांच सात नव ग्यारा इत्यादिक विषमगुण धारकनिकैहू बन्ध होय है। परन्तु गुणके दोय अधिकता होय तिनहीके बन्ध है अन्यके नहीं है भावार्थ स्निग्धस्निग्धके बहुर रूक्षरूक्षकै बहुर स्निग्धरूक्षकै [illegible] रूक्षस्निग्धकै दोय गुण अधिक सम विषम होते बन्ध होय है अन्य होन अधिकके बन्ध नहीं होय पंडित सदासुखजीकृत अर्थ प्रकाशिका प० ३२७ और ३२८ श्लोक

णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिएण । लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिएण॥ णिद्धस्स लुक्खेण हवेदि बन्धो । जहण्णवज्जो विसमे समे वा ॥ १ ॥

णिद्धस्स। णिद्धेण। दुराधिएण। (=स्निग्धस्य। स्निग्धेन। द्वि अधिकेन।)	=स्निग्धका स्निग्धद्वारा दो अधिक(गुणों)करि
लुक्खस्स। लुक्खेण। दुराधिएण। (=रूक्षस्य। रूक्षेण। द्वि-अधिकेन।)	=रूक्षका रूक्षद्वारा दो अधिक(गुणों)करि(और)
णिद्धस्स। लुक्खेण। हवेदि। बन्धो। (=स्निग्धस्य। रूक्षेण। उपैति। बन्धः।)	=स्निग्धका रूक्षद्वारा(दो अधिकगुणोंकरि)बंध होता है
जहण्णवज्जो। विसमे। समे। वा। (जघन्यवर्ज्यो। विषमे। समे। वा।)	=जघन्य(गुणवाली परमाणु) के छोड़दियेजानेपर परमाणुमें समधारा(दो-चार-छह-आठ दश इत्यादि गुणों)में हो अथवा विषमधारा तीन-पांच-सात-नौ-ग्यारह इत्यादि गुणोंमें हो (बंध होजाता)है

रत्नवार्तिक श्रुतसागरी टीका इत्यादिमें तथा गोम्मटसार (जीवकांड)में दिया हुआ है यहांतक कि श्वेताम्बर आम्नायके श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्ति जो उमास्वामिकृत तत्त्वार्थसूत्रपर है जो श्वेताम्बर आम्नायमें महत्त्वका ग्रन्थ है जिसमें बाईसहजार [illegible] श्लोक हैं उसमें भी यह गाथा ऐसे पायाजाता है कि "णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिएण । लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिएण॥ णिद्धस्स लुक्खेण उवेति बन्धो जहण्णवज्जे विसमे समेवा" परन्तु उक्त सम्प्रदायके अनुकूल अर्थ यह है कि स्निग्धपरमाणुका स्निग्ध द्विगुण अधिककरि (बन्ध होता है । स्निग्ध का रूक्षकरि(अर्थात् असदृशोंका विजातीयोंका)बन्ध होता है (यहांपर दोगुण अधिककी आवश्यकता नहीं है सिवाय परमाणुओंके समानगुण वालोंकी बन्ध होजाता है) जघन्यगुणकी परमाणुको छोड़ कर सममें और विषममें (दोनों)में बंध होता है । अब प्रश्न यह है कि यह गाथा पूज सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति तत्त्वार्थराजवार्तिक, गोम्मटसार तथा श्वेताम्बर आम्नायके ग्रंथोंमें कहांसे आया।

(उत्तर) यह गाथा किसी ऐसे प्राचीन ग्रन्थका लीगई है जो तत्त्वार्थ सूत्रके उदय होनेसे श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें माननीय था क्योंकि यथार्थमें दोनों आम्नायवालोंके यहां इसका पाठ समान चलता है दिगम्बर आम्नायमें सबसे प्रथम अर्थात् तत्त्वार्थ सूत्र हमको समझ है श्रीपूज्यपाद स्वामीने इस सूत्रका लिया क्योंकि इनका समय संवत् १०८ अठ सूरी इत्यादिका पट्टावलियोंसे प्रतीत होता है इस विक्रमसंवत् शालिवाहन अथवा शक संवत् चलानेवाले राजासे अभिप्राय है वह प्रतापी विक्रमादित्यके संवत्से १३५ वर्ष पीछे चला है । इसके पश्चात् श्रीमद्भट्टाकलंकदेवने तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें इसका उल्लेख किया इसकेभी पश्चात् श्रीमद्विद्यानन्दि स्वामीने इसका तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकमें ग्रहण किया फिर श्रीनेमिचन्द्र आचार्यने गोम्मटसारमें इसको स्थान दिया क्योंकि उनका समय इतिहास अन्वेषियोंने ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भमें अथवा उससे कुछ पूर्व सिद्ध किया है चामुण्डके पीछे यद्यपि संस्कृत भाष्योंसे संबन्ध है इसको श्रीश्रुतसागरसूरिने श्रुतसागरी टीकामें संवत् १५५० में स्थान दिया । इसका श्रीसिद्धसेन निश्चित समय ज्ञात नहीं है इससे कह नहीं सकते कि उन्होंने किस समयमें इसका अपनी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्तिमें स्थान दिया । कहीं कहीं पर इसका उवेदि हवेदि दुराधिएण दुराधिएण इत्यादि पाठ मिलता है सो आचार्योंकी अपनी अपनी प्रकृतिअनुकूल जो शब्द अथवा जो उचित जान पड़ा उसका ग्रहण करके कुछ पाठमें हेर फेर करदिया परन्तु उसके अभिप्राय (और जो कहिये कि समस्त ग्रन्थोंपरसे) कोई प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु इसको संदेह नहीं है कि यह महत्त्वपूर्ण और किसी न किसी ऐसे ग्रन्थमें अवश्य विद्यमान है जिसको दोनों समाजवाले समानरूप प्रमाण ग्रहण करते हैं।

(१) इस आर्याछंदका अर्थ श्वेताम्बर आम्नायमें सम्प्रदायः यही लिखागया है जो सर्वार्थमें आचार्य टीकाके शब्दोंसे मिलकर है प्रथम [illegible]

अधिकारात् गुणशब्दः सम्बध्यते । अधिकगुणावधिकाविति

पदानुवादः-अधिकारात्[ ]गुणशब्दः[ ]सम्बध्यते[ ] अधिकगुणौ[ ]अधिकौ[ ]इति॥	=प्रकरण(वश)से(इस सैंतीसवें सूत्रमें)गुणशब्द लगाया गया है वा अनुवर्तन किया गया है =जो अधिक(=अधिकौ) हैं वे अधिक दोगुण हैं(जैसे दोगुणवाली परमाणुसे चारगुणवाली परमाणु अधिक दोगुणवाली हैं,तीनसे पांचगुणवाली, चारसे छहगुणवाली, पांचसे सातगुणवाली, छहसे आठ गुणवाली, आदि ऐसे और भी दो अधिकगुणवाली परमाणु कहलाती हैं ॥

कारण यह है कि दोनों आम्नायवालोंने 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रका अर्थ भिन्न भिन्न किया है। हमारी आम्नायके अनुकूल गुणोंके समान संख्यामें होनेपर न तो सदृशपरमाणुओंका बन्ध होता है और न विसदृशपरमाणुओंका इसलिये हमारे यहांके पाठमें 'सम' शब्द इस सूत्रमें नहीं है और "द्वि अधिकादि गुणानां तु" सूत्रमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार केवल 'सदृशानां' की अनुवृत्ति "गुणसाम्ये सदृशानाम्" सूत्रसे आती है इसलिये उन्होंने अर्थ किया है कि सदृशोंके लिये दोगुण अधिककी आवश्यकता है विसदृशपरमाणुओंका बन्ध चाहे वे समगुणधारक हों चाहे विषम गुणवाली हों जघन्य गुणवाली परमाणुके अतिरिक्त और विसदृशोंमें सबमें सर्वप्रकारसे बंध होजाता है परन्तु हमारे यहांके सिद्धान्तके अनुकूल 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रसे सदृशानाम् और विसदृशानां (=सदृशानाम् और विसदृशानाम्)अर्थात् सदृशोंकी और असदृशोंकी अनुवृत्ति "द्वि अधिकादि गुणानांतु" में ग्रहण करके यह अर्थ किया है कि दोगुण आदिसे अधिकगुणवाली सदृशपरमाणुका और दोगुण आदिसे अधिक गुणवाली विसदृश परमाणुओंका ही बन्ध होता है यदि दोगुण एक परमाणुमें दूसरीसे अधिक न होंगे तो बन्ध कदापि नहीं होगा अब हमारे यहां समगुणवाली परमाणुओंका बन्ध नहीं है तब 'सम' शब्द सैंतीसवें सूत्रमें नहीं आये हैं ॥

"गुणसाम्ये सदृशानाम् न" पाठक्रम आपका कृपया विचार हो मैं तो यही कहूंगा कि इस सूत्रकी रचना विचित्र और अद्भुत है वह कैसे? यदि इस सूत्रका अर्थ इसी क्रमसे किया जावे जैसेकि वह है तब अर्थके सम्बन्धमें श्वेताम्बराचार्योंके अनुकूल हृदयसे ध्वनि निकलती है यदि 'सदृशानां गुणसाम्ये न' इस क्रमसे अनुवाद कियाजावे तब दिगम्बराचार्योंके मतानुसार अर्थकी ध्वनि निकलती है जैसे गुणोंकी समानता या बराबरी होनेपर सदृशोंका बन्ध नहीं होता है ध्वनि आती है कि विसदृशोंका बन्ध गुणोंकी समानता होजानेपर होजाता है यदि अर्थ कियाजावे कि सदृशोंका गुणकी समानता होनेपर बन्ध नहीं होता है तब ध्वनि निकलती है कि गुणोंकी असमानतामें सदृशोंका भी बन्ध होजाता है इसी हेतुसे पूज्यपाद स्वामीने उत्तर दिया है कि 'गुणवैषम्ये सदृशानामपि बन्धप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते' सदृशोंकी विषमतामें बन्धके प्रगट करनेके लिये सूत्रमें 'सदृशानां' लायागया है इसलिये कह सकते हैं कि उमा स्वामिना सूत्राणाम् विचित्रा हि कृतिः कृता अर्थात् उमा स्वामीके सूत्रोंकी रचना या बनावट विचित्र और अद्भुत ही है ॥

श्वेताम्बर आम्नायमें बन्धसमाधिको पारिणामकौ पाठ है इस कथनके समर्थनमें हम तत्त्वार्थराजवार्तिकसे इसी सूत्रके नीचे वार्तिक तीन उसकी वृत्तिके सहित उद्धृत करते हैं 'समाधिका इत्यपरेषां पाठः (=समाधिकौ इति अपरेषांपाठः)(=बन्ध होनेपर)सम(परिणमन)या अधिक परिणाम होता है ऐसे अन्य अन्य आचार्यों का पाठ है तत्त्वार्थराज०सेवृत्ति "बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ इत्यपरे सूत्रं पठन्ति, द्विगुणस्निग्धस्य द्विगुणरूक्षो पि पारिणामकः इति" =बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ इस प्रकार अन्य अन्य (आचार्य) सूत्रको पढ़ते हैं (अतः) "द्विगुणस्निग्धके द्विगुण रूक्ष भी परिणामक कर्ता है"

पं० पन्नालाल पूर्वी अध्याय ५ पर्व १०२ ॥

॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च = बन्धे अधिकौ गुणौ पुद्गलौ(परमाणू वा स्कन्धौ)पारिणामकौच भवत ॥

सन्धार्थ — बन्धे¹ सति² अधिकौ³ गुणौ⁴ =और बंध होनेपर दो अधिक गुणवाला

पुद्गलौ⁵ (=परमाणू⁶ वा स्कन्धौ⁷) =पुद्गल(=परमाणु वा स्कन्ध (हीन गुणवाले परमाणु वा स्कन्धको अपने रूपमें)

पारिणामिकौ⁸ च भवत⁹ =परिणामावनवाला होता है अर्थात् दो गुण आदि स्निग्ध वा रूक्ष पुद्गलके चतुर्गुण आदि स्निग्ध वा रूक्ष गुणपुद्गलस्वरूप पारिणामिकता होतीहै। भावार्थ जैसे एक परमाणु वा स्कन्ध में दोगुण स्निग्धताके होय और दूसरे परमाणु वा स्कंधमें चारगुण रूक्षपनाके होय तो दोनोंके बंध होनेपर अधिकगुणरूप जो रूक्ष पुद्गल (=परमाणु वा स्कंध) तिसरूप हीनगुणरूप जो स्निग्धपरमाणु वा स्कंध है सो होजाता है। इसी प्रकार रूक्षसे स्निग्धमें बंध होय तो, रूक्षसे रूक्ष मिले तो, और स्निग्धस स्निग्धमें बन्ध होय तो दो अधिकगुण जिस परमाणु अथवा स्कन्धमें होय तिसरूप हीनगुणवाला परमाणु वा स्कंध परिणमि जाता है और इस परिणमन अथवा पलटनेकी अवस्थामें प्रथम और दूसरी अवस्थाओंका अभाव होकर एक तीसरी भिन्न अवस्था प्रगट होजाती है। इस प्रकार अधिकगुणके और हीनगुणक एक स्वरूपपना होता है ॥

पालन करके जायन विधान लगे ॥ ऐसा ही तत्त्वार्थ राजवार्तिक, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ वृत्ति (जो श्वेताम्बरीय भाष्यो)में भी कहा है जैसाकि निम्न उद्धृत वाक्यों से प्रगट है।

"गुणग्रहणं व्यावृत्तिविशेषप्रतिपत्त्यर्थं = सूत्रमें) गुणग्रहण(निषेधके)हटानेको और दूर करनेके तथा बंधकी विधिको विशेष अवस्थामें बतलानेकेलियेहै।॥ ऐसा तत्त्वार्थ राजवार्तिक,वार्तिक दूसरी ॥

"गुणग्रहणं विधायक प्रतिषेधं व्यावर्तयति बन्धं च विशेषयति =(सूत्रमें) गुणग्रहण ("न जघन्यगुणानाम्" "गुणसाम्ये सदृशानाम्" इन दो सूत्रोंमें) किये हुए निषेधको हटाता है दूर करता है और बन्धका विशेष अवस्था (दोगुण अधिकवाली)में विधान करता है

"अत्र गुणग्रहणं व्यावृत्तिविशेषणार्थं प्रतिषेधं व्यावर्तयति बन्धं च विशेषयति (सभाष्य० पृ० ११६ भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्ति पत्रे ४३०) "इस सूत्रमें द्वि अधिकादिगुणानां यहां जो गुणग्रहण ग्रहित है वह व्यावृत्ति तथा विशेषणके लिये है अर्थात् न जघन्यगुणानां वा गुणसाम्ये सदृशानाम् इत्यादिरूप प्रतिषेधको ता व्यावृत्ति करता है और बन्ध को विशेषित करता है ("सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पृष्ठ ११६ से उद्धृत)

(1) मुद्रित तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकमें 'च' नहीं है परन्तु हस्तलिखितमें है। बहुत प्रतियोंमें उपयुक्त पाठहै।श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० पृ०११६में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ वृत्ति पृ०४३१में "बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ" = बन्धे सति समगुणस्य समगुणः परिणामको भवति। अधिकगुणो हीनस्येति। बन्ध होनेपर यदि समगुण है तब तो समगुणका समगुणवालाही परिणाम होगा और हीनगुणका अधिक गुणवाला परिणाम होगा। इस पाठमें भेदका

उक्तेन विधिना बंधे पुन सति ज्ञानावरणादीनां कर्मणां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिस्थितिरुपपन्ना भवतिउत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति द्रव्यलक्षणमुक्त पुनरपरेण प्रकारेण द्रव्यलक्षणप्रतिपादनार्थमाह-

॥ गुणपर्यायवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

पुनः॥उक्तेन॥विधिना॥बन्धे॥सति॥ =बहुरि कथित रीतिकरि बन्धहानपरअर्थात् अन्यअधिकर एकमेक रूप होतेहुए बन्ध होनेपर तीसरी अवस्थाके उपादान करनेपर

ज्ञानावरण आदीनाम्॥कर्मणाम्॥त्रिंशत् =ज्ञानावरणादिक कर्मोकी तीस

सागरोपम-कोटी-कोट्यादि-स्थितिः॥उपपन्ना॥भवति =कोड़ाकोड़ी आदिक सागरप्रमाण स्थिति उत्पन्न होती है

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्॥सत्॥इति॥द्रव्यलक्षणम्॥ (उत्पत्ति-नाश स्थिरतास्वरूपसहित =युक्त)सत् है ऐसा द्रव्यका लक्षण

उक्तम्॥पुनः॥अपरेण॥प्रकारेण॥द्रव्य-लक्षण प्रतिपादन अर्थम्=(सूत्र३०में कहा गया है)अन्यप्रकारकरि द्रव्यका लक्षणअनेक प्रतिपादक है कि

सूत्रम्—[1] गुणपर्याय वद्द्रव्यम्[(२)(३)] ॥ ३८ ॥ = गुणपर्यायवत-द्रव्यम् अस्ति ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः—गुण-पर्यायवत्॥द्रव्यम्॥अस्ति॥ =गुण-पर्याय(स्वभाव-स्वरूप)वाला(=वत्)द्रव्य है,अथवा गुणवान् पर्यायवान् द्रव्यहै, गुण और पर्यायोंकरि युक्त(सहित)द्रव्य है अर्थात् गुण और पर्याय जिसके हैं या जिसमें हैं वही द्रव्य है। भावार्थ द्रव्यकी अनेक परिणति होनेपर भी जो द्रव्यसे भिन्न न हो द्रव्यके साथ नित्य रहै सो तो गुण है। और क्रमवर्ती होय पलटनरूप होय सो पर्याय है। द्रव्यके जितने गुण हैं वे द्रव्यसे कभी भिन्न नहीं होवे हैं ॥ समस्त गुणोंका समूह (=समुदाय)ही द्रव्य है। द्रव्यकी अनेक पर्यायें (अवस्थायें)पलटते हुए भी गुण कभी नहीं पलटते। द्रव्यके नित्य साथ वा अविनाभावी है। इसी कारण गुणोंको अन्वयी कहते हैं और पर्यायोंको व्यतिरेकी(क्योंकि पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं)

(१) गुणपर्यायवत द्रव्यम =गुणवत्वे सति पर्यायवत्वंद्रव्यत्वम् '(समाप्य० पृष्ठ १५०)गुणवान् होते सन्ते जिसमें कोई न कोई पर्याय हो वह द्रव्यहै (२)वत् =वाला सहित युक्त संपन्न संयुक्त=जैसे गुणवत् गुणवाला गुणसहित,गुणयुक्त गुणसंपन्न गुणसंयुक्त(३)३०वें सूत्रमें दोबारा द्रव्यका लक्षण क्यों कहा जब पहलें सूत्रमें सतद्रव्यलक्षणम् कहा है ? (उत्तर)पहिले सत् लक्षण कहा सो तो शुद्ध द्रव्यका लक्षण है सो(सत्) एकही सो सामान्य है, अभेदरूपहै इसका महान् द्रव्यभी कहिये। जातें सर्ववस्तु हैं सो सत्ताको उलंघि नहीं वर्तें है।सर्वद्रव्य सर्वपर्याय सत्ताके विशेषहैं जिसको ज्ञानगोचर तथा वचनगोचर कहिये सो सर्व सत्तामयी है। बहुरि द्रव्य अनेक हैं तिनका भिन्न व्यवहार करनेका यह गुणपर्याय सहितपना दूसरा लक्षण कहा सो यह लक्षण न कहिये तो द्रव्योंके गुणपर्याय न्यारे न्यारे हैं, ते द्रव्य न ठहरै तब सर्वथा सत्हीं द्रव्य ठहरै।चेतन अचेतन आदि द्रव्योंका लोप होय तब संसार मोक्ष आदि व्यवहारका भी लोप होय जिससे दूजे लक्षण का कथन यह है ॥

मावान्तरोपादान परिणामकत्व क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्लिन्नो गुडोऽधिकमधुररस परीताना रेण्वादीना स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिक । तथाऽन्योऽप्यधिकगुण अल्पीयस पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादिस्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्ष परिणामको भवति । तत पूर्वावस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तर प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते ॥ इतरथा हि शुक्लकृष्णतन्तुवत् सयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात्सर्व विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत ॥

भाव अन्तर उत्पादन॥ परिणामकत्वं॥ क्लिन्नगुडवत्	=अन्य अवस्था ग्रहणकरनेको परिणामकता अर्थात् पलटाव गीले गुड के सदृश है
यथा क्लिन्न गुड अधिकमधुररस परीतानाम्	=जैसा बहुत मीठे रसवाला गीला गुड गिरेहुये
रेण्वादीनाम् स्वगुण उत्पादनात् पारिणामिक तथा	=रेणुआदिकके अपना मधुररस) गुणके उपजावनेसे परिणमावनेवाला होता है तैसे
अन्य अपि अधिकगुण अल्पीयस पारिणामिक	=अन्य भी अधिकगुणवाला अल्पगुणवालेका अपनेरूपमें परिणमावनेवाला होता है
इति कृत्वा द्विगुण आदि-स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुण	=एसें करि (वा ऐसें करके) दो गुणआदिक स्निग्धरूक्षका चार गुण
आदि-स्निग्धरूक्ष परिणामक भवति	=आदिक स्निग्ध-रूक्षपुद्गल अपने स्वरूपमें परिवर्तनकरनेवाला वा पलटनेवाला होताहै
तत पूर्व अवस्था प्रच्यवन-पूर्वकम् तार्तीयिकम्	=तिस(परिणामकता)से पहिलीअवस्थाका अभाव वा त्यागपूर्वक तीसरी(प्रच्यवन=अच्यवन)
अवस्थान्तरम् प्रादुर्भवति इति एकत्वम् उपपद्यते	=अन्य अवस्था प्रगट होती है। ऐसे एकता वा एकपना अर्थात् एकस्वरूपपना उपजताहै
इतरथा हि	=औरप्रकारसे तो अर्थात् यदि दो परमाणु वा स्कंधके बन्ध होनेपर एकता न हो तो
शुक्लकृष्ण-तन्तुवत् संयोगे सति अपि अपरिणामकत्वात्	=स्वेत काले तंतुके सदृश सयोग होनेपर भीएकरूपमें नीरक्षीरके सदृशपलटाव नहोनेसे
सर्वम् विविक्त-रूपेण अवतिष्ठेत	=समस्त पृथक् पृथक् रूपकरि ही तिष्ठै, दीखैं ॥ (अवतिष्ठेत है नकि अवतिष्ठते)

(१ सर्वार्थसिद्धि [illegible] पाठ [illegible] भावान्तरोपादान परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत्। यथा क्लिन्नो गुडोऽधिकमधुर रसः परीतानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिकः। तथान्योऽप्यधिकगुणः अल्पीयसः पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादि स्निग्धरूक्षः परिणामको भवति। ततः पूर्वावस्था प्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते। इतरथा हि शुक्लकृष्णतन्तुवत् संयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात् सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत [illegible] तत्त्वार्थ राजवार्तिकका [illegible] पाठ [illegible] भावान्तरोपादान परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्लिन्नगुडोऽधिमधुर रस परीतानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् परिणामक तथा अन्योऽप्यधिक गुणः अल्पीयसः परिणामक इति कृत्वा द्विगुणादि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्षः परिणामको भवतीति ततः पूर्वावस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयकमवस्थान्तरमादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते इतरथा हि शुक्लकृष्ण तंतुवत् संयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात् सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत

(२ [illegible] पारिणामिक है [illegible] परिणामक [illegible] लिया है। पृष्ठ [illegible] परिणामक = पारिणामिक।)

उक्तेन विधिना बंधे पुन सति ज्ञानावरणादीनां कर्मणां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिस्थितिरुपपन्ना भवतिउत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति द्रव्यलक्षणमुक्त पुनरपरेण प्रकारेण द्रव्यलक्षणप्रतिपादनार्थमाह-

॥ गुणपर्यायवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

पुनः=उक्तेन॥विधिना॥बन्धे॥सति॥	=बहुरि कथित रीतिकरि प बन्धोनपरअर्थात् अल्पअधिकका एकमेकरूप होतेहुए बन्ध होनेपर तीसरी अवस्थाका उपादान करनेपर
ज्ञानावरण आदीनाम्॥कर्मणाम्॥त्रिंशत्	=ज्ञानावरणादिक कर्मोकी तीस
सागरोपम-कोटी-कोट्यादि-स्थिति॥उपपन्ना॥भवति	=कोडाकोडी आदिक सागरप्रमाण स्थिति उत्पन्न होती है
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्॥सत्॥इति॥द्रव्यलक्षणम्॥	=उत्पत्ति-नाश-स्थिरतास्वरूपसहित =(युक्त)सत् है ऐसा द्रव्यका लक्षण
उक्तम्॥पुनः॥अपरेण॥प्रकारेण॥द्रव्य-लक्षण-प्रतिपादन अर्थमाह	=(सूत्र३०मेंकहागयाहै)अन्य प्रकारकरि द्रव्यका लक्षणकहनेकेलिये कहतेहैं कि

सूत्रम्—(१ गुणपर्याय वद्द्रव्यम्(२)(३)॥ ३८ ॥ = गुणपर्यायवत-द्रव्यम् अस्ति ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः—गुण-पर्यायवत्॥द्रव्यम्॥ अस्ति॥	=गुण-पर्याय(स्वभाव-स्वरूप,वाला(=वत्)द्रव्य है,अथवा गुणवान् पर्यायवान् द्रव्यहै, गुण और पर्यायोंकरि युक्त(सहित)द्रव्य है अर्थात् गुण और पर्याय जिसके हैं

या जिसमें हैं वही द्रव्य है। भावार्थ द्रव्यकी अनेक परिणति होनेपर भी जो द्रव्यसे भिन्न न हो द्रव्यके साथ नित्य रहे सो तो गुण है। और क्रमवर्ती होय पलटनरूप होय सो पर्याय है। द्रव्यके जितने गुण हैं वे द्रव्यसे कभी भिन्न नहीं होते हैं॥ समस्त गुणोंका समूह (=समुदाय)ही द्रव्य है। द्रव्यकी अनेक पर्यायें (अवस्थायें)पलटते हुए भी गुण कभी नहीं पलटते। द्रव्यके नित्य साथ या अविनाभावी है। इसी कारण गुणोंको अन्वयी कहते हैं और पर्यायोंको व्यतिरेकी(क्योंकि पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं)

(१) गुणपर्यायवत् द्रव्यम् = गुणवत्त्व सति पर्यायवत्वंद्रव्यत्वम् (सभाष्य॰ पृष्ठ १४०)गुणवाम् हात सकते जिसमें कोई न कोई पर्याय हो वह द्रव्यहै (२)वत् = वाला सहित युक्त सपन्न सयुक्त—जैसे गुणवत् गुणवाला गुणसहित,गुणयुक्त गुणसंपन्न गुणसयुक्त(३)३०वां सूत्रमें दोबारा द्रव्यका लक्षण क्यो कहा जब २९वां सूत्रमे सतद्रव्यलक्षणम् कहा है? (उत्तर)पहिले सत लक्षण कहा सो तो शुद्ध द्रव्यका लक्षण है सो(सत्) एकही सा सामान्य है अभदरूपहै इसका महान् द्रव्यभी कहिये। जातै सर्ववस्तु हैं सो सत्ताको उलंघि नाही वर्तै है।सर्वद्रव्य सर्वपर्याय सत्ताके विशरवर्ती जिसको प्रमाणगोचर तथा वचनगोचर कहिये सा सर्व सत्तामयी है। बहुरि द्रव्य अनेक हैं तिनका भिन्न व्यवहार करनेका यह गुणपर्याय सहितपना दूसरा लक्षण कहा सो यह लक्षण न कहिये तो द्रव्योंके गुणपर्याय न्यारे न्यारे हैं त द्रव्य न ठहरै तब सर्वथा सत्ही द्रव्य ठहरे।चेतन अचेतन आदि द्रव्योंका लोप होय तब संसार मोक्ष आदि व्यवहारका भी लोप होय जिससे यह लक्षण का कथन युक्त है।

भावान्तरोपादान परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्लिन्नो गुडोऽधिकमधुररस परीताना रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिक । तथाऽन्योऽप्यधिकगुण अल्पीयस पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादिस्निग्धरूक्षस्य चर्तुगुणादिस्निग्धरूक्ष परिणामको भवति । तत पूर्वावस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते ॥ इतरथा हि शुक्लकृष्णतन्तुवत् सयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात्सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत ॥

(१)भाव अन्तर उपादानं ॥ परिणामकत्वं ॥ क्लिन्नगुडवत् =अन्य अवस्था ग्रहणकरनेको परिणामकता अर्थात् पलटाव गीले गुड के सदृश है
यथा=क्लिन्नः गुडः अधिकमधुररस परीतानाम् =जैसा बहुत मीठे रसवाला गीला गुड गिरे हुये
रेण्वादीनाम् स्वगुण-उत्पादनात् पारिणामिकः तथा=रेतआदिकके अपना मधुररस) गुणके उपजावनेसे परिणमावनेवाला होता है वैसे
अन्यः अपि=अधिकगुणः अल्पीयसः पारिणामिकः =अन्य भी अधिकगुणवाला अल्पगुणवालेका अपनेरूपमें परिणमावनेवाला होता है
इति= कृत्वा+द्विगुण आदि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुण =ऐसें करि (वा ऐसें करके) दो गुणआदिक स्निग्धरूक्षका चार गुण
आदिस्निग्धरूक्ष) परिणामकः भवति =आदिक स्निग्ध-रूक्षपुद्गल अपने स्वरूपमें परिवर्तनकरनेवाला वा पलटनेवाला होताहै
ततः पूर्व अवस्था प्रच्यवन-पूर्वकम् तार्तीयिकम् =तिस(परिणामकता)से पहिलीअवस्थाका अभाव वा त्यागपूर्वक तीसरी(प्रच्यव=प्रच्यवन)
अवस्थान्तरम् प्रादुर्भवति इति एकत्वम् उपपद्यते ।=अन्य अवस्था प्रगट होती है ।ऐसे एकता वा एकपना अर्थात् एकस्वरूपपना उपजताहै
इतरथा हि =औरप्रकारसे तो अर्थात् यदि दो परमाणु वा स्कंधके बन्ध होनेपर एकता न हो तो
शुक्ल-कृष्ण-तन्तुवत् संयोगे सति अपि अपरिणामकत्वात्=स्वेत काले ततुके सदृश संयोग होनेपर भीएकरूपमें नीरक्षीरके सदृशपलटाव नहोनेसे
सर्वम् विविक्त-रूपेण अवतिष्ठेत =समस्त पृथक् पृथक् रूपकरि ही तिष्ठें, दीखें ॥ (अवतिष्ठेत है नकि अवतिष्ठते)

(१ सर्वार्थसिद्धि [illegible] दोनों प्रतियोंमें ग्र ठ [illegible] अनुसार भावान्तरोपादान परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् । यथा क्लिन्नो गुडोऽधिक मधुर रस परीतानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिकः । तथान्योऽप्यधिकगुण अल्पीयसः पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्ष परिणामको भवति । ततः पूर्वावस्था प्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते । इतरथा हि शुक्लकृष्ण तन्तुवत् संयोगे सत्यपि अपरिणामकत्वात्सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत
तत्त्वार्थ राजवार्तिकका मुद्रपाठ [illegible] का मिलान किया गया है भावान्तरोपादान परिणामकत्व क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्लिन्नगुडोऽधि मधुर रस पतितानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात्परिणामक तथा ऽन्योऽप्यधिक गुण अल्पीयस परिणामक इति कृत्वा द्विगुणादि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्षपरिणामको भवतीति ततः पूर्वावस्थाप्रच्यवपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरमादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते इतरथा हि शुक्लकृष्ण तंतुवत्संयोगे सत्यपरिणामकत्वात् सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत
(२ [illegible] पारिणामिक है [illegible] परिणामक किया है। पृष्ठ १२५में भयपि परिणामक=पारिणामिक ॥

उक्तेन विधिना बन्धे पुन सति ज्ञानावरणादीना कर्मणां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिस्थितिरुपपन्ना भवतिउत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति द्रव्यलक्षणमुक्तं पुनरपरेण प्रकारेण द्रव्यलक्षणप्रतिपादनार्थमाह-

॥ गुणपर्यायवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

पुनः॥उक्तेन॥विधिना॥बन्धे॥सति॥ =बहुरि कथित रीतिकरि बन्धहोनेपर अर्थात् अल्पअधिकका एकमेकरूप होतहुए बन्ध होनेपर तीसरी अवस्थाके उपादान करनेपर

ज्ञानावरण आदीनाम्॥कर्मणाम्॥त्रिंशत् =ज्ञानावरणादिक कर्मोंकी तीस

सागरोपम-कोटी-कोट्यादि-स्थितिः॥उपपन्ना॥भवति॥ =कोड़ाकोड़ी आदिक सागरप्रमाण स्थिति उत्पन्न होती है

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्॥सत्॥इति॥द्रव्यलक्षणम्॥ =उत्पत्ति-नाश-स्थिरतास्वरूपसहित =युक्त)सत् है ऐसा द्रव्यका लक्षण

उक्तम्॥पुनः॥अपरेण॥प्रकारेण॥द्रव्य-लक्षण-प्रतिपादन अर्थम्॥आह=(सूत्र ३० मेंकहागयाहै)अन्यप्रकारकरि द्रव्यका लक्षणकहनेकेलिये कहतेहैंकि

सूत्रम्—[1] गुणपर्यायवद्द्रव्यम्[2](3)॥ ३८ ॥ = गुणपर्यायवत-द्रव्यम् अस्ति ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थ—गुण-पर्यायवत्॥द्रव्यम्॥ अस्ति॥ =गुण-पर्याय(स्वभाव-स्वरूप,वाला(=वत्)द्रव्य है,अथवा गुणवान् पर्यायवान् द्रव्यहै, गुण और पर्यायोंकरि युक्त(सहित)द्रव्य है अर्थात् गुण और पर्याय जिसके हैं

या जिसमें हैं वही द्रव्य है। भावार्थ द्रव्यकी अनेक परिणति होनेपर भी जो द्रव्यसे भिन्न न हो द्रव्यके साथ नित्य रहै सो तो गुण है। और क्रमवर्ती होय पलटनरूप होय सो पर्याय है। द्रव्यके जितने गुण है वे द्रव्यसे कभी भिन्न नहीं होवे हैं॥ समस्त गुणोंका समूह (=समुदाय)ही द्रव्य है। द्रव्यकी अनेक पर्यायें (अवस्थायें)पलटते हुए भी गुण कभी नहीं पलटते। द्रव्यके नित्य साथ या अविनाभावी है। इसी कारण गुणोंको अन्वयी कहते हैं और पर्यायोंको व्यतिरेकी(क्योंकि पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं)

(१) गुणपर्यायवत् द्रव्यम =गुणवत्वे सति पर्यायवत्वद्रव्यत्वम् (सभाष्य० पृष्ठ १४०)गुणवान् होते सन्ते जिसमें कोई न कोई पर्याय हो वह द्रव्यहै (२)वत् =वाला सहित युक्त सपन्न सयुक्त—जैसे गुणवत् गुणवाला गुणसहित,गुणयुक्त गुणसंपन्न गुणसयुक्त(३)३८वां सूत्रमें दोबारा द्रव्यका लक्षण क्यों कहा जब २९वां सूत्रमें सत्द्रव्यलक्षणम् कहा है? (उत्तर)पहिले सत् लक्षण कहा सो तो शुद्ध द्रव्यका लक्षण है सो(सत्) एकही सो सामान्य है, अभेदरूपहै इसका महान् द्रव्यभी कहिये। जातें सर्ववस्तु हैं सो सत्ताको उलंघि नाहीं वर्ते हैं।सर्वद्रव्य सर्वपर्याय सत्ताके विषयवर्ती जिसको ज्ञानगोचर तथा वचनगोचर कहिये सो सर्व सत्तामयी है। बहुरि द्रव्य अनेक हैं तिनका भिन्न व्यवहार करनेका यह गुणपर्याय सहितपना दूसरा लक्षण कहा सो यह लक्षण न कहिये तो द्रव्योंके गुणपर्याय न्यारे न्यारे हैं, ते द्रव्य न ठहरै तब सर्वथा सत्ही द्रव्य ठहरै।चेतन अचेतन आदि द्रव्योंका लोप होय तब संसार मोक्ष आदि व्यवहारका भी लोप होय तिससे यह लक्षण का कथन यह है॥

गुणाश्च पर्यायाश्च गुणपर्याया तेऽस्य सतीतिगुणपर्यायवद्द्रव्यम्॥ अत्र मतोरुत्पत्तावुक्त एव समाधि ।कथंचित् भेदो ऽपत्तेरिति।केगुणा केपर्याया ।अन्वयिनोगुणा व्यतिरेकिण पर्याया ।उभयैरुपेतंद्रव्यमिति।उक्तंच

शब्दानुवाद:—गुणा ॥च॥पर्याया॥च गुणपर्याया॥	=बहुरि(=च) गुणहैं और(=च)पर्यायें हैं, 'गुणपर्याया:'ऐसा बाक्य (द्वन्द्वसमासमें) है
ते॥अस्य॥संति॥इति॥गुणपर्यायवत्॥द्रव्यम्॥	=ते (गुण-पर्याय जिसके हैं ऐसा'गुण-पर्यायवत् द्रव्यम्' सूत्र हुआ ।
अत्र॥(१)मतो॥उत्पत्तौ॥उक्त॥एव॥समाधि:॥	=यहाँ मतुप् मत्=वत्)प्रत्ययकी उत्पत्ति विषय)में(पूर्व कथित या कहाहुआ) ही समाधान है
कथंचित्॥भेद॥उपपत्ते॥इति॥	=कथंचित्भेदकी युक्ति या साधन(=उपपत्ते:)से(मतुप् प्रत्ययबने)एसाहै अर्थात् जिस वस्तुके (प्रकाशक शब्दके)साथ मतुप् (मत्=वत्)प्रत्यय लगायाजाताहै वो कभी तो भेदपनासेएक वस्तुको दूसरी वस्तुसे भिन्न दिखाना होता है और कथंचित् अभेद विवक्षासे पृथक् न बनावनेके लियेभी(मतुप् प्रत्यय) लाते हैं। जैसे 'दण्डवान् देवदत्त' यहांपर देवदत्त मनुष्य है सो अन्य वस्तु है और दण्ड अन्य वस्तु है, भेद विवक्षामें मतुप्(प्रत्यय)है ।'सारवान् स्तम्भ'में स्तम्भसे सार पृथक् नहीं।स्तम्भ और सार(=ज़ोर)अथवा वह वस्तु जिसका स्तम्भ हो पृथक् पृथक् नहीं रहती हैं तौभी मतुप् प्रत्यय अभेदपनाके अर्थमें वा एकपनाके अर्थमें आये हैं तैसे ही द्रव्य है सो अपने'गुणपर्यायोंसे भिन्नभिन्न नाहिं' । "गुणपर्याय बिनाद्रव्य नहीं"पं० सदासुखकीकृत तत्वार्थसूत्र(लघु)टीका पृष्ठ २४॥
के॥गुणा॥के॥पर्याया॥अन्वयिन:॥गुणा:॥	=गुण क्या हैं ? पर्यायें क्या हैं ? अन्वयी अथवा नित्य साथ रहनवाले गुण हैं अर्थात् जो द्रव्यसे किसी काल और किसी अवस्थामें पृथक् नहीं होते हैं वे गुण, सदैव (नित्य) जोद्रव्य साथही रहते हैं । वे सबगुण कदापि नहीं पलटते हैं । उन गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है वे द्रव्यमें एकमेकतन्मयहैं
व्यतिरेकिण:॥पर्याया:॥	=पलटनेवाली या भिन्न भिन्न रूपमें होनेवाली पर्यायें हैं अर्थात् द्रव्यकी अवस्थायें समय समयपर क्रमवर्ती होंय पलटती रहतीहैंअथवा पर्यायेंहैं वे द्रव्यकाविकार(=क्रमपरिणाम,)है
उभयै॥उपेतम्॥द्रव्यम्॥इति॥उक्तम्॥च॥	=दोनों(गुणों तथा पर्यायों)करि युक्त(=उपेतं)द्रव्य है कहाभी गया है कि

(१ 'यत्र अब विशेषण है तब [illegible] जाता है "मतो"अर्थात् जिसमें इसका रूप है । यह [illegible] प्रत्यय है जो संज्ञाके पश्चात् संबन्धार्थ में अर्थात् 'वाला सम्पन्न,सहित युक्त सम्पन्न इन अर्थों का वाचक होताहै जैसे विद्यावत(=विद्यावाला विद्यासंयुक्त,विद्यासहित विद्यायुक्त विद्यासंपन्न)॥यदि [illegible] आज्ञार्थ तो वर्तमान [illegible] बनजाता है जैसे'कृत से कृतवत् (काम करचुकनेवाला)॥ दूसरे जब अव्यय होता है तब सदृश या समान अर्थ में आताहै जैसे [illegible] (रामके सदृश या समान)[illegible] [illegible] सोता नहीं बरन् जाने वाला)इसको यहां द्वितीय अर्थ से प्रयोजन नहीं है अब प्रश्न यह है कि मतुप् (=मत्)[illegible] 'वत्' कैसे होजाताहै अर्थात् म्'का'व्'में कैसे परिवर्तन होजाता है ॥ अष्टाध्यायी ८-२-९ सूत्रसेगणपठित [illegible] [illegible] शब्दोंको छोड़कर यदि किसी शब्दके अन्तमें उपान्त्य(वा उपधामें म् व या) हो तो मतुप(मत्)के म् को व हो ॥ यहांपर 'मत् के स्थानमें [illegible] [illegible] [illegible] ऐसा सूत्र हुआ ॥ इस अध्याय के सूत्र [illegible] की टिप्पणीमें इसने [illegible] [illegible] [illegible] अर्थ में आता है । पृष्ठ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं हैं' [illegible] चाहिये और पृष्ठ [illegible] के अन्तिम वाक्य 'यह हैं' के स्थानमें 'यह हैं' [illegible] चाहिये ।

गुणइदि दव्वविहाणं दव्वविकारो हि पज्जवो भणिदो । तेहि अणूणं दव्वं अजुदपसिद्धं हवे णिच्चं इति एतदुक्तं भवति-द्रव्यं द्रव्यान्तराद्येन विशिष्यते स गुण । तेन हि तद्द्रव्यं विधीयते । असति तस्मिन् द्रव्यसंकरप्रसंग स्यात् ॥ तद्यथा-जीव पुद्गलादिभ्यो ज्ञानादिभिर्गुणैर्विशिष्यते पुद्गलादयश्च रूपादिभि । ततश्चाविशेषे संकर स्यात् ॥

(१ गुणो इदि दव्वविहाणं (गुणः इति द्रव्यविधानम्) = गुण ऐसा द्रव्यका विधान है अर्थात् गुणका समुदाय सो द्रव्य है

दव्वविकारो हि पज्जवो भणिदो (द्रव्य-विकारः हि पर्यायः भणितः) = द्रव्यके विकारही(=हि या क्रमपरिणामही) पर्याय कहीजाती है अर्थात् द्रव्यका क्रमरूपसे एक अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थारूप होना सो पर्यायकहीजाती है

(२ तेहि अणूणं दव्वं (तेभ्यः अन्यूनम् द्रव्यम्) = तिन(गुण तथा पर्यायों)करि सहित द्रव्य है

अजुदपसिद्धं हवे णिच्चं (अयुतप्रसिद्धं भवेत् नित्यम्) = अयुत प्रसिद्ध अर्थात् संयोगरूप नहीं है तदात्मक स्वरूप है(और)नित्य है॥ (द्रव्य अपने विशेष लक्षणको कदापि नहीं छोड़ताहै सारांश गुणपर्यायोंकरि सहित द्रव्य है तदात्मक स्वरूप है कभी विशेष लक्षणको नहीं छोड़ता है)

इति एतत् उक्तम् भवति द्रव्यम् = इस प्रकार यह कथन या अर्थ होता है कि (एक)द्रव्य

द्रव्यान्तरात् येन विशिष्यते = अन्यद्रव्यसे जिसकरि विशेषित कीजाती है अर्थात् विशेषरूप होकर भिन्न दीखती है

सः गुणः तेन हि तत् द्रव्यम् विधीयते = वह गुण है । तिस(गुण)करिही वह द्रव्यविधान कीजाती है या व्यवस्थित कीजाती है

असति तस्मिन् द्रव्य-संकर-प्रसंगः स्यात् = तिस(गुण)के न होनेपर(=असति द्रव्यके पलटने तथा 'एकता'का प्रसंग होजाय

तद्यथा जीव-पुद्गलादिभ्यः ज्ञानादिभिः गुणैः = जैसे जीवद्रव्य पुद्गलादिक(द्रव्यों)से ज्ञानादिक गुणोंकरि

विशिष्यते पुद्गलादयः च रूपादिभिः = न्यारा दीखता है और पुद्गलादिक रूपादि (गुणों)करि(जीवसे न्यारे जानेजाते हैं

ततः च अविशेषे = और (ज्ञानादि और रूपादिक गुणोंके) विशेषनहोनेमें तो(=ततः)(एक द्रव्य दूसरेमें

संकरः स्यात् = पलटजाय अर्थात् जो जीवद्रव्य ज्ञानादिकगुणोंकरि और पुद्गलद्रव्य रूपादि गुणोंकरि

(१) प्राकृतमें 'गुण' शब्दके 'गुण गुणः' प्रथमाविभक्ति एकवचन पुल्लिंग 'रामा' शब्दके समान है ॥ (प्राकृत सुबन्त कौमुदी पृष्ठ १७२)

(२) हि=निश्चये वितर्क सम्भावने विस्मये च (प्राकृत व्याकरण हरिकेशकृत पृष्ठ १३३) यहां पर निश्चय करके ही अर्थमें है ।

(३) तेहि=तेभ्यः, इत्यादि पुल्लिंग तद् शब्दका पंचमी विभक्ति बहुवचन है (प्राकृत सुबन्तकौमुदी पृष्ठ १८३)

गुणाश्च पर्यायाश्च गुणपर्याया तेऽस्य सन्तीतिगुणपर्यायवद्द्रव्यम्॥ अत्र मतोरुत्पत्तावुक्त एव समाधि ।कथंचित् भेदो पपत्तेरिति।केगुणा केपर्याया ।अन्वयिनोगुणा व्यतिरेकिण पर्याया ।उभयैरुपेतंद्रव्यमिति।उक्तंच

पृथग्नुवाद—गुणा ॥च॥पर्याया॥च गुणपर्याया॥ =बहुरि(=च) गुणहैं और(=च)पर्यायें हैं, 'गुणपर्यायाः' ऐसा वाक्य (द्वन्द्वसमासमें) है

ते॥अस्य॥सन्ति॥इति॥गुणपर्यायवत्॥द्रव्यम्॥ =जो (गुण-पर्याय जिसके हैं ऐसा 'गुण-पर्यायवत् द्रव्यम्' सम हुआ ।

अत्र॥मतो॥उत्पत्तौ॥उक्त॥एव॥समाधिः॥ =यहां मतुप् मत्=वत्)प्रत्ययकी उत्पत्ति(विषय)में(पूर्व)कथित वा कहाहुआ ही समाधान है

कथंचित्॥भेद उपपत्तेः॥इति॥ =कथंचित्भेदकी युक्ति वा साधन(=उपपत्ति)से(मतुप् प्रत्ययबने)ऐसाहैअर्थात् जिस वस्तुके (प्रकाशक शब्दके)साथ मतुप्(मत्=वत्)प्रत्यय लगाया जाताहै तो कभी तो भेदपनासेएक वस्तुको दूसरी वस्तुसे भिन्न दिखाना होता है और कथंचित् अभेद विवक्षासे पृथक् न बतानेके लियेभी(मतुप् प्रत्यय) लाते हैं। जैसे "दण्डवान् देवदत्त" यहांपर देवदत्त मनुष्य है सो अन्य वस्तु है और दण्ड अन्य वस्तु है, भेद विवक्षामें मतुप्(प्रत्यय)है ।'सारवान स्तम्भ'में स्तम्भसे सार पृथक् नहीं।स्तम्भ और सार(=शोभा)अथवा वह वस्तु जिसका स्तम्भ है पृथक पृथक नहीं एकही हैं तौभी मतुप् प्रत्यय अभेदपनाके अर्थमें वा एकपनाके अर्थमें आये हैं तैसे ही द्रव्य है सो अपने 'गुणपर्यायोंसे भिन्नभिन्न नहींहै' । "गुणपर्याय विनाद्रव्य नहीं"पं०सदासुखजीकृत तत्त्वार्थसूत्र(लघु)टीका पृष्ठ २४॥

के॥गुणा॥के॥पर्याया॥अन्वयिन॥गुणा॥ =गुण क्या हैं ? पर्यायें क्या हैं ? अन्वयी अथवा नित्य साथ रहनवाले गुण हैं अर्थात् जो द्रव्यसे किसी काल और किसी अवस्थामें पृथक् नहीं होते हैं वे गुण, सदैव (नित्य) ... त्यागि नहीं पलटते हैं । उन गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है वे द्रव्यमें एकमेकतन्मयहैं

व्यतिरेकिण॥प... [illegible] भिन्न भिन्न रूपमें होनेवाली पर्यायें हैं अर्थात् द्रव्यकी अवस्थायें समय ...ी रहतीहैंअथवा पर्यायेंहैं वे द्रव्यकाविकार(=क्रमपरिणाम,)हैं

उभयै ... [illegible] ...)द्रव्य है कहागी गया है कि

तद्यथा-परस्परविलक्षणाना समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ॥यदिदं रूप तस्मादर्थान्तरभूता रसादय । तत समुदायोऽनर्थान्तरभूत ॥यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूतः समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

तद्यथा=परस्पर-विलक्षणानाम्	=जैसे(=तद्यथा)(किसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ('गुण पर्याय)निका
समुदाये सति समुदायस्य एकानर्थान्तर	=समुदाय होनेपर (=सति)(उस)समुदायके(गुण-पर्यायोंसे)अनर्थान्तर
भावात्	=भाव (मानने)सेअथवा अभेदपना मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुणपर्यायोंसे कदाचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)
सर्व अभावः	=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं ठहरता है क्योंकि
परस्परतः अर्थान्तरभूतत्वात् यत् इदम्	=(वे गुण-पर्याय)आपस में भिन्नभिन्न रूप है(दृष्टान्त देतेहै)जो(पुद्गल का)यह
रूपम् तस्मात् अर्थान्तरभूताः रस-आदयः	=रूप(गुण)है तिस (रूपगुण)से(उसी पुद्गलद्रव्य के)रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
ततः समुदायः अनर्थान्तरभूतः यः च	=तिस (रूपगुण) से समुदाय अभेदरूप है और जो(=यः अर्थात् वह समुदाय)
रसादिभ्यः अर्थान्तरभूतात् रूपात्	=रसादिक से भेदरूप होनेंसे या भिन्न होने से, रूपसे
अनर्थान्तरभूतः समुदायः सः कथं रसादिभ्यः	=समुदाय अभेदरूपहुआ सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे
अर्थान्तरभूतः न भवेत् ततः च रूपमात्रम्	=पृथक् नहोयअर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नहोई होय औरतिस(हेतु)से(=ततः)रूपमात्र

(२)

गुणके विकारको पर्याय कहते है

- व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणका विकार
  - स्वभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् बिना अन्य निमित्तके जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी सिद्धपर्याय
  - विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् दूसरे निमित्तसे जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी मनुष्य तिर्यंच नारक देव पर्याय
- अर्थ पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार
  - स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात् बिना दूसरे निमित्तके जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका केवल ज्ञान
  - विभाव अर्थपर्याय अर्थात् पर निमित्त से जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवके राग, द्वेष क्रोध मानादिक

जीव पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं, धर्म अधर्म आकाश-काल द्रव्योंके अगुरु लघुगुणमें षड्गुणी हानि वृद्धिरूप अर्थ पर्यायही होतीहै

तत सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा । पुद्गलादीना च रूपादय ॥ तेषा विकारा विशेषात्मना भिद्यमाना पर्याया ॥ घटज्ञानं पटज्ञानं क्रोधो मानो गंधो वर्णस्तीवो मंद इत्येवमादय । तेभ्योऽन्यत्व कथंचिदापद्यमान समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायोऽनर्थांतरभूत एव स्यात् सर्वाभाव स्यात् ॥

एक दूसरेसे भिन्न भिन्न न जाने जायँ तो पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें पलटजाय या एक होजाय और जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्र व्यका दूसरेद्रव्यमें पलटाव होजावे, पूर्वोक्त विशेष गुणोंके अभाव होनेपर जीव पुद्गलमें पलटजावे और पुद्गलद्रव्य पुद्गलही रहे तो एकता होवे और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें परिवर्तित होजावे और जीवद्रव्य जीवही रहे तो दोनों द्रव्योंमें एकता ठहरे।

तत॰सामान्य अपेक्षया॰ अन्वयिन॰ ज्ञान =वहां सामान्य अपेक्षासे नित्यसाथरहनेवाले या सदैवसाथरहनेवाले(=अन्वयिनः)ज्ञान

आदय॰ जीवस्य॰ गुणा ॥ पुद्गल-आदीनाम्॰ च॰ =आदिक जीवके गुण हैं और पुद्गलादिकोंके(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी)

रूप-आदय॰ तेषाम्॰ विकारा॰ =रूपादिक(गुण)हैं,तिन(जीव पुद्गलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न छोड़कर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें परिवर्तन

विशेष आत्मना॰ भिद्यमाना॰ पर्याया॰ ॥ घटज्ञानम्॰ =विशेष स्वरूपकरिके भेदरूप हुए वे पर्याय हैं (जैसे)घड़ेका ज्ञान

पटज्ञानम्॰ क्रोध॰ मान॰ गंध॰ वर्ण॰ तीव्र॰ =कपड़ेका ज्ञान,क्रोध,मान,गंध,वर्ण,तीव्र

मंद॰ इत्येवम्॰ आदय॰ =मंद इत्यादि आदि(जीव और पुद्गलोंकी पर्यायें)हैं अर्थात् घड़ेका ज्ञान कपड़ेका ज्ञान, क्रोध(रिस), अहंकार इत्यादि जीवके पर्याय हैं और गंध-रूप-तीव्र-मंद इत्यादिक पुद्गलके पर्याय हैं

तेभ्य॰ अन्यत्वम्॰ ॥ कथंचित्॰ आपद्यमान॰ =तिन(गुण पर्यायों)से कथंचित् अन्यपनाको प्राप्त होता हुआ

समुदाय॰ द्रव्य व्यपदेश-भाक्॰ =समुदाय द्रव्यनामका प्राप्त करनेवाला(=भाक्)है अर्थात् गुण और पर्यायें द्रव्यसे अभेदरूप हैं द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३४५)गुण-पर्यायोंमें और समुदायमें कथंचित् भेद माननेसे कथंचित् अभेद माननेसे द्रव्यनामकी सिद्धि होतीहै(संस्कृतसर्वार्थसिद्धि २६२)

यदि॰ हि॰ सर्वथा॰ समुदाय॰ अनर्थान्तरभूत॰ =यदि सर्वप्रकारसेही(=हि)समुदाय(उनगुणपर्यायोंसे)अभेदरूप(अनर्थान्तरभूत)

एव॰ स्यात् । सर्व-अभाव॰ स्यात् =ही हो तो सर्वका अभाव होजाय अर्थात् यदि समुदायमें और गुणपर्याय (समुदायी)में अपना सर्वप्रकार से हो तो सबतरहकी अविनाभावता रहै न किसीका भी अस्तित्व न रहै

तद्यथा-परस्परविलक्षणाना समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ॥यदिद रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादयः । तत समुदायोऽनर्थान्तरभूत ॥यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूतः समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

तद्यथा=परस्पर विलक्षणानाम्॥	=जैसे(=तद्यथा)(किसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ('गुण पर्याय)निका
समुदाये॥सति॥समुदायस्य॥एकानर्थान्तर	=समुदाय होनेपर (=सति)(उस)समुदायके(गुण-पर्यायोंसे)अनर्थान्तर
भावात्॥	=भाव (मानने)सेअथवा अभेदपना मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुणपर्यायोंसे कदाचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)
सर्व अभाव॥	=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं ठहरता है क्योंकि
परस्परत =अर्थान्तरभूतत्वात्॥यत्॥इदम्॥	=(वे गुण-पर्याय)आपस में भिन्नभिन्न रूप हैं(दृष्टान्त देतेहैं)जो(पुद्गल का)यह
रूपम्॥तस्मात्॥अर्थान्तरभूता॥रस-आदयः॥	=रूप(गुण)है तिस (रूपगुण)से(उसी पुद्गलद्रव्य के)रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
ततः=समुदायः॥अनर्थान्तरभूतः॥यः॥च=	=तिस (रूपगुण) से समुदाय अभेदरूप है और जो(=यः अर्थात् वह समुदाय)
रसादिभ्यः॥अर्थान्तरभूतात्॥रूपात्॥	=रसादिक से भेदरूप होनेंसे या भिन्न होने से, रूपसे
अनर्थान्तरभूत॥समुदायः॥सः॥कथं=रसादिभ्यः॥	=समुदाय अभेदरूप हुआ सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे
अर्थान्तरभूतः॥न=भवेत्॥ततः=च=रूपमात्रम्॥	=पृथक् नहोयअर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नहोई होय औरतिस(हेतु)से(=तत)रूपमात्र

(१) गुणके विकारको पर्याय कहते हैं

- व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणका विकार
  - स्वभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् बिना अन्य निमित्तके जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी सिद्धपर्याय
  - विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् दूसरे निमित्तसे जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी मनुष्य तिर्यंच नारक, देव पर्याय
- अर्थ पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार
  - स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात् बिना दूसरे निमित्तके जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका केवल ज्ञान
  - विभाव अर्थपर्याय अर्थात् पर निमित्त से जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवके राग, द्वेष क्रोध मानादिक

जीव पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं, धर्म अधर्म आकाश काल द्रव्योंके अगुरु लघुगुणमें षड्गुणी हानि वृद्धिरूप अर्थ पर्यायही होतीहै

तत सामान्यापेत्तया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा । पुद्गलादीनां च रूपादय ॥ तेषा विकारा विशेपात्मना भिद्यमाना पर्याया ॥ घटज्ञानं पटज्ञानं क्रोधो मानो गंधो वर्णस्तीवो मद इत्येवमादय । तेभ्योऽन्यत्वं कथंचिदापद्यमान समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायोऽनर्थांतरभूत एव स्यात् सर्वाभाव स्यात् ॥

२४४ एक दूसरेसे भिन्न भिन्न न जाने जायँ तो पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें पलटजाय वा एक होजाय और जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्रव्यका दूसरेद्रव्यमें पलटाव होजावे, पूर्वोक्त विशेप गुणोंके अभाव होनेपर जीव पुद्गलमें पलटजावे और पुद्गलद्रव्य पुद्गलही रहे वो एकता होवे और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें परिवर्तित होजावे और जीवद्रव्य जीवही रहे तो दोनों द्रव्योंमें एकता ठहरे।

तत्र सामान्य अपेक्षया । अन्वयिन । ज्ञान =वहां सामान्य अपेक्षासे नित्यसाथरहनेवाले वा सदैवसाथरहनेवाले(=अन्वयिन)ज्ञान

आदय । जीवस्य । गुणा । पुद्गल-आदीनाम् । च =आदिक जीवके [illegible] हैं और पुद्गलादिकोंके(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी)

रूप-आदय । तेषाम् । विकारा । =रूपादिक(गुण)हैं,तिन(जीव पुद्गलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न छोड़कर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें परिवर्तन

विशेप आत्मना । भिद्यमाना । पर्याया । घटज्ञानम् । =विशेप स्वरूपकरिके भेदरूप हुए वे पर्याय हैं (जैसे)घड़ेका ज्ञान

पटज्ञानम् । क्रोध । मान । गंध । वर्ण । तीव्र । =कपड़ेका ज्ञान,क्रोध,मान,गंध,वर्ण,तीव्र

मद । इत्येवम् आदय । =मद इत्येव आदि(जीव और पुद्गलोंकी पर्यायें)हैं अर्थात् घड़ेका ज्ञान कपड़ेका ज्ञान, क्रोध(रिस), अहंकार इत्यादि जीवके पर्याय हैं और गंध-रूप-तीव्र-मंद इत्यादिक पुद्गलके पर्याय हैं

तेभ्य । अन्यत्वम् । कथंचित् आपद्यमान । =तिन(गुण पर्यायों)से कथंचित् अन्यपनाको प्राप्त होता हुआ

समुदाय । द्रव्य व्यपदेश-भाक् । =समुदाय द्रव्यनामका प्राप्त करनेवाला(=भाक्)है अर्थात् गुण और पर्यायें द्रव्यसे अभेद रूप हैं द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ २४५)गुण-पर्यायोंमें और समुदायमें कथंचित् भेद माननेसे कथंचित् अभेद माननेसे द्रव्यनामकी सिद्धि होतीहै(संस्कृतसर्वार्थसिद्धि २६२) १४५

यदि । हि । सर्वथा । समुदाय । अनर्थान्तरभूत । =यदि सर्वप्रकारसही(=हि)समुदाय(उनगुणपर्यायोंसे)अभेदरूप(अनर्थान्तरभूत)

एव । स्यात् । सर्व-अभाव । स्यात् । =ही हो तो सबका अभाव होजाय अर्थात् यदि समुदायमें और गुणपर्याय (समुदायी)में

अनन्यपना सर्वप्रकार से हो तो [illegible]

तद्यथा-परस्परविलक्षणाना समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ॥यदिद रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादय ।ततः समुदायोऽनर्थान्तरभूत ॥यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूतः समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् ।ततश्च रूपमात्रं

तद्यथा=परस्पर विलक्षणानाम्॥	=जैसे(=तद्यथा)(किसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ('गुणपर्याय)निका
समुदाये॥सति॥समुदायस्य॥एकानर्थान्तर	=समुदाय होनेपर (=सति)(उस)समुदायको(गुण-पर्यायोंसे)अनर्थान्तर
भावात्॥	=भाव (मानने)से अथवा अभेदपना मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुणपर्यायोंसे कदाचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)
सर्व अभाव ॥	=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं ठहरता है क्योंकि
परस्परतः॥अर्थान्तरभूतत्वात्॥यत्॥इदम्॥	=(वे गुण-पर्याय)आपस में भिन्नभिन्न रूप हैं(दृष्टान्त देतेहैं)जो(पुद्गल का)यह
रूपम्॥तस्मात्॥अर्थान्तरभूताः॥रस-आदयः॥	=रूप(गुण)है तिस (रूपगुण)से(उसी पुद्गलद्रव्य के)रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
ततः॥समुदायः॥अनर्थान्तरभूतः॥यः॥च॥	=तिस (रूपगुण) से समुदाय अभेदरूप है और जो(=यः अर्थात् यह समुदाय)
रसादिभ्यः॥अर्थान्तरभूतात्॥रूपात्॥	=रसादिक से भेदरूप होनेंसे या भिन्न होने से, रूपसे
अनर्थान्तरभूतः॥समुदायः॥सः॥कथं॥रसादिभ्यः॥	=समुदाय अभेदरूपहुआ सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे
अर्थान्तरभूतः॥न॥भवेत्॥ततः॥च॥रूपमात्रम्॥	=पृथक् नहोयअर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नहोई होय औरतिस(हेतु)से(=ततः)रूपमात्र

(१) गुणके विकारको पर्याय कहते हैं

व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणका विकार

- स्वभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् बिना अन्य निमित्तके जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी सिद्धपर्याय
- विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् दूसरे निमित्तसे जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी मनुष्य तिर्यंच नारक देव पर्याय

अर्थ पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार

- स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात् बिना दूसरे निमित्तके जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका केवल ज्ञान
- विभाव अर्थपर्याय अर्थात् पर निमित्त से जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवके राग द्वेष क्रोध मानादिक

जीव पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं, धर्म अधर्म आकाश-काल द्रव्योंके अगुरु लघुगुणमें षट्गुणी हानि वृद्धिरूप अर्थ पर्यायही होतीहै

तत सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा । पुद्गलादीनां च रूपादय ॥ तेषा विकारा विशेषात्मना भिद्यमाना पर्याया ॥ घटज्ञानं पटज्ञानं क्रोधो मानो गंधो वर्णस्तीव्रो मंद इत्येव मादय । तेभ्योऽन्यत्वं कथंचिदापद्यमान समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायोऽनर्थांतरभूत एव स्यात् सर्वाभाव स्यात् ॥

एक दूसरेसे भिन्न भिन्न न जाने जायँ तो पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें पलटजाय वा एक होजाय और जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्रव्यका दूसरेद्रव्यमें पलटाव होजावे, पूर्वोक्त विशेष गुणोंके अभाव होनेपर जीव पुद्गलमें पलटजावें और पुद्गलद्रव्य पुद्गलही रहे तो एकता होवे और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें परिवर्तित होजावे और जीवद्रव्य जीवही रहे तो दोनों द्रव्योंमें एकता ठहरे ।

ततः॰सामान्य अपेक्षया॥ अन्वयिनः॥ ज्ञान आदयः॥ जीवस्य॥ गुणाः॥ पुद्गल-आदीनाम्॥ च॰ रूप-आदयः॥ तेषाम्॥ विकाराः॥ — =वहां सामान्य अपेक्षासे नित्यसाथरहनेवाले वा सदैवसाथरहनेवाले(=अन्वयिनः)ज्ञान =आदिक जीवके गुण हैं और पुद्गलादिकोंके(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी) =रूपादिक(गुण)हैं,तिन(जीव पुद्गलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न छोड़कर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें परिवर्तन

विशेष-आत्मना॥ भिद्यमानाः॥ पर्यायाः॥ ॥घटज्ञानम्॥ ॥ =विशेष स्वरूपकरिके भेदरूप हुए वे पर्याय हैं (जैसे)घड़ेका ज्ञान

पटज्ञानम्॥ ॥क्रोधः॥ मानः॥ गंधः॥ वर्णः॥ तीव्रः॥ — =कपड़ेका ज्ञान,क्रोध,मान,गंध,वर्ण,तीव्र

मंदः॥ इत्येवम्॰आदयः॥ — =मंद इत्येव१ आदि(जीव और पुद्गलोंकी पर्यायें)हैं अर्थात् घड़ेका ज्ञान कपड़ेका ज्ञान, क्रोध(रिस), अहंकार इत्यादि जीवके पर्याय हैं और गंध-रूप-तीव्र-मंद इत्यादिक पुद्गलके पर्याय हैं

तेभ्यः॥ अन्यत्वम्॥ ॥कथंचित्॰आपद्यमानः॥ — =तिन(गुण पर्यायों)से कथंचित् अन्यपनाको प्राप्त होता हुआ

समुदायः॥ द्रव्य व्यपदेश-भाक्॥ — =समुदाय द्रव्यनामको प्राप्त करनेवाला(=भाक्)है अर्थात् गुण और पर्यायें द्रव्यसे अभेद रूप हैं द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ २४५)गुण-पर्यायोंमें और समुदायमें कथंचित् भेद माननेसे कथंचित् अभेद माननेसे द्रव्यनामकी सिद्धि होतीहै(संस्कृतसर्वार्थसिद्धि २६२)

यदि॰हि॰सर्वथा॰समुदायः॥ अनर्थान्तरभूतः॥ — =यदि सर्वप्रकारसही(=हि)समुदाय(उनगुणपर्यायोंसे)अभेदरूप(अनर्था तरभूत)

एव॰स्यात्॥ सर्व-अभावः॥ स्यात्॥ — =ही हो तो सर्वका अभाव होजाय अर्थात् यदि समुदायमें और गुणपर्याय (समुदायी)में अनन्यपना सर्वप्रकार से हो तो सबस्वकी अविद्यमानता ठहरे न किसीका भी अस्तित्व न ठहरे

(१) तद्यथा-परस्परविलक्षणाना समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ॥ यदिद रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादयः । तत समुदायोऽनर्थान्तरभूत ॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूत समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

तद्यथा=परस्पर विलक्षणानाम्॥	=जैसे(=तद्यथा)(किसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ('गुणपर्याय)निका
समुदाये॥सति॥समुदायस्य॥एकानर्थान्तर	=समुदाय होनेपर (=सति)(उस)समुदायके(गुण-पर्यायोंसे)अनर्थान्तर
भावात्॥	=भाव (मानने)से अथवा अभेदपना मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुणपर्यायोंसे कदाचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)
सर्व अभाव॥	=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं ठहरता है क्योंकि
परस्परतः=अर्थान्तरभूतत्वात्॥यद्॥इदम्॥	=(वे गुण-पर्याय)आपस में भिन्नभिन्न रूप हैं(दृष्टान्त देतेहैं)जो(पुद्गल का)यह
रूपम्॥तस्मात्॥अर्थान्तरभूताः॥रस-आदयः॥	=रूप(गुण)है तिस (रूपगुण)से(उसी पुद्गलद्रव्य के)रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
ततः=समुदायः॥अनर्थान्तरभूतः॥यः॥च=	=तिस (रूपगुण) से समुदाय अभेदरूप है और जो(=यः अर्थात् वह समुदाय)
रसादिभ्यः॥अर्थान्तरभूतात्॥रूपात्॥	=रसादिक से भेदरूप होनेसे या भिन्न होने से, रूपसे
अनर्थान्तरभूतः॥समुदायः॥सः॥कथं=रसादिभ्यः॥	=समुदाय अभेदरूपहुआ सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे
अर्थान्तरभूतः॥न=भवेत्॥ततः=च=रूपमात्रम्॥	=पृथक् नहोय अर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नकोई होय औरतिस(हेतु)से(=ततः)रूपमात्र

(१) गुणके विकारको पर्याय कहते हैं

- व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणका विकार
  - स्वभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् बिना दूसरे निमित्तके जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी सिद्धपर्याय
  - विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् दूसरे निमित्तसे जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी मनुष्य तिर्यंच नारक देव पर्याय
- अर्थ पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार
  - स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात् बिना दूसरे निमित्तके जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका केवल ज्ञान
  - विभाव अर्थपर्याय अर्थात् पर निमित्त से जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवके राग द्वेष क्रोध मानादिक

जीव पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं धर्म अधर्म आकाश-काल द्रव्योंके अगुरु लघुगुणमें षड्गुणी हानि वृद्धिरूप अर्थ पर्यायही होतीहै

तत सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा । पुद्गलादीना च रूपादय ॥ तेषा विकारा विशेषात्मना भिद्यमाना पर्याया ॥ घटज्ञानं पटज्ञानं क्रोधो मानो गंधो वर्णस्तीव्रो मद इत्येवमादय । तेभ्योऽन्यत्व कथंचिदापद्यमान समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायोऽनर्थांतरभूत एव स्यात् सर्वाभाव स्यात् ॥

एक दूसरेसे भिन्न भिन्न न जाने जायें तो पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें पलटजाय वा एक होजाय और जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्रव्य दूसरेद्रव्यमें पलटजाय होजावे, पूर्वोक्त विशेष गुणोंके अभाव होनेपर जीव पुद्गलमें पलटजावे और पुद्गलद्रव्य पुद्गलही रहै तो एकता होवे और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें परिवर्तित होजावे और जीवद्रव्य जीवही रहै तो दोनों द्रव्योंमें एकता ठहरै ।

तत्र सामान्य-अपेक्षया अन्वयिन ज्ञान — =वहां सामान्य अपेक्षासे नित्यसाथरहनेवाले वा सदैवसाथरहनेवाले(=अन्वयिन)ज्ञान

आदयः जीवस्य गुणाः पुद्गल-आदीनाम् च — =आदिक जीवके गुण हैं और पुद्गलादिकोंके(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी)

रूप-आदयः तेषाम् विकाराः — =रूपादिक(गुण)हैं,तिन(जीव पुद्गलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न छोडकर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें परिवर्तन

विशेष आत्मना भिद्यमानाः पर्यायाः ॥ घटज्ञानम् ॥ पटज्ञानम् — =विशेष स्वरूपकरिके भेदरूप हुए ते पर्याय हैं (जैसे)घडेका ज्ञान

क्रोधः मानः गन्धः वर्णः तीव्रः — =कपडेका ज्ञान,क्रोध,मान,गंध,वर्ण,तीव्र

मदः इत्येवम् आदयः — =मद इत्यादि(जीव और पुद्गलोंकी पर्यायें)हैं अर्थात् घडेका ज्ञान कपडेका ज्ञान, क्रोध(रिस), अहंकार इत्यादि जीवके पर्याय हैं और गंध-वर्ण-तीव्र-मंद इत्यादिक पुद्गलके पर्याय हैं

तेभ्यः अन्यत्वम् कथंचित् आपद्यमानः — =तिन(गुण पर्यायों)से कथंचित् अन्यपनाको प्राप्त होता हुआ

समुदायः द्रव्य व्यपदेश-भाक् — =समुदाय द्रव्यनामको प्राप्त करनेवाला(=भाक्)है अर्थात् गुण और पर्यायें द्रव्यसे अभेद रूप हैं द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३४१)गुण-पर्यायोंमें और समुदायमें कथंचित् भेद माननेसे कथंचित् अभेद माननेसे द्रव्यनामकी सिद्धि होती है(सस्कृतसर्वार्थसिद्धि २६२)

यदि हि सर्वथा समुदायः अनर्थान्तरभूतः — =यदि सर्वप्रकारसही(=हि)समुदाय,(समुदायपर्यायोंसे)अभेदरूप(अनर्थान्तरभूत)

एव स्यात् सर्व-अभावः स्यात् — =ही हो तो सर्वका अभाव होजाय अर्थात् यदि समुदायमें और गुणपर्याय (समुदायी)में अनन्यपना सर्वप्रकार से ही तो सबसब्की अविद्यमानता ठहरै वा किसीका भी अस्तित्व न ठहरै

मर्यादि विधि

१४४

अध्याय सूत्र ३८

१४४

तद्यथा-परस्परविलक्षणाना समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ॥ यदिद रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादयः । तत समुदायोऽनर्थान्तरभूत ॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूत समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

तद्यथा॰परस्पर विलक्षणानाम्॥	=जैसे(=तद्यथा)(किसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ('गुणपर्याय)निका
समुदाये॥सति॥समुदायस्य॥एकानर्थान्तर	=समुदाय होनेपर (=सति)(उस)समुदायके(गुण-पर्यायोंसे)अनर्थान्तर
भावात्॥	=भाव (मानने)सेअथवा अभेदपना मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुणपर्यायोंसे कदाचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)
सर्वाभावः॥	=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं ठहरता है क्योंकि
परस्परतः॰अर्थान्तरभूतत्वात्॥ यद्॥ इदम्॥	=(वे गुण-पर्याय)आपस में भिन्नभिन्न रूप हैं(दृष्टान्त देतेहैं)जो(पुद्गल का)यह
रूपम्॥ तस्मात्॥ अर्थान्तरभूताः॥ रस आदयः॥	=रूप(गुण)है तिस (रूपगुण)से(उसी पुद्गलद्रव्य के)रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
तत॰समुदायः॥ अनर्थान्तरभूतः॥ य ॥ च॰	=तिस (रूपगुण) से समुदाय अभेदरूप है और जो(=यः अर्थात् यह समुदाय)
रसादिभ्यः॥ अर्थान्तरभूतात्॥ रूपात्॥	=रसादिक से भेदरूप होने से या भिन्न होने से, रूपसे
अनर्थान्तरभूत॥ समुदाय॥ स॥ कथं॰रसादिभ्यः॥	=समुदाय अभेदरूपहुआ सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे
अर्थान्तरभूत॥ न॰भवत्॥ ततः॰च॰रूपमात्रम्॥	=पृथक् नहोयअर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नहोई होय औरतिस(हेतु)से(=ततः)रूपमात्र

(१) गुणके विकारको पर्याय कहते हैं

- व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणका विकार
  - स्वभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् बिना अन्य निमित्तके जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी सिद्धपर्याय
  - विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् दूसरे निमित्तसे जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी मनुष्य तिर्यंच नारक देव पर्याय
- अर्थ पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार
  - स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात् बिना दूसरे निमित्तके जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका केवल ज्ञान
  - विभाव अर्थपर्याय अर्थात् पर निमित्त से जो अर्थ पर्याय हो जैसे आत्माके राग द्वेष क्रोध मानादिक

और पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं, धर्म अधर्म आकाश-काल द्रव्योंके अगुरु लघुगुणमें षट्गुणी हानि वृद्धिरूप अर्थ पर्यायही होतीहै

समुदाय प्रसक्त ॥ नचैकं रूपंसमुदायो भवितुमर्हति। तत समुदायाभाव ।समुदायाभावश्च तदनर्थान्तर-भूताना समुदायिनामप्यभाव इति सर्वाभाव ।एवरसादिष्वपि योज्यम्॥ तस्मात्समुदायमिच्छताकथंचिद्

अर्थात् रसादिक से समुदाय भिन्नहोनेके कारणसे

समुदायः।प्रसक्तः।न॥च॥ =समुदाय प्राप्तहुआ ॥ और न

एकम्।इदम्।समुदायः।भवितुम्।अर्हति॥ =एक रूप(मात्र) समुदाय हो सकता है, वा होनेके योग्य है अर्थात् समुदायतो बहुतोंको कहते है और रूपगुण एकही हुवा इसलिये केवल रूपको समुदाय नहींकहसकते

१४६ ततः॥समुदाय अभावः।समुदाय अभावात्।च॥ =तिस कारणसे समुदायका अभाव हुआ और (=च)समुदायकी अविद्यमानतासे

तद्-अनर्थान्तरभूतानाम्।समुदायिनाम्।अपि॥ =उस(समुदाय)के अभेदरूप समुदायियोंका भी (अर्थात् वह जिस में समुदाय रहे उनकाभी)

अभावः।इति॥सर्व अभावः। =अभाव हुआ इस प्रकार समस्त का अभाव हुआ (कुछभी न रहा)

एवम्॥रसादिषु।अपि॥योज्यम्।॥ =इस प्रकार(द्रव्य के गुण)रसादिकमें भी लगाना चाहिये भावार्थ जैसे यह रस गुण है तिस(रस) से भिन्न भिन्न रूप-गंध-स्पर्श आदिक हैं और रस गुण को-समुदाय से अभेदरूप माना है। इस लिये समुदाय रूप-गंध-स्पर्श आदिकमें न्यारा न्यारा (भेदरूप) हुआ,तब एकरस(मात्र गुण) समुदाय ठहरा सो समुदाय नहीं हो सक्ता क्यों कि समुदाय तो बहुतोंका होता है। रसतो एकही है। उसको समुदाय क्यों कहना चाहिये इसप्रकार समुदायका अभाव आया और समुदाय (अपने) समुदायियों से भिन्न नहीं हो सक्ते हैं। तिन समुदायियोंका भी अभाव हुआ इस प्रकार समुदाय-समुदायी दोनों के अभाव होने से समस्तका अभाव हुआ।

तस्मात्।समुदायम्।[1] इच्छता।[2] कथंचित्॥ =तिससे समुदायकी इच्छा करनेवालेकरि (गुण-पर्यायोंके समुदायरूपद्रव्यको) कथंचित्

(१) इच्छत् यह शब्द इकन्त पुलिंग है इसकी तृतीया विभक्ति त् में आ लगाने से बनती है ॥ जैसे गच्छत्"की गच्छता, तैसे इच्छत्"की इच्छता ॥

(२) "जैसे मृत्तिका नाम द्रव्य है। तिसके घटादिक पर्याय हैं ॥ सो मृत्तिकाकै अर घटादिकनकै कथंचित् संज्ञा का नामकरि भेद है। ताकू मृत्तिका कहिये ॥ ताकू घट कहिये। अर संख्या करि भेद है मृत्तिका का पिंड एक था ताके घट पांच बणिगये तातैं संख्या करि भी भेद है। बहुरि मृत्तिका का लक्षण तो पिंडादिक रूप अन्य है। अर घटका लक्षण कुछ प्रीवा आकारादिरूपका भिन्न हैं बहुरि मृत्तिकाका प्रयोजन तो लेपन इत्त्यादिक अन्य है और घट का जल धारणादि प्रयोजन अन्य है ।ऐसे द्रव्यकै और पर्यायोंकै संज्ञा, संख्या लक्षण प्रयोजनादि करि कथंचित् भेद होते भी वस्तुपना करि भेद नहीं है वही एक वस्तु का है" ॥ देखो सर्वार्थसिद्धि ॥

ऽर्थान्तरभाव एषितव्य ॥उक्ताना द्रव्याणा लक्षणनिर्देशात्तद्विषय एव द्रव्याध्यवसाये प्रसक्ते अनुक्तद्रव्यसंसूचनार्थमिदमाह—

॥ कालश्च ॥ ३९ ॥

किम् ? द्रव्यमिति वाक्यशेष ॥ कुत ? । तल्लक्षणोपेतत्वात् ॥ द्विविधं लक्षणमुक्तम् । "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्" "गुणपर्यायवद्द्रव्यमिति" च॥ तदुभयं लक्षणं कालस्य विद्यते । तद्यथा—ध्रौव्यं तावत्कालस्य स्वप्रत्ययं स्वभावव्यवस्थानात् ॥

अर्थान्तर- =(सत्ता-संख्या-लक्षण-प्रयोजनादिककी अपेक्षा)न्यारा(=अर्थान्तर)
भावः॥ एषितव्य ॥ उक्तानाम् ॥ द्रव्याणाम् ॥ लक्षण- =पदार्थ (=भाव) मानना योग्य है । कथित द्रव्योंके लक्षण
निर्देशात् ॥ तद्-विषय ॥ एव द्रव्य अध्यवसाये ॥ =वर्णन करनेसे पहिले कहेहुये (=अतः) विषय ही (पांच)द्रव्योंके निश्चयका
प्रसक्ते ॥ अनुक्त-द्रव्य-संसूचन अर्थम् ॥ इदम् ॥ आह । =प्रसंग होनेपर अकथित वा अगणित द्रव्यके सूचनाके लिये (अग्रिमसूत्रमें) कहतेहैं कि

[1]सूत्रम्— कालश्च ॥३९॥ =काल च (द्रव्यम्) अस्ति ॥३९॥

सूत्रार्थः—काल ॥ च द्रव्यम् ॥ अस्ति । =काल भी द्रव्य है
वृत्त्यनुवाद —किम् ॥ द्रव्यम् ॥ इति वाक्य शेष ॥ =क्या (कहा)। 'द्रव्यम्' ऐसा(शब्द इस सूत्रमें)वाक्यशेष है अर्थात् वह वाक्य जिस विना सूत्र अपूर्ण वा अधूरा रहता है वह (वाक्य इस सूत्रमें) मिला लेना चाहिये ॥
कुत ॥ तत्(=तद्)लक्षण-उपेतत्वात् ॥ ॥ =(वाक्य शेष) क्योंकर है क्योंकि उस (द्रव्य)के लक्षण (कालविषैं) प्राप्त है ॥
द्विविधम् ॥ लक्षणम् ॥ उक्तम् ॥ उत्पाद-व्यय =दो प्रकार (द्रव्यका) लक्षण कहागया, उत्पत्ति-नाश-
ध्रौव्य-युक्तं ॥ सत् ॥ गुण-पर्यायवत् द्रव्यम् ॥ इति च =स्थिरता युक्त सत् है । और(=च) गुणवान्-पर्यायवान् द्रव्य है ॥
तद्-उभयं ॥ लक्षणं कालस्य ॥ विद्यते तद्यथा ध्रौव्यं ॥ =(ऊपर सूत्रोंमें कहे हुये)सो दोनों लक्षण कालके विद्यमान हैं जैसे स्थिर रहना ।
तावत्कालस्य ॥ स्व-प्रत्ययम् ॥ स्वभाव-व्यवस्थानात् ॥ =सो(तावत्)कालके स्वभावकरि व्यवस्थित होने (केनिमित्त)से स्वकारणकृत है अर्थात्

(१)हमारी आम्नायमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है। श्वेताम्बर आम्नायके 'तत्वार्थाधिगमसूत्र' में और भाष्यानुसारिणीतत्वार्थवृत्तिमें "कालश्चेत्ये के" सूत्र है। कालश्च इति एके =काल भी (=च, (द्रव्य) है ऐसा केइक के मत में है अर्थात् केई आचार्य कहतेहैं कि काल भी द्रव्य है। इस सूत्रके पाठसे जो श्वेताम्बरआम्नायमें है और उनके यहांके बियालीसवां, तेतालीसवां और चवालीसवां सूत्रोंसे जो तत्वार्थान्तरत्वा

व्ययोदयौ परप्रत्ययौ । अगुरुलघुगुणवृद्धिहान्यपेक्षया स्वप्रत्ययौ च ॥ तथा गुणा अपि कालस्य साधारणासाधारणरूपा सन्ति ॥ तत्रासाधारणो वर्तनाहेतुत्व, साधारणाश्चाचेतनत्वामूर्तत्वसूक्ष्मत्वागुरुलघुत्वादय ॥[1]पर्यायाश्च व्ययोत्पादलक्षणा योज्या ॥तस्माद्द्विप्रकारलक्षणोपेतत्वादाकाशादिवत्कालस्य द्रव्यत्वं सिद्धम् ॥ तस्यास्तित्वलिङ्ग धर्मादिवद्व्याख्यातं,वर्तनालक्षण काल इति,

लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें एक एक कालाणु जो अमूर्त अचेतन-निष्क्रिय, स्पर्श-रस-गंध वर्ण गुण रहित और जो मिलनेकी शक्ति रहित(=अकाय)है रत्नकी राशिके सदृश स्वभावसे ही स्थिरता लियेहुये विछीहुई है ॥

व्यय उदयौ परप्रत्ययौ ।	=व्यय-उत्पाद (पर द्रव्यके परणमनिकी अपेक्षा) पर(निमित्त) कृत हैं ।
अगुरुलघुगुणवृद्धिहानिअपेक्षया च स्वप्रत्ययौ ।	=और (=च)अगुरुलघुगुणकी वृद्धि हानिकी अपेक्षाकरि स्व कारणकृत है ॥
तथा गुणा अपि कालस्य साधारण	=और गुण भी काल के साधारण
असाधारणरूपा सन्ति । ॥तत्र असाधारण	=और साधारण रूप हैं वहां कालका) असाधारण (गुण)
वर्तना-	=वर्तना(=पदार्थोंके पर्यायोंके पूराकरनेमें या द्रव्योंके परणतिमें बाह्य सहकारिता)
हेतुत्वम् ।,साधारणा च अचेतनत्व अमूर्तत्व	=हेतुपना और (=च साधारण (गुण)अचेतनपना, अमूर्तपना,
सूक्ष्मत्व-अगुरुलघुत्व-आदयः ॥(1 पर्याया च व्यय	=सूक्ष्मपना, अगुरुलघुपना, आदिकहैं बहुरि पर्यायें व्यय,
उत्पाद-लक्षणा योज्या ॥	=उत्पाद लक्षणरूप जोड़ीली जाय अर्थात् उत्पादरूप और व्ययरूप पर्यायें होती हैं ॥
तस्मात् द्वि प्रकार	=तिससे दो प्रकारके (उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् और गुण पर्यायवत् द्रव्यम् ऐसे) ल-
लक्षण उपेतत्वात् ॥आकाश-आदिवत् कालस्य	=लक्षण युक्त पनासे आकाशादिकके सदृश कालके
द्रव्यत्वं ॥सिद्धं ॥,तस्य अस्तित्व-लिङ्गं ॥धर्मादि-वत्	=द्रव्यता सिद्ध है। तिस (काल)की विद्यमानता का चिन्ह धर्मादिक द्रव्योंके समान
व्याख्यातम् ॥वर्तना-लक्षण कालः इति,	=वर्णन किया गया था कि वर्तना लक्षणवाला काल है ।

पाधिगम सूत्रमें तथा 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका में दिये हैं (पैतीस सूत्र हमारे यहां नहीं हैं) जिन सूत्रोंका कथन हम इस अध्यायके अन्तमें विशेषरूपसे करेंगे उनसे प्रगट है कि उनके यहां'काल' को द्रव्य नहीं माना है देखो।इस अध्यायके पृष्ठ १५६ १६० ॥

(1) द्रव्य गुण पर्याय तीन कहनाये और नय द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो हैं गुणार्थिकनय तीसरा क्यों नहीं कहागया ? (उत्तर)"जो पर्याय दीय कारहैं एक सहवर्ती दूसरी क्रमवर्ती तहां सहवर्तीजो गुण है सो सहवर्ती पर्यायमें गुण आगयेहैं तातैं गुणार्थिकनय सिद्ध नहीं। गुण पर्यायवान् ही द्रव्यका निर्दोषलक्षण है।

किमर्थमयं काल पृथगुच्यते? । यत्रैव धर्मादय उक्तास्तत्रैवायमपि वक्तव्य । अजीवकाया धर्माधर्माकाशकालपुद्गला इति॥नैवं शंक्यम् ।तत्रोपदेशे सति कायत्वमस्य स्यात् । नेष्यते च मुख्योपचारप्रदेशप्रचयकल्पनाभावात् ॥ 'धर्मादीना 'तावन्मुख्यप्रदेशप्रचय उक्त असंख्येया प्रदेशा इत्येवमादिना ॥ अणोरप्येकप्रदेशस्य पूर्वोत्तरप्रज्ञापननयापेक्षयोपचारकल्पनयाप्रदेशप्रचय उक्त ।

१४८

किम् अर्थम् अयम् काल पृथक् उच्यते? ।	=क्यों (प्रश्न)किसलिये यहकाल न्यारा(स्थानमें)कहागया है ।
यत्र एव धर्म आदय उक्ता तत्र एव	=जहां ही धर्मादिक (द्रव्य) कहेगये थे वहां ही
अयम् अपि वक्तव्य अजीवकाया धर्म	=यह (काल) भी कहाजाना योग्य था । 'अजीवकाया-धर्म-
अधर्म आकाश-काल-पुद्गला इति एवम्	=अधर्म आकाश-काल-पुद्गला' इस प्रकार (इसअध्यायका प्रथम सूत्र)होता तो(उत्तर)ऐसे
न शंक्यम् तत्र उपदेशे सति	=संशय या वितर्क नहीं होनी चाहिये, वहां(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें)उपदेश होनेपर
कायत्वम् अस्य स्यात् ।	=कायपना अर्थात् [illegible] प्रदेशों का मिलनरूप शक्तिपना)इस(काल)के होजाता
च मुख्य उपचार-प्रदेश-	=और मुख्यपना तथा उपचारसे प्रदेशोंकी
प्रचय-कल्पना अभावात् न इष्यते	=समूह कल्पनाके अभावसे (कालके कायपना) नहीं देखा गया या माना गयाहै ॥
धर्मादीनाम् तावत् मुख्य-प्रदेश-प्रचय	=धर्मादिक (द्रव्यों) के तो मुख्य प्रदेशोंका प्रचय
असंख्येया प्रदेशा इत्येवम् आदिना उक्त ॥	=असंख्येयाः प्रदेशाः इत्येवं आदि(देखो इस अध्यायके सूत्र ८,९,१०)सूत्रोंकरि कहागया
अणो अपि एक प्रदेशस्य पूर्व-उत्तर प्रज्ञापन	=अणु भी (=अपि)एक प्रदेशवालाहै(देखोसूत्र ११)पूर्व उत्तर भावप्रज्ञापनेवाली=प्रज्ञापन
नय अपेक्षया उपचार-कल्पनया	=नयके अपेक्षासे उपचार या कल्पनाकरि अर्थात् पूर्व भाव यह कि पृथक् पृथक् अणु है उत्तर भाव यह कि तौभी उनमें भविष्यत् कालमें मिलन शक्ति है इन दोनों भावोंकी प्रकाशक या जतावने वाली नयकी अपेक्षा करि, उपचार या कल्पना से
प्रदेश-प्रचय उक्त ।	=प्रदेश समूहवाली कहीजाती है भावार्थ परमाणु (संघात से) स्कन्धरूप होजाती है । जिससे प्रदेशप्रचय कही गई है ।

व्ययोदयौ परप्रत्ययौ । अगुरुलघुगुणवृद्धिहान्यपेक्षया स्वप्रत्ययौ च ॥ तथा गुणा अपि कालस्य साधारणासाधारणरूपा सन्ति ॥ तत्रासाधारणो वर्तनाहेतुत्वं, साधारणाश्चाचेतनत्वामूर्तत्वसूक्ष्मत्वागुरुलघुत्वादय ॥(१)पर्यायाश्च व्ययोत्पादलक्षणा योज्या ॥तस्माद्द्विप्रकारलक्षणोपेतत्वादाकाशादिवत्कालस्य द्रव्यत्वं सिद्धम् ॥ तस्यास्तित्वलिङ्गं धर्मादिवद्व्याख्यातं,वर्तनालक्षण काल इति,

लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें एक एक कालाणु जो अमूर्त अचेतन-निष्क्रिय, स्पर्श-रस-गंध वर्ण गुण रहित और जो मिलनेकी शक्ति रहित(=अकाय)है रत्नकी राशिके सदृश स्वभावसे ही स्थिरता लियेहुये तिष्ठीहुई है ॥

व्यय उदयौ परप्रत्ययौ ।	=व्यय उत्पाद (पर द्रव्यके परणमनिकी अपेक्षा) पर(निमित्त) कृत हैं ।
अगुरुलघुगुणवृद्धिहानिअपेक्षया च स्वप्रत्ययौ ।	=और (=च)अगुरुलघुगुणकी वृद्धि हानिकी अपेक्षाकरि स्व कारणकृत है ॥
तथा गुणा अपि कालस्य साधारण	=और गुण भी काल के साधारण
असाधारणरूपा सन्ति । तत्र असाधारणः	=और साधारण रूप हैं वहां कालका) असाधारण (गुण)
वर्तना-	=वर्तना(=पदार्थोंके पर्यायोंके पूराकरनेमें वा द्रव्योंके परणतिमें बाह्य सहकारिता)
हेतुत्वम् ,साधारणाः च अचेतनत्व अमूर्तत्व	=हेतुपना और (=च साधारण (गुण)अचेतनपना, अमूर्तपना,
सूक्ष्मत्व-अगुरुलघुत्व आदयः (१ पर्यायाः च व्यय-	=सूक्ष्मपना, अगुरुलघुपना, आदिकहैं बहुरि पर्यायें व्यय,
उत्पाद-लक्षणाः योज्याः	=उत्पाद लक्षणरूप जोड़ीली जांय अर्थात् उत्पादरूप और व्ययरूप पर्यायें होती हैंही ॥
तस्मात् द्वि प्रकार	=तिससे दो प्रकारके (उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् और गुण पर्यायवत् द्रव्यम् ऐसे)
लक्षण उपेतत्वात् आकाश-आदिवत् कालस्य	=लक्षण युक्त पनासे आकाशादिकके सदृश कालके
द्रव्यत्वं सिद्धं ,तस्य अस्तित्व-लिङ्गं धर्मादि-वत्	=द्रव्यता सिद्ध है। तिस (काल)की विद्यमानता का चिन्ह धर्मादिक द्रव्योंके समान
व्याख्यातम् वर्तना-लक्षणः कालः इति ,	=वर्णन किया गया था कि वर्तना लक्षणवाला काल है ।

योंविधम ममदे तथा "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ" टीका 'में दिये हैं (यदीन सब हमारे पास नहीं हैं) जिन सूत्रोंका कथन हम इस अध्यायके अन्तमें विशदरूपसे करेंगे उससे प्रगट है कि उनके यहां'काल' को [illegible] नहीं माना है देखो।इस अध्यायके पृष्ठ १५६ १६० ॥

(१) द्रव्य गुण पर्याय तीन कहनसे और नय द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो हैं गुणार्थिकनय तीसरा क्यों नहीं कहागया ? (उत्तर)"जो पर्याय तीन कालहैं [illegible] सहवर्ती दूसरा क्रमवर्ती तहां सहवर्तीता गुण है जो सहवर्ती पर्यायमें गुण जानलेने तातैं गुणार्थिकनयभिन्ननहीं।गुणपर्यायवान् ही द्रव्यकानिर्दोषलक्षण है।

एकद्रव्यत्वमस्य स्यात् । तस्मात्पृथगिह कालोद्देशः क्रियते॥ अनेकद्रव्यत्वेसति किमस्य प्रमाणं ? । लोकाकाशस्य यावन्त प्रदेशा॥

एकद्रव्यत्वम्॥(१ अस्य॥स्यात्	=(यदि अधर्म और आकाश के मध्य में काल होता तो)एक द्रव्यपना इस(काल)के भी होजाता
तस्मात्॥पृथक्॥इह॥काल उद्देशः॥क्रियते	=तिस (कारण) से न्यारा इस स्थानमें (=इह)कालका कथन कियागया है ॥
अनेकद्रव्यत्वे॥सति॥किम्॥अस्य॥प्रमाणम्॥	=अनेक द्रव्यपना होनेमें (=सति)इस (काल) का क्या प्रमाण है ?
	अर्थात् काल को अनेक द्रव्य कहा है सो इसका क्या प्रमाण है ॥
लोक-आकाशस्य॥यावन्त॥प्रदेशा॥	=लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं ।

(१) पृथक् ही यदि पूर्वोक्तकारणोंसे प्रथम सूत्रमें कहजाता तो इतने अन्तरसे क्यों कहा? इस अध्यायका तीसरा सूत्र ऐसा रचते कि "कालोजीवाश्च" वा जीवाः कालश्च इन दोनों विधिसे एक ४ अंक भी होजाता है क्योंकि जीवाश्च तीसरा और कालश्च उनतालीसवां सूत्रोंमें दो चकार हैं यदि तीसरा सूत्र 'जीवाश्च' ही रखना था तो कालोऽपि इसको इस 'जीवाश्च' तीसरे सूत्रकी वार्तिक मान लेते अथवा 'जीवाश्च' सूत्रके पश्चात् 'कालोऽपि' ऐसा भिन्न सूत्र करते तो चार सूत्रों में "द्रव्यव्यपदेशप्रकरण" भी समाप्त होजाता क्योंकि प्रथम सूत्रमें चारद्रव्य कहे दूसरे सूत्रमें धर्म अधर्म आकाश-पुद्गलकीसंज्ञा स्थापित की तीसरे में जीवों को भी द्रव्य नाम दिया । चौथेमें या 'जीवाश्च' ही सूत्रमें मिलाकर काल कहदेना योग्य था कि द्रव्य नामा विषय चार वा तीन सूत्रोंमें समाप्ति होजाता॥इन बातोंके उपरान्त चौथे छठवें, और सातवें(अर्थात् नित्यावस्थितान्यरूपाणि ४॥ आआकाशादेकद्रव्याणि ।६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥) सूत्रोंके अर्थ करनेमें कि काल द्रव्य सहित नित्य हैं अवस्थित हैं अरूपी हैं धर्म अधर्म आकाश ये तीन एक एक द्रव्य हैं और जीव पुद्गल-काल अनेक द्रव्य हैं। धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं काल भी निष्क्रिय है ऐंचातानी न करनी पड़ती और सुगमतासे (काल को जीव के समीप द्रव्य कहते तो) इन सूत्रों के अर्थ हो जाते । सातवां सूत्र "निष्क्रियाणि च" का अर्थ मेरी समझ में चकारका समुच्चय अर्थमें लेनेसे यह अर्थ हो सका है कि धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं चकार से काल भी (=च) (निष्क्रिय है)। कुछ वाक्य ज्यों के त्यों देतेहैं जो १ ४ २ ७ २२ वें सूत्रोंके अर्थ कर गये पं॰ जयचन्द्ररायजी ने सर्वार्थसिद्धि वचनिका में पं॰ सदासुखजीने 'अर्थ प्रकाशिका' में तथा 'तत्त्वार्थसूत्र' लघुटीका में "काल" को द्रव्य ३९ वां सूत्र के अनुकूल मानकर अर्थ किया है(क) 'जीव हैं ते भी द्रव्यहैं ऐसे व आगे कहेंगे जो काल द्रव्यको ताकरि सहित छहद्रव्यहैं। धर्म अधर्म आकाश, जीव पुद्गल काल इन छहहूनि कू द्रव्य नाम कहिये हैं । जीवाश्च ॥३॥ के अर्थमें ये वाक्य हैं पृ० ५०८ (मुद्रित) (ख) तातैं अवस्थित छह धर्मादिक छह द्रव्य हैं । पृष्ठ ५११ (नित्यावस्थितान्यरूपाणि इस सूत्र के अर्थ में) यह वाक्य है (ग) "बहुरि आगे कहियेगा काल द्रव्य सो भी क्रिया रहित है" यह वाक्य "निष्क्रियाणि च के अर्थमें पृष्ठ ५१६ परवचनिकामेंहै(घ)"आगे कहेंगे जो काल ए पांचों अजीव द्रव्यहैं"।"अर यहां कह्याजीव द्रव्यकालकरि सहित ए छह द्रव्य जानना" ये वाक्य जीवाश्च सूत्रके अर्थमें कहें अर्थ प्रकाशिका पृ० १८७(ङ)"ए धर्मादिक द्रव्यहै ते अपनी छहकी संख्या कूंनाहीछोडेहैं पांच नहीं होय सात नहीं होय तातैं अवस्थित हैं ।"अर काल कैं एक प्रदेशीपना है सो अपनी प्रदेशनिकी संख्याको नहीं छोडे है तातैं अवस्थित है" ये वाक्य 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि इस चौथे, सूत्र के अर्थ में आये हैं (देखो अर्थ प्रकाशिका पृ २८८) (च) "धर्म अधर्म आकाश इन तीन द्रव्यनि को एक एक कहने तैं ही जीव पुद्गल काल इन तीन द्रव्यनि कै अनेक पना आया काल द्रव्य असंख्यातहैं"। ये वाक्य छठवां सूत्र के अर्थमें है, ऐसा

कालस्य पुनर्द्वेधाऽपि प्रदेशप्रचयकल्पना नास्तीत्यकायत्वम् ॥ अपि च तत्र पाठे निष्क्रियाणि चेत्यत्र धर्मादीनामाकाशान्तानां निष्क्रियत्वे प्रतिपादिते इतरेषा जीवपुद्गलादीनां सक्रियत्वप्राप्तिवत्कालस्यापि सक्रियत्वं स्यात् ॥ अथाकाशात्प्राक्काल उद्दिश्येत । तन्न । आ आकाशादेकद्रव्याणीति,

कालस्य॥पुनः॥द्वेधा॥अपि॥प्रदेशप्रचय	=बहुरि कालके दोनों प्रकार (मुख्यपनासे तथा उपचारपनासे भी प्रदेश समूहकी
कल्पना॥न॥अस्ति॥इति॥अकायत्वम्॥अपि॥च॥तत्र=	कल्पना नहीं है। इस प्रकार (काल द्रव्य के) अकायपना है। बहुरि तहां भी
	(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें भी अजीवकाया धर्माधर्माकाशकालपुद्गलाः ऐसे)
पाठे॥निष्क्रियाणि॥च॥इति॥अत्र॥	=पठनमें भी (काल के कायपना ठहरनेके उपरान्त) "निष्क्रियाणि च" यहां
	इसी अध्याय के इस सातवां सूत्र में)
धर्मादीनाम्॥आकाश-	=धर्मादिक द्रव्यों से आकाश
अन्तानाम्॥निष्क्रियत्वे॥प्रतिपादिते॥	=पर्यन्तनिके (अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश-के) हलनचलनक्रियासेरहितपनाकेकथनकरनेमें
इतरेषाम्॥जीवपुद्गलादीनाम्॥सक्रियत्व प्राप्तिवत्॥	=अन्यशेष जीव पुद्गल (द्रव्य) निके क्रिया सहित पनाकी प्राप्तिके समान
कालस्य॥अपि॥सक्रियत्वम्॥स्यात्॥	=कालकेंभी सक्रियपना होजाता (परन्तुकालनिष्क्रिय है ही) ॥
॥ अथ॥आकाशात्॥प्राक्॥	=यदि (अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः सूत्र के) आकाश (शब्द) के पहिले
कालः॥ उद्दिश्यत॥	=काल उपदेश कियागया होता तो अर्थात् इस का प्रथम सूत्र अजीवकाया धर्माधर्मा
	काशपुद्गलाः के स्थानमें अजीवकाया धर्माधर्माकालाकाशपुद्गलाः ऐसाकहते तो?
तत्॥न॥आ॥आकाशात्॥	=(उत्तर) सोनहीं क्योंकि छठा सूत्रकि(इसअध्यायकेप्रथमसूत्रके) आकाश (शब्द पर्यंत (=आ)
एकद्रव्याणि॥इति॥	=एक एक द्रव्य हैं अर्थात्-धर्म-अधर्म आकाश एक एक द्रव्यहैं ऐसे

( ) अथ शब्दके साथ अर्थोंसे अधिकहाने पर भी यहां यदि के अर्थ में है (देखो जैन सस्कर्णामृत व्याठ पृष्ठ १२) (०) किसो किसी हस्तलिखित प्रतिमें 'उद्दिश्यते' पाठ है हमारी समझ में 'उद्दिश्येत' शब्द श्रेष्ठ है क्योंकि दिश् तुदादि उभयो गणके धातुमें यह उपसर्ग जो क्रिया के साथ आनेपर उपसर्ग कहलाता है जोड़ने पर 'उद्दिश्' बनता है इस में कर्मणि प्रयोग का य चिन्ह जोड़करि 'उद्दिश्य' बना इसमें 'ते' अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी वर्तमान कालका चिन्ह लगाने से 'उद्दिश्यते' उपदेश किया जाता है यह हुआ, ईत प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) एक वचन आत्मने पदी विधिलिङ् विधायक 'उद्दिश्य' शब्दमें लगाने से उद्दिश्य+ईत=उद्दिश्येत बना उद्दिश्येत=उपदेश किया जाता होता यही अर्थ में यहांपर है अर्थात् यदि काल प्रथम सूत्रके अर्थमें और आकाश से पहिले उपदेश किया जाता होता तो यह दूषणरूप आता होता परन्तु आकाशके पश्चात् आते अर्थ हैं ॥

सर्वार्थ सिद्धि

अध्याय ५ सूत्र ३८

एकद्रव्यत्वमस्य स्यात् । तस्मात्पृथगिह कालोद्देशः क्रियते॥ अनेकद्रव्यत्वेसति किमस्य प्रमाणं? । लोकाकाशस्य यावन्तः प्रदेशाः

एकद्रव्यत्वम्॥ अस्य॥ स्यात्॥	=(यदिअधर्म और आकाश केमध्य में काल होता तो)एक द्रव्यपना इस(काल)केंभी होजाता
तस्मात्॥ पृथक्॥ इह॥ काल-उद्देशः॥ क्रियते॥	=तिस (कारण) से न्यारा इस स्थानमें (=इह)कालका कथन कियागया है ॥
अनेकद्रव्यत्वे॥ सति॥ किम्॥ अस्य॥ प्रमाणम्॥	=अनेक द्रव्यपना होनेमें (=सति)इस (काल) का क्या प्रमाण है ? अर्थात् काल को अनेक द्रव्य कहा है सो इसका क्या प्रमाण है ॥
१५१ लोक आकाशस्य॥ यावन्तः॥ प्रदेशाः॥	=लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं ।

(१) पृथक् ही यदि पूर्वोक्तकारणोंसे प्रथम सूत्रसे कहनाथा तो इतने अन्तरसे क्यों कहा? इस अध्यायका तीसरा सूत्रऐसा रचतेकि "कालोजीवाश्च" तो जीवा। अथवा इन दोनों विधियोंसे एक व क्रम भी होजाता है क्योंकि जीवाश्च तीसराऔर कालश्च उनतालीसवां सूत्रोंमें दो चकारहैं यदि तीसरा सूत्र 'जीवाश्च' ही रचना था तो कालोऽपि इसको इस 'जीवाश्च' तीसरे सूत्रकी वार्तिक मान लेते अथवा 'जीवाश्च सूत्रके पश्चात् 'कालोऽपि'ऐसा भिन्न सूत्र करते तो चार सूत्रों में "द्रव्यव्यपदेशप्रकरण" भी समाप्त होजाता क्योंकि प्रथम सूत्रमें चारद्रव्य कहे दूसरे सूत्रमें धर्म अधर्म आकाश-पुद्गलोंसका स्थापित को तीसरे में जीवों को भी द्रव्य नाम दिया । चौथेमें वा 'जीवाश्च' तो सूत्रमें मिलाकर काल कहदेना योग्य था कि द्रव्य नामा विषय चार वा तीन सूत्रोंमें समाप्त होजाता।इन वातोंके उपरान्त चौथे छठवें और सातवें(अर्थात् नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ आआकाशादेक द्रव्याणि ॥ ६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥) सूत्रोंके अर्थ करनेमें कि काल द्रव्य सहित नित्य हैं अवस्थित हैं अरूपी हैं धर्म अधर्म आकाश ये तीन एक एक द्रव्य हैं और जीव पुद्गल काल अनेक द्रव्य हैं। धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं काल भी निष्क्रिय है खेंचातानी न करनी पड़ती और सुगमतासे (काल को जीव के समीप द्रव्य कहते तो) इन सूत्रों के अर्थ हो जाते । सातवें सूत्र "निष्क्रियाणि च" का अर्थ मेरी समझ में चकारको समुच्चय अर्थमें लेनेसे यह अर्थ हो सक्ता हैकि धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं चकार से काल भी (=च) (निष्क्रिय है)॥ कुछ वाक्य ज्यों के त्यों देतेहैं जो४ ६ ७ ३९ वें सूत्रोंके अर्थ करनेमें पं० जयचन्द्रजी ने 'सर्वार्थसिद्धि वचनिका में पं० सदासुखजीने 'अर्थ प्रकाशिका' में तथा 'तत्त्वार्थ सूत्र लघुटीका में "काल" को द्रव्य ३९ वां सूत्र के अनुकूल मानकर अर्थ किया है(क)"जीव हैं ते भी द्रव्यहैं ऐसे व आगेकहेंगे जो काल द्रव्यको ताकरि सहित छहद्रव्यहैं। धर्म अधर्म आकाश जीव पुद्गल काल इन छहुनि के द्रव्य नाम कहिये हैं । जीवाश्च ॥३॥ के अर्थमें ये वाक्य हैं पृ० ४०८ (मुद्रित) (ख) तातैं अवस्थित छह धर्मादिक छह द्रव्य हैं । पृष्ठ ४१७ (नित्यावस्थितान्यरूपाणि इस सूत्र के अर्थ में) यह वाक्य है (ग) 'बहुरि आगे कहियेगा काल द्रव्य सो भी क्रिया रहित है" यह वाक्य"निष्क्रियाणि च"के अर्थमें पृष्ठ ४२६ परवचनिकामेंहै(घ)"आगे कहेंगे जो काल ए पांचों अजीव द्रव्यहैं"। "अर यहां कहाजीव द्रव्यकालकरि सहित ए छह द्रव्य जानने" ये वाक्य जीवाश्च सूत्रके अर्थमें कहे हैं अर्थ प्रकाशिका पृ० २८७(ङ) 'ए धर्मादिक द्रव्यहैं ते अपनी छहकी संख्या कंनाहींछोड़ेहैं पांच नहीं होय सात नहीं होय तातैं अवस्थित हैं ॥"अर काल कैं एक प्रदेशीपना है सो अपने प्रदेशनिकी संख्याको नहीं छोड़े है तातैं अवस्थित है" ये वाक्य 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि इस चौथे, सूत्र के अर्थ में आये हैं (देखो अर्थ प्रकाशिका पृ २८८) (च) "धर्म अधर्म आकाश इन तीन द्रव्यनि को एक एक कहने तैं ही जीव पुद्गल काल इन तीन द्रव्यनि कै अनेक पना आया "काल द्रव्य असंख्यातहैं"। ये वाक्य छठवां सूत्र के अर्थमें है, देखो

१५१

कालस्य पुनर्द्वेधाऽपि प्रदेशप्रचयकल्पना नास्तीत्यकायत्वम् ॥ अपि च तत्र पाठे निष्क्रियाणि चेत्यत्र धर्मादीनामाकाशान्तानां निष्क्रियत्वे प्रतिपादिते इतरेषा जीवपुद्गलादीनां सक्रियत्वप्राप्तिवत्कालस्यापि सक्रियत्वं स्यात् ॥ अथाकाशात्प्राक्काल उद्दिश्येत । तन्न । आ आकाशादेकद्रव्याणीति,

कालस्य॥पुनः॥द्वेधा॥अपि॥प्रदेशप्रचय	=बहुरि कालके दोनों प्रकार (मुख्यपनासे तथा उपचारपनासे भी प्रदेश समूहकी
कल्पना॥न॥अस्ति॥इति॥अकायत्वम्॥अपि॥च॥तत्र	=कल्पना नहीं है। इस प्रकार (काल द्रव्य के) अकायपना है। बहुरि तहां भी
	(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें भी अजीवकाया धर्माधर्माकाशकालपुद्गलाः ऐसे)
२१० पाठे॥निष्क्रियाणि॥च॥इति॥अत्र॥	=पठनमें भी (काल के कायपना ठहरनेके उपरान्त) "निष्क्रियाणि च" यहां
	इसी अध्याय के (इस सातवां सूत्र में)
धर्मादीनाम्॥आकाश-	=धर्मादिक द्रव्यों से आकाश
अन्तानाम्॥निष्क्रियत्वे॥प्रतिपादिते॥	=पर्यन्तनिके (अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश-के) हलनचलनक्रियासेरहितपनाकेकथनकरनेमें
इतरेषाम्॥जीवपुद्गलादीनाम्॥सक्रियत्व-प्राप्तिवत्॥	=अन्यशेष जीव पुद्गल (द्रव्य)निके क्रिया सहित पनाकी प्राप्तिके समान
कालस्य॥अपि॥सक्रियत्वम्॥स्यात्॥	=कालकेभी सक्रियपना होजाता(परन्तुकालनिष्क्रिय है ही) ॥
॥ अथ॥आकाशात्॥प्राक्॥	=यदि (अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः सूत्र के)आकाश(शब्द)के पहिले
कालः॥उद्दिश्येत॥	=काल उपदेश कियागया होता तो अर्थात् इस का प्रथम सूत्र अजीवकाया धर्माधर्मा
	काशपुद्गलाः के स्थानमें अजीवकाया धर्माधर्मकालाकाशपुद्गलाः ऐसाकहते तो?
तत्॥न॥आ॥आकाशात्॥	=(उत्तर)सोनहीं क्योंकि छठा सूत्र(इसअध्यायकेप्रथमसूत्रके)आकाश(शब्द,पर्यंत(=आ)
एकद्रव्याणि॥इति॥	=एक एक द्रव्य हैं अर्थात्-धर्म-अधर्म आकाश एक एक द्रव्य हैं ऐसे

( ) यह शब्दके सात कर्मोंसे अधिकहाके पर भी यहां 'यदि' के अर्थ में है (देखो वेद संस्कृतोपक आरा पृष्ठ १२) (०) किसी किसी हस्तलिखित प्रतिमें 'उद्दिश्यत' पाठ है हमारी समझ में 'उद्दिश्यत शब्द ठीक है क्योंकि दिश्' तुदादि कहकी सकल धातुमें उद्' अव्यय का किया के साथ आनेपर उपसर्ग कहलाता है ओडने से 'उद्दिश् बनता है इस में कर्मणि प्रयोग का य चिन्ह लगाकरि 'उद्दिश्य' बना इसमें 'त अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी वर्तमान कालका चिन्ह लगाने से 'उद्दिश्यते' उपदेश किया गया है यह हुआ ईत प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) एक वचन आत्मने पदी विधिलिङ्ग विभाव 'उद्दिश्य' शब्दमें लगाने से उद्दिश्य+ईत=उद्दिश्येत बना उद्दिश्येत=उपदेश किया गया होता इसी अर्थ में यहांपर है अर्थात् यदि काल प्रथम सूत्रके आकाशके पहिले उपदेश किया गया होता तो यह मूलपाठ कालको होता परन्तु कालके अकायपनाके लिए है ॥ २५०

एकद्रव्यत्वमस्य स्यात् । तस्मात्पृथगिह कालोद्देश क्रियते॥ अनेकद्रव्यत्वेसति किमस्य प्रमाणं? ।
लोकाकाशस्य यावन्त प्रदेशा

एकद्रव्यत्वम्॥ अस्य॥ स्यात्॥	=(यदिअधम और आकाश केमध्य में काल होता तो)एकद्रव्यपना इस(काल)के भी होजाता
तस्मात्॥ पृथक्॥ इह॥ काल-उद्देश॥ क्रियते॥	=तिस (कारण) से न्यारा इस स्थानमें (=इह)कालका कथन कियागया है ॥
अनेकद्रव्यत्वे॥ सति॥ किम्॥ अस्य॥ प्रमाणम्॥	=अनेक द्रव्यपना होनेमें (=सति)इस (काल) का क्या प्रमाण है ! अर्थात् काल को अनेक द्रव्य कहा है सो इसका क्या प्रमाण है ॥
१५१ लोक आकाशस्य॥ यावन्तः॥ प्रदेशाः॥	=लोकआकाश के जितने प्रदेश हैं ।

(१) यहां पर यदि पूर्वोक्तकारणोंसे प्रथम सूत्रमें कहमाथा तो इतने अन्तरसे क्यों कहा? इस अध्यायका तीसरा सूत्रऐसा रखनेकि 'कालोजीवाश्च' वा 'जीवाः' कालश्च इन दोनों विधिमें एक 'च'कम भी होजाता है क्योंकि जीवाश्च तीसराऔर कालश्च उनतालीसवां सूत्रोंमें दो चकारहैं यदि तीसरा सूत्र 'जीवाश्च' ही रखना था तो कालोऽपि इसको इस 'जीवाश्च' तीसरे सूत्रकी वार्तिक मान लेते अथवा'जीवाश्च सूत्रके पश्चात् 'कालोऽपि'ऐसा लिख सूत्र करते तो चार सूत्रों में "द्रव्यव्यपदेशप्रकरण" भी समाप्त होजाता क्योंकि प्रथम सूत्रमें चारद्रव्य कहे दूसरे सूत्रमें धर्म अधर्म आकाश-पुद्गलकोसत्ता स्थापित की तीसरे में जीवों को भी द्रव्य नाम दिया । चौथेमें वा 'जीवाश्च' हो सूत्रमें मिलाकर काल कहना योग्य था कि द्रव्य नामा विषय चार वा तीन सूत्रोंमें समाप्ति होजाता।इन बातोंके उपरान्त चौथे छठे और सातवें(अर्थात् नित्यावस्थितान्यरूपाणि ४। आआकाशादेकद्रव्याणि । ६। निष्क्रियाणि च ।७।) सूत्रोंके अर्थ करनेमें कि काल द्रव्य सहित नित्य हैं अवस्थित हैं अरूपी हैं धर्म अधर्म आकाश ये तीन एक एक द्रव्य हैं और जीव पुद्गल-काल अनेक द्रव्य हैं। धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं काल भी निष्क्रिय है खेंचातानी न करनी पड़ती और सुगमतासे (काल को जीव के समीप द्रव्य कहते तो) इन सूत्रों के अर्थ हो जाते । सातवां सूत्र "निष्क्रियाणि च" का अर्थ मेरी समझ में चकारको समुच्चय अर्थमें लेनेसे यह अर्थ हो सक्ता है कि धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं चकार से काल भी (=च) (निष्क्रिय है)। कुछ वाक्य ज्यों के त्यों देतेहैं जोरे ४ ६ ७ २२ वें सूत्रोंके अर्थ कर नेमें पं० जयचन्द्रजी ने 'सर्वार्थसिद्धि वचनिका में पं० सदासुखजीने 'अर्थप्रकाशिका' में तथा 'तत्त्वार्थसूत्र लघुटीका में "काल" को द्रव्य ३८ वां सूत्र के अनुकूल मानकर अर्थ किया है(क)"जीव हैं ते भी द्रव्यहैं ऐसे व आगेकहेंगे जो काल द्रव्यको ताकरि सहित षड्द्रव्यहैं। धर्म अधम आकाश जीव पुद्गल काल इन छहूनि के द्रव्य नाम कहिये हैं । जीवाश्च ।३। के अर्थमें ये वाक्य हैं पृ० ४०८ (मुद्रित) (ख) तातें अवस्थित कहे धर्मादिक षट् द्रव्य हैं । पृष्ठ ४१७ (नित्यावस्थितान्यरूपाणि इस सूत्र के अर्थ में) यह वाक्य है (ग) 'बहुरि आगे कहियेगा काल द्रव्य सो भी क्रिया रहित है" यह वाक्य निष्क्रियाणि च"के अर्थमें पृष्ठ ४१९ परवचनिकामें है(घ)"आगे कहेंगे जो काल ए पांचों अजीव द्रव्यहैं"।"अर यहां कह्याजीव द्रव्यकालकरि सहित ए षट् द्रव्य जानने" ये वाक्य जीवाश्च सूत्रके अर्थमें कहे हैं अर्थ प्रकाशिका पृ० २८७(ङ) 'ए धर्मादिक द्रव्यहैं ते अपनी षट्की संख्या कदाचितहोड़ेहैं पांच नहीं होय सात नहीं होय तातैं अवस्थित हैं ।"अर काल के एक प्रदेशीपना है सो अपने प्रदेशनिकी संख्याको नहीं छोड़े है तातैं अवस्थित हैं" ये वाक्य 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि इस चौथे सूत्र के अर्थ में आये हैं (देखो अर्थ प्रकाशिका पृ २८८) (च) "धर्म अधर्म आकाश ए तीन द्रव्यनि कों एक एक कहने तैं ही जीव पुद्गल काल इन तीन द्रव्यनि कै अनेक पना आया काल द्रव्य असंख्यातहैं"। ये वाक्य छठवां सूत्र के अर्थमें हैं, देखा

तावन्त कालाणवो निष्क्रिया एकैकाकाशप्रदेशे एकैकवृत्त्या लोकं व्याप्य व्यवस्थिता ॥उक्तं च–
लोगागासपदेसे एक्केक्के जे

तावन्तः॥कालअणवः॥निष्क्रियाः॥एकैक आकाश- =तितनेकालकेअणु हलनचलनरूपक्रियारहित एकएक (लोक)आकाशके
प्रदेशे॥एकैक वृत्त्या॥लोकं॥व्याप्य + व्यवस्थिताः॥उक्तम्॥च॥ =प्रदेशमें एकएक स्थितिकरि लोकको व्याप्त करि तिष्ठै हैं॥कहा भी आचार्योंने कि
लोगागास-पदेसे॥एक्केक्के॥जे॥(=लोकाकाश-प्रदेशे॥एकैकस्मिन्॥ये॥)=लोकाकाशके प्रदेश एक एक में जो

(अर्थ प्रकाशिका पृ-२८६)(क) 'धर्म अधर्म आकाश तथा आगे कहेंगे काल द्रव्य ए च्यारी हो निष्क्रिय हैं' यह ७वां सूत्रके अर्थ में है पृ २६०(ख)"वर्त्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए काल द्रव्यका उपकार हैं"। 'सब द्रव्यनिके वर्तावनेवाला कालद्रव्य है यह वर्त्तनाहीका कालद्रव्यका अस्तित्व जनावै है॥ (अर्थ प्रकाशिका पृ० ३०८) ॥ "द्रव्यनिका पर्याय वर्ते है ताका वर्त्तावने हारा काल द्रव्य है ॥ "कालश्च द्रव्य है" ये सर्व ही वाक्य २२ वां सूत्र वर्त्तना इत्यादि के अर्थ में कह हैं॥ ।यदि जीवाजीव के समीप काल द्रव्य कहते तौ यह चौथा तासी अर्थ में क्यों करने लगी॥ क्यों कि अब तक आचार्य काल द्रव्य को न उपदेशें तबतक टीका कारोंको उसको काल द्रव्य के नाम से पुकारने का क्या अधिकार है)(ग) "जीव धर्म अधर्म आकाश ए ये पांच द्रव्य नित्य कहिये अविनाशी हैं" चौथे सूत्र का अर्थ किया है। "इन द्रव्यनमें पुद्गल द्रव्यरूपी हैं"।यह 'रूपिणः पुद्गलाः'के अर्थ में है(द्रव्य तो पांच ही अब तक कहे छठवां ये कहां से आय। जिस वक्त लोको कालनिमित्त काल द्रव्य है ॥ समस्त काल द्रव्य का उपकार हैं' में जो वाक्य वर्त्तना परिणाम इत्यादि बाईसवां सूत्र के अर्थ में है ॥ तत्त्वार्थ सूत्र लघु टीका सदासुखकृत पृष्ठ२१,२२,। अब पुनः यही प्रश्न है कि इन सर्व कठिनाइयों और उलझनों को सहन करते हुए उमास्वामी ने इस सूत्र को क्यों इतने अन्तर से पठन किया। इस अनुवादक की अल्प बुद्धि के अनुसार यह विशेष कारण जान पड़ता है कि आचार्यों में परस्पर इस बात पर मत भेद था कि कितने ही काल को द्रव्य मानते थे और कितनेही इसको द्रव्य नहीं मानते थे इसी लिये तत्त्वार्थ सूत्रके कर्त्ताने द्रव्यव्यपदेश प्रकरण को छोड़ कर अर्थात् जीवाजीव के समीप इस सूत्र को न कह करि २२ वां सूत्र में कालका उपकार और द्रव्यों के लक्षण बताकर पश्चात् २९वां सूत्रमें द्रव्य का लक्षण सत् कहा और 'गुणपर्यायवत् द्रव्यम्(वा गुणपर्यायवद्द्रव्यम्) ३८वां सूत्रमें विशेष रूपसे द्रव्य का लक्षण कहा अब द्रव्यके सर्व प्रकारके लक्षण स्थापित करदिये तत्पश्चात् "कालश्च" यह सूत्र कहा और साधारण असाधारण द्रव्य के सर्व लक्षण कालमें घटित किये कि अपना मत कि काल भी द्रव्य है भले प्रकार से पुष्ट करादिया। कालमें द्रव्य लक्षणोंके समन्वयमें देखो सर्वार्थ सिद्धि संस्कृत वृत्ति पृष्ठ ३०७ पंक्ति ११-१५ और पृष्ठ ३०८ पंक्ति १-६ तक इनका अनुवाद पर्व में करदिया है। (घ) इस मत के पुष्टिके उत्तर को पुष्ट करने के लिये एक प्रमाण और देते हैं। वह यह है कि श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में और 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका' में इस सूत्र को "कालश्चेत्येके" ऐसे लिखा है (=अर्थात् काल भी द्रव्य है इति एके)। भाष्यम्। एकेत्वाचार्या व्याचक्षते कालोऽपि द्रव्यमिति =अर्थ यथार्थ ऐसा कहते हैं कि काल भी द्रव्य है॥ इन कारणों से जाना कि आचार्यों में काल के सम्बन्धमें मत भेद था कि कालको द्रव्य माने वा न माने (१) यहाँ २ जीवाजीव ऐसा पाठ है वहाँ लोकोक्ति रूप ही है। (२) यहाँ २ ऐसा ही पाठ है॥

णिया हु एक्केक्के ॥ रयणाणं रासीविव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥ १ ॥ रूपादिगुणविरहादमूर्ताः ॥ वर्तना-लक्षणस्य मुख्यस्य कालस्य प्रमाणमुक्तम्। परिणामादिगम्यस्य व्यवहारकालस्य किं प्रमाणमित्यत इदमुच्यते—

(१ ठिया॥(२ हु॥(३ एक्केक्के॥ (स्थिताः॥ हि॥ एकैकस्मिन्॥) =एक एक (कालाणु) निश्चय करके(=हु=हि)स्थित

रयणाणं॥ रासी॥ ४ विव॥(रत्नानां॥ राशिः॥ इव॥)= रत्नोंकी राशिके समान हैं

(५) ते॥ काल-अणू॥ असंख-दव्वाणि॥
ते॥ काल-अणवः॥ असंख्य-द्रव्याणि॥ } = वे कालके अणु असंख्यात द्रव्य हैं अर्थात् एकएक लोकाकाशके प्रदेशोंमें जो एकएक कालके अणु रत्नोंकी राशिके समान निश्चयकरके स्थित हैं, वे असंख्यात द्रव्य हैं ॥ भावार्थ एक एकके क्रमसे लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं उतनेही प्रदेशोंमें निश्चय कालके असंख्य अणु रत्नोंकी राशिके समान भरेहुए हैं। रत्नोंके ढेरका उदाहरण देनेका अभिप्राय यह है कि जिनका ढेर एकत्र होनेपर भी उसमें प्रत्येक रत्न भिन्नभिन्न है उसी प्रकारसे कालके अणु पृथक् पृथक् एकके पश्चात् एकक्रमसे भरे हुए हैं। इसीलिये जितने लोकाकाशके प्रदेश हैं उतनेही कालद्रव्य गणनामें हैं ॥

रूप-आदि-गुण-विरहात्॥ अमूर्ताः॥ । = रूपादि गुणोंसे रहित (कालाणव) अमूर्तीक हैं

वर्तना-लक्षणस्य॥ मुख्यस्य॥ कालस्य॥ प्रमाणम्॥ = (अब)वर्तना लक्षणवाले मुख्य कालका प्रमाण

उक्तम्॥ परिणाम-आदि-गम्यस्य॥ व्यवहार = कहागया। परिणाम-क्रिया-परत्व अपरत्वकरि ज्ञात होनेवाले (ऐसे) व्यवहार

कालस्य॥ किम्॥ प्रमाणम्॥ इति॥ अतः॥ इदं॥ उच्यते = कालका क्या प्रमाण(वा निश्चयकरण) है इसलिये यह (अग्रिम सूत्र) कहाजाता है कि

(१) ठिया-स्थिताः प्राकृतमें विसर्ग नहीं है और भिन्न वर्गीय वर्णोंका (अक्षरोंका) संयोग नहीं होता भिन्न वर्णके पञ्चम अक्षरका कहीं २ संयोग होता है। इसलिये ठिया ट्ठिया ऐसे पाठ हैं क्यों कि ठ ठ भिन्न वर्गके अक्षर नहीं हैं (२) हु (संस्कृत) हि=ही निश्चय करके। (३) एक्केक्के यह शब्द दो स्थानोंमें आया है ऊपर जिस प्रकार यह गाथा लिखी है उसमें इसका सर्व नाम माना है इसलिये सर्वशब्दके सदृश एकैकस्मिन् पुल्लिंग सप्तमी विभक्ति एक वचन पहिले शब्द 'एक्केक्के' की संस्कृत छाया लिखी है और द्वितीय एक्केक्के को 'सर्व' शब्दके सदृश सर्वनाम संज्ञा मानकर 'एक्केक्के' पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति बहु वचनमें संस्कृत छाया दी है जहां 'एक्कका' पाठ है वहां सर्वनाम नहीं माना है वहां प्रथमा है एकैका' संस्कृत छाया है

रासी-(३) यह शब्द प्राकृत शब्द 'रासि' का पुल्लिंग एकवचन प्रथमाविभक्ति है, जैसे-प्राकृत 'हरि' से हरीसंस्कृत छाया राशिः है (४) विव विव, मिव, इव तीन प्रकारके पाठ हैं मिव-पिव विव, व्व विअ इवार्थे वार १८ हेमचन्द्र आचार्यकृत प्राकृतव्याकरण। ये इवप्रत्यय इव अर्थमें विकल्पसे अर्थात् किसी के स्थानमें कोई आते हैं इव न तो हेमचन्द्र आचार्यकृत प्राकृत व्याकरणमें मिला न शौरसेन्य अव्यय प्रकरणमें मिला किन्तु द्रव्यसंग्रह की २४वीं गाथामें "काया इव बहुदेसा" इस वाक्य में आया है इससे जाना जाता है कि प्राकृत में 'इव' भी कहीं २ काममें आते हैं (५) "ते कालाणू असंख दव्वाणि पांच प्रतियों में ऐसा पाठ है पं० मनोहरलाल जी और प० खूबचन्द्र जी द्वारा संपादित गोम्मटसार में 'असंख दव्वाणि के स्थानमें" 'मुणेयव्वा है जिस की संस्कृत छाया मन्तव्या' है ध्यान रखना चाहिये पूज्यपादस्वामी नेमिचन्द्र आचार्यसे पहिले हुए हैं जिनने गोम्मटसार, द्रव्यसंग्रह इत्यादि रचे हैं।

॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥

साम्प्रतिकस्यैकसमयिकत्वेऽपि अतीता अनागताश्च समयाअनन्ता इति कृत्वा अनन्तसमय इत्युच्यते अथवा मुख्यस्यैव कालस्य प्रमाणावधारणार्थमिदमुच्यते ॥ अनन्तपर्याय वर्त्तना हेतुत्वादेकोऽपि

(१)सूत्रम् (२)सो ऽनन्त समय ॥४०॥ =स(२)काल अनन्तसमय अस्ति॥४०॥

१५७

सूत्रार्थ—सः॥काल॥अनन्तसमयः॥अस्ति॥	=यह काल अनन्त समयवाला है। अथवा यह काल अनन्त समयरूप है ॥ अर्थात् वर्तमान काल तो एक समय मात्र है किन्तु अतीत (भूत) और अनागत (भविष्यत्) काल के समय अनन्त हैं ॥
वृत्यनुवाद—साम्प्रतिकस्य॥एकसमयिकत्वे॥	=वर्तमान (काल)का एक समय होने पर
अपि॥अतीता॥अनागता॥च॥समयाः॥अनन्ताः॥	=भी भूत और भविष्यत् समय अनन्ते हैं।
इति॥कृत्वा॥अनन्तसमयः॥इति॥उच्यते॥	=ऐसा करके अनन्त समय (=अनन्त समयवाला)ऐसा (सूत्र) कहा गया है ॥
अथवा॥मुख्यस्य॥एव॥कालस्य॥(३)प्रमाण	=अथवा मुख्य ही कालका परिमाण (मर्यादा-इयत्ता)
अवधारण अर्थम्॥इदम्॥उच्यते॥	=निश्चय करनके लिय यह (सूत्र) कहागया है (कि मुख्य कालका परिमाण-सीमा मर्यादा-इयत्ता-अनन्त समय है)
अनन्त-पर्यायवर्तना-हेतुत्वात्॥एकः॥अपि॥	=अनन्त पर्याय के वर्तन (पदार्थों के परणति में बाह्य सहकारिता) के निमित्तपनासे एक भी

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है।

(२) 'तद्' का पुल्लिङ्ग एक वचन प्रथमा विभक्ति'सः' है और इसके पश्चात् क्योंकि स्वर'अ' अनन्त शब्दका सूत्रमें आये हैं इससे विसर्ग रहा और उसका उकार होकर अ+उ मिलकर"सो"रूप होगया पुनः ओ और ए के पश्चात् 'अ' 'ए अथवा ओ'में गर्भित होजाताहै। और अ के स्थानमें ऽ ऐसा चिन्ह विस्तार से कर देतेहैं यह चिन्ह सूत्रमें देखो विद्यमान है (अध्याय प्रथम पृष्ठ १०) ॥ अर्थ'सः' के पश्चात् कालशब्द का व्यंजनसे आरम्भ होना है ताए तब (अष्टाध्यायी सूत्र ६ १ १३२) से विभक्ति प्रत्यय 'स'अर्थात् विसर्ग जाता रहा और ऊपर 'स कालः' ऐसा लिखागया है ॥ (अध्याय १ पृष्ठ ५२)

(३) "प्रमाणंहेतु मर्यादाशास्त्रेयत्ताप्रमातृषु" अमरकोश नानार्थवर्ग २३ श्लोक ५४ का प्रथमार्ध है ॥ प्रमाणका अर्थ (क) हेतु कारण(ख)मर्यादा सीमा (ग) शास्त्र षड्दर्शन (घ) इयत्ता प्रमाण माप परिच्छेद (=विशेषरूप से इयत्ताकरण) (ङ) प्रमाता ज्ञाता यहां पर मुख्य कालका परिमाण माप के अर्थ में है कि मुख्य काल कितना है ॥

कालाणुरनन्त इत्युपचर्यते। समय पुन परमनिरुद्ध कालांशस्तत्प्रचयविशेष आवलिकादिरव-गन्तव्य ॥ आह गुणपर्यायवद्द्रव्यमित्युक्त तत्र के गुणा ? इत्यत्रोच्यते-

॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥

द्रव्यमाश्रयो येषा ते द्रव्याश्रया । निष्क्रान्ता गुणेभ्यो निर्गुणा ।

काल-अणु ॥ अनन्तः॥ इति॥उपचर्यते ।	=कालाणु अनन्त है ऐसा मानाजाता है अर्थात् अनन्त पर्यायोंके वर्तनाका कारण एक कालका अणु है तिस हेतुसे मुख्यकालके अनन्त समयपना वर्तता है ॥
255 समय॥ पुन॥ परम-निरुद्ध ॥ काल अंश ॥	=बहुरि समय अत्यन्त सूक्ष्म (=परमनिरुद्ध) कालका अंश है
तत्प्रचयविशेष॥ आवलिका आदि-अवगन्तव्य॥ ॥	=उस (समयके) समूह विशेष सो आवलिका आदिक जानने चाहिये ।
आह॥ गुण-पर्याय-वत्॥ द्रव्यम्॥ इति॥ उक्तम्॥ तत्र॥	=(शिष्य) पूछता है कि "गुणपर्यायवद्द्रव्यम्" ऐसा (सूत्र)कहा गया तहां
के॥ गुणा ॥ इति॥ अत्र॥ उच्यते।	=गुण क्या हैं ऐसे (जवावनेके लिये) यहां (उत्तरसूत्रमें) कहा जाता है कि

[1]सूत्रम्—द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थ —द्रव्य-आश्रया॥	=जिनके रहनेके स्थान द्रव्य हैं अर्थात् जो बिना द्रव्यके आश्रयके स्वतंत्र नहीं रह सकते हों द्रव्यसें तन्मय हों ॥
निर्गुणा॥	=और स्वयं अन्य गुणोंसे रहित हों अर्थात् उन गुणोंमें अन्य गुण न हों
गुणा॥	=वे गुण हैं संक्षेपतः भावार्थ ऐसा है कि जो द्रव्यसें तन्मय हों और उन गुणोंमें अन्य गुण न हों जैसे जीवके ज्ञान-दर्शन-चेतनत्व इत्यादिक गुण हैं और पुद्गलमें अचेतनत्व रूप, रस, गन्ध,वर्ण, इत्यादिक गुण हैं
वृत्त्यनुवाद -द्रव्यम्॥ आश्रय॥ येषाम्॥ ते॥ द्रव्य-आश्रया॥	=द्रव्य है आश्रय जिनका ते द्रव्याश्रया हैं अर्थात् जिनके रहनेके स्थान द्रव्य हों भावार्थ द्रव्यसें तन्मय हों,एकमेक हों वेद्रव्याश्रया हैं 155
निष्क्रान्ता ॥ गुणेभ्य ॥ निर्गुणा ॥	=नहीं घिरेहुए हैं (अन्य) गुणों करि वे निर्गुण हैं

(1) दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रकापाठ और अर्थ एकसा है।द्रव्यमेषामाश्रय इति द्रव्याश्रया । नैषां गुणा सन्तीति निर्गुणा ॥ द्रव्यम् एषाम् आश्रय इति द्रव्य आश्रया = जिनका आधार द्रव्यहो अर्थात् जो द्रव्यमें स्वयम् रहतेहों । जिनकेरहनेका स्थान द्रव्यहो ऐसेद्रव्याश्रया हैं॥ [illegible] जिनमें गुण(गुणों)का अस्तित्व नहो ऐसे निर्गुण हैं ॥

प्रत्युत्पन्नापत्ता गुणाश्चेति॥निर्गुणा इति विशेषणं द्व्यणुकादिनिवृत्त्यर्थम्॥ तान्यपि हि कारण-भूतपरमाणुद्रव्याश्रयाणि गुणवन्ति तु तस्मान्निर्गुणा इति विशेषणात्तानि[1] निवर्त्तितानि भवन्ति॥ननु पर्याया अपि घटसंस्थानादयो द्रव्याश्रया निर्गुणाश्च तेषामपि गुणत्वं प्राप्नोति॥ द्रव्याश्रया इति वचनान्नित्यं द्रव्यमाश्रित्य वर्तन्ते गुणा इति विशेषणत्वात्पर्यायाश्च [1]निवर्तिता भवन्ति ।

एवम्॥उभय-लक्षण-उपपना॥	=ऐसे दोनों (द्रव्यके आश्रय रहनेवाले और अन्य गुणोंकरि रहित) लक्षणों सहित हैं
गुणा॥इति॥निर्गुणा॥इति॥विशेषणम्॥	=वे गुण हैं (इससूत्रमें) "निर्गुणाः" (=अर्थात् अन्यगुणोंकरि रहित) ऐसा विशेषण
द्वि अणुक आदि-निवृत्ति-अर्थम्॥हि॥	=दो आदि परमाणुके (स्कन्धके) निवारण वा दूर करनेके लिए है क्योंकि =हि)
तानि॥अपि॥कारणभूत-परमाणु-	=वे (दोआदिपरमाणुओंके स्कन्ध) भी जिनके उत्पत्तिका निमित्त परमाणु हैं
द्रव्य आश्रयाणि॥गुणवन्ति॥तु॥तस्मात्॥	=द्रव्यके आश्रय गुणवान् होजाते हैं ('गुणवत्'का गुणवन्ति॥ है)तिस कारणसे
निर्गुणा॥इति॥विशेषणात्॥	=निर्गुणाः ऐसा गुणवाचक शब्द (इस सूत्रमें आने)से(=विशेषणात्)
तानि॥(१ निवर्तितानि॥भवन्ति॥	=वे (दो आदिपरमाणुओंके स्कन्ध गुणरूप होनेसे) निवृत्त होजाते हैं (=भवन्ति) अथवा छूटजाते हैं अर्थात् "द्रव्याश्रया गुणाः" यदि ऐसा सूत्र होता तो दो आदि परमाणुके स्कन्ध जो द्रव्यके आश्रय हैं और द्रव्य हैं वे भी गुण हो जाते हैं
ननु॥पर्यायाः॥अपि॥घट-संस्थान आदयः॥	=मग-पर्यायें भी घटके आकार वा आकृति, आदिक
द्रव्यआश्रयाः॥निर्गुणाः॥च॥तेषाम्॥अपि॥गुणत्वम्॥	=द्रव्यके आश्रय हैं और गुणरहित हैं तिन (पर्यायों) के भी गुणपना
प्राप्नोति॥द्रव्याश्रया॥इति॥वचनात्॥नित्यम्॥	=प्राप्त होता है (उत्तर) "द्रव्याश्रया" वाक्यसे नित्य
द्रव्यम्॥आश्रित्य॥वर्तन्ते॥गुणाः॥इति॥	=द्रव्यको आश्रयकरि वर्तते हैं वे गुण हैं (इस सूत्रमें द्रव्याश्रय) ऐसा
विशेषणत्वात्॥पर्यायाः॥च॥निवर्तिताः॥भवन्ति॥	=विशेषण होनेसे पर्यायें भी (गुणरूपपनेसे) निवर्तित होजाती हैं, अथवा पर्यायें भी गुणपना रहित वा वर्जित होजाती हैं ।

(१) सर्वार्थसिद्धिके प्रथम संस्करणमें 'निर्वर्तितानि' और 'निर्वर्तिता' ये दोनों शब्द अशुद्ध हैं। दूसरे संस्करणमें और अन्य तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें 'निवर्तितानि (=निवर्तितानि) और निवर्तिताः (=निवर्तिताः) शुद्ध हैं क्योंकि पहिले दोनों शब्द 'निर्वृत्ति'के जिनका अर्थ रचनाका है रूपान्तर हैं और पिछले दो शब्द 'निवृत्ति'के जिसका अर्थ छोड़ना निवारण करना दूर करना है रूपान्तर हैं निवृत्तिका अर्थ निवृत्तिसे उतरता है। द(दोआदि परमाणुओंके स्कन्ध गुणरूप होनेसे)निवृत्त होजाते हैं पर्यायें भी गुणपना रहित होजाती हैं, इस अनुवादसे प्रगट है कि 'निवृत्ति' होना चाहिये।

ते हि कादाचित्का इति ॥ असकृत्परिणामशब्द उक्त । तस्य कोऽर्थ इति प्रश्ने उत्तरमाह—

॥ तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

अथवा गुणा द्रव्यादर्थान्तरभूता इति केषाञ्चिद्-

ते॥हि॰कादाचित्काः॥इति॰ ॥	=क्योंकि (=हि)वे (पर्यायें) कभी कभी होने वाली(कादाचित्काः) होती हैं अर्थात् इस इक्तालीसवां सूत्रमें द्रव्याश्रया (द्रव्यसे नित्य सम्बन्धरूप द्रव्यसं तन्मय) विशेषणसे पर्यायोंको गुणपनेका निषेध होता है क्योंकि पर्यायें कदाचित् होकर विनशिजाती हैं कदाचित् अन्य अन्य रूप होजाती हैं
असकृत्॰(१)परिणामशब्द ॥-उक्तः॥,तस्य॥	=परिणाम शब्द (सूत्रोंमें) पुनि पुनि कहा गया है,तिस (परिणाम शब्द) का
कः॥अर्थ॥इति॰प्रश्न॥(२)उत्तरम्॥आह	=क्या तात्पर्य या आशय है ऐसे प्रश्न पर (आचार्य) उत्तर कहते हैं कि

सूत्रम्—[३]तद्भाव परिणाम ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थः—तद् भावः॥परिणामः॥	=उस द्रव्य)का स्वभाव, निजभाव, स्वतत्त्व, वा निजतत्त्व है सो परिणाम है अर्थात् द्रव्य जिस स्वरूप करि (=येनात्मना) होतीहैं(=भवति)सो तद्भाव है,वही परिणाम है, भावार्थ ऐसा है कि धर्मादिक जे द्रव्यें जिस स्वरूपकरि होती हैं (देखो सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ २११ पंक्ति ६,७, जिस स्वरूपकरि परिणमती हैं देखो पं॰जयचन्द्जीकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४७५ ४७६ उसको तद्भाव कहते हैं। वही(=तद्भाव) परिणाम है॥
(४)अथवा॰	=(यह सूत्र परिणाम शब्द के अर्थ कहने के लिये है)अथवा (इसलिये है कि)
गुणा॥द्रव्यात्॥॥अर्थान्तरभूता॥इति॰केषाञ्चित्॰	=गुण द्रव्यसे भिन्न हैं ऐसा किसनोंका

(१)सूत्र जिनमें परिणाम शब्द आया है(क) औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च अ०२ सू०१ (ख) मारका निरया शुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदना विक्रियाः अ ३ सूत्र ३ (ग) 'वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ॥अ०।सू०२२॥ बन्धेधिकौ पारिणामिकौ च॥ अ०५ सूत्र ३७॥ तदनुसार परिणामः अ०५सूत्र४२ ॥(२)'भ्रू' बोलने के धातुसे 'आह' (=कहता है) बना है (देखो अध्याय १ पृष्ठ १७) 'भ्रू के साथ उत् कर्म 'उत्तरम्' सूत्रम्' आय हैं। उत्तरम् समाधानकेअर्थमें यहां पुल्लिंग है (देखो वैधकोश पृष्ठ १२५ ५१६) (३)दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥(४)अथवा =पक्षान्तरमें,प्रकारान्तरमें ॥

दर्शनं तत्किं भवतोऽभिमतं नेत्याह—यद्यपि कथञ्चिद्व्यपदेशादिभेदहेतुत्वापेक्षया द्रव्यादन्ये, तथापि तदव्यतिरेकात्तत्परिणामाच्च नान्ये ॥ यद्येवं स उच्यतां कः परिणाम इति तन्निश्चयार्थमिदमुच्यते—

धर्मादीनि द्रव्याणि येनात्मना भवन्ति तद्भाव तत्त्वं परिणाम

दर्शनम् ॥ तत् ॥ किम् ॥ (१) भवतः ॥ (२) अभिमतम् ॥ =मत या सिद्धान्त (दर्शन है या दर्शन या मत) क्या आपको (अर्थात् स्याद्वादियोंको) मान्य है

न ॥ इति ॥ आह ॥ यद्यपि ॥ कथंचित् ॥ व्यपदेश- =ऐसा नहीं (मानते समाधान करनेके लिए) कहते हैं कि यद्यपि कभी (संज्ञा (संख्या-लक्षण प्रयोजन)

आदि भेद-हेतुत्व-अपेक्षया ॥ द्रव्यात् ॥ (३) अन्ये ॥, =आदिके भेदके कारणपनाकी अपेक्षाकरि (गुण) द्रव्यसे भिन्न हैं ॥

तथापि ॥ (४) तद्-(६) अव्यतिरेकात् ॥ च ॥ तत्- =तो भी उस (द्रव्य) के अभेदसे और (=च) उस (द्रव्य) के

परिणामात् ॥ न ॥ अन्ये ॥ =परिणामसे गुण अन्य नहीं हैं भावार्थ ऐसा है कि यद्यपि (५) संज्ञा-संख्या-लक्षण-विषयादिकरि गुणोंके द्रव्यसे कथंचित् भेद है तो भी वस्तुपनाकरि-प्रदेशपनाकरि अभेद है क्योंकि ये गुण उस द्रव्यके ही परिणाम हैं ॥

यदि ॥ एवम् ॥ सः ॥ उच्यताम् ॥ =यदि इस प्रकार है तो अर्थात् गुण द्रव्यके ही परिणाम हैं तो यह कहा जाय कि

कः ॥ परिणाम ॥ इति ॥ तद्-निश्चय अर्थम् ॥ इदम् ॥ =परिणाम क्या है। उस (परिणाम) के अवधारणके अर्थ यह (ब्यालीसवां सूत्र)

उच्यते ॥ धर्मादीनि ॥ द्रव्याणि ॥ येन ॥ =कहा जाता है कि धर्मादिक (छह) द्रव्य जिस जिस

आत्मना ॥ भवन्ति ॥ =स्वरूपकरि होते हैं (देखो अर्थ प्रकाशिका में इस सूत्रकी भाषाटीका) अर्थात् परिणमते हैं (देखो, पं जयचंदकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ८७५, ४७६)

तद्भाव ॥ तत्त्वम् ॥ परिणाम ॥ =सो तद्भाव है (यही) तत्त्व है-यही स्वतत्त्व है-यही निजतत्त्व है ॥ यही परिणाम

(१) 'भवत' शब्द यहां पर आपके अथवा तुम्हारे के अर्थ में पुल्लिङ्ग एकवचन षष्ठी विभक्तिमें है संज्ञा है ॥ प्रथम पुरुष (अन्यपुरुष) जो वचन 'भू' धातुका भवत लट वर्तमानकाल की क्रिया नहीं है ॥ [२] अभिमत – अभिमत स्वीकृत अंगीकृत मान्य एकार्थवाची है ॥

(३) 'अन्य' यहां पर सर्वनाम है और 'सर्व' शब्दकी भांति 'अन्ये' पुल्लिङ्ग-सर्वनाम-बहुवचन प्रथमा विभक्ति है ॥ इस 'अन्ये' को सप्तमी एक वचन पुल्लिङ्ग नहीं समझना चाहिये क्योंकि 'अन्य' शब्दकी भी सप्तमी विभक्ति 'सर्व' शब्दके सदृश 'अन्यस्मिन्' है। सर्वशब्दकी सप्तमी विभक्ति 'सर्वस्मिन्' है॥

(४) तथापि=तो भी-तथापि तिसपरभी समानार्थ क है।(५) संज्ञा-संख्या आदिकी अपेक्षासे कथंचित् भेद है (इसका खुलासा देखो इस अध्यायका पृष्ठ १४६) (६ सर्वार्थसिद्धिकी) प्रथमावृत्तिमें 'तदव्यतिरेकात्' पाठ है द्वितीयावृत्तिमें और तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें 'तदव्यतिरेकात्' पाठ है इन चार प्रतियोंका सम पाठ है क्योंकि [illegible] संज्ञा-संख्या लक्षण प्रयोजनादिकी अपेक्षासे भेद कहा इसके पीछे अभेद कहा [illegible] अनुसार और आचार्योक्त प्रगट है ॥

इति व्याख्यायते ॥ स द्विविधोऽनादिरादिमांश्च। तत्रानादिर्धर्मादीना गत्युपग्रहादि सामान्यापेक्षया। स एवादिमांश्च भवति विशेषापेक्षया ॥४॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां पंचमोऽध्यायः ॥

इति व्याख्यायते॥स द्विविधः अनादिः आदिमान् च =ऐसे विवरण किया जाता है। वह(परिणाम) दो प्रकार अनादि और आदिमान्

तत्र अनादिः सामान्य अपेक्षया धर्मादीनाम् =वहां अविशेष अपेक्षासे अनादि (परिणाम) धर्मादिक द्रव्योंके

गति-उपग्रह आदिः। =गति हेतुपना आदिक हैं (देखो इस अध्यायके सूत्र १७–१८–२२)

विशेष-अपेक्षया सः एव =और(=च विशेष अपेक्षाकरि वो (=सः)ही (= एव) अर्थात् अनादि परिणाम

आदिमान् च भवति ॥ =आदिमान्(=सादि)(परिणाम)होता है अर्थात् गति-स्थिति हेतुपनादि धर्मादिक द्रव्योंका अनादि परिणाम है। सो विशेषकी अपेक्षा बाह्य निमित्तसे परिणाम होता है जिससे वही अनादि परिणाम आदिमान् होता है क्योंकि पर्यायें उपजती हैं, और विनशती हैं तिनको आदि सहित कह सकते हैं। चार द्रव्य धर्म-अधर्म आकाश काल का तो अनादि तथा आदिमान् दोनों परिणाम आगमगम्य हैं। और जीव पुद्गलद्रव्योंके अनादि परिणाम आगमगम्य हैं। किन्तु उनके आदिमान् परिणाम कथंचित् प्रत्यक्षगम्य भी हैं।

इति तत्त्वार्थ-वृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां पंचम अध्यायः =ऐसे तत्त्वार्थके विवरणमें सर्वार्थसिद्धि नाम ग्रंथमें पांचवां अध्याय(पूर्ण) हुआ

इस सूत्रके पश्चात् श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थवृत्तिमें निम्नलिखित तीन सूत्र हमारे यहांके पाठसे अधिक हैं।

अनादिरादिमांश्च (अनादिः आदिमान् च) ॥४२॥सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पृष्ठ० १४१,भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें पर्ण ४८५पर॥

अनादि आदिमान् च तत्र अनादिः =अनादि और (=च) आदिमान् (दो प्रकार का परिणाम) है। तहां अनादि (परिणाम)

अरूपिषु, धर्म अधर्म आकाश जीवेषु इति =अरूपी द्रव्य) धर्म अधर्म आकाश तथा जीव में होता है।

रूपिष्वादिमान् ॥४३॥(=रूपिषु आदिमान्) ॥ सभाष्य० तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पृष्ठ १४१ ॥भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका पर्ण ४८६ पर

रूपिषु, पुद्गलद्रव्येषु आदिमान् =और पुद्गल रूपी द्रव्योंमें आदिमान् (परिणाम) होता है अर्थात् श्वेत कृष्ण नील आदि रूप वाले जो द्रव्य हैं उनमें आदिमान् (सादि) परिणाम होता है।

परिणाम (अनेकविधः)(परिणामोऽनेकविध) =वह आदिमान् परिणाम अनेक प्रकार होता है (जैसे)

स्पर्श परिणाम आदि इति(स्पर्शपरिणामादिरिति) =स्पर्श परिणाम रसपरिणाम और गंध परिणाम इत्यादि होते हैं।

योगोपयोगौ जीवेषु ॥४४॥(=योग उपयोगः च जीवेषु)। सभाष्य०तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पृष्ठ १४१ भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका पर्ण ४८७पर

अरूपी द्रव्योंमें अनादिपरिणाम कहा है सूत्र४२ अ०५ऊपर इसका उसका यह अपवाद या विशेषवचन है कि

जीवेषु, अरूपिषु, अपि सत्सु योग =जीवों के अरूपी (द्रव्य) होने पर (=सत्सु) भी (=अपि) उनमें योग

उपयोगौ परिणामौ आदिमन्तौ भवतः। तत्र उपयोगः पर्वं = उपयोग आदिमान् परिणाम होते हैं। जहाँ उपयोग पहिले या प्रथम
उक्तः योगः तु० = कहा गया (देखो समाप्य० अध्याय २ सूत्र = ८ पृष्ठ ४० ४१ और (= तु) योग
परस्तात्० वक्ष्यते = आगे (= परस्तात्) कहा जायगा (अध्याय ६ सूत्र कायवाङ्मनः कर्मयोगः)

श्वेताम्बर आम्नायमें स द्विधा अनादिरादिमांश्च' जो ४ वां सूत्र है हमारे तीसरी वार्तिक राजवार्तिक में है जिसकी वृत्ति और भाषा ऐसे है कि

स एषः परिणामः द्विधा भिद्यते अनादि आदिमान् च इति = वह परिणाम दो प्रकार भेदरूप अनादि और (= च) आदिमान् ऐसे। हैं
तत्र अनादिः धर्मादीनाम् गति-उपग्रह आदिः। = तहाँ अनादि (परिणाम) धर्मादिक (द्रव्यों) के गति उपग्रह आदिक हैं।
नहि धर्मादयः धर्मादीनि द्रव्याणि प्राक् पश्चात् गतिउपग्रहादिः = यह नहीं कि धर्मादिक द्रव्यें पहिले हो पीछे (= पश्चात्) गति उपग्रह आदिक हो।
प्राक् वा गति उपग्रह आदि पश्चात् धर्मादीनि इति किंतर्हि = अथवा गति उपग्रह आदि पहिले हो पश्चात् धर्मादिक (द्रव्यें) होवो (= तर्हि) क्योंकर
अनादि एताम्। सच = इन (धर्मादिकद्रव्य गतिउपग्रहादि) का अनादि सम्बन्ध है (ऐसे सामान्य अपेक्षा अनादि परिणाम है)
आदिमान् बाह्य प्रत्यय आपादित उत्पादः। = (विशेष अपेक्षा वेही परिणाम) बहिरंग निमित्तकरि उत्पन्न हुवे आदिमान भी (= च) है
क्योंकि पर्यायें उपजती हैं और विनशती हैं।

अत्र अन्ये धर्म अधर्म आकाश कालेषु अनादि परिणाम = इस विषयमें (= अत्र) अन्य (आचार्य) धर्म अधर्म आकाश कालविषैं अनादि परिणाम
आदिमान् जीव पुद्गलेषु इति वदन्ति तद् अयुक्तम् = और जीव पुद्गलोंमें आदिमान् (परिणाम) ऐसे कहते हैं सो ठीक नहीं है॥
कुतः सर्व द्रव्याणाम्। अनादि आत्मस्वरूपत्वम् = क्योंकर (अयुक्त है) क्योंकि सब द्रव्योंके अनादि स्वरूपता है॥
अन्यथा० नित्य अभाव प्रसंगात् (राज० पृष्ठ २४४से उद्धृत) = दूसरे प्रकारसे (मानने में) नित्यताके अभावका प्रसंग आता है (राज० पृष्ठ २४४से उद्धृत)
अयम् तु विशेषः धर्मादि चतुर्द्रव्य अत्यन्त = और (= तु) यह विशेष है कि धर्मादिक चार (धर्म अधर्म-आकाश-काल) द्रव्योंमें आत्यन्त
परोक्षत्व अनादि आदिमान् च परिणाम आगम-गम्य = परोक्ष है अनादि और (= च) आदिमान् परिणाम शास्त्र गम्य है।
जीव पुद्गलेषु कथंचित् प्रत्यक्षः अपि (राज० २४४से) = जीव पुद्गलो में (परिणाम) कभी कभी प्रत्यक्ष गम्य भी है॥ (राज० पृष्ठ २४४से उद्धृत)

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र के ४२वां ४३वां ४४वां सूत्रों का विचारपूर्वक पढ़नेसे और अपने यहाँ की तत्त्वार्थराज वार्तिकमें ऊपर उद्धृत वार्तिक तथा उसके विवरणके मिलान करनेसे दोनों आम्नायोंके अनादि और आदिमान् परिणामोंमें भेद और, अन्तर निम्नलिखित ज्ञात होता है॥ [क] समाप्य के अध्याय पांचके सूत्र १८ ४१ ४२ ४४ से यह बात झलकती है कि श्वेताम्बर आम्नायमें कालको द्रव्य नहीं माना है॥ (ख) समाप्य० के अनुकूल अरूपी द्रव्य जो धर्म अधर्म आकाशके सब और जीवद्रव्यके योग उपयोग ये दो परिणामों के अतिरिक्त अवशेष सब परिणाम अनादि हैं। पुद्गलके सब परिणाम आदिमान् हैं। और ये अनेक प्रकारके होतहैं। जैसे-स्पर्श परिणाम-रस परिणाम-गन्ध परिणाम इत्यादि और जीवके अरूपी द्रव्य होने पर भी योग उपयोग ये दो परिणाम आदिमान् हैं। हमारे यहाँ के अनुसार जीव-पुद्गल धर्म अधर्म आकाश-काल-सब के परिणाम सामान्यरूप से अनादि हैं। और विशेषरूपसे वे ही परिणाम (बाह्य निमित्त से उत्पन्न हुए) आदिमान् हैं क्योंकि पर्यायें उपजती हैं और विनशती हैं और ये हुये छहों द्रव्योंमेंसे चार धर्म अधर्म आकाश काल द्रव्योंके परिणाम अनादि और आदिमान् अत्यन्त परोक्षहोनेकेहेतुसे आगम गम्य हैं। जीव और पुद्गलोंके अनादि परिणाम तो आगम गम्य है परन्तु आदिमान् परिणाम कथंचित् प्रत्यक्ष गम्य भी हैं॥

सारांश—श्वेताम्बर आम्नाय में जीवके योग उपयोग तथा पुद्गलोंके सब परिणाम आदिमान् हैं। धर्म अधर्म आकाशके सब परिणाम और जीव के परिणाम (योग उपयोग परिणामों के अतिरिक्त) अनादिमान् हैं। हमारे यहाँ सामान्यरूपसे सर्वपरिणाम अनादिमान् हैं। विशेषरूपसे सब द्रव्योंके परिणाम आदिमान् है क्योंकि पर्यायें उपजती हैं और विनशती हैं॥ हमारे यहाँ कालको भी द्रव्य माना है (देखो अध्याय ५ सूत्र ४२, ३९, ४०) अध्यायसमाप्त॥



जगरूपसहाय जैन एम. ए. बी.
अनुवादक और संपादक,
सर्वार्थसिद्धिवृत्ति॥ वीर संवत २४५४

इस ग्रन्थको

स्वर्गीया पुज्य माताजी,

श्रीमती डालकुंवर बाई

—अवतरण १९०२ उत्तरण विक्रम सम्वत् १९३३—

की,

आत्मशान्त्यर्थ स्मारकरूपमें,

नतमस्तक जगरूपसहायने

समर्पण किया ॥ वीर सम्वत् २४५४ ॥